ग्रन्थ प्रशस्ति

फैला रहा अपनी प्रभा; गावों में औषध रत्न है।
घर घर उजाला कर रहा; गावों औषध रत्न है॥
आम, पीपल, नीम और; हर्रा, बहेड़ा, आँवला।
सब के गुण बतला रहा; गावों में औषध रत्न है॥
एलोपैथी होम्योपैथी; आदि सब ही पेथियाँ।
रह गई पीछे, बढ़ा; गावों में औषध रत्न है॥
मन्त्र मृतुञ्जय है यह; औ' है फेमिली डाक्टर।
काल रोगों का बना; गावों में औषध रत्न है॥
वैद्य से मतलब है क्या; है डाक्टर की क्या गरज।
जिस के घर में आ गया; गावों में औषध रत्न है॥
"सेक-सरिया-ट्रस्ट चेरीटि को" दीजै धन्यवाद।
कर दया, छपवा दिया; गावों में औषध रत्न है॥
"स्वामी कृष्णानन्दजी" पर हो न्यौछावर अय 'मदन'!
जिनकी कलम ने यह लिखा; गावों में औषध रत्न है॥

सच है कि इस संसार में, यदि सार है तो यत्न है।
जैसे कि पीपल नीम वट, गावों में औषध रत्न है॥
हम वात, अरु कफ पित्त हित, खर्चा करें यहाँ सैकड़ों।
जब हड़ बहेड़ा आँवला, गावों में औषध रत्न है॥
यां मकरध्वज हीरा भस्म, अरु स्वर्ण वटिका फेल हैं।
पर हींग जीरा नमक ही, गावों में औषध रत्न है॥
हैं नगर यह वह गांव "शिव", दानव यहां मानव वहां।
नगरों में औषध धूल है, गावों में औषध रत्न है॥

कृष्णगोपाल ग्रन्थमाला का नवमपुष्प

श्रीगोविंदराम सेकसरिया चेरिटी-ट्रस्ट (इंदौर)
की सहायतासे प्रकाशित

गांवोंमें औषधरत्न

[प्रथम भाग]
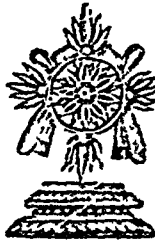
प्रकाशक

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय
पो० कालेड़ा-बोगला (जिला अजमेर)

प्रथम संस्करण
प्रति ४०००

१९४९ ई०

सामान्य कागज २)
विशेष कागज ३)

दानवीर

स्वर्गीय सेठ श्री गोविन्दरामजी सेखसरिया

जन्म काल—१९ अक्तूबर सन् १८८८ ई०

स्वर्गारोहण काल—२२ मई सन् १९४६ ई०
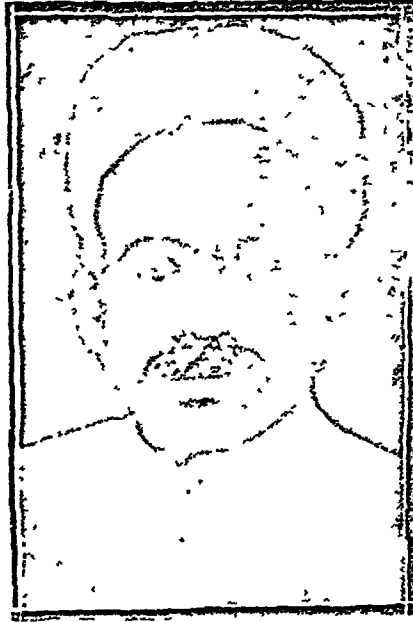
आपने एक करोड़ रुपये की रकम सत्कार्यों में उपयोग करने के लिये प्रदान
र एवं उसका प्रबन्ध करने के लिये ट्रस्ट मण्डल की स्थापना की है।

॥ ॐ ॥

आतुरालय के लिये भवन निर्माणार्थ

निवेदन

श्रीमन्माननीय महोदय,

यह आपको भलीभांति विदित है कि, कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय तथा चिकित्सालय (Dispencary) द्वारा गत १९ वर्षों से जनता जनार्दन की सेवा सफलता पूर्वक करता आ रहा है। अपने उच्च उद्देश्य और सचाई के कारण इस संस्था की कीर्ति अजमेर-मेरवाड़ा और इसके सन्निकटस्थ रियासतों तक ही सीमित न रहकर हिन्दुस्तान के कोने कोने में प्रसारित हो गई है। इस संस्था के धर्मार्थ विभाग ने अपने विगत जीवन काल में लगभग ३ लाख गरीब लोगों की निस्स्वार्थ सेवा की है। इनके अतिरिक्त उन रोगियों की संख्या भी कम नहीं है जिन्होंने औषधियां मूल्य से लेकर या मंगवा कर रोग से मुक्ति प्राप्त की है।

इस संस्था की अनेक विशेषता हैं, परन्तु सर्व प्रथम विशेषता यह है कि, यह एक ग्राममें स्थित है। यह प्रत्येक सुबोध व्यक्ति को पता है कि, आज भारत के सामने गांवों की कठिन समस्या उपस्थित है। हिन्दुस्तान की ८० प्रतिशत जन संख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामवासियों को प्राकृतिक साधन सहज ही उपलब्ध होने पर भी, शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी विचार तथा यथोचित आर्थिक साधनों के अभाव से ग्रामों की

हालत दयनीय ही नहीं, अपितु चिंताजनक भी है। नगरों में अनेक बड़े बड़े अस्पताल हैं, परन्तु ग्रामीण जनता की आवश्यकता की पूर्ति को इनसे आशा करना नितान्त भूल होगी। ग्रामीण जनताके पास न तो इतना पैसा है और न इतनी बुद्धि या परिचय ही है कि, नगरों के, अस्पतालों से सहायता प्राप्त कर सके।

इस संस्था की दूसरी विशेषता आयुर्वेद की साहित्य सेवा है। इस संस्था ने अपने अल्प जीवन में ७ ग्रन्थ प्रकाशित करके जगत् को प्रामाणिक साहित्य भेंट किया है। विज्ञापन के लिये एक पैसा भी खर्च किये बिना आज संस्था का नाम सम्पूर्ण भारत में आदर की दृष्टि से लिया जाता है।

इस संस्था ने एक भी प्रयोग को गुप्त रखकर पेटेण्ट नहीं कराया है, क्योंकि ऐसा करना इसके सिद्धान्त के विरुद्ध है। समस्त अनुभवों को आयुर्वेद की सेवा में सादर समर्पित कर दिया गया है।

काफी समय से अनेक स्थानों से चिकित्सार्थ आनेवाले रोगियों की कठिनाइयों को देखकर आतुरालय का अभाव खलता था। इस अभाव की पूर्ति के लिये संस्था के ट्रस्टियों ने आतुरालय बनवाने का निश्चय किया क्योंकि, चिकित्सार्थ दूर दूर से रोगी आते रहते हैं पर रहने के लिये स्थान की असुविधा के कारण उनको अति कष्ट होता है; फलतः इस स्थान पर एक आतुरालय (Hospital) की परमावश्यकता थी। प्रारम्भ में भवन निर्माण का खर्च लगभग ५००००) रु० का अन्दाजा लगाया गया था। परन्तु नकशे में कुछ परिवर्तन करने से तथा विश्वव्यापी महंगाई के कारण खर्चा लगभग ८००००) रु० हो गया तथा निरन्तर प्रयत्न करने पर भी अजमेर-मेरवाड़ा, मेवाड़, बरार, बम्बई आदि स्थानों से लगभग ४४०००) रु० एकत्रित किया जा सका।

गत अक्तूबर १९४५ में अजमेर-मेरवाड़ा के चीफ् कमिश्नर साहब यहां पधारे तो उन्होंने भी यहां पर एक आतुरालय की आवश्यकता का अनुभव कर आतुरालय भवन बवन बनवा देने का आश्वासन दिया तथा ७-११-४५ को उसका शिलान्यास भी स्वकरकमलों से कर, सरकार (Post war Reconstruction Fund) से ७००००) रुपया दिलवाने का वचन दिया। इस बार कुल खर्च लगभग एक लक्ष का अनुमान होनेपर, उसमेंसे २००००) चन्दा वसूल किया गया और निर्माण सामग्री खरीद की गई एवं चूना आदि का ठेका दे दिया गया; जिसमें उक्त चन्दे की रकम खर्च हो जानेपर ऋण लेना पड़ा। अभी काम अधूरा ही था कि पाकिस्तान का जन्म हो गया; अतः उक्त वार फंडवाली ७००००) की रकम शरणार्थियों में वितरित होने के परिणाम

स्वरूप इस संस्था पर उस ७००००) के खर्च का भार बढ़ गया है। फलतः पुनः चन्दे के लिये घूमना पड़ा, जिसमें से धनिकों से अबतक १५०००) की रकम प्राप्त हो सकी। शेष ५५०००) की आवश्यकता है।

आतुरालय का भवन लगभग बन गया है और अब इसका उद्घाटन करना है। भवन लगभग दो माह पश्चात पूर्णतया तैयार हो जायगा। इस प्रकार काफी रकम औषधालय को उक्त भवन निर्माण में लगानी पड़ रही है। अतः पहिले शेष रकम पूरी हो जाय तो आगे का प्रबन्ध ठीक हो सकेगा।

इस संस्था का ट्रस्टडीड १९४५ ई० के मार्च मास में कराया जा चुका है। यह संस्था जनता की है, इसने अभी तक साढ़े तीन लाख गरीब रोगियों को जीवनदान दिया है और लाखों रोगियों को मूल्य से औषधि दी है; इसके अतिरिक्त इस संस्थाने आयुर्वेद साहित्य की जो सेवा की, वह आयुर्वेदप्रेमी सज्जनो को विदित है ही। अभी तक ८-१० पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं, जो भारत के कोने कोने में पहुँची हैं। ये पुस्तकें आयुर्वेद महारथी, सामान्य वैद्य, विद्यार्थी और सामान्य बोधवाले आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन, सबके लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

आतुरालय के चंदे की उपाधि आने के पश्चात् आयुर्वेद साहित्य की सेवा अर्थात् नूतन ग्रन्थ निर्माणकार्य लगभग बन्द हो गया है। लेखन का समय चारों ओर फिरने में जा रहा है। इस प्रकार पुस्तक प्रकाशन और रसायन शाला के कार्य में बड़ी भारी बाधा उपस्थित हो गई है। मेरी यह हार्दिक इच्छा रही कि, औषधालय के संचालन का आर्थिक भार जनता पर न डाला जाय। अब तक इस संस्था का खर्च प्रकाशित ग्रन्थों तथा औषध बिक्री से ही चलाया गया है और भविष्य में भी औषधालय के संचालन का भार जनता पर नहीं डाला जायगा। केवल आतुरालय भवन के निर्माण में जनता का सहयोग आवश्यक है। अतः फण्ड पूरा होने में जितनी देर होगी उतनी ही हानि आयुर्वेद साहित्य को पहुँचेगी और इस कार्य की पूर्ति के लिये उदार दानी और इस संस्था के हितचिन्तक सज्जनों से नम्रनिवेदन है कि, वे इस सेवायज्ञ को आगे चलाने के लिये जितनी हो सके उतनी अधिक सहायता प्रदान करें और परिचितों को भी प्रेरणा करने की कृपा करें।

जो रकम भेजनी हो वह चेक ड्राफ्टर, हुंडी, मनिआर्डर या इन्फार्म रजिस्टर द्वारा भेजने की कृपा करें।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि, हमारी यह योजना भी देश के लिये उपकारी,

आदर्श व सांगोपांग सफल रहे। अतः सर्व उदार सज्जनों से मेरा निवेदन है कि, उदार चित्त से इस सेवा यज्ञ में स्वयं सहायता देकर तथा अन्य इष्ट मित्रों से व सम्बन्धियों द्वारा सहायता दिलवाकर दीन व आर्तजनों का आशीर्वाद तथा सुकीर्ति प्राप्त करें।

कालेड़ा-बोगला
(अजमेर)

जनता-जनार्दन का सेवक—
(स्वामी) कृष्णानन्द
संस्थापक
कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय
कालेड़ा-बोगला (अजमेर)

निवेदन ।

"गाँवों में औषधरत्न" यह नाम ही अपने विषय का परिचायक है। भारत का प्रत्येक बच्चा जानता है कि, हमारे देश में सर्वत्र ऐसी वनौषधियाँ सरलता से मिल जाती हैं, जिनका मनुष्यदेह पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है। यदि जनता को उनके विषय में साधारण जानकारी भी मिल सके, तो बड़ा उपकार हो सकता है। वास्तव में यह उत्तर-दायित्व सरकार का है। जिसे समय-समय पर ऐसा साहित्य सरल भाषा में प्रकाशित करना चाहिये तथा बालकों की पाठ्य पुस्तिकाओं में भी औषधियों के परिचय, गुणधर्म और सरल दिव्य उपयोग समझाने वाले पाठ देने चाहियें। ताकि भारत की निःसहाय ग्रामीण जनता, जिसके लिये चिकित्सकों की देहली तक पहुँच सकना असम्भव-सा है; और जो प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में वेदना भोग भोग कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं —वे अपने ही ग्राम में सहज उपलब्ध वनौषधियों का सरलता पूर्वक उपयोग करके लाभ उठा सकें। १।। वर्ष से पूर्व भारत गुलाम और असहाय था। उस पर प्रभुता जमाये हुए गौरांगों का स्वार्थ इसीमें सिद्ध होता था कि, भारत का बाजार इंग्लैण्ड की बनी औषधियों से भर दिया जाय। परन्तु अब हम अपनी ही सरकार के स्वास्थ्य विभाग से ऐसे उपायों की निश्चित आशा कर सकते हैं कि, जिनसे भारत के गिरे हुये स्वास्थ्य में कुछ वास्तविक सुधार हो सके।

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय ने अपने प्रारम्भ काल से ही आयुर्वेद का उत्कृष्ट साहित्य जनता को अर्पण करना अपना ध्येय समझा है। यह संस्था एक छोटे से ग्राम में स्थित होने एवं इस संस्था के प्राण और संस्थापक श्री पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज का जीवन उद्देश्य दीन दुःखीजनों की सेवा मात्र होने से, इस संस्थाने ग्रामोपयोगी साहित्य प्रकाशित करना अपना कर्तव्य समझा है।

जैसे स्वामीजी ने ग्राम सेवा का लक्ष्य रखा है, वैसे ही स्व० सेठ गोविंदराम सेकसरिया चेरिटी ट्रस्ट के विचारशील ट्रस्टियों ने भी जहाँ तक हो सके वहाँ तक ग्रामों का कल्याण अधिकतर हो, ऐसे कार्यों में ट्रस्ट की संपत्ति का विशेष विनियोग करने का लक्ष्य रखा है। इसी तरह यदि अन्य चेरिटी ट्रस्टों के ट्रस्टीगण भी इस देशोपकारक मार्ग पर लक्ष्य देवें, तो भारत का उद्धार अत्यन्त शीघ्र और सरलता पूर्वक हो सकेगा।

उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वामीजी महाराज ने श्री गोविंदराम सेकसरिया ट्रस्ट बोर्ड के प्रेसीडेण्ट श्री सेठ माखनलालजी, सेक्रेटरी सेठ जौहरीलालजी तथा अन्य ट्रस्टियों से वार्तालाप किया। उन सबने इस सेवायज्ञ में अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सहायता

देने का वचन दिया। इसके फलस्वरूप ही यह पुस्तक जनता जनार्दन की सेवा में समर्पित हो सकी है। उक्त ट्रस्टियों ने ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ ५०००) रु० सहायता देना स्वीकार किया है। इस सेवा लक्ष्य के लिये उन सब ट्रस्टियों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। साथ ही हम सेठ साहब मक्खनलालजी सेकसरिया को विशेष धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस संस्था का विशेष परिचय न होने पर भी "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह" का छठवां संस्करण छपवाने के लिये ५०००) रु० उधार रूप में देने की कृपा की है।

सस्ता बाजारू साहित्य प्रकाशित करके जनता का समय और पैसा नष्ट कराना और कुसंस्कार उत्पन्न कराना, इसके हम हमेशा विरुद्ध रहे हैं। स्वास्थ्य प्राप्ति में जो हितकर हो, ऐसे विज्ञानानुरूप आधुनिकतम ज्ञानप्रद ग्रन्थ सरल भाषा में जनता के पास पहुँचाने का ही हमने अद्यापिपर्यन्त प्रयत्न किया है। उसी लक्ष्य के अनुरूप यह पुस्तक लिखवायी है। जहाँ तक हो सका इस पुस्तक का विषय बहुत ही सरलता से लिखा गया है कुछ स्थलों में अवश्य ही कुछ कठिन विषय आ गये हैं, फिर भी समझने के लिए थोड़ा सा प्रयत्न किया जायगा, तो हमें विश्वास है कि, साधारण पढ़े लिखे ग्रामीण मनुष्य भी इसके आशय को आसानी से समझ सकेंगे और औषध प्रयोग करके लाभ भी उठा सकेंगे।

पुस्तिका का सम्पूर्ण भारत में प्रचार हो और सब प्रांतवासी इससे लाभ उठा सकें इस उद्देश्य से अनेक प्रांतों के प्रचलित नाम, संस्कृत नाम और वनस्पति शास्त्र में निश्चित किये हुए लेटिन नाम आदि भी प्रत्येक वनौषधि के वर्णन के आरम्भ में दिये गये हैं, हम चाहते थे कि, पुस्तिका का आकार कुछ बढ़ा दिया जाय, ताकि शेष अधिक उपयोगी वनौषधियां, जैसे घीकुंवार, इंद्रजौ, मालकांगनी, धनिया, जीरा, स्याह जीरा आदि भी इसमें सम्मिलित हो जायं, परंतु सेकसरिया ट्रस्ट के माननीय ट्रस्टियों को ऐसा अनुभव हुआ है कि छोटी छोटी पुस्तिकाओं द्वारा ही ग्रामीण जनता अधिक लाभ उठा सकती है। इस विचार से सहमत होकर यह पुस्तक केवल २५६ पृष्ठों की ही दी गई है अगर जनता ने सप्रेम अधिक सहयोग दिया तो शेष औषधियों को भी विवेचन रूप में लिखकर इसका द्वितीय भाग शीघ्र प्रकाशित करा दिया जायगा।

पुस्तक नवीनतम ढंग से लिखी होने के हेतु से ग्रामीण जनता के साथ-साथ सुबोध वैद्य, विद्यार्थी वर्ग और आयुर्वेद प्रेमी, सबके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकेगी; ऐसी हमारी धारणा है। औषधियों के गुणधर्म वर्णन में आये हुए पारिभाषिक शब्दों का अर्थ पुस्तिकाके अन्त में दे दिया गया है, ताकि अपरिचितों को समझने में सरलता हो जाय। फिर भी यह विषय उतना सरल एवं बोधगम्य नहीं है अतः इन गुण धर्मों का रहस्य जितना सूक्ष्म रूपसे समझें, उतना ही अधिक लाभ हो सकता है, इस हेतु से इसका विशेष विचार "औषध गुणधर्म विवेचन" नामक स्वतंत्र ग्रन्थ में किया गया है,

जो लगभग ३०० पृष्ठों का होगा। और जो प्रेस में छप रहा है। आशा है कि वह २ मास के भीतर तैयार हो जायगा।

इस पुस्तक में आई हुई ओषधियों का परिचय वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से संक्षेप में किया गया है, जो अपरिचितों के लिए औषधिको पहचानने में सहायक होगा। कुछ अति परिचित ओषधियां आक, इमली, थूहर, पुनर्नवा आदि जिनको सर्वसाधारण अच्छी तरह जानते हैं, उनका परिचय कुछ विस्तार से लिखा गया है। क्योंकि परिचित वनस्पतियों के पत्र पुष्प आदि अंग-उपांगों के रचना-भेद को समझ लेने पर अन्य अपरिचित वनौषधियों का परिचय प्राप्त करने में बहुत सहायता मिल जाती है।

नव्य वनस्पति विशेषज्ञों ने इस विषय में अति परिश्रम किया है, काफी खोज करके उच्चतम साहित्य प्रकाशित कराया है। उन्होंने संसार की सम्पूर्ण वनस्पतियों के सपुष्प और अ-पुष्प भेद से मुख्य दो विभाग किये हैं। स-पुष्प में एक दल और द्विदल दो उप-विभाग हैं। इनमें द्विदल विभाग वनस्पति सृष्टि के शेष सब विभागों की अपेक्षा बड़ा है; इन विभागों में पुष्प गत रचना विभिन्नता के अनुरूप विविध वर्गसमूह, वर्ग, जाति, उपजाति आदि भेद हैं। इस नूतन शैली से अभ्यास करने पर संसार की समग्र (परिचित और अपरिचित) वनौषधियों का परिचय सरलता से मिल सकता है। इस शैली से बृहद् ग्रन्थ "वनौषध-संग्रह" लिखकर ६ भागों में प्रकाशित कराने का विचार था। इसके प्रथम भाग का काफी अंश (६०० पृष्ठ) लिखा भी जा चुका था। उतने में आतुरालय भवन (Hospital) के निर्माण रूप उपाधि उपस्थित हुई, जिसने स्वामी जी महाराज के इस ग्रन्थ-लेखन कार्य को बन्द ही करा दिया। जो भाग लिखा था, उसमें से कितनीही ग्रामोपयोगी ओषधियों को अलग कर, और शैली बदलकर उनका संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक में दे दिया गया है। वनस्पति शास्त्र की शैली से जो एक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार है, उसके लिये श्रीहरि अधिक सुविधा देंगे और जनता का सहयोग मिलेगा, तो वह भी तैयार कराकर सेवा में समर्पित किया जायगा।

सर्व साधारण जन लाभ उठा सकें, इस हेतु से इस पुस्तक का मूल्य जितना हो सका उतना कम रखा गया है।* आर्थिक प्रतिकूलता के कारण पहिले से कागज खरीदा नहीं जा सका, फिर समय पर खरीदने से ग्लेज पेपर कम मिलने और मूल्य अधिक लगने के कारण सामान्य कागज जो समय पर मिल सका, उसी पर २५०० प्रति और ग्लेज कागज पर ५०० प्रति छपवाई गई हैं। उपयोगी पुस्तक सामान्य कागजपर छपवाने के सम्बन्ध में हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

* पुस्तक के लिये खर्च कम करने के अनेक उपाय करने पर भी "खर्चमर्यादा से १॥ गुणा अधिक हो गया है अतः लाचार होकर मूल्य में ॥) की वृद्धि करनी पड़ी है।" —मैनेजर।

ओषधियों के गुणधर्म प्राचीन आचार्यों ने लिखे हैं। उनमें देश, भेद, काल-भेद और अनुभव भेद आदि कारणों से भेद हो गया है। कितनीही औषधियों के गुण धर्म एक दूसरों के वचन से विरोधी हैं। ऐसी अवस्था में हमें सामान्य मार्ग का अनुसरण करना पड़ा। जो विशेष अनुकूल प्रतीत हुए, वे लिखे हैं। यदि भिन्न-भिन्न आचार्यों के नाम के साथ गुण वर्णन विस्तार से लिखा जाता, तो वह ग्रामोपयोगी न हो सकता और पृष्ठ संख्या भी बढ़ जाती। इस विषय में दोष रह जाना, या अपूर्णता होना यह स्वाभाविक है, इसी तरह उपयोग वर्णन में भी अपूर्णता हो सकती है। लिखते समय कितने ही उपयोगों का स्मरण न हो सका हो, यह संभव है, इसी तरह कितने ही उपयोगों की सत्यता में सन्देह रह जाने से उन्हें छोड़ देना पड़ा है। इस संबन्ध में विद्वान् और अनुभवियों की ओर से हमें जो भी सूचना मिलेंगी, वे सब साभार स्वीकार की जायँगी, और उनका लाभ भावी संस्करण में जनता को देने का प्रयत्न किया जायगा। शेष वनौषधियों का विवेचन करने के पश्चात् प्राणिज ओषधियां घृत, दुग्ध, गोमूत्र, शहद, मोम, अस्थि, मोती, प्रवाल, शंख, शुक्ति, कपर्दिका आदि तथा खनिज ओषधियां-विविध धातु-उपधातु, रत्न, उपरत्न, पत्थर, फिटकरी और नौसादर आदि क्षारों का विवेचन करने का विचार है। पर यह कार्य जनता के सहयोग पर अवलम्बित है।

औषधियों के उपयोग वर्णन में कितनेही स्थानों पर साथ साथ लक्षण भी लिख दिये हैं, जिसमें किस अवस्था में और कब ओषधि देना यह स्पष्ट विदित हो सके। कितनेही स्थानों पर वक्तव्य लिखकर विशेष स्पष्टीकरण किया है और कतिपय स्थानों पर सूचना लिख दी है, जिससे स्वल्प बोध वाले ग्राम वासी से भी औषधियों का दुरुपयोग न हो जाय, इस तरह पुस्तक को जहाँतक हो सका, उतना विशेष उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है।

इस ग्रन्थ में प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त जिन अर्वाचीन विद्वानों, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती और बंगाली ग्रन्थकारों के बनाये हुए ग्रन्थों से हमने लाभ उठाया है, उन सब ग्रन्थकारों और अनुभव दाताओं का हम हृदय से आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थ की भूमिका लिख देने के लिये इस संस्था के हितचिन्तक श्री० राजवैद्य पं० खयालीरामजी द्विवेदी आयुर्वेदमार्तण्ड, आयुर्वेदाचार्य इन्दौर से हमने निवेदन किया। आपने अपने अमूल्य समय का भाग देकर इस सेवायज्ञ की सहायतार्थ भूमिका लिख देने की कृपा की अतः आपके हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

यदि उक्त सब व्यवस्था होते हुए इस ग्रन्थ को स्वल्प समय में छाप देना, शुद्ध छपाई कराना, कागज खरीद करना आदि शेष सहायक कार्यों की सुविधा देना, ये सब कार्य सन्मार्ग प्रेस के मैनजर आदि अति सद्भावपूर्वक न कराते, तो यह ग्रन्थ इतना

सुन्दर और जल्दी प्रकाशित न हो सकता, इस सम्बन्ध में हम सन्मार्ग प्रेस के प्रकाशक श्री पं० दुर्गादत्तजी त्रिपाठी तथा संचालक, व्यवस्थापक आदि के पूर्ण कृतज्ञ हैं।

भाषा संशोधन और अन्तिम प्रूफ संशोधन आदि कार्य में श्री पं० मदनगोपाल शर्मा ने पूर्ण सहयोग दिया है। स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी सेवायज्ञ समझकर जो परिश्रम किया है। उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

यह संस्था १९४५ ई० तक चिकित्सालय द्वारा रोगियों की सेवा करती थी। १९४५ ई० के नवम्बर मास में कई सज्जनों की प्रेरणा वश आतुरालय (Hospital) बनवाने का निश्चय किया। उसमें ७००००) रु० की सहायता सरकार की ओर से मिलने का अभिवचन मिला था। भवन निर्माण कार्य आरम्भ हो जाने तथा बहुत कुछ कार्य हो जाने के बाद भी सरकार की ओर से मिलने वाली रकम न मिल सकी। जिससे इस संस्था पर अकस्मात् आर्थिक भार आ गया है। इस भार से मुक्त होने के लिये स्वामी जी महाराज क लेखन कार्य को छोड़कर चारों ओर फिरना पड़ता है। साहित्य सेवा अर्थात् ग्रन्थ लेखन कार्य बन्द रहना यह अति दुखदायी प्रतीत होता है, किन्तु निरुपाय वश वैसा करना पड़ता है। ७००००) में से १५०००) हजार की सहायता मिल चुकी है। शेष सहायता मिल जाने पर पुनः पहिले के समान लेखन कार्य चालू कराया जा सकेगा, ऐसी आशा है।

इस आतुरालय भवननिर्माणार्थ कितनीक रकम कर्ज रूप से बैंक से और परिचित सज्जनों से ली है और कुछ रकम औषधालय की रुक गई है। इस हेतु से औषधि-निर्माण और ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में भी बाधा पहुँच रही है। आर्थिक सुविधा न होने से कितनेक संशोधित ग्रन्थ और नूतन ग्रन्थ अप्रकाशित रह गये हैं। ऐसी अवस्था में उदारचित धनिक १ वर्ष के लिये रकम १०००) ५००) या २५०) रु० उधार देने की कृपा करेंगे, तो भी सरलता पूर्वक साहित्य सेवा हो सकेगी।

पूज्य स्वामीजी महाराज की त्याग, उत्साह और परोपकार वृत्ति निश्चय ही संस्था को किसी भी घोरतम संकट से उभारने में सहायक है। उनके जैसा खेवनहार होते हुए संस्था की नैया निःसंदेह पार लगेगी। जो भी सज्जन पूज्य चरणों का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं, वे उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। अजमेर जिला के ऑफिसरों और अनेक माननीय नेताओं ने इस संस्था की सेवा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। अतः नम्र निवेदन है कि, ऐसी देशोपयोगी संस्था को सहायता देना, यह जनता का ही कर्तव्य है। इति शुभम्।

जनताजनार्दन का सेवक—

ता० १-३-४९

कुँवर जसवंत सिंह

मंत्री।

गांवों में औषधरत्न पर सम्मति।

भारत के सौभाग्य स्वरूप और भगवान् के अनुग्रह से आयुर्वेद साहित्य की अहर्निश वृद्धि प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी को आह्लाद प्रदान कर रही है। आयुर्वेद के सभी अंग आवश्यक पठनीय होने पर भी निघण्टु का विषय विशेष रूपसे मनन करने योग्य है। यह अंग आयुर्वेद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। इसका भली-भाँति ज्ञान होनेपर संसार का विशेष उपकार एवं रोगी का कल्याण हो सकता है। इसी लक्ष्य से विद्वज्जनों ने अनेक ग्रन्थों का सृजन किया है और करते जा रहे हैं। इसी दृष्टिकोण से स्वनाम धन्य आयुर्वेदोद्धारक स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज ने इस अद्वितीय अनुपम ग्रन्थ (गांवों में औषधरत्न) का निर्माण किया है। वास्तविक रूप में यह ग्रन्थ श्रेष्ठ, इसका संकलन सराहनीय, संपादन प्रशंसा योग्य और मुद्रण समयानुसार उत्तम है। गांवों की सेवा दृष्टि से मूल्य भी अति कम रखा गया है।

इसके विमर्शन करने पर एक ही ओषधि से अनेक रोगों के नाश के हेतु अनेक प्रयोग बनेंगे। जहां कोई रसायन शाला न हो किंवा किसी वैद्यराज का चिकित्सालय या औषध विक्रेता की फार्मेसी या दूकान भी न हो, वहाँ यह पुस्तक एक प्रवीण वैद्य, औषध भण्डार की आवश्यकता की पूर्ति करेगी। छोटे छोटे गांवों के लिये यह पुस्तक आशीर्वाद के सदृश उपादेय है।

इस पुस्तक का पठन-पाठन प्रत्येक नर-नारी, गृहस्थ, संत महात्मा जन के लिये अत्यन्त हितकारी होने के अतिरिक्त प्रत्येक चिकित्सक को सहायक एवं ज्ञानपिपासु विद्यार्थिवर्ग को सजीव ज्ञान का रूप सिद्ध होगी। मेरे विचार से तो आयुर्वेद संस्था, आरोग्यशाला, अनुसंधानशाला, पाठशाला, आयुर्वेद विद्यालय और विश्वविद्यालयों के ज्ञान स्थल में यह विज्ञान का रूप धारण करेगी। मुझे विश्वास है प्रत्येक आयुर्वेद संस्था इसका समुचित आदर करेगी। पूज्य स्वामीजी की कृति तथा अनुभव को कहीं तो पाठ्य ग्रन्थों में कहीं सहायक ग्रन्थों में स्थान मिलेगा। भगवान् अपने अमोघ वरदान से पुस्तक को उपादेय और रचयिता को स्वास्थमय दीर्घायु प्रदान करें और यशस्वी बनावें।

श्री पं. राधाकृष्ण द्विवेदी भिषगाचार्य

प्रिंसिपल—गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज,

हैदराबाद (दक्षिण)

भूमिका

संसार परिवर्तनशील है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होना अवश्यंभावी है। सहस्रों वर्ष पश्चात्, कालचक्र का परिक्रमण करता हुआ आयुर्वेद का सूर्य पुनः उदयाचल के शिखर पर उदीयमान होता हुवा दृष्टिगोचर हो रहा है, यह हमारी सौभाग्यवेला का सुमधुर हास है। हमारे हृदयों में आज हम एक अलौकिक स्फूर्ति का अनुभव कर रहे हैं। निश्चय ही हमारा लक्ष्य परम कल्याणमय, परमसत्य एवं परमप्रशस्त है, मार्ग की अस्थिर कठिनाइयां हमें अपने उद्देश्य से विचलित नहीं कर सकतीं। पहिले हम अपने लक्ष्य पर पहुँच चुकेंगे, सफलता पीछे से हमारा आह्वान करती हुई अनुगमन करेगी।

आयुर्वेद का जो साङ्गोपाङ्ग वैज्ञानिक वर्णन आज उपलब्ध है, वह आज के इस वैज्ञानिक युग में भी नितनूतन ही बना हुआ है। जिसके विषय में चरक की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है कि—"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"।

भारतवर्ष में हजारों वर्ष पहिले चिकित्सा शास्त्र एवं औषधविज्ञान के सम्बन्ध में जो चमत्कारिक साहित्य निर्माण हुआ, उसे देखकर आज हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। उन दिनों लाखों रुपयों की लेबोरेटरीज (रसायनशालाएं) अणुवीक्षण-यन्त्र तथा एक्सरे आदि आज जैसे साधन उपलब्ध नहीं थे। यह साहित्य त्रिकालदर्शी योगियों के ज्ञानबल से प्राप्त किया त्रिकालाबाधित परम सत्य है। इसमें मानवबुद्धिगत साधारण दोषों की सम्भावना नहीं।

आज जो हम लोग विलायत आदि विभिन्न देशों से आई हुई तरह तरह की रंगीन बोतलों से भरी हुई औषधियों की बाजार में भरमार देखते हैं; जिनके ऊपर गरीब तथा अमीर दोनों ही समान रूप से धन खर्च करने में नहीं हिचकिचाते, उन औषधियों में अधिकांश वे ही ओषधियां हैं, जो कि प्रतिदिन हमारे पैरों तले कुचली जाती रहती हैं।

आयुर्वेद में ऐसी अनेकों औषधियां हैं जो कि सफलता के साथ कई प्रसिद्ध अंग्रेजी औषधियों की बराबरी का कार्य कर सकती हैं। ब्लड्प्रेसर के लिये सर्पगन्धा, लहसुन, गुग्गुल; आदि डिसेन्टरी के लिये कुटज एवं मधुमेह के लिये सालसारादिगण जामुन, समाङ्गी आदि औषधियां किसी भी विदेशी औषधि से कम नहीं हैं। गुर्दे की बीमारी पर स्प्रिट-ईथर नाइट्रोसी तथा इपिकेकोना की जगह अनन्तमूल एवं आकड़े की जड़, बेलाडोना की जगह धतूरा, रक्तविकार पर सार्सापरिला की जगह अनन्तमूल, पोटास ब्रोमाइड के स्थान पर हरमल, क्वासिया के स्थान पर नीम, वेलेरियन के स्थान पर जटामांसी, डिजीटेलस के स्थान पर कुटकी आदि अनेकों ऐसी औषधियां हैं, जो

बहुत ही साधारण सी सैंघने पर भी बड़ा ही चमत्कारिक प्रभाव दिखाती हैं। यकृत् सम्बन्धी रोगों पर आयुर्वेद की सताद्दी, कालमेघ, रोहितक आदि औषधियां बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई हैं।

समानता करनेवाली औषधियां तो अनेकों हैं ही, ऐसी भी बहुत सी औष-धियां हैं, जिनका प्रभाव अनेकों विदेशी प्रसिद्ध औषधियों की अपेक्षा बहुत ही अच्छे रूप में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। पोडोफोलीन और टैरेक्सी नामक औषधियां कामला के ऊपर अक्सीर मानी जाती हैं पर इनसे भी जो कामला ठीक नहीं होता वह देवदाली (कुकरलता) के रस का नस्य लेने से तथा कुटकी आदि के सेवन से शीघ्रता से ठीक हो जाता है। पर्णबीज (आयापान) नामक एक ऐसी विचित्र औषधि है जिसके रस का लेप करने से शरीर में प्रविष्ट शल्य स्वतः ऊपर आ जाता है तथा नागदमा के रस का सिञ्चन मात्र करने से भयङ्कर घावों की पीड़ा भी बहुत ही शीघ्र शान्त हो जाती है।

आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग हिन्दुस्थानी डाक्टर लोग प्रायः तब तक नहीं करते जबतक कि वे उन औषधियों का रासायनिक विश्लेषण नहीं कर लेते। किन्तु आयुर्वेदीय औषधियों का जो अद्भुत चमत्कार है वह रासायनिक परीक्षा के बाहर की वस्तु है। ऐसा वे लोग भी स्वीकार करते हैं। हमारे यहां भी आयुर्वेद में कहा गया है कि कोई औषधि रस से, कोई वीर्य से, कोई विपाक से और कोई प्रभाव से रोगों को दूर करती है। समान रसवाली औषधियों में वीर्यभेद से समान रस तथा वीर्यवाली औषधियों में विपाक भेदसे तथा समान रस वीर्य तथा विपाक वाली औष-धियों में प्रभावभेद से गुणधर्म बदल जाते हैं। रासायनिक परीक्षण रस वीर्य तथा विपाक तक ही संभव है। औषधियों का चमत्कारिक प्रभाव यन्त्रों की सहायतासे नहीं जाना जा सकता।

इस विषय में डॉ० मेकेन्ज़ी कहते हैं—

Not one single drug has been carefully studied so as to understand its full effects on the humen system effects, that could be easily recognised had a systimetic examination been carried out when it was administered in the hospital works.

(British Medical Journal)
3rd January 1915

इस तरह रासायनिक अध्ययन जितनी सूक्ष्मता से होना चाहिये उतनी सूक्ष्मता से अभी तक नहीं हो सका है। अनुभव से प्राप्त औषधि-विज्ञान की बराबरी करने में परीक्षित औषधविज्ञान सर्वथा असमर्थ है।

रासायनिक परीक्षण या विश्लेषण करनेपर औषधियों के समस्त अनुभूतगुण

प्रकाश में आ जाते हों, ऐसा बहुत कम देखा गया है। मेजर चोप्राने पुनर्नवा जैसी प्रसिद्ध ओषधिका रासायनिक परीक्षण करके उसे एक अच्छी मूत्रल ओषधि माना है। किन्तु कोई भी वैद्य पुनर्नवा के गुणों से अपरचित नहीं है। इस तरह अनुभव में आनेवाले समस्त गुणों का परीक्षण रासायनिक विश्लेषण द्वारा सर्वांशमें किया जा सकना एक असम्भव सी बात प्रतीत होती है।

स्व० डॉ० हेमचन्द्र सेन अपने Interesting Points about incompatible Prescription नामक लेख में एक्टिव प्रिन्सिपल्स तथा कुछ सादी ओषधियों के विषय में लिखते हैं—"आधुनिक एक्टिव प्रिन्सिपल्स की खोजों ने वैद्यक जगत् के विद्वानों को ऋणी बना लिया है, तथापि पूर्णरूपेण रासायनिक खोजोंपर निर्धारित डाक्टरों के वचनोंपर ही इसे पूर्णरूप से अवलम्बित नहीं रहना चाहिये।" संसार में अभी भी ऐसी असंख्य ओषधियां हैं, जिनका अभी तक रासायनिक दृष्टि से तत्त्वनिर्णय नहीं हो पाया है। इस तरह जिन ओपधियों को डॉक्टर लोग काम में नहीं लाते उनके विषय में उनके वचनों पर अवलम्बित रहना कहां तक ठीक हो सकता है। आई पेकेक्युआना, सिंकोना आदि औषधियां जिनके बिना आज डाक्टरों का क्षणभर भी काम नहीं चल सकता, प्रारम्भ में रासायनिक परीक्षा के बिना ही प्रयोग में आईं और इन औषधियों को साधारण ग्रामीण वैद्य लोग काम में लाते थे। प्रत्येक औषधिका प्रचार प्रारम्भ से इसी तरह हुआ है; बाद में रसायन शास्त्रियों ने उनका परीक्षण किया है। हिन्दुस्तान में ऐसे अनेक डाक्टर हैं जो कि उत्तम उत्तम औषधियों को केवल इसीलिये काम में नहीं लाते कि उनका रासायनिक परीक्षण नहीं हो पाया है। किन्तु यह बुद्धिपुरःसर दलील नहीं है। मानव समाज को तो ओषधि एवं द्रव्य के गुणों की ही जरूरत है और रसायन शास्त्र पीछे से उनकी खोज करके उन्हें निश्चित करता है। दो द्रव्यों में रासायनिक दृष्टि से तत्त्वों की समानता होनेपर भी उन द्रव्यों के गुणों में जमीन आसमान का फर्क दृष्टिगोचर होता है। कार्बन तथा हीरा रासायनिक दृष्टि से एक तत्त्व से निर्मित होनेपर भी उनके गुणों में महान् अन्तर है। द्राक्षा से बनाई गई शराब के गुणधर्म, चावल खांड आदि के संयोग से बनाई गई शराब के गुणधर्मों की अपेक्षा बहुत भिन्न अधिक गुणशाली हैं। शरीर के जीवित अणुओं (Living cells) में समान जातीय तत्त्वों के रहनेपर भी प्रत्येक के कार्य में कितना विशाल अन्तर है। इस तरह ऊपर दिखाये गये उदाहरणों से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि रासायनिक दृष्टि से समान तत्त्व वाले विभिन्न द्रव्यों के गुणों में महान अन्तर रहता है।

भारत की अधिकांश जनता गावों में ही रहती है। और अधिकांश आयुर्वेदीय अद्भुत औषधियां ग्रामों में ही होती हैं। ग्रामों में सुशिक्षित डाक्टर एव सुयोग्य वैद्यों की पहुँच बहुत कम रहती है और गरीब जनता अर्थाभाव के कारण उनसे कोई लाभ उठाने में भी समर्थ नहीं है। इस तरह ग्रामीण जनता की पद-पद

पर उपस्थित होने वाली कठिनाइयों का ध्यान रखकर "कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, ने यह एक छोटी सी पुस्तक ग्रामीण जनता की सेवा के लिये प्रस्तुत की है।

वस्तुतः आयुर्वेदीय चिकित्सा बहुत ही सरल, बहुत ही युक्ति-युक्त, अल्पव्ययसाध्य एवं सद्यफल प्रद है। इस पुस्तक में निर्दिष्ट प्रायः सभी औषधियां तथा योग ऐसे हैं जो कि बहुत ही सस्ते और बहुत ही परिचित और प्रभावशाली हैं। अपरिचित तथा बहुमूल्य औषधि ही गुणकारी होती है, ऐसी धारणा करके इस पुस्तक की चिकित्सा पर ध्यान न देना एक बड़ी भारी भूल होगी। आयुर्वेद हमारा भारतीय स्वदेशी परमोत्कृष्ट विज्ञान है। ईश्वर ने मानव जाति के साथ २ रोगों की तथा उनकी ओषधियों की भी उत्पत्ति प्रत्येक जगह पर की है। जिन देशों में मलेरिया बहुतायत से होता है, उन देशों में मलेरिया की अव्यर्थ ओषधि सिन्कोना भी बहुतायत से पैदा होती है। और उन देशों के लिये क्विनाइन—बहुत ही सस्ती पड़ती है; जो कि हमें बहुत महंगी पड़ती है—यदि सस्ती तथा सुपरिचित होने के ही कारण वे लोग उसकी उपेक्षा करें तो कहाँ तक ठीक होगा? यही हाल हमारे लिये आयुर्वैदिक औषधियों का है। आशा है, इस छोटी सी पुस्तक से जनता का बहुत बड़ा लाभ होगा और खासकर ग्रामीण जनता की—आर्थिक कठिनाइयों के कारण निःसहाय अवस्था में—यह पुस्तक बहुत बड़ा अवलम्बन सिद्ध होगी।

कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक औषधालय के संस्थापक स्वनामधन्य परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री कृष्णानन्द जी महाराज ने लोकोपकार की दृष्टि से जितना भी साहित्य प्रकाशित किया है, वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। इस संस्था से प्रकाशित चिकित्सा तत्व-प्रदीप आदि पुस्तकों से सर्व साधारण में आयुर्वेद के प्रचार कार्य में बहुत ही सन्तोषजनक कार्य हो रहा है। स्वाधीन भारत में आयुर्वेद चिकित्सा को राष्ट्रीय चिकित्सा के पद पर आरूढ़ कराने के लिये इसी तरह के अथक प्रयत्नों की आवश्यकता है।

इन शुभ लक्षणों से हमें पूर्ण आशा है कि वह समय बहुत ही सन्निकट है जब कि आयुर्वेद अपने अतीत के वैभव को पुनः प्राप्त करके व्यापक रूप से लोक कल्याण में प्रवृत्त होगा।

इन्दौर
ता० ८।३।४९

विद्वद्वशंवद्—
वैद्य खयालीराम द्विवेदी।

———

प्रयोग सूची ।

भाषासंकेत ।

सं० संस्कृत
गु० गुजराती
म० मराठी
मल० मलायलम
ता० तामिली
ते० तेलगु
क० कर्णाटकी
ले० लेटिन
बं० बंगाली
अं० अंग्रेजी
ऊ० उर्दू
अ० अरबी
फा० फारसी
पं० पंजाबी
का० काश्मीरी
सिं० सिंधी
मार० मारवाड़ी
अफ० अफगानिस्थानी
हिं० हिन्दी
कों० कोंकणी
ओ० उड़िया
काठि० काठियावाड़ी
जौ० जौनपुरी
कु० कुमायूंवी
बलु० बलुचिस्तानी
तुर्क० तुर्किस्थानी
रा० राजपुतानो
मों० मोंघारी
सर० सरहदी
ने० नेपाली
भू० भूटाणी
यू० यूनानी
बि० बिहारी
गढ़० गढ़वाली
संता० संताली
बरा० बराडी
मुं० मुंदाडी

औषध सूची

संस्कृत नामों की सूची

हिन्दी सूची

बंगला-सूची

गुजराती सूची।

मराठी सूची ।

लेटिन नामोंकी सूची

लेटिन नाम		हिन्दी नाम
Acalypha	Indica	कुप्पी
Achyranthes	Aspera	आँधी झाड़ा
Aconitum	Haterophyllum	अतीस
Adansonia	Digitata	गोरखइमली
Adhatoda	Vasica	अडूसा
Amaranthus	Poligamus	चौलाई
,, ,,	Spinosus	काँटे चौलाई
Anacycles	Pyrethrum	अकरकरा
Aquilaria	Agallocha	कीड़ामार
Aristolochia	Bactiata	ईशरमूल
,, ,,	Indica	किरमाणी अजवायन
Artemisia	Maritima	जावित्री
Aril-of-	Myristica	अगर

लेटिन नाम		हिन्दी नाम
Berberis	Aristata	दारूहल्दी
Blumea	Balsamiflora	चीनीकपूर
Cadaba	Farinosa	कोधव
Caesalpinia	Bonduc	कण्टकरञ्ज
,, ,,	Bonducella	कण्टकरञ्ज
Calophyllum	Inopyllum	वर्मा, सिलोनका नागकेशर
Calotropis	Gigantea	बड़े फूलवाला आक
,, ,,	Procera	छोटे फूलवाला आक
Capparis	Decidua	करील
,, ,,	Geylanica	करेरूहा
,, ,,	Spinosa	कबर
Careya	Arborea	कटभी
Carica	Papaya	एरण्डककड़ी
Carum	Copticm	अजवायन
Cassia	Absus	चाकसू
,,	Auriculate	खखसा छोटा क्षुप
,,	Fistula	अमलतास
,,	Marginata	लाल खखसा
,,	Montana	बड़ा खखसा
,,	Obovata	खखसा क्षुप
,,	Occidentalis	कसौंदी
,,	Purpurea	काली कसौंदी
,,	Sophera	बांसकी कसौंदी
Cephalandra	Indica	कन्दूरी
Cinnamomum		दालचीनी
,, ,,	Camphora	जापानी कपूर
,, ,,	Citriodorum	भारतीय कपूर
	Camphora	
,, ,,	Tamala	तेजपात
,, ,,	Zeylanicum	दालचीनीके वृक्षका नाम
Citrullus	Colocynthis	श्वेतपुष्पी विशाला
,, ,,	Vulgaris	तरबूज

Linum	Usitatissimum	अलसी
Luffa	Acutangula (Varamara)	कड़वी तोरई
”	Echinata	देवदाली
Mallotus	Philippinesis	कपीला
Mesua	Ferrea	बङ्गालका नागकेशर
Momordica	Charantia	करेला
” ”	Dioica	ककोड़ा
Myristica	Fragrans	जायफल
Nelumbium	Speciosus	सफेद या गुलाबी कमल
Nigella	Sativa	कलौंजी
Ochrocarpos	Longifolius	दक्षिणका लाल नागकेशर
Opium		अफीम
”	Poppy	खसखस
Opuntia	Dillenii	नागफणी थूहर
Oxalis	Corniculata	अम्लानियां
Papaver	Somniferum	खसखसके क्षुपका नाम
Phyllanthus	Embelica	आंवला
Piper	Betle	नागरवेल
”	Chaba	चव्य
”	Nigrum	कालीमिर्च
Psidium	Guyava	अमरूद
Punica	Granatum	अनार
Ricinus	Communis	एरण्ड
Rumex	Vesicarius	चूका
Saraca	Indica	अशोक
Sisymbrium	Inio	खूबकलां
Spilanthes	Acmella	अकरकरा
Strychnos	Nuxvomica	कुचीला
Tamarindus	Indica	इमली
Terminalia	Arjuna	अर्जुन
Tinospora	Cardifolia	गिलोय
” ”	Crispa	गिलोय
” ”	malabarica	गिलोय
Trichosanthes	Palmata	लाल इन्द्रायन
Woodfordia	Floribunda	धाय
Zingiber	Officinal	अदरख (सोंठ)

॥ ॐ ॥

श्री धन्वन्तरये नमः।

गाँवोंमें औषधरत्न
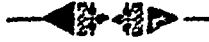
(पहिला भाग)

(१) अकरकरा।

सं० आकारकरभ, आकल्लक, करहाट। गु० अकलकरो। म० ते० क० अकलकरा। ता० अकरकरम्। ले० (1) Anacycles Pyrethrum (Anthemis जातिसमूहमें) (2) Spilanthes Acmella)

परिचय—वर्षायुक्षुप। पहिली जातिकी जड़ अलजिरिया (उत्तर अफ्रिका) से आती है। यह सच्चा अकरकरा है। इस लड़ाईके पश्चात् अकरकरा सिंगापुरसे आया है। मूल सादे, छोटी अंगुली जैसे मोटे, ३-४ इञ्च लम्बे और नोकरहित। छाल मोटी, भूरे रंगकी, पीले तेजस्वी बिन्दुयुक्त। मूल सरलतासे टूटनेवाला, भीतर चक्राकार रचनावाले और गर्भरहित; चबानेपर मुँह और जिह्वापर पिपरमेण्टके समान चिरमिराहट मालूम पड़ती है। वास कुछ सुगन्धित।

दूसरी जातिको गुजरातमें मरेठी कहते हैं। यह नकली जाति है। तना और शाखा रुएँदार। पान पतले कटे हुये, दाँतेदार, आमने-सामने, ३ नसवाले, १ से २ इञ्च लम्बे। इसके फूलोंकी गुण्डी खानेपर मुँहमें चिरमिराहट होती है। ऊँचाई २ से ४ फीट। फूलोंकी गुण्डी सुन्दर पीले रंगकी, आध इञ्च व्यास की। फूल सितम्बरसे दिसम्बरतक। इसकी जड़में सुगन्ध नहीं आती। इसमें पहिली जातिकी अपेक्षा कम गुण हैं।

उक्त दो जातियोंके अतिरिक्त अन्य कितनेही क्षुपोंकी जड़ अकरकरेमें मिला दी जाती है।

मात्रा—१ से २ माशे तक।

गुण-धर्म—उष्ण, वातहर, लालोत्पादक (थूक बढ़ानेवाला), कामोत्तेजक, मूत्रल, वेदना स्थापक, कफघ्न। इन सबमें विशेषगुण लालोत्पादक है।

डा० खोरीके मतानुसार अकरकरा उष्ण, त्वचाप्रदाहक, (चमड़ीको लाल बनानेवाला), उग्रता उत्पादक और लालास्रावबर्द्धक है। स्थानिक प्रयोगसे त्वचाको लाल बनाता है। लघु मात्रामें हृदय और आमाशयके लिये उत्तेजक है। चबानेपर मुँहमें थूक बढ़ता है, जीभपर चिरमिराहट लाता है, कण्ठ और अन्ननलिकामें उष्ण असर पहुँचाता है। फिर शून्यता लाकर कफस्राव कराता है। अधिक मात्रामें आँतों-की श्लैष्मिक कलापर उग्रता लाता है, फिर दस्तमें रक्त जाने लगता है। उदरमें मरोड़े आ आकर दस्त होने लगते हैं। नाड़ी तेज हो जाती है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार मूल उत्तेजक, वातहर, वेदनास्थापक और वात-नाड़ियोंको बल्य है। ये मूल आमवातमें रास्ना (Inuia Racemosa) के बदले व्यवहृत होते हैं।

आकारकरभादि वटी—अकरकरा, सोंठ, शीतलमिर्च, केसर, पिप्पली, जायफल, लौंग, सफेद चन्दन, इन ओषधियोंको १-१ तोला लेकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर ६ माशे अफीमका चूर्ण मिला नागरबेलके पानके रसमें ६ घण्टे खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली रात्रिको मिश्री मिले दूधके साथ सेवन करनेसे कामो-त्तेजना होती है, वीर्य गाढ़ा होता है और मानसिक प्रसन्नता होती है।

वक्तव्य—अफीम अन्तमें मिलाना चाहिये। शार्ङ्गधर संहिताकारने अफीम ४ तोले लिखा है, जो सर्वसाधारणसे इस समय सहन नहीं हो सकेगा, इसलिये हमने ६ माशे लिखा है। अधिक कब्ज हो, तो यह ओषधि या अफीम मिली हुई और कोई भी ओषधि नहीं देनी चाहिये।

अफीम प्रधान ओषधिसे कामोत्तेजना होती है; किन्तु अधिक समयतक सेवन करनेपर हानि होती है। वीर्यका क्षय होता है और अत्यधिक कालतक सेवन की जाय, तो अति दुःखदायी नपुंसकता आजाती है। अतः थोड़ेही दिन तक सेवन करके छोड़ देनी चाहिये।

अधिक कब्ज हो जाय तो सुबह एरण्ड तैल लेकर उदरशुद्धि कर लेना चाहिये।

उपयोग—अकरकरेका उपयोग आयुर्वेदमें लगभग ४०० वर्षसे हो रहा है। सड़े हुए दाँतोंकी वेदना दूर करनेमें अकरकरे का अच्छा उपयोग होता है। जिह्वा और कण्ठके आघातमें आवाज खुलने और मुँहमें गीलापन आकर शिथिलता कम होनेके लिये अकरकरेको मुँहमें धारण करते हैं।

भूतोन्मादमें वायुका गोला उठता है, उसमें अकरकरा हितावह है। पक्षाघात,

अर्धाङ्गवात और वातसंस्थाके रोगमें गतिभ्रंश होनेपर इसका फाण्ट देनेसे सामयिक शान्ति मिलती है।

कफ और वातप्रधान रोगोंमें अकरकरा व्यवहृत होता है। ज्वरमें सन्निपातके लक्षण प्रतीत होनेपर चेतना आनेके लिये इसका फाण्ट देते हैं। इससे सब शरीरमें उत्तेजना आती है, और हृदयको बल मिलता है।

डाक्टर खोरीके मतानुसार अकरकरेका क्वाथ सोंठ और कुलिंजन (Alpinia Galanga) मिलाकर लेनेसे तन्द्रा और जड़ता दूर होती है। अकरकरेका अर्क वातशूल, शिरदर्द, कृमिजन्य दन्तशूल, जिह्वास्तम्भ और मुखमण्डलके भीतरके वातशूलपर व्यवहृत होता है। मुखपाक, गलग्रन्थि (गलेके कागलेका विकार) और आवाज बैठ जानेपर कुल्ले करानेमें इसके क्वाथका उपयोग होता है। चिरकारी प्रतिश्याय- (जुकाम) में इसके चूर्णका नस्य कराया जाता है। चिरकारी नपुंसकतापर इसका पाक, मोदक या अवलेह बनाकर दिया जाता है। आयोडीनके मन्द विषप्रकोप पर यह उत्तम ओषधि है।

(१) जीभकी जड़ता दूर करनेके लिये—बालकोंकी जीभ मोटी होनेसे उच्चारण ठीक न होता हो, तब २-२ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ दिया जाता है एवं जीभपर इसके चूर्णकी मालिश करायी जाती है।

(२) सरदी—(प्रतिश्याय या जुकाम)—नागरवेलके पानमें ४ रत्ती डालकर खिलावें इससे जुकाम दूर हो जाता है।

(३) दन्तशूल—अकरकरेका चूर्ण दाँतोंपर घिसते हैं, टुकड़ा मुहमें रखते हैं और कुल्ले भी कराये जाते हैं। कुल्लेके लिये ३२ तोले उबलते जलमें १ तोला अकरकरा डालकर ढक देवें। आध घण्टे बाद छानकर उसमें थोड़ा शहद मिलाकर कुल्ले करावें। बुखारमें कण्ठप्रदाह (गलेकी गाँठोंकी सूजन), होनेपर इसका उपयोग होता है।

(४) नपुंसकता और वीर्यका पतलापन—२ से ३ सप्ताहतक आकारकरभादि वटीका सेवन करावें।

सूचना—अम्लपित्त और दाहपीड़ित रोगी, जिनको खट्टी डकारें आती हों, मुँहमें छाले रहते हों, उनके लिये अकरकरेका उपयोग नहीं करना चाहिये। एवं अकरकरा उग्र होनेसे अधिक मात्रामें लम्बे समयतक नहीं लेना चाहिये।

(२) अगर।

सं० अगरु, कृष्णागरु, विश्वधूपक, कालेयक। हिं० अगर, कालीअगर। बं० अगरु। पं० ऊद। म० कृष्णागर, अगर। फा० ऊद हिन्दी। अ०

ऊदगरकी । ता० अगली चंदन । मला० आकेल । ते० अगरु । अं० Eagle wood । ले० Aquilaria Agallocha.

परिचय—वृक्ष बड़ा, सर्वदा हरा । उत्पत्ति स्थान हिमालय, आसाम, भूटान, बंगाल, ब्रह्मदेश आदि । शाखाएँ टेढ़ी मेढ़ी । पान २ से ३॥ इञ्च लम्बे । पुष्प छत्राकार, सफेद । फल चौथाई इञ्च या कुछ अधिक लम्बा । भारत की अपेक्षा सिंगापुर का अगर अधिक आता है, वह अधिक सुगन्धवाला है । बजारमें ३ जातिके अगर मिलते हैं । इनके अतिरिक्त कृत्रिम अगर भी दूकानों पर प्रायः मिलता है ।

अगरकी लकड़ी नरम होती है और जल्दी सड़ जाती है । सड़नेके स्थानपर सुगन्ध उत्पन्न होती है । इस हेतुसे इसे भेजनेवाले उस स्थानमें दबा देते हैं, जो भाग सड़ने लगता है, वह तैली, जड़ और काले रंगका हो जाता है । इसके पश्चात् उसे जलमें डालकर परीक्षा करते हैं । डूब जाय उसे उत्तम (गरकी) बीचमें रहे वह मध्यम (गरकीनीमगरकी) ऊपर तैरता रहे उसे कनिष्ठ (समाले प्रकारकी) । गरकीका रंग काला और दूसरे का रंग भूरा होता है ।

मात्रा—५ से १५ रत्ती दिन में २ या ३ बार ।

गुणधर्म—चरपरा, कड़वा, उष्ण, स्निग्ध, वातकफहर, त्वचाका वर्णप्रसादक, केशवर्द्धक, कीटाणुनाशक, कान और आंखके रोग, कुष्ठ (त्वचाके रोग) और जन्तु विष आदिको नष्ट करता है । यह वात नाड़ियोंमें उत्तेजना पहुँचाकर त्वचा रोग और विष प्रकोपको दूर करता है ।

उपयोग—अगरका उपयोग सुगन्धित द्रव्यरूपसे और औषधरूपसे अति प्राचीन कालसे हो रहा है । चरक संहितामें श्वासहर और शीत प्रशमन दशेमानिमें गणना हुई है । विमान स्थानमें शिरोविरेचन रूपसे उल्लेख किया है । इसका लेप करनेपर त्वचाका रंग सुन्दर और तेजस्वी बनता है, दुर्गन्ध, शोथ, कीटाणु और विष दूर होते हैं, व्रणपर गूगल आदि मिलाकर धूप देनेसे व्रणमें रहे हुए कीटाणु नष्ट हो जाते हैं ।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि, वात रक्त और आमवातमें अगर दिया जाता है । सूजे हुए सांधो पर इसका लेप किया जाता है । ज्वरमें अगरका क्वाथ देनेसे तृषाशमन होती है, और रोगीको उत्तेजना मिलती है । वमन, अतिसार और प्रवाहिका आदि पचनेन्द्रिय संस्थाके विकारोंमें अगरका चूर्ण दिया जाता है । चक्कर आना लकवा आदि वात संस्थाके रोगोंमें अगरका सेवन कराया जाता है; एवं लेप भी किया जाता है । दाहयुक्त सूजन, गांठ और दाहयुक्त व्युची आदिपर इसका लेप किया जाता है । इससे जूं, चाम जूं आदि छोटे कीड़े मर जाते हैं ।

(३) अजवायन ।

सं० यवानी, दीप्यक, उग्रगन्धा । गु० अजमोद । म० ओवा । ता०

मला० आमम्। बं० अजोवान। अं० Bishopis Weebt ले० L Coptium।

अजवायनके बीज, अजवायनका तेल और अजवायनका फूल (Thymo इन सबका उपयोग होता है। बीजकी अपेक्षा तेल और फूल अधिकतर उग्र हैं। और फूल जल्दी लाभ पहुँचाते हैं। अजवायनके भीतर सामान्यतः ५ प्रतिशत है। इस तेलको अधिक शीतलता देकर फूल बना लिये जाते हैं।

मात्रा—२ से ४ माशे। तेलकी मात्रा २ से ४ बूँद। फूलकी मात्रा ½ से १ रत्ती।

गुणधर्म—अजवायन उष्णवीर्य, उत्तम वातहर, आक्षेपहर, उत्तेजक, बल्य, शूलहर, कफघ्न, गर्भाशय उत्तेजक, ज्वरघ्न, कृमिनाशक, व्रणरोपण और दुर्गन्धहर है। अफारा, पेचिश, अपचन और अतिसारको दूर करनेमें उत्तम औषधि है। विसूचिका (Cholera) में यद्यपि इसका असर कम है, फिर भी यह हितावह है। अजवायनका उपयोग व्रणशोधनार्थ बाहर लगानेमें भी होता है।

डाक्टर वर्डवुड लिखते हैं कि कालीमिर्च और राईकी उष्णता, चिरायतेका कड़वापन और हींगका आक्षेपहर तीनों गुण, अजवायनमें रहते हैं।

यूनानी हकीम नेत्राञ्जनको कीटाणुनाशक बनानेके लिये अजवायनके अर्ककी भावना देते हैं।

सूचना—अजवायनका क्वाथ नहीं करना चाहिये। अन्यथा उसमें रहा हुआ तैली द्रव्य उड़ जाता है। अर्क निकाल सकते हैं और फाण्ट कर सकते हैं। मुख्य गुण तैली द्रव्यके भीतर मौजूद है। इस हेतुसे पुराना अजवायन भी अधिक लाभ नहीं पहुँचा सकता है।

अजवायनके फूल अति उत्तम कोथ प्रशमन, कीटाणुनाशक और दुर्गन्धहर हैं। कोथप्रशमन गणकी सब औषधियोंमें यह अति सुखकारक है। कितनीही औषधियां रक्तमें मिलकर फिर वृक्कमें दाह उत्पन्न करती हैं। ऐसा इससे नहीं होता। कितनेही व्रणों पर आनेवाली कोमल त्वचा तथा चारों ओर की त्वचाको हानि पहुँचाती है, ऐसा भी यह नहीं करती, इससे पूयोत्पत्ति कम होती है। इसे उबलते हुये जलमें मिला उससे घाव, व्रण, नाड़ीव्रण, भगन्दर आदि घावोंको धोते हैं। अजवायनका फूल ½ से १ रत्ती, मात्रामें उदरसेवन करानेसे अन्त्रमें कृमियोंकी वृद्धि नहीं होती।

यवानी कल्पः—

(१) यवान्यादि मिश्रण—अजवायन बीज १ तोला, छोटी हरड़का चूर्ण ६ माशे, सैंधानमकका चूर्ण ३ माशे, घीमें भुनी हुई हींगका चूर्ण २ माशे, इन सबको मिला लेवें। मात्रा ३-३ माशे निवाये जलके साथ, ३-३ घण्टे पर ३ बार।

उपयोग—यह मिश्रण अपचन, शूल, उदरकी दुर्गन्ध और अफारेको दूर करता है तथा मलमूत्रको साफ लाता है।

(२) अजवायनका फाण्ट—अजवायन १ पौण्ड और जल १२० तोलेको कलई किये हुए भगोनेमें भर २-३ उफान आनेतक ढक्कनसे ढककर उबालें। अग्नि मन्द रखें। जिससे जल १०० तोले लगभग शेष रहे। फिर ठण्डा होनेपर छानकर बोतलोंमें भर लेवें। अथवा फाण्टके स्थानपर अजवायनका अर्क निकाल लेवें। मात्रा १-१ छटांक दिनमें ३ बार। उपयोग—यह अफारा और अपचन जन्य अतिसारमें उपयोगी है।

(३) यवान्यादि चूर्ण—अजवायन, कालीमिर्च, सोंठ, छोटी इलायची, इन सबको समभाग मिलाकर कूट लेवें। मात्रा—इसे ४ माशे, दिनमें २ बार, सुबह जल्दी और शामको भोजनके १ घण्टे पहिले दें। उपयोग—पचनशक्तिको बढ़ाता, आमको पचाता और उदरशूलको दूर करता है।

(४) नमकीन अजवायन—नया अजवायन और नींबूका ताजा स्वच्छ रस २-२ सेर; कालानमक, कांचलवण, सांभरनमक, समुद्रनमक और सैंधानमक, पांचो १०-१० तोलेका चूर्ण लेकर अमृतबानमें भरकर मुँह बांध देवें। उसे ऐसे स्थान पर रखें कि दिनमें धूप लगती रहे। नींबूके रसका शोषण होकर अजवायन शुष्क बन जाने तक धूपमें रखें। इस क्रियामें कभी-कभी १ मास लग जाता है। मात्रा—३ से ४ माशे तक दिनमें २ बार। उपयोग—अपचन, उदरशूल, अफारा, उबाक आना, वमन होना, अपचन जन्य अतिसार, मन्दाग्नि, कब्ज रहना, उदरमें भारीपन, अरुचि, उदरमें दुर्गन्ध होना, इन सबपर अति उपयोगी है। सामान्य ओषधि होनेपर भी अच्छी लाभदायक है। मुसाफरीमें यह अकस्मात् उत्पन्न होनेवाले हैजा जैसे रोगोंमें भी सहायक होती है। बालक, वृद्ध सबके लिये निर्भय ओषधि है।

उपयोग—अजवायन आवश्यक ओषधि है। मुसाफरीमें यह अति सहायक होती है। वमन, अपचन, अफारा, उदरशूल, अपचन जनित अतिसार, विसूचिका, अपचन जनित ज्वर, इन सब रोगोंमें यह प्रयोजित होती है। शीतज्वरमें देनेसे शीतका बल कम कर देती है और जल्दी पसीना ला देती है।

खाँसी और दमामें कफकी उत्पत्ति रोकने, कफकी दुर्गन्धको मिटाने, कफको सरलतासे गिराने और कीटाणुओंका नाश करनेके लिये दी जाती है। धुम्रपान करने वालोंको चिलममें डालकर पिलाई जाती है। इसके अतिरिक्त अजवायन श्वासकी रुकावटको भी दूर करती है। श्वासरोगमें अजवायनका फूल खिलानेसे श्वासके दौरेका बल घट जाता है।

प्रसूताको अजवायन खिलानेसे पचनक्रिया बलवान् होती है। अपानवायु शुद्ध होती है; गर्भाशय पर उत्तेजक असर होता है; कीटाणुओंका प्रवेश हुआ हो तो वे

नष्ट हो जाते हैं; वायुका प्रकोप नहीं होता; कमरकी पीड़ा दूर होती, मासिकधर्म साफ आता है और ज्वर आता हो तो रुक जाता है तथा दूधकी उत्पत्ति अधिक होती है। प्रसव होनेपर अजवायनकी पोटली योनिमार्गमें भी रखवायी जाती है जिससे गर्भाशय-के भीतर कीटाणुओंके प्रवेशमें रुकावट होती और प्रवेश हुये कीटाणुओंका नाश हो जाता है। कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये अजवायनका धुआं भी दिया जाता है।

शराबियोंको अजवायन चबाने या अजवायनका अर्क पिलानेसे शराब पीनेकी लालसा कम हो जाती है।

(१) उदरशूलसह अपचन—अजीर्णको दूर करनेमें यवान्यादि मिश्रण या नमकीन अजवायन, दोनोंमेंसे कोई भी एक देवें अथवा १ माशा अजवायन तेल या फूल शक्करके साथ देवें। जिनको मेदे (Stomach) में रस कम बननेसे भोजनके बाद अफारा या उदरपीड़ा हो जाती है। तथा अधिक भोजन करने या अपथ्य भोजन करनेसे अपचन हुआ हो, उनको यह दिया जाता है। जिनको सामान्यतः भोजनके बाद अफारा आ जाता हो, उनको भी भोजन कर लेनेपर २-२ माशे चूर्ण जलके साथ दिया जाता है।

(२) जीर्ण मलावरोध—जिनको मलावरोध बना रहता हो, उनको रात्रिको सोते समय २-२ माशे अजवायन चबाकर खिलाते रहनेसे सुबह दस्त साफ आ जाता है।

(३) अग्निमान्द्य—सुबह २ माशे नमकीन अजवायन चबाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें पचनक्रिया बलवान बन जाती है; अथवा यवान्यादि चूर्णका सेवन करना हितकर है।

(४) उदरकृमि—बालकोंके पेटमें छोटे-छोटे कृमि हो गये हों, तो बच्चेको दिनमें ३ बार २ से ४ रत्ती सादी अजवायन या नमकीन अजवायन खिलाते रहनेसे (और मधुर पदार्थका सेवन छुड़ा देनेसे) छोटे और बड़े सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। उबाक आती रहती हो तो वह भी बन्द हो जाती है।

(५) अपचनजन्य अतिसार—अजवायनका अर्क या फाण्ट १-१ छटांक १-१ रत्ती कसीसके साथ दिनमें ३ बार देवें। या नमकीन अजयवायन देवें।

(६) बहुमूत्र—पचन क्रिया सदोष होनेसे अथवा मूत्राशयमें उष्णता रहनेसे रात्रिको बार-बार पेशाब करनेके लिये उठना पड़ता है। उसके लिये २ माशे अजवायन और २ माशे गुड़ मिलाकर रात्रिको लेते रहें। दिन-रात त्रास बना रहता हो तो १-१ माशेके परिमाणमें गुड़-अजवायन दिनमें ४-६ बार, लेते रहें।

सूचना—भोजनमें अधिक घी अधिक तैल, अधिक मिर्च और खट्टा दही न लेवें। घी तैल और मिर्च कम या सामान्यतया ले सकते हैं।

(७) ज्वरमें अधिक पसीना आना—कभी कभी बुखारमें अत्यन्त पसीना आता रहता है फिर शरीरकी उष्णता अति कम हो जाती है ऐसी अवस्थामें अजवायन को भून, चूर्णकर मालिश करनेसे तुरन्त स्वेद बन्द हो जाता है।

(८) पित्ती (शीतपित)—सुबह शाम गुड़के साथ अजवायन देवें अथवा अजवायनके फूल जल या शक्करके साथ देवें।

(९) विसूचिका—अजवायनका उपयोग विसूचिका (Cholera) में होता है। यह प्रयोग कपूर प्रकरणमें दिया गया है। वहां इसका नाम अमृतविन्दु रखा गया है। यह तैयार न होनेपर केवल अजवायनका तेल अथवा फूल आध आध घण्टे पर दे सकते हैं।

(१०) त्वचारोग—त्वचारोग खुजली (कण्डु) आदि में जीवन रसायन अर्क दिया जाता है। उसके अभावमें अजवायन फूल और अजवायनका उपयोग भी हो सकता है। अजवायन सुबह-रात्रिको लेते रहनेसे खुजली रुक जाती है।

(११) वातप्रकोप-पक्षाघात (लकवा, हाथ पैर रह जाना अंगुलियोंका काम न देना आदि), वात प्रकोप होकर रक्त दबाव वृद्धि ×। वातविकार, वातप्रकोपसे देहमें स्थान स्थान पर शूल चलना आदि रोगोंपर लाभदायक है। मात्रा कम देनी चाहिये। आध आध रत्ती फूल और ४ से ८ रत्ती गिलोय सत्व मिलाकर दिनमें ३ बार दूधके साथ देते रहनेसे शूल आदि शमन हो जाते हैं।

(१२) उदरकृमि—उदरमें पावसे आध इञ्चके कृमि उत्पन्न होते हैं। जिन कृमियोंको डाक्टरीमें हूक वर्म (Hook worm) कहते हैं। उनको मारनेके लिये अजवायनका फूल १-१ माशा दिया जाता है। पुनः १-१ घण्टे बाद २ बार देवें। सब मिलाकर ३ माशे तक दे सकते हैं। यह सुबह खाली पेट होनेपर दिया जाता है। ३ बार देनेके बाद फिर जुलाब दिया जाता है जिससे कृमि सब निकल जाते हैं। पाण्डुरोगी सगर्भा और निर्बलोंको नहीं देना चाहिए। १-१ माशा मात्रा अधिक है, अतः विचार पूर्वक देना चाहिये।

(१३) कफस्राव—कफ अधिक गिरता हो, कफमें दुर्गन्ध हो और बारम्बार खांसी चलती हो तो अजवायनका फूल १-१ रत्ती घी और शहदके साथ मिलाकर दिन में ३ बार देते रहनेसे कफोत्पत्ति कम होती है और खाँसी कम हो जाती है।

× रक्त दबाव वृद्धिको डाक्टरीमें हाई-ब्लड-प्रेसर (High blood-pressure) कहते हैं। यह धमनीकी दीवार कठिन हो जाना, फिरङ्ग रोग (गरमी), वृक्क (गुर्दे) के रोग, देहमें चरबी बढ जाना, रक्तमें विकृति हो जाना, अधिवृक्क ग्रन्थि और पोषणिकाग्रन्थि आदिके विकारसे ऐसा हो जाता है। इसके लक्षण मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, व्याकुलता, शिरदर्द, श्वासकृच्छता, हाथ-पैरोंमें झनझनाहट, कभी नाकसे रक्त गिरना, कानमें गुनगुनाहट होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

(१४) दुष्टव्रण शोधन—अजवायनके फूलका उपयोग दिनमें २ बार वाष्प गले हुये व्रणके दोषका शोधन करानेके लिये भी होता है। १०० भाग उबलते हुये जल या वाष्प जलमें १ भाग अजवायनका फूल मिलाकर घावोंको धोया जाता है। फिनाइलकी अपेक्षा २५ गुना ज्यादा बलवान है। यही जल खुजली, दाद, छोटी-छोटी फुन्सियाँ, गीली खाज आदि चमड़ीके विकारोंमें भी लगानेमें उपयोगी है।

(१५) प्रसवावस्था—भारतमें प्रसव होनेके पश्चात् अजवायन खिलानेका रिवाज है। इससे क्षुधा प्रदीप्त होती, अन्न पचन होता और अपानवायु सरता है। गर्भाशयकी शुद्धि होती तथा कमरकी पीड़ा दूर होती है।

(१६) शीतज्वर—ठण्डी देकर बुखार आनेपर अजवायन खिलाई जाय, तो ठण्डीका बल जल्दी कम हो जाता है; फिर पसीना आने लगता है और बुखार जानेके बाद भी थकावट कम होती है।

(१७) गर्भाशयमें क्षत—प्रसव होनेके बाद गर्भाशयमें से दुर्गन्ध वाला जल गिरना, गर्भाशयमें कीटाणु प्रकोपके हेतुसे होता है, उस अवस्थामें अजवायनकी पोटली योनिमार्गमें रखने और धुवां देनेसे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

(१८) श्वास—श्वासका दौरा होनेपर अजवायनके अर्कको निवायाकर पिलाया जाता है या निवाये जलसे अजवायन दिया जाता है। अथवा चिलममें अजवायन भरकर धूम्रपान कराया जाता है।

(१९) हाथ-पैरको शीतलता—दमा, हैजा, सन्निपात आदिमें हाथ-पैर ठण्डे हो गये हों, तब अजवायनकी पोटलीको तपा तपाकर सेक किया जाता है।

(२०) सन्धिपीड़ा—आमवात (संधि वात) सांधोंमें विच्छू काटनेके समान वेदना होती है। उसपर अजवायनके तेलकी मालिशकी जाती है। सन्धिस्थान जकड़े हों तो उसपर अजवायनकी पुल्टिस बांधी जाती है।

(२१) अफारा—पेटमें अफारा हो तो उसपर तैलकी मालिश करायी जाती है।

(२२) पुरानीखांसी—खांसी पुरानी हो जानेपर बारबार पीलाकफ*गिरता हो और पचन क्रिया मन्द हो, तब १ १ छटाँक अजवायनका अर्क दिनमें ३ बार पिलाते रहनेसे कफ सरलतासे निकलकर खांसी दूर हो जाती और पचन क्रिया बलवान बन जाती है। तमाखूके व्यसनीको चिलम या हूक्केमें अजवायन भरकर पिलाया जाता है, इस तरह धूम्रपानसे जल्दी लाभ पहुँचता है।

---

* खाँसी होनेपर पहिले प्रवाही पतला कफ होता है। फिर वह गाढ़ा बनता है। यह कफ पक जाने या पुराना बननेपर पीला बनता है और छातीमें व्रण होकर पूय मिल जानेपर हरा पीला दुर्गन्धमय बन जाता है।

(४) अडूसा।

सं० वासक, वासा, सिंहास्य, आटरूषक। गु० अरडुसी। म० अडूळसा। बं० वासक। ता० आधाडई। ते० अड्डासरमू। क० अडुसोगा। मला० अडातोदकम्। ले० Adhatoda Vasica.

इसके क्षुप भारतमें सर्वत्र होते हैं। ओषधि रूपसे इसके पत्तोंके रसका उपयोग विशेष और शेष अङ्ग मूल, फूलादिका कम होता है।

मात्रा—स्वरस* आधसे १ तोला। शहद या शहद और पीपलके साथ, ऊपर थोड़ा बकरीका दूध पिलावें। कफकी वमन करानेके लिये मात्रा ५ तोले, मूल और पत्तोंका क्वाथ २॥ से ५ तोले रक्तशुद्धिके लिये प्रयोग करें। मूल २ से ५ रत्ती। फूल ५ से १० रत्ती तक प्रयोग करना चाहिये।

गुणधर्म—वासा-पान उत्तम उत्तेजक, कफनिःसारक और आक्षेपहर है। फूल उष्ण, कड़वा, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, रक्तकी उष्णताको कम करनेवाला और आक्षेपको (मांसपेशियोंके खिंचावको) दूर करनेवाला है। इसका ज्वरघ्न धर्म बढ़ने घटनेवाले ज्वरमें दृष्टिगोचर होता है। मूल ज्वरघ्न, मूत्रजनन, श्लेष्मानिःसारक, नियतकालिक ज्वरहर, कृमिघ्न और कोथ प्रशमन है। मूलमें पानकी अपेक्षा श्लेष्मनिःसारक गुण अधिक है। पत्तेमें स्वेदजनन गुण ज्यादा है। फूलमें आक्षेप-हर धर्म प्रबल है। सामान्यतः वासामें गाढ़े कफको पतला करके निकालनेका और कासके वेगको कम करनेका गुण उत्तम रहता है।

वासाद शर्बत—अडूसेके पत्ते ४० तोले और छोटी कटेली का पञ्चांग ४० तोले लें। इनको ४ सेर जलमें मिलाकर मन्दाग्निपर उबालें। ऊपर ढक्कन बन्द रखें। लगभग ३ घण्टे तक अग्नि देवें। २ सेर जल शेष रहनेपर उतारकर ठण्डा करके छान लेवें; अथवा ४ गुना जल मिलाकर अर्क खेंच लेवें, उसे चूल्हे पर चढ़ा, २ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत बना लेवें। मात्रा—१ से २॥ तोले। उपयोग—यह कफस्राव करानेमें अति हितकर है। कास, श्वास और क्षय रोगमें कफको बाहर निकालनेके लिये प्रयोजित होता है।

---

*स्वरस निकालनेकी विधि-अडूसेके १० तोले कुटे हुये ताजे पानोंको केलेके पत्तेमें रख ऊपर कपड़ा लपेटें। कपड़ेपर १-१ अंगुल जितनी गोबरमिट्टीका लेप करें। फिर ऊपर राख छिड़क देवें। उसे अग्निमें रखकर तपावें। मिट्टी लाल हो जानेपर संपुटको निकाल लेवें। ऊपरसे मिट्टी हटा, पत्ते निकालकर निचोड़ लेवें।

यह स्वरस शक्कर मिलाकर शहद जैसा गाढ़ा कर लिया जाता है। अथवा शहद मिलाकर चटाया जाता है। कफप्रकोपमें इसके भीतर पिप्पली, बहेड़ा और हल्दीका चूर्ण मिलाया जाता है।

उपयोग—इसका विशेष उपयोग कफस्राव कराने और रक्तस्रावको रोकनेके लिये होता है। पुरानी खाँसी और मन्द मन्द ज्वर बना रहता हो, उसपर अति हितकर है।

(१) जीर्ण श्वास—पुराने दमा रोगमें कफ बहुत बढ़ जाता है। उसे सरलतासे निकालनेके लिये अडूसाके सूखे पत्ते चिलममें पिलाये जाते हैं। (कितनेही चिकित्सक धतूराके पानको भी साथमें मिला देते हैं) इसके अतिरिक्त स्वरसको शहदमें मिला करके भी चटाते हैं। कफ अति गाढ़ा हो, तो १-२ रत्ती कालानमक साथमें मिला देवें।

(२) रक्तपित—अडूसेका स्वरस दिनमें २ बार देते रहनेसे मुँह, नाक, गुदा या मूत्रेन्द्रियसे निकलनेवाला रक्त बन्द हो जाता है। रक्तपित्त, कास और क्षय-पीड़ितोंके रक्तस्रावको बन्द करनेमें आयुर्वेदकी दृष्टिसे यह उत्तम ओषधि मानी गयी है।

(३) बालकोंका डब्बारोग—अडूसेके पत्तोंको पीस गरमकर छातीपर लेप करनेसे छातीमें चिपका हुआ कफ अलग हो जाता है। इस लेपके साथ खानेके लिये सत्यानाशीके रसकी १० बूँद और उसारेरेवन्द आध रत्ती मिलाकर पिलाना चाहिये। जिससे एक वमन और एक दस्त होकर जल्दी दोष बाहर निकल जाय।

(४) खाँसीपर—अडूसेका मूल १। तोला, गिलोय १। तोला, और जल २० तोला मिलाकर उबालें। ७॥ तोला रहनेपर छान लेवें। इसका ३ विभागकर दिनमें ३ बार ४-४ माशे शहद मिलाकर पिलानेसे कफवाली खाँसीमें लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त वासादि शर्बत भी खाँसीमें दिया जाता है।

(५) रक्तप्रदर—स्त्रियोंको मासिकधर्ममें रक्त ज्यादा जाता हो अथवा मासिकधर्मके दिन दूर होनेपर भी रक्तस्राव होता रहता हो, तो अडूसेका रस १-१ तोला और १-१ तोला मिश्री मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे रक्तस्राव थोड़े ही दिनोंमें बन्द हो जाता है।

(६) मूत्रविकृति—गुर्दे निर्बल हो जानेसे या रक्तमें विषवृद्धि हो जानेसे जब पेशाब थोड़ा-थोड़ा और पीला या लाल उतरता है, तब वासामूल आधेसे १ तोलेका फाण्ट* कर सुबहको ४-६ दिन तक पिलाते रहनेसे मूत्रकी शुद्धि होती है। और रक्तमें संगृहीत विष सब निकल जाता है।

---

*फाण्ट—१ तोला चूर्णको उबलते हुये १६ तोले जलमें मिलाकर ढक देवें। उसमें थोड़ी चाय मिलाना हो तो मिला लेवें। जल उबालनेके समय आवश्यक शक्कर मिला लेवें २० मिनट बाद छानकर समान दूध मिलाकर पिलावें।

(४) अतीस ।

सं० अतिविषा; प्रतिविषा, महौषधि । गु० अतिवखनी कली, वखमो । म० अतिविष । वं० आतइच । फा० वजेतुर्की । क० अतिवजे । तै० अतिविषा । ता० अतिविषाम् । ले० Aconitum Heterophyllum ।

पाश्चात्य ग्रन्थकारोंने इस ओषधिकी गणना वच्छनाग वर्गमें की है, तथापि यह मानव देहके लिये विषक्त नहीं है । इसमें विषातत्व अति कम मात्रामें होनेसे मनुष्योंको हानि नहीं पहुँचती । छोटे बालकोंको भी यह निर्भयरूपसे दी जाती है । इसके ताजे क्षुपका जहरी असर छोटे प्राणियों पर होता है । इसके मूलको सुखा देनेपर जो कि, किञ्चित् विषतत्त्व है, उसमेंसे अधिकांश उड़ जाता है ।

अतीसके मूलका उपयोग औषध कार्यमें होता है । मूल सफेद, मैले, पीले रङ्गकी होती हैं । शाखाएं कुछ काले रङ्गकी होती हैं; वे उसमें मिला देते हैं । मूल छोटे और शाखा लम्बी होती है । इनमेंसे जो अच्छे मूल हों, वे लम्बगोल हैं; और उनमें नीचेकी ओरका सिरा तीक्ष्ण होता है । ऊपरकी ओर पानकी कलिका होती है । यह सरलतासे टूट जाती है । तोड़ने पर भीतरसे सफेद और बीचमें इर्द गिर्द ४ काले बिन्दु होते हैं । इसमेंसे गन्ध नहीं आती । स्वाद अति कड़ुवा होता है । अतिविषके मूलको जन्तु जल्दी लग जाते हैं । फिर वह निःसत्व हो जाता है । डिब्बेमें या थैलेमें रखनेसे ये जल्दी सड़ जाते हैं । इस हेतुसे अतीस वालुका (Sand) के भीतर दबाकर रखनी चाहिये । छोटे मूलकी अपेक्षा बड़े, सफेद मूलमें औषध सत्व अधिकतर रहता है।

बाजारमें अतीसकी एक दूसरी जाति भी मिलती है जो स्वादमें कड़वी नहीं होती, जिसे लेटिन नाम एकोनाइटम पाल्मेटम् (Aconitum Palmatum) दिया है, वह कम गुणयुक्त है । इसमें कड़वी जातिवाली अतीस ही उपयोगी है ।

मात्रा—दीपन-पाचनार्थ २ से ४ रत्ती । ज्वरनाशार्थ उसे ४ माशे है । इसे २-२ या ४-४ घण्टेपर ३ बार देना चाहिये । आमातिसारपर ४-४ माशेका फाण्ड, ३ रत्ती त्रिकटु और वच १ रत्ती मिलाकर देवें ।

गुणधर्म—अतीस रस और विपाकमें चरपरी उष्णवीर्य, कीटाणु और विषकी नाशक, ज्वरघ्न, कफहर, वातशामक, दीपन-पाचन, ग्राही है । आचार्य शोढलने इसे त्रिदोषघ्न, बालकोंके लिये सर्वदा पथ्य तथा वमन और शोफकी नाशक कही है ।

डाक्टर खोरीने अतीसको कड़ुवी आमाशयपौष्टिक, वृष्य और ज्वरप्रतिबन्धक कहा है । ज्वरकेपश्चात् या तीक्ष्ण प्रवाहसे आई हुई निर्बलताको दूर करनेमें हितावह है । दीपन-पाचन गुणके हेतुसे कास, अजीर्ण और अग्निमान्द्यमें यह अन्य सुगन्धित, कड़ुवे और कसैले द्रव्य अजवायन, दालचीनी, गिलोय, इन्द्रजौ आदिके साथ प्रयोजित होती है । ज्वरप्रतिबन्धक गुणके हेतुसे नियत कालिक विषमज्वरों (मलेरिया) पर

इसका प्रयोग सफलतापूर्वक होता है, किन्तु इसका प्रभाव क्विनाईनसे अति कम है। कृमिरोगमें यह विडंगके साथ मिलाकर दी जाती है, जिससे कृमिनाशमें सहायता मिल जाती और पचनक्रिया सुधर जाती है।

अतिविषादि वटी—अतीस, नागरमोथा, काकड़ासिंगी और काँटेदार करंजके भुने हुए बीज, सबको समभाग मिलाकर चूर्णकर, कुड़ेकी छालके क्वाथमें १२ घन्टे खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बनालेवें। मात्रा-१ से २ गोली दिनमें २ बार।

उपयोग—जिस बालकके पेटमें बार-बार दर्द रहता हो, साथमें बुखार, अपचन, पतले दस्त, आमवृद्धि आदि लक्षण हों, उनके लिये यह वटी अति लाभप्रद है। अतीसका उपयोग आयुर्वेदमें और घरेलू औषधियोंमें प्राचीन कालसे हो रहा है। चरकसंहिताकारने लेखनीयानि, अर्शोघ्नानि, इन दशेमानियोंमें तथा शिरो-विरेचनमें इसका उल्लेख किया है। आमातिसारके प्रयोगोमें इसे विशेष स्थान दिया है। सुश्रुतसंहिताकारने पिपल्यादि गण, वचादि गण, और मुस्तादि गणमें उल्लेख किया है। एवं विरेचन विकल्प अध्याय, शिरो-विरेचन और क्षारमें प्रतिवाय रूपसे इसकी योजनाकी है। मूषिक विष और अन्य विषप्रकोप पर भी इसका उपयोग किया है।

अतीस निर्भय औषधि होनेसे इसका उपयोग बालक, प्रसूता, सगर्भा, वृद्ध और युवा पुरुष, सबके लिये होता है। यह ज्वरको दूर करनेमें अति हितकर है। बढ़े हुये बुखारमें देनेसे पसीना लाकर बुखारको उतारदेता है। विषम ज्वर (मलेरिया) पर यह प्रयोजित होता है। बुखार आनेके समय ६ घण्टे पहिलेसे २-२ घण्टे पर इसका चूर्ण देते रहनेसे बुखार रुक जाता है। बुखार उतर जानेके पश्चात् शेष रही हुई थकावटको दूर करनेके लिये भी यह दिया जाता है।

अतीस बालकोंके सब रोगोंमें व्यवहृत होनेसे आचार्योंने इसे 'शिशुभैषज्य' संज्ञा दी है। इसे बालकोंकी बालघूँटीमें मिलाया गया है। यह मेदा, आंत, यकृत्, प्लीहा आदि सब पचनसंस्थाको लाभ पहुँचाती है। अतः बालकोंके ज्वर, कास, वमन, अतिसार, पेचिस, उदरकृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, अग्निमान्द्य, इन सबपर निर्भयरूपसे प्रयुक्त होती है। बड़ेकी अपेक्षा बालकोंके रोगोंमें इसका उपयोग अधिक होता है।

(१) बालकोंकाज्वर—१-१ रत्ती अतीसके चूर्णको माताके दूधमें या शहदके साथ दिनमें ३ बार देवें। ज्वरके साथ जुकाम, वमन और अतिसार हो, तो वह भी दूर हो जाता है। अथवा बालचतुर्थी (पिप्पल्यादि चूर्ण) या घनादि चूर्ण दिया जाता है। इन प्रयोगोंका वर्णन क्रमशः पिप्पली और नागरमोथेमें किया जायगा।

(२) ज्वर—बड़े मनुष्योंके विषम ज्वरमें, ज्वर रोकने और बढ़े हुए ज्वरको उतारनेके लिये निवाये जलके साथ अतीसका चूर्ण देवें। प्रसूताको भी यह निर्भयरूपसे दिया जाता है।

(३) आमातिसार—अतीस कटु, पौष्टिक होनेसे आमातिसार पर व्यवहृत होती है। दस्तमें आम जाता हो, दस्त पतला, सफेद और दुर्गन्धवाला हो, उसे दूर करनेके लिये अतीस और सोंठ ३-३ माशे मिलाकर, फाण्ट बनाकर दिनमें ३ बार पिलाते रहें।

बालकोंके बार-बार दुर्गन्धयुक्त सफेद दस्तपर अतीसका सेवन करानेसे मलका रङ्ग पीला हो जाता है, आमका पचन होता है। दुर्गन्ध दूर हो जाती और अतिसार शान्त हो जाता है। कफप्रकोप और अपचनको भी दूर करता है।

(४) संग्रहणीपर—अतीस, सोंठ और इन्द्रजौका चूर्ण ३ माशे खिलावें, फिर ऊपर चावलोंकी पेया पिलावें।

(५) उदरकृमि—बालकोंके पेटमें छोटे-छोटे कृमि हो गये हों, उससे बुखार पाण्डुता, खाँसी और कै होते रहते हों, तो अतीस और बायबिड़ङ्गका चूर्ण २-२ रत्ती दूध या शहदमें दिनमें ३ बार देवें। ३ दिन देनेके बाद ४ थे रोज एरण्ड तैलका जुलाब देनेसे सब कृमि निकल जाते हैं।

(६) बालकोंका अग्निमान्द्य—बालकोंकी अग्निमन्द हो जानेपर वे दूध कम पीते हैं। पतला, दुर्गन्धयुक्त, सफेद दस्त होता है। शरीरमें स्फुर्ति नहीं रहती। उदरमें पीड़ा बनी रहती है। ऐसी अवस्थामें अतिविषादि वटिका सेवन प्रातः सायं कराते रहनेसे बालक स्वस्थ और सबल बन जाता है।

(६) अदरख (सोंठ)।

सं० आर्द्रक, शृंगवेर, विश्वभैषज्य, नागर। म० आलें, (सोंठ)। गु० आदु (सुंठ)। बं० आदा। क० आल्ल, सुण्ठी। ते० सोंठी। अं० Raw ginger root ले० Zingiber officinal.

मात्रा—अदरख ६ माशे, स्वरस १ से २ माशे। सोंठ २ माशे।

गुणधर्म—उत्तेजक, उष्णवीर्य, दीपन-पाचन, रुचिवर्द्धक, लालोत्पादक, आध्मान नाशक, वातहर, कफघ्न, सारक, आक्षेपहर, बल्य, कीटाणुनाशक। बाहर लगानेपर वेदनाहर और त्वक् प्रदाहक अर्थात् त्वचाको लाल बनानेवाला। विपाक अदरख का मधुर और सोंठका चरपरा होता है।

अदरखमें सुगन्धयुक्त उड्डनशील तैल रहता है, वह पाचनमें अच्छी सहायता पहुँचाता है। अदरख मुँहमें अधिक थूँक उत्पन्न करता है और आमाशयमें रसस्राव भी अधिक कराता है। इस हेतुसे अरुचि और अग्निमांद्यको दूर करनेके लिये इसका सेवन कराया जाता है। अदरखकी अपेक्षा सोंठ यकृत्के पित्तका अधिक स्राव कराता है। सोंठमें उदर वातहर (शूलहर) गुण होनेसे विरेचन ओषधियोंके साथ मिलायी जाती है।

आर्द्रक औषधकल्पः—

(१) नागर फाण्ट—सोण्ठके चूर्ण २॥ तोलेको उबलते हुये ४० तोले जलमें डालकर ढक देवें, २० मिनट बाद शीतल होनेपर छान लेवें। मात्रा २॥ से ५ तोले। उपयोग—अफारा और उदरशूलको दूर करता है।

(२) नागर मिश्रण—सोण्ठका फाण्ट ६ औंस और सज्जीखार (सोडा बाईकार्ब) ६ माशे मिला लेवें। इसमें से २-२ औंस दिनमें ३ बार पिलानेसे अपचन, दूषित डकार आना, उदर वात और कै दूर होते हैं।

(३) अदरखका शर्बत—पक्के अच्छे अदरखका रस १ सेर शक्कर मिला-कर शर्बत बना लेवें। मात्रा—१ से २ तोला। उपयोग—उदरवात, आमप्रकोप, दुर्गन्ध, उदरशूल और पतले दस्तको दूर करता है।

(४) आर्द्रकावलेह—अदरखका कल्क (चटनी) २० तोले, घी २० तोले और गुड़ १ सेर लेवें। पहिले अदरखको मन्दाग्निपर घीमें भूनें। लाल हो जानेपर गुड़ या शक्करकी चाशनी मिलाकर अवलेह बना लेवें। मात्रा—१ तोला। उपयोग—अग्निमांद्य, उदरवात, आमवृद्धि, अरुचि और कफवृद्धिको दूर करता है। यह प्रसूताके लिये भी हितकारक है। प्रसूताके लिये गुड़में अवलेह बनाना चाहिये।

उपयोग—अदरख और सोंठका उपयोग भारतमें सर्वत्र भोजनमें होता है। भोजनके साथ अदरखके टुकड़े, सैंधानमक और नींबूका रस मिलाकर खानेसे रुचि उत्पन्न होती है। भोजन स्वादसे खाया जाता है, भोजनका पचन सरलतासे होता है, उदरमें वायु उत्पन्न नहीं होती और शौचशुद्धि होती है। सोंठ और अदरखका उप-योग बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता, सबके लिये निर्भय रूपसे होता है। अपचन, श्वास, कास, आमवात, शोथ, सन्धियोंमें वेदना, शिरदर्द, वमन, अर्श, उदरशूल, अफारा, अतिसार, संग्रहणी, उदर रोग, शीतपित्त, मूर्च्छा, प्रतिश्याय, कामला, पाण्डु हृदयरोग, इन सब रोगोंपर दूसरी दवाओंके साथ या अकेले अदरख या सोंठका उप-योग होता है, इसी तरह शिरदर्द, वातशूल और व्रणपाचन आदिके लेपमें मिलाया जाता है; एवं वातनाशक तैल बनानेमें भी सोंठ मिलाई जाता है। इसलिये इसे आचार्यों ने 'विश्वभेषज' और "महौषध" संज्ञा दी है। वातप्रकोप, कफवृद्धि, श्वास, कफकास, जुकाम, हृदयशूल, शीत लग जाना आदि विकारों पर अदरखके अवलेह या फाण्टका सेवन कराया जाता है। ये प्रकोप सूतिकाको न हो जाय और पचनक्रिया सबल बने, इसलिये सौभाग्यशुण्ठी पाक या आर्द्रकावलेहका नियमपूर्वक प्रतिदिन सेवन कराया जाता है। कफवृद्धि, कफज्वर और कफप्रकोपक सन्निपातको दूर करनेके लिये अदरखके रस और शहदका अनुपान रूपसे उपयोग अत्यधिक रूपसे होता रहता है।

वृद्धावस्थामें प्रायः पचनक्रिया मन्द होती है। उदरमें वायु उत्पन्न होती और कफप्रकोप हो जाता है। हृदयमें घबराहट और हाथ-पैरोंमें वेदना होती रहती

हैं। ऐसी स्थितिमें सोंठका चूर्ण या सोंठकी चाय (फाण्ट) दूध मिलाकर प्रतिदिन सेवन कराया जाता है।

डाक्टरीमें सोंठके अर्क और सोंठके शर्बतका उपयोग उत्तेजक उदरवातहर और दीपन-पाचन गुणके लिये करते हैं तथा विरेचन ओषधियोंमें उदरशूल न होने के लिये मिलाते रहते हैं।

(१) **अपचन**—अदरखका रस, नींबूका रस और सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे या नागर फाण्ट या नागरमिश्रणका सेवन करानेसे अपचन मिट जाता है।

(२) **पेचिश**—अपथ्य सेवनसे पेचिश होनेपर पहिले उदरशुद्धिके लिये एरण्ड तैलको नागरफाण्टके साथ देनेसे मलशुद्धि होती है। दूषित आम निकल जाता है।

(३) **जीर्ण अतिसार**—दस्तोंका रोग पुराना हो गया हो, तो रोज भोजनके अन्तमें सोंठ, भुना हुआ जीरा और सैंधानमक मिलाकर मठा पीते रहें।

(४) **अर्श**—बवासीरका रोगी सोंठका चूर्ण, गुड़के साथ रोज लेकर ऊपर थोड़ी शराब लेवे और भोजनमें नींबू, दही आदि अम्लरस लेता रहे, तो कब्जका त्रास नहीं होगा, रक्त नहीं गिरेगा और मस्सेका त्रास नहीं होगा।

(५) **उदरशूल**—नागरमिश्रण पिलावें या ३ माशे सोंठ, १॥ माशा सज्जीखार और १ रत्ती भुनी हींग मिलाकर निवाये जलके साथ देवें।

(६) **वमन**—नागर मिश्रण अथवा अदरखका रस और पोदीनेका रस (या प्याजका रस) मिलाकर पिलानेसे अपचनके हेतुसे होनेवाली वमन रुक जाती है और आमाशय प्रदाह दूर होता है।

(७) **जुकाम**—६ माशे सोंठको १ तोला घीमें भूनें। फिर २ तोले गुड़का शर्बत बनाकर पाककर लेवें। शीतल होनेहर सुबह ले लेनेसे जुकाम, कफकास और मंद बुखार दूर होते हैं।

(८) **हिक्का**—सोंठका चूर्ण सुँघानेसे अपचनके प्रकोपसे उत्पन्न हिक्का रुक जाती है। आचार्योंने गुड़के साथ मिलाकर सुँघानेको लिखा है। सोंठमें आक्षेपहर गुण होनेके हेतुसे महाप्राचीराका खिंचाव दूर होकर हिक्का शमन होती है।

(९) **हृदयशूल**—आमवात रोगमें या अन्य हेतुसे उत्पन्न हृदयशूलपर निवाया नागरफाण्ट १०-१० तोले २-२ घण्टेपर २-३ बार पिलानेसे श्वासकृच्छ्रता और हृदयशूल दूर हो जाते हैं।

(१०) **कर्णशूल**—अदरखके रसको निवाया करके २-४ बूँद कानमें डालें। (अधिक गरम न डालें)।

(११) **शिरदर्द**—ठण्डीके कारणसे उत्पन्न शिरदर्दपर सोंठको जलमें घिस या कल्के कपाल और कनपट्टी पर लेप करें।

(१२) आमवात—आमवातके हेतुसे सन्धियोंमें वेदना होती रहती है। उसपर नागर फाण्ट या नागर मिश्रण दिनमें ३ वार पिलावें। इससे आमवातसे उत्पन्न वेदना और कमरकी पीड़ा दूर हो जाती है।

(१३) शीतपित्त—अदरखका रस ६ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर चाट लेवें। और शरीरपर राखकी मालिश करें। ठण्डी वायुमें न फिरें। कब्ज हो तो पहिले जुलाव लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये।

(१४) बहुमूत्र—यकृत् निर्बल बननेपर घी, तैल आदिका पचन योग्य नहीं होता। फिर अपक्व घृत-तैलका अंश रक्तमें मिलता रहता है। जिससे बार-बार जलनसह थोड़ा-थोड़ा पेशाव होता है। भोजनके बाद ३-४ घण्टे तक पेशाव पीला होता है और उसपर घृत तैल तैरता हुआसा भास होता है। उस विकारमें आधे दूध और आधे जलमें सोंठ मिली हुई चाय बनाकर पिलाते रहें। भोजनमें घृत, तैल, चावल और खटाई कम कर देवें तथा भोजनमें अदरखका सेवन करें तो लाभ होजाता है।

(१५) हाथ-पैर ठण्डे हो जाना—सोंठ मिलाई हुई चाय पिलावें और अदरखके रसकी या सोंठके चूर्णकी मालिश करें।

(१६) मूर्च्छा—सोंठ, कालीमिर्च और पीपलका चूर्ण १ रत्ती सुंघा देनेसे मूर्च्छा दूर हो जाती है।

सूचना—(१) जिन रोगियोंको शुष्क कास हो या निद्रानाश हो, अथवा छातीमें दाह, गरम गरम निःश्वास और मस्तिष्कमें उष्णता हो, उनको सोंठ नहीं देनी चाहिये।

(२) निद्रानाश, मस्तिष्कमें रक्तवृद्धि, रक्तदबाववृद्धि, आमाशयमें व्रण होनेसे उत्पन्न अम्लपित्त, इन रोगोंमें भी सोंठका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(३) नयी अच्छी सोंठका उपयोग औषध रूपसे करें। सड़ी हुई को काम में न लेवें।

(४) जो सोंठ पक्के अदरखमेंसे बनायी जाती है, उसके भीतर तन्तु अधिक होते हैं। वह कच्चे अदरखमेंसे बनी हुई सोंठकी अपेक्षा विशेष लाभदायक है। कच्चे अदरखमेंसे बनी हुई सोंठ अधिक चरपरी और उग्र होती है। पक्के अदरखमेंसे बनी हुई सोंठमें उग्रता कम हो जाती है। वह अन्ननलिका और आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ उत्पन्न नहीं करती। उसका विपाक अति चरपरा नहीं हो॥

(७) अनार ।

सं० दाड़िम । गु० दाड़म । म० डालिंब । बं० अनार । ता० मशुलई । ते० दाडिम्म । क० दाडिम्बे । मला० थलीमाथेलम् । अ० Pomegranate ले० Punica Granatum.

अनारमें ३ जाति हैं । मीठे, खट्टेमीठे और खट्टे फलवाली । अन्य प्रकारसे अनारकी २ जाति हैं । एक जातिमें केवल फूल आते हैं । दूसरीमें फूल और फल दोनों होते हैं । अनारकी छालमेंसे रंग निकलता है, वह कपड़े रंगनेमें काम आता है । अनारके फलके छिल्के, दाने, फूल, मूल (या छाल), इन सब अंगोंका औषध रूपसे उपयोग होता है । अनारके फूलोंको यूनानीमें गुल-अनार कहते हैं ।

मात्रा—१ से २ माशे फलकी छालका चूर्ण (क्वाथके लिये मूलकी छाल ६ माशे से १ तोला) मीठे या खट्टमीठे अनारका रस १० से २० तोले । खट्टे अनारका रस २॥ से ५ तोले समान या दूना जल मिलाकर । फूलोंका चूर्ण १ माशा उपयोग करें ।

गुणधर्म—मीठेफल, हृदयपौष्टिक, वांतिहर, तृषाशामक, अग्निदीपक । फल की छाल ग्राही, कीटाणुनाशक, पाचन, कफहर, शामक । मूलकी छाल कृमिघ्न विशेषतः (गोल कृमियोंकी नाशक) फूल ग्राही । अनारका रस स्वरयंत्र फुफ्फुस, हृदय, ... आमाशय और आंतके रोगों पर हितकर है । मूत्रावरोध दूर करता है ।

दाडिम कल्पः—

(१) दाड़िमफलत्वक्कषाय—अनारके फलकी छालका चूर्ण ५ तोले, लौंगका चूर्ण ७॥ माशे, जल ५० तोले । सबको मिलाकर ढकन ढककर १५ मिनट तक उबालें और फिर ठण्डा होनेपर छान लेवें । मात्रा २॥-५ तोले दिनमें ३ बार । उपयोग—नये पेचिश और नये अतिसारको दूर करता है ।

(२) कृमिघ्नकषाय—अनारके मूलकी ताजी छालके छोटे छोटे टुकड़े कुचले हुए ५ तोले, पलासके बीजका चूर्ण ६ माशे, वायविड़ंग १ तोला और जल १०० तोले । सबको मिला ढकन ढककर १॥ घण्टे तक आधा जल रहे तबतक उबालें । फिर शीतल होनेपर छान लेवें । मात्रा ५-५ तोले सुबहको, आध आध घण्टे पर ४ बार देवें । उपयोग—यह कषाय चिपटे कद्दुदानाकृमि, गोलकेंचवे सदृश कृमि, सूती कृमी और धानके अंकुरके समान मुड़े हुए छोटे कृमि, इन सबको दूर कर देता है । छोटे और बड़े सब मनुष्योंके लिए हितकर है । इस कषायसे जब कृमि स्थानच्युत होते हैं, तब बेचैनी होती है । फिर कृमि स्थिर न हों इसके पहिले एरंड तैलका जुलाब देकर निकाल देना चाहिये ।

(३) दाडिमफलत्वकादिकषाय—अनारके छिलके, कुड़ेकी छाल और नागरमोथा २॥-२॥ तोले और सोंठ १। तोला लें । सबको मोटा मोटा कूट, ५० तोले

जलमें मिला ढक्कन ढककर १५ मिनट उबालें। और शीतल होनेपर छान लेवें। मात्रा २॥ से ५ तोले दिनमें ३ बार। उपयोग—आमातिसार और नये पेचिशपर सत्वर लाभ पहुँचाता है। पेचिश ४ दिनसे अधिक समयका हो और बार बार एंठन-सह दस्त होता हो तो चौथाई चौथाई रत्ती अफीम भी साथ देते रहें। अफीम कब्ज करती है। इसलिये दस्तकी रुकावट होनेपर अफीम देना बन्द करें। विशेष सूचना आगे अफीमके विवेचनमें देखें।

(४) संतर्पण—खट्टे मीठे अनारका रस २० तोलेमें खीलोंका सत्तू २॥ तोले और मिश्री २॥ तोले मिलाकर पिला देवें। उपयोग—यह पित्तज्वर और लू लगनेसे आये हुए ज्वरके दाह, व्याकुलता, वमन और तृषाको दूर करता है; मस्तिष्कको शान्त बनाता और ज्वर शमनमें सहायता पहुँचाता है।

वक्तव्य—अनारके समान फालसाका संतर्पण भी उपयोगमें लिया जाता है।

(५) दाड़िमाष्टकचूर्ण—खट्टे अनारदाने ८ तोले, वंशलोचन, दालचीनी तेजपात और छोटी इलायचीके दाने, प्रत्येक २-२ तोले; अजवायन, जीरा, धनिया, वच, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ४-४ तोले। सबको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। मात्रा ३ से ४ माशे दिनमें ३ बार। उपयोग—पित्तातिसार, क्षयरोगमें अतिसार अरुचि और अग्निमांद्यको दूर करता है।

(६) दाड़िमावलेह—मीठे अनारका रस २० तोले, पिप्पली, सोंठ, लौंग और जीरेका चूर्ण ४-४ तोले, छोटी इलायचीके दाने और केशर १-१ तोला, मिश्री या (पुराना गुड़) २० तोले लें। पहिले अनाररसमें केशर मिलाकर खरल कर लेवें। फिर छोटी इलायची, गुड़ और शेष औषधियोंका चूर्ण क्रमशः मिलाकर गरम करें। चाटने लायक बना लेवें। मात्रा ६ माशेसे १ तोला, दूधके साथ दिनमें २ बार। उपयोग—इस अवलेहका सेवन करानेसे स्वरविकृति, शक्तिक्षीणता, अरुचि, अतिसार और दाह दूर होता है।

उपयोग—अनारका उपयोग सर्वत्र ओषधि रूपसे भी होता है। पित्तप्रकोप, अरुचि, उदरकृमि, अतिसार, पेचिश, खाँसी, रक्तस्राव, नेत्रदाह, छातीकी जलन, व्याकुलता आदि को दूर करता है। ज्वरपीड़ित रोगियोंके लिये पथ्य है। गर्मीके दिनों में व्याकुलताको दूर करने और तृषाको शान्त करनेके लिये अनारका शर्बत उपयोगमें लिया जाता है। लोहभस्मको अनाररसकी भावना देनेसे भस्म अधिक गुणदायी बनती है।

(१) उदर कृमि—उदरमें चिपटे, गोल, सूती या छोटे मुड़े हुए कृमि हो जाने पर उनको निकालने के लिये खाली पेट कृमिघ्न कषाय देवें। आध आध घण्टे

पर ४ बार देकर फिर एरंड तैलका जुलाब देनेसे सब कृमि निकल जाते हैं। कभी कभी चिपटे कृमिके लिये यह दवा २-३ दिन तक देनी पड़ती है।

(२) अतिसार—अपचन या गरमी लग जाने या मौसम बदलनेसे दस्त लगनेपर दाड़िमाष्टक चूर्ण देवें; अथवा दाड़िमफलत्वक्कषाय दिनमें ३ बार पिलावें। यदि अपचन हो और दस्तमें दुर्गन्ध हो, तो सोंठका चूर्ण १-१ माशा साथमें मिलाते रहें।

(३) पेचिश—पेचिश नया प्रारम्भ हुआ हो, मलमें आम आती हो, ऐसी अवस्थामें दाड़िमफलत्वकादि कषाय दिनमें ३ बार देते रहें। भोजनमें दही या मट्ठा और चावल देवें। प्रारम्भमें एरण्ड तैलका जुलाब देनेसे दूषित मल निकल जाता है। फिर इस कषायसे जल्दी लाभ होता है।

(४) तृषावृद्धि—संतर्पण करके पिलाने पर तृषा, व्याकुलता, दाह, वमन, और मस्तिष्ककी उष्णता दूर होती है।

(५) स्वरभंग—कण्ठको उष्णता लग जाने या सिन्दूर आदि खिला देनेपर आवाज बैठ जाती है, या क्षयरोगमें आवाज विकृत हो जाती है, उसपर दाड़िमावलेह ६-६ माशे दिनमें २ बार चटानेसे स्वरभंग अतिसार और दाह दूर होती है और शक्ति की वृद्धि होती है।

(६) कास—छोटे बच्चोंकी सूखी खांसीपर अनारके फूल या फलकी छाल-का चूर्ण शहदमें मिलाकर चटावें, अथवा अनारके रसमें मिश्री और शहद मिला-कर चटावें। बड़े मनुष्यकी खाँसीमें अनारके छिल्केका टुकड़ा मुँहमें रखकर रस चूसाते रहें।

सूचना—माताको शुष्ककास होनेसे बच्चेको शुष्ककास हुई हो, तो माताके भोजनमें से सोंठ, मिर्च आदि गरम पदार्थ छुड़ा देवें और माताको सितोपलादि चूर्ण (वंशलोचनमें लिखा जायगा) घी शहदके साथ मिलाकर देते रहना चाहिएं।

(७) नाकसे रक्त गिरना—खट्टेमीठे अनारदानेका रस १० तोलेमें मिश्री २ तोले मिलाकर रोज दोपहरको पिलाते रहनेसे गर्मीके दिनोंमें नाकसे होनेवाला रक्तस्राव बन्द होजाता है। फूलोंका रस भी सुँघाया जाता है।

(८) रक्तातिसार—अनारके फलकी छाल और कड़वे इन्द्रजौ २-२ तोलेको ६४ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। उसका ३ हिस्सा करके दिनमें ३ बार पिलाने से ३-४ दिनमें रक्तातिसार बन्द होजाता है। उदरमें ऐंठन आती हो तो चौथाई रत्ती अफीम भी साथमें लेना चाहिये।

(९) अरुचि—ज्वरके हेतुसे अरुचि रहती हो, तो खट्टमीठे अनारके १-१ तोले रसको मुँहमें धारण करें। धीरे धीरे चला-चलाकर पीते रहें। इस तरह रोज एक

समयमें ८-१० बार रस पीते रहनेसे मुँहका स्वाद सुधर जाता है और अन्त्रमें रहे हुए दोषका पचन होजाता है।

(१०) सगर्भाकी निर्बलता—सगर्भाका हृदय और शरीर कमजोर रहता हो, तो मीठे अनारदाने खिलाना चाहिएँ। यदि पाँचवें मासमें गर्भचलित होता हो, तो अनारके पानकी चटनी, चंदन घिसा हुआ, दही और शहद मिलाकर पिलाया जाता है। जिससे गर्भ और गर्भिणी, दोनों बलवान बनते हैं।

(८) अफीम।

सं० अफूक, अफेन, अहिफेन। गु० अफीण। म० अफू। बं० आफीम। ता० अपिन। ले० अपिनु। मला० अफिन, करप्पु। ते० नाल्लामन्दु। अं० ले० Opium।

अफीम जिस क्षुपमें से निकलता है। उसका लेटिन नाम पापावर सोम्निफेरम (Papaver Somniferum) है। भारतमें अफीमको ४०० वर्ष पहिले कोई नहीं जानता था। प्राचीन ग्रन्थ, चरक, सुश्रुत, चक्रदत्त, वंगसेन आदिमें अफीम का उल्लेख नहीं मिलता। सबसे पहिला वर्णन भावप्रकाशमें हुआ है। भावप्रकाशमें गुणोल्लेख तो हुआ है, किन्तु अतिसार, ग्रहणी आदि रोगोंपर अफीमकी योजना नहीं की।

सूचना—(१) पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंपर अफीमका असर अधिक होता है एवं अशिक्षित की अपेक्षा शिक्षित पर असर जल्दी होता है। बालकोंपर तत्काल असर पहुँच जाता है। अतः अति सम्हालपूर्वक अति कम मात्रा देनी चाहिए।

(२) यदि वृक्क सदोष हों अर्थात् मूत्रोत्पत्ति कार्य योग्य न होता हो, अथवा मुँहपर सूजन हो तो, अफीम नहीं देनी चाहिये। वृक्क विकार पीड़ित हों तो अफीम रक्तमें संगृहीत होकर विषप्रकोप दर्शाती है।

(३) पेचिशमें अफीम देनी हो, तो अन्त्रमें दुर्गन्धवाला कच्चा मल न हो, तब देवें। अन्यथा मलमें से विषका शोषण रक्तमें हो जायगा, जो रक्त विकृत बनाकर नाना प्रकारसे उपद्रव उत्पन्न कर देता है।

(४) होंठ (Lips) नीले बैंगनी रंगके होगये हों, तो अफीम नहीं देनी चाहिये।

(५) चिपचिपा, दुर्गन्धमय कफ निकलता हो, या श्वासोछ्वासमें कष्ट होता हो, ऐसी अवस्थामें खाँसीको रोकनेके लिये अफीम नहीं देनी चाहिये। अन्यथा कफ सूख जायगा। फिर निकलनेमें अति कष्ट पहुँचेगा।

(६) आँखे लाल हों, बुखार अति बढ़ा (१०२ डिग्रीसे अधिक) हो, कनीनिका (आँखोंकी काली पुतलीमें रहा हुआ छिद्र) आकुञ्चित हो, मस्तिष्कमें गर्मी बढ़ी हो, शिरदर्द होता हो, रोगीको पूरी शुद्धि न हो, ऐसी अवस्थामें अफीम नहीं देनी चाहिये।

(७) किसी भी समय नशा आ जाय तो तेज कॉफीमें थोड़ी शराब मिलाकर या नींबूका रस मिलाकर पिलावें।

(८) गुदा द्वारा फलवर्ति रूपसे अफीम देनी हो, तो मात्रा डेढ़ी देनी चाहिये।

(९) निद्रा लानेके लिये अफीम ३ घण्टा पहिले देनी चाहिये।

(१०) अफीमके व्यसनीको अफीमप्रधान ओषधि सामान्य मात्रामें पूरा लाभ नहीं दर्शा सकती।

(११) सगर्भावस्थामें और छोटे बालककी माताको अफीम कदापि नहीं देनी चाहिये अन्यथा गर्भ या शिशु पर बहुत बुरा असर होता है।

अफीममें मुख्य ४ जाति प्रसिद्ध हैं। १ तुर्की; २ यूरोपीय; ३ ईरानी; ४ भारतीय। इनमेंसे यूरोपीय अफीममें मोर्फिया अधिक मिलता है। भारतीय अफीमके भीतर पटनाकी अफीम श्रेष्ठ और मालवी (राजपूतानाकी) कनिष्ट है। पटनाकी अफीममें मोर्फिया ३ से ५% तुर्की अफीममें ५ से १०½% किन्तु नार्कोटीन भारतीय अफीममेंसे ४ से ६% और तुर्की अफीममेंसे १ से २% मिलता है।

आयुर्वेदकी अपेक्षा डाक्टरीमें अफीमका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें हो रहा है। नूतन अनुसंधानानुसार डाक्टरीमें इसमेंसे विविध क्षारीय द्रव्य और अम्ल द्रव्योंको पृथक् किया गया है। क्षारीय द्रव्योंमें २ समूह हैं। १ मुख्य और २ गौण। मुख्य समूहमें मोर्फिन आदि १८ क्षारीय द्रव्य हैं। गौणसमूह जो पुनः आकर्षित किया है, उसमें एपोमोर्फिन आदि ८ द्रव्य हैं। उदासीन द्रव्य—ओपियोनिन आदि ३ हैं। सेन्द्रिय अम्ल द्रव्यलेक्टिक एसिड और मेकोनिक एसिड, ये २ हैं। इनके अतिरिक्त राल, शक्कर, चरबी, तैल, सुगन्धित द्रव्य, नौसादरका लवण, चूना, मेग्नेशिया और जल मिलता है। जल लगभग १६% होता है।

मात्रा—चौथाई रत्तीसे १॥ रत्ती तक।

गुणधर्म—अफीम शोषक, स्तम्भक, कफहर, वातवर्द्धक, पित्तजनक, आक्षेपहर, मस्तिष्कशामक, निद्राप्रद, मादक और वेदनाशामक है। मूत्रातिसार, कास, श्वास, अतिसार और रक्तस्रावको दूर करती है।

नव्यमतानुसार अफीम प्रारम्भमें उत्तेजक, आनन्दप्रद और वाजीकर, फिर मस्तिष्कशामक और निद्राप्रद; एवं आक्षेपहर, वेदनाशामक, शूलघ्न, कफहर, कासशामक, ग्राही, रक्तस्रावरोधक, स्वेदजनक, ज्वरघ्न और नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक है।

अफीमका रस कडुवा और वीर्यतीक्ष्ण और रूक्ष है। अफीमका विपाक अति उपयुक्त है। मुखसे गुदा पर्यन्त पचनेन्द्रिय संस्थापर अफीमकी क्रियां प्रत्यक्ष होती है। थूंक और आमाशयिक रसका ह्रास होता है; क्षुधामन्द होती है और मल घट्ट होता है। इनके अतिरिक्त नाड़ी सुधार, मानसिक प्रसन्नता, विचारशक्तिकी वृद्धि, उत्साह वृद्धि कामोत्तेजना और मानसिक शान्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तथा निद्रा शान्त आ जाती है। ये सब क्रिया कम मात्राके सेवनसे होती हैं।

अल्प परिमाणमें अफीम उत्तेजक है। यह उत्तेजक धर्म प्रथम मस्तिष्कपर फिर अन्य इन्द्रियोंपर होता है। वातवाहिनियोंके लिये अफीम उत्तेजक है। यह उत्तेजक धर्म अति महत्वका और उपयुक्त है। केवल अल्प मात्रामें देनेपर इस धर्मका उपयोग होता है।

मस्तिष्क और वातवाहिनियोंपर अफीमका प्राथमिक उत्तेजक धर्म प्रतीत होता है। वह अन्य औषधियोंमें नहीं है। भय लगना, उदासीनता आ जाना, थोड़ा सा क्रोध उत्पन्न होनेपर हाथ-पैरोंमें कम्प होना और थकावट आ जाना तथा वृद्धावस्थामें व्याकुलता होना आदि लक्षण होनेपर अफीम उत्तम गुणकारक औषध है। बालकोंको शस्त्रक्रिया करनेके बाद अफीम प्रधान औषध देनेसे नाड़ी सत्वर सुधर जाती है। शरीर जलनेपर अफीम देते रहनेसे बालक सहसा दगा नहीं देता। निरोगी मनुष्योंको अफीम देनेसे उत्साहमें वृद्धि होकर कामोत्तेजना होती है।

सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंपर अफीमका उत्तेजक असर पहुँचता है। परिणाममें कितनेही व्यक्तियोंके हाथ पैर शीतल होते हैं और कितनोंहीको बार-बार प्रतिश्याय होता है। इन दोनोंपर अफीमका अच्छा असर होता है।

त्वचा और श्लेष्म त्वचाका व्रण जल्दी न भरता हो, तो अफीम देनेसे जल्दी भर जाता है। रोगी और निस्तेज बालकोंके व्रण, मुखपाक और शीतलाके व्रण अफीमसे सत्वर अच्छे हो जाते हैं। अफीम फुफ्फुसोंकी नलिकाओंका संकोच विकास (आक्षेप) कम कराती है। जिससे बिना कारण बारबार खांसी आकर त्रास होता हो, तो वह कम हो जाता है। वृद्धावस्थामें और कभी युवावस्थामें भी बहुत कफ गिरता है; बार-बार खांसी आती है, खांसीका त्रास होकर निद्रा भंग हो जाती है, इस स्थितिमें अफीम हितकारक है. किन्तु रोगी अफीम सेवनके लिये योग्य है या नहीं इस बातका विचार करके अफीम देनी चाहिये। रोगीका श्वासोच्छ्वास ठीक चलता हो, त्वचा मृदु हो, कफ बिल्कुल शिथिल हो, तो अफीम देनी चाहिये। श्वासोच्छ्वासमें कष्ट होता हो और ओष्ठ नीले-काले हों, तो अफीम नहीं देनी चाहिये।

अहिफेन कल्पः—

(१) जातिफलादि वटी—अफीम, जायफल और छुहारे तीनों १-१ तोला मिला नागरवेलके पानोंके रसमें ६ घण्टे खरल करके चौथाई चौथाई रत्तीकी गोलियां

बना लेवें। मात्रा—१ से ४ गोली दिनमें २ से ३ बार जल या मट्ठा अथवा बकरीके दूधके साथ। उपयोग—यह वटी पेचिश और रक्तातिसारको दूर करती है। उदरमें कीटाणु हो, तो उसे भी नष्ट करती है।

सूचना—नया पेचिश हो, दस्त दुर्गन्धवाला हो और आम गिरता हो तो अफीमवाली कोई भी दवा नहीं देनी चाहिये।

(२) अहिफेनादि मिश्रण—अफीम १ तोला तथा कपूर और सोंठ २-२ तोलेको खरल करके मिला लेवें। मात्रा–आध से १ रत्ती दिनमें २ या ३ बार जल या मट्ठेके साथ। उपयोग–अतिसार, अफारा और वेदनाको दूर करता है।

(३) अहिफेनादि मलहम—माजूफलका चूर्ण ४ तोले, अफीम १ तोला और धोया घी (या वेसलीन) १६ तोले लें। सबको मिलाकर डिब्बीमें भर लेवें। शौच जानेपर इसमें से थोड़ा-थोड़ा अर्शके मस्सेको लगाते रहनेसे मस्सेसे होनेवाले रक्तस्रावकी निवृत्ति होती है।

(४) रसांजनादि लेप–अफीम १ तोला, रसौंत, मिश्री, बबूलका गोंद, समुद्रझाग और फिटकरी २-२ तोला। सबको मिला ३ दिन तक जलमें खरल कर सुखावें। गाढ़ा होनेपर शिखराकार गोलियाँ बना लेवें। उपयोग—जलके साथ घिसकर नेत्रमें अञ्जन करने और नेत्रके पलकोंपर दिनमें २ बार लगाते रहनेसे आँखोंका आना, आँखोंकी लाली, दाह, खाज, भयंकर सूजन, चोट लगना, घाव होना, पीप आना आदि सब विकार दूर हो जाते हैं। १-१ मासके छोटे बच्चेकी आँखमें भी अञ्जन कर सकते हैं। यह छोटे बड़े सबके लिये लाभकायक निर्भय ओषधि है।

सूचना—नेत्रके तीक्ष्ण रोगमें आँखोंको ठण्डे जल और ठण्डी वायु से बचावें। गरम जलमें कपड़ा या रूई भिगोकर आँखोंको धोवें।

(५) अहिफेनासव——अंगूर या महुएकी शराब ४०० तोले, अफीम १६ तोले, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ और छोटी इलायचीके दानेका चूर्ण, ४-४ तोले लें। सबको मिला अमृतबानमें भर, मुँहपर कपड़मिट्टी कर १ मास तक रहने देवें। फिर छानकर बोतलोंमें भर लेवें। मात्रा—१० से २० बूँद तक २॥-२॥ तोले जल मिलाकर दिनमें २ या ३ बार। उपयोग—अतिसार, पेचिश, ज्वरातिसार (ज्वर और दस्त), अफारा, और रक्तातिसारको दूर करता है। एवं रक्तार्शमें रक्तस्रावको बन्द करनेके लिये प्रयोजित होता है।

(६) वीर्यस्तम्भन वटी—अफीम, जायफल, जावित्री, लौंग, अकरकरा, केशर और छोटी इलायचीके दाने, ७ ओषधियां १-१ तोला और भीमसेनी कपूर ३ माशे लेवें। सबको मिला नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। इसमेंसे १-१ गोली रात्रिको मिश्री मिले दूधके साथ लेते रहनेसे शीघ्रपतन दूर होता है। वीर्य सबल बनता, कामोत्तेजना होती और मन

प्रफुल्लित रहता है। यदि इस वटीमें सिंगरफ १ तोला मिला लेवें, तो गुणमें वृद्धि होती है।

उपयोग—अफीम मुख, आमाशय, अन्त्र, यकृत् आदि अवयवोंका स्राव और स्तनोंका दूध भी कम कराती है। एवं इन सबकी गतिका ह्रास कराती है। वातवाहिनियोंके केन्द्रस्थानपर शामक असर पहुँचाती है। अत्यधिक मात्रा न दी जाय, तो वातवाहिनियां (संज्ञावहा और संचालक नाड़ियां) प्रभावित नहीं होती। अफीमसे मांसपेशियोंकी शक्ति और वेदनाका पूर्ण रूपसे ह्रास नहीं होता। शास्त्रीय मात्रामें अफीम लेनेपर गर्भाशयपर कोई असर नहीं पहुँचता; किन्तु प्रसवकालमें शिथिलता आनेपर उदरगुहाकी मांसपेशियोंका आकुंचन करा, उत्तेजना बढ़ाकर तुरन्त प्रसव करानेमें सहायक होती है। अफीम शारीरिक उत्तापको कम करती है। नेत्रकी कनीनिकाको आकुंचित करती है। वृक्क निर्दोष होनेपर वृक्कके मूत्रोत्पत्ति कार्यमें प्रतिबन्ध नहीं होता। अफीम त्वचाकी स्वेद ग्रन्थियोंपर असर पहुँचाकर स्वेद ला देती है। श्लैष्मिक कलामेंसे अफीमके सत्वका सत्वर शोषण हो जाता है। यदि त्वचा छिल गई हो तो त्वचामेंसे भी शोषण होता है; किन्तु अक्षत त्वचामेंसे शोषण होता है या नहीं, यह संदिग्ध है। रक्तमेंसे अफीम शोषित होकर तन्तुओंमें पहुँच जाती है, और वहां कुछ कालके लिये संग्रहीत रहती है। अफीमका कुछ अंश मूत्र और मलके साथ बाहर निकल जाता है। दूध और स्वेदमें भी अफीम मिल जाती है।

अफीमके व्यसनी यदि सामान्य मात्रामें अफीम सेवन करते रहें, मात्रा अधिकाधिक न बढ़ावें, घृत-दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थोंका सेवन योग्य परिमाणमें करते रहें, व्यायाम कर पचनशक्तिको निर्बल न बनने देवें और शुक्रक्षय अधिक न करें, तो शारीरिक या मानसिक हानि कम होती है; किन्तु अफीममें मोहिनीशक्ति इतनी प्रबल है कि प्रारम्भकी मर्यादा कभी स्थिर नहीं रहती, क्रमशः मात्रा बढ़ती जाती है। परिणाममें अफीमके व्यसनी जीवनको पराधीन और प्रमादी बना देते हैं।

व्यसनीको प्रतिदिनके सेवनकालमें यदि अफीम न मिल सके, तो सहसा शारीरिक और मानसिक थकावट आ जाती है, जम्भाईपर जम्भाई आती है; नाड़ियां खिंचती हैं, हाथ-पैर टूटते हैं, विचारशक्ति नष्ट होजाती है तथा अति व्याकुलता उपस्थित होती है। एक कदम चलनेकी शक्ति भी नहीं रहती। इस स्थितिमें ४-८ घण्टे निकल जायँ, तो अतिसार प्रारम्भ हो जाता है। मुँहसे लालास्राव, नासास्राव, अतितृषा, अश्रुस्राव, बारबार पेशाब होना, शुक्रस्राव (स्त्री हो, तो रजःस्राव) और भयंकर व्याकुलता होती है। इसका व्यसनी दुःख भोगता है; किन्तु उसकी मृत्यु नहीं होती।

शराब द्वारा देहको जितनी हानि पहुँचती है, उतनी अफीमसे नहीं पहुँचती। फिर भी दीर्घकाल तक अधिक मात्रामें सेवन करते रहनेपर शारीरिक स्फूर्ति और मानसिक विचारशक्ति क्षीण और निकृष्ट हो जाती हैं; शरीर शुष्क बन जाता है; हड्डी

हड्डी बाहर निकल आती है; चेहरा शुष्क, मलिन, श्याम या किञ्चित् पाण्डुसा भासता है। पीठकी हड्डी मुड़ जाती है। नेत्र गढ्ढेमें घुसे हुए, निस्तेज और अश्रु-युक्त भासते हैं। दिनमें भी तन्द्रा बनी रहती है, इस तरह देहकी अति शोचनीय अवस्था हो जाती है।

व्यसन दृढ़ बननेपर क्षुधा नष्ट हो जाती है, कोष्ठबद्धता बनी रहती है, बड़ी कठिनाईसे थोड़ा शुष्क दस्त उतरता है। कामोत्तेजना बिल्कुल दूर होकर नपुंसकता आ जाती है। स्मरणशक्ति, विचारशक्ति, विवेकशक्ति, संयमशक्ति, ये सब क्षीण हो जाती हैं। विचारणीय विषय सुन लेते हैं; परन्तु योग्य विचारकर निर्णय नहीं कर सकते। फिर ज्वरग्रस्त होकर अकाल मृत्युकी प्राप्ति हो जाती है।

अफीम खानेके बदले चीन देशमें धूम्रपान करनेके अधिक व्यसनी हैं। विशेषतः अफीममेंसे चण्डू और मदक बनाकर धूम्रपान करते हैं। धूम्रपानसे हानि खानेकी अपेक्षा भी अधिकतर होती है।

अफीमसे हानि होने लगे ऐसे समय कुचिला या अन्य अफीमकी विरोधी औषधिका सेवन करा अफीम छुड़ा देवें, तो शरीर फिर सुधर जाता है। अति क्षीण हुए और सारे दिन अर्धचेतनावस्थामें रहनेवाले व्यसनी भी निरोगी और सबल हो गये हैं।

अफीम छुड़ानेकी निर्भय और उत्तम औषधि कुचिला है। कुचिलेमें से बनी हुई विषतिन्दुकादि वटी या कुचिलेका शोधन जिस दूधमें किया हो, उस दूधका मावा, अफीम लेनेके समय अफीमके सम परिमाणमें देते रहें, तो ७-८ दिनमें व्यसन छूट जाता है। कुचिलाकी गोलियाँ या मावा अफीम लेनेके समय जंम्भाई आने लगे, तब देना चाहिये। धीरे-धीरे अफीम विष रक्तमेंसे दूर होजाता है। फिर अफीम न लेनेसे जम्भाई आना, हाथ-पैर टूटना, छींकें आना आदि लक्षण नहीं होते। न अतिसार होता है। अफीमके लक्षण दूर होनेके बाद भी २-४ दिन तक कम मात्रामें कुचीले की गोली या मावा लेकर, उसे भी छोड़ देवें।

अफीम उत्तम प्रदाहघ्न औषधि है। शरीरके भीतर किसी भी स्थान या इन्द्रिय के प्रदाह (दाह-शोथ) की प्रारम्भावस्थामें अफीम दी जाय, तो आगे होनेवाली शोथमय अवस्थाकी उत्पत्ति ही नहीं होती। मृदु अवस्थामें प्रदाहका नाश सरलतासे हो जाता है। सामान्यतः प्रदाह होनेपर प्रारम्भमें रक्तवाहिनियाँ विकसित होती हैं। जिससे वह स्थान लाल बन जाता है। अफीम देनेपर रक्तवाहिनियोंका आकुञ्चन होजाता है। परिणाममें लाली दूर होजाती है और शोथकी उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रभावके हेतुसे अफीमका उपयोग फुफ्फुसावरण, उदर्य्याकला, हृदावरण, वृषणावरण; आमाशय, वृक्क और बस्ति आदि स्थानोंके प्रदाह पर होता है।

फुफ्फुसके रोगोंमें अफीम सूक्ष्म मात्रामें देनी चाहिये। साथ-साथ उत्तेजक कफ

निःसारक द्रव्य—कपूर, नौसादर, आकके मूलकी छाल, कटेली मूल, रास्ना, लोहबान, लोहबानके फूल, या जंगली प्याजादिमें से कोई-न-कोई मिला देना चाहिये।

सूचना—(१) यदि कफ चिपचिपा और गाढ़ा है, तो अफीम बिल्कुल नहीं देनी चाहिये; अन्यथा कफ सुख जानेसे कष्टकी वृद्धि होगी।

(२) अफीम कभी अधिक मात्रामें नहीं देनी चाहिये। अन्यथा विष-प्रकोप हो जायगा।

फुफ्फुसावरणके प्रदाहमें अफीम अति हितकारक है। कितने ही व्यक्तियोंको बार-बार श्वासनलिकाका प्रदाह होजाता है। उसपर सूक्ष्म मात्रामें अफीम देनेसे लाभ होता है। श्वासमार्गकी व्याधियोंपर सर्वदा अफीमके साथ उत्तेजक, श्लेष्मनिःसारक द्रव्य देना चाहिये। जीर्णरोगमें कपूर, नौसादर, अर्कत्वक्, लोहबानपुष्प और जंगली प्याज प्रशस्तश्लेष्मनिःसारक है।

प्रतिश्यायमें बार-बार छींक आने और नाकसे जल बहते रहनेपर अफीम देनेसे प्रतिश्याय नहीं बढ़ता। कण्ठस्थप्रदाह, वेदना, शुष्ककास और श्वासमार्ग (स्वरयन्त्र) के द्वारपर क्षत होनेपर अफीम चाटणरूपसे दी जाती है। बालकोंके श्वासमार्गके द्वारपर क्षत होकर श्वासावरोध होता है; तथा मुर्गेकी आवाजके समान (Croupy) खांसी आना, उसपर अफीमका चाटण त्वरित गुणकारी है। अफीमसे फुफ्फुसोंका रक्तस्राव सत्वर बन्द होजाता है। अफीम उत्तम संकोचविकास प्रतिबन्धक (आक्षेपहर) है, इस हेतुसे काली खांसी और श्वासके दौरेपर दी जाती है। श्वासरोगमें अफीम गोलीरूपसे देनी चाहिये। शुष्क श्वासपर अफीम हितकारक है।

अफीम अधिक मात्रामें शामक है, आमाशयके अपचनसे उत्पन्न वेदना, आमाशयमें कर्कस्फोट (Cancer) या क्षतजनित वेदना और वमनपर अफीम दी जाती है। आमाशयमेंसे रक्तस्राव होनेपर भी अफीम लाभदायक है। यदि आमाशयस्थ वातवाहिनियोंकी विकृतिसे दुःख होता हो, तो अफीमके साथ सोम दिया जाता है।

आमाशयके नूतन प्रदाहमें अफीम दी जाती है। अफीमसे मुख, जिह्वा और कण्ठमें शोष होता है थूँक, आमाशयरस, यकृत् पित्त और अन्त्र आदिका स्राव कम होजाता है। अफीम २½ रत्ती देनेपर क्षुधा नष्ट हो जाती है। और आमाशयकी मंथनक्रियामे कुछ वृद्धि होती है; किन्तु मात्रा अधिक देनेपर मंथनक्रियाका ह्रास होता है। इस हेतुसे आमाशयमें से रक्तस्राव कम हो जाता है। पित्ताशयमें अश्मरी होनेपर तीव्र शूल चलता हो, तो वह भी अफीमसे शमन हो जाता है। अतिसार, प्रवाहिका, बृहदन्त्रका प्रदाह, विसूचिकाकी प्रथमावस्था, अन्त्रमेंसे रक्तस्राव और अन्त्रक्षत, इन रोगोंमें अफीम दी जाती है। अफीमसे अन्त्रकी परिचालनक्रिया, उत्तेजना और श्लेष्मा कम होती है; तथा रक्तस्राव बन्द होजाता है। अन्त्र रोगोंपर अफीम अन्य-

ग्राही औषधियोंके साथ गोली रूपसे देनी चाहिये। जिससे उसका असर धीरे-धीरे हो सके।

अन्त्रावरण (उदर्य्याकला) के प्रदाहमें अफीम १-१ रत्ती ४-४ घण्टे पर दी जाती है। कभी कभी बीजाशय (Ovary) के विकारसे मलावरोध होता है। उस पर सूक्ष्म मात्रामें अफीम देनेसे शौच शुद्धि होती है। आमाशयपर शामक तथा अन्त्र पर शामक और स्तम्भक अफीमके अत्युत्तम गुण हैं। शिलाजीतके साथ देना विशेष हितकर है एवं उदरपर पारद प्रधान मलहमका लेप करना चाहिये। अति मलावरोध होनेपर विरेचन या वस्ति देनी चाहिये। हृदयपीड़ा, हृदय विकारजनित श्वासोच्छ्वास में कष्ट और उस हेतुसे होनेवाला निद्राभंग अफीमके सेवनसे कम हो जाता है। हृदय-रोगमें दुःख, चिन्ता, व्याकुलता और हृदयकी धड़कन, ये सब अफीमसे कम हो जाते हैं। आमवातकी आशुकारी अवस्थामें संधिस्थानोंमें भयंकरप्रदाह होनेपर अफीम दिये विना काम नहीं चलता। अफीमके साथ स्वेदजनक, मूत्रल, संशन (उदरशोधक) आदि आवश्यक औषध देना चाहिये।

तीव्र आमवात (Rheumatism) में अफीम हृदयका संरक्षण भी करती है। इस रोगमें अफीम पूर्ण मात्रामें दी जाती है; अन्यथा रोगीका प्राणघात होनेकी संभावना है। यदि किसी तरह रोगी सुधर भी जाता है, तो भी हृदय विकृति रह जाती है। अफीमका रक्तस्रावरोधकधर्म अति मूल्यवान है। उससे शरीरके भीतर किसी इन्द्रियमेंसे रक्तस्राव होनेपर बन्द हो जाता है। आमाशय, अन्त्र, फुफ्फुस या गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होनेपर मध्यम मात्रामें अफीम अन्य रक्तस्रावरोधक बीजाबोल, दूबका रस, कहेरवा आदि द्रव्योंके साथ देनी चाहिये। क्षय रोगमें खांसीका त्रास अधिक होनेपर रात्रिको सोनेके समय सूक्ष्म मात्रामें अफीम देनेसे श्वासोच्छ्वास केन्द्रपर शामक क्रिया होकर वेगका दमन हो जाता है।

अफीमसे जीवनविनिमय (चयापचय) क्रिया सुधरती है। मधुमेहमें मधुकी मात्रा कम हो जाती है। इस रोगमें उपद्रव रूपसे प्रमेहपिटिका (Carbuncle) और विविध व्रण उपस्थित होते हैं। वे व्रण और किसी बाह्यकारणसे मधुमेहीको उत्पन्न हों, तो जल्दी नहीं भरते। पर वे प्रायः अफीमके सेवनसे अच्छे होजाते हैं। मधुमेहके रोगीको अफीम शनैः शनैः बढ़ानेपर बड़ी मात्रामें भी हानि नहीं पहुँचती। इस रोगमें गोली रूपसे अफीम देनी चाहिये।

त्वचा रूक्ष होनेपर अफीमसे प्रस्वेद आता है, त्वचासे सम्बन्धवाली केशिकाओं का विकास और स्वेदपिण्डोंको उत्तेजना मिलनेपर प्रस्वेदकी वृद्धि होती है। फिर त्वचामेंसे दाह कम होती है। अफीमका ये स्वेदजनक और दाहनाशकधर्म मूल्यवान् हैं। क्षयरोगमें रात्रिको अति प्रस्वेद आता है; वह अफीमसे कम होता है। अफीमके साथ सैंधानमक और आककी छाल देनेपर अफीमका स्वेदजननधर्म अति स्पष्ट होता है।

वृक्कप्रदाह या वृक्क विकार होनेसे रक्तस्थित शारीरिक मल मूत्र द्वारा बाहर नहीं निकल सकता। इस मलके भीतर कुछ भाग सेन्द्रिय विषका है। उस विषका संग्रह होनेपर आक्षेप आता है। या श्वासप्रकोप होता है। ऐसी परिस्थितिमें अफीमके साथ मूत्रल क्षार और सारक द्रव्य देना चाहिये। इस तरह वृक्क स्थानमें अश्मरीजनित वेदना पर मूत्रल क्षार और ओषधि दी जाती है। (स्थानिक प्रयोग रूपसे अलसीकी पुल्टिस-का उपयोग भी करना चाहिये।)

आशुकारी बस्तिप्रदाह (Acute Cystitis) और उससे उत्पन्न होनेवाली वेदनामें गुदाद्वारा फलवर्ति रूपसे अफीम दी जाती है; तथा शराबमें मिला सिवनीपर लेप किया जाता है। बस्तिप्रदाहमें अफीमके साथ खुरासानी अजवायन देना विशेष हितावह है। मूत्रनलिकामें क्षत पड़नेसे प्रदाह आकर वह स्थान संकुचित हो गया हो, तथा पेशाब करनेपर वेदना होती हो, तो वह भी अफीमके सेवनसे कम हो जाती है।

अण्डकोषप्रदाह और अण्डकोषावरणप्रदाहमें अफीम निगुंण्डीके क्वाथके साथ देनी चाहिये।

आघातज या आकस्मिक गर्भपातके स्तम्भनार्थ अफीम उत्तम औषध है। अफीमसे प्रसववेग और रक्तस्राव बन्द हो जाता है। प्रसवकालमें अति पीड़ा होनेपर सन्तानकी चलनक्रिया बन्द हो जाती है, तब अफीम और खुरासानी अजवायनको शराबमें मिलाकर देते हैं, जिससे पीड़ा शमन हो जाती है। फिर प्रसववेग उपस्थित होता है और सरलतासे प्रसव हो जाता है।

अफीम सब प्रकारके ज्वरोंमें दी जाती है। नूतन ज्वरोंमें निद्रा और शान्ति लानेके लिये अफीम प्रधान औषध है। अशक्त नाड़ी, प्रलाप, कपड़े फेंक देना, हाथ पैर कांपना और निद्राभंग आदि लक्षण होनेपर अफीम शराबके साथ और अतिसार साथमें हो, तो कपूरके साथ देनी चाहिये; किन्तु मस्तिष्क संताप अर्थात् नेत्रमें लाली, पुतलीका संकोच, शिरदर्द, कास और बेहोशी होनेपर अफीम नहीं देनी चाहिये।

जीर्ण शीतज्वरमें अफीम उत्तम औषध है। इसका दो प्रकारसे उपयोग होता है। (१) शीतका बल और ज्वर कम करने तथा (२) पाली दूर करनेके लिये। शीत आनेके ३ घण्टे पहिले १ रत्ती अफीम, केशर, कालीमिर्च और वचके साथ मिला जलमें पीसकर देवें। इस ज्वरपर अफीम मध्यम मात्रामें कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये। किसीको गुण शीघ्र मिल जाता है और किसीको देरसे।

जीर्णज्वरमें अफीम उत्तम काम करती है, जीर्णज्वरका विष रक्तवाहिनियाँ और उनके केन्द्रस्थान, दोनोंपर हानि पहुँचाती है। क्योंकि ये सब विषप्रकोपसे अशक्त होते हैं। फिर थोड़ा-सा आघात पहुँचनेपर संवेदनाकी वृद्धि हो जाती है। ऐसी परिस्थितिमें शीतलवायु लगने, थोड़ा-सा अपचन होने या दो तीन बार मलोत्सर्ग होनेपर तुरन्त

शीत लगकर ज्वर आ जाता है। इस विकारपर अफीमके साथ अन्य प्रयोजक ओषधियाँ मिला गोली बनाकर देवें। अनुपान शहद और घी।

अफीम उत्कृष्ट वेदनास्थापक है। इससे सब प्रकारके दर्द निवृत्त होते हैं। जैसे वृक्क स्थानमें शूल, बस्तिशूल उपान्त्रशूल, आन्त्रिकशूल, पित्ताशयमें अश्मरीजनित शूल, चोट लग जाना, अंग जल जाना, हड्डी मुड़ जाना, सांधे मुड़ना, गृध्रसी, वातशूल, उदरपीड़ा, अर्बुद (कर्कस्फोट), उदर्य्याकला प्रदाह, आमाशयमें क्षत, आशुकारी आमवात आदि रोगोंमें अफीम दी जाती है। पीड़ा शमनार्थ अफीम पूर्णमात्रा में देनी चाहिये। अफीम शराब या साबुनके साथ विशेष हितावह है। वेदनाके हेतुसे निद्रानाश होनेपर अफीमके समान अन्य ओषधि नहीं है। लज्जा, भय; शोक, मानसिक चिन्ता, आर्थिक हानि, अति विचार, और अति अभ्यास आदिसे निद्रानाश हो जानेपर, अफीम देनेपर मानसिक प्रवृत्ति नष्ट होकर गाढ़ निद्रा आ जाती है। निद्रा लानेके लिये सोनेके ३ घण्टे पहिले अफीम देनी चाहिये। चिन्तायुक्त वृत्ति (रंज) खेदपर अफीमका अच्छा उपयोग होता है। इनमें निद्रा लानेके लिये अफीम, आसव या शरावके साथ देनी चाहिये।

अफीम उत्तम आक्षेपहर है। इस हेतुसे तमक-श्वास, काली खांसी, मूत्रनलिका पर आघात होनेसे पेशाब करनेमें पीड़ा और छोटे बालकोंका आक्षेपक वातपर व्यवहृत होती है।

अफीमसे ज्ञानग्राहक शक्तिका ह्रास होता है। यह धर्म अति उपयुक्त है। अंग जलनेपर मानसिक आघात होकर रोगीकी मृत्यु हो जाती है। ऐसे प्रसंगोंपर अफीम देनेसे मानसिक आघात कम होता है। फिर रोगीको अपनी स्थितिका स्मरण नहीं होता। इस तरह अस्त्र चिकित्सा करनेके पश्चात् अफीम देनेसे भी रोगी दर्दको भूल जाता है।

उन्माद रोगकी प्रथमावस्थामें चिन्तन और विवेक शक्तिका विचार उपस्थित होनेके पहिले जब केवल मानसिक दुर्बलताके लक्षण प्रकाशित होते हैं, तब अफीम आध रत्ती और एलुवा १ रत्ती मिला, रात्रिको सोनेके समय देते रहने और दिनमें बलवर्द्धक और उत्तेजक औषध थोड़ी थोड़ी मात्रामें देते रहनेसे सत्वर प्रतिकार होता है।

नये शोकोन्माद (Malencholia) में रोगी किसी प्रकारका मानसिक श्रम नहीं ले सकता। रोगी मानसिक चिन्ताको सहन करनेमें बिल्कुल असमर्थ होजाता है। ऐसे रोगियोंके लिये अफीमके प्रयोगसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है। शोकोन्माद प्रबल होनेपर रोगी आत्मघात करनेके लिये तैयार हो जाता है। ऐसे समय पर भी अफीम द्वारा लाभ होजानेकी संभावना है।

युवा स्त्रियोंके मासिकधर्म बन्द होजानेसे उत्पन्न शोकोन्मादमें अफीम एलुवा

और कुचिलेके साथ देनेसे विशेष लाभ पहुँच जाता है, किन्तु अधिक आयुवाली स्त्रियोंको मासिकधर्म लोप हो जानेपर शोकोन्मादकी प्राप्ति हो, तो अफीमसे लाभ नहीं पहुँचता। उसपर वचका प्रयोग हितकारक होता है।

मदात्यय रोगमें अफीम मुख्य औषधि है। रोगकी सामान्यावस्था होनेपर पूर्ण मात्रामें केवल अफीम या अफीम कपूर मिश्रण २-३ घण्टे पर २-३ बार देनेसे शान्त निद्रा आ जाती है।

यदि चोट लगनेसे गर्भपात होता हो, तो अफीमका सेवन कराने एवं अफीमकी गुदामें पिचकारी देनेसे यथेष्ट लाभ हो जाता है। साथ साथ शय्यापर स्थिर पड़े रहना तथा शीतलता और लघु आहारका सेवन करना चाहिये। यदि गर्भस्राव हो गया हो, तो भी अफीम द्वारा उपकार होता है। अफीम वातवाहिनियोंकी उग्रताका दमन कर रुधिराभिसरणकी उग्रताको भी शान्त कर देता है, तथा निद्रा ला देता है।

प्रसववेदनाके प्रारम्भमें यदि गर्भाशयका योग्य संकोच न हो और वह स्वच्छंद रूपसे आक्षिप्त होता रहे, तो, अफीमका प्रयोग करना चाहिये। इस अफीमसे गर्भाशय को स्थिरताकी प्राप्ति, हो जाती, वेदना निवृत्त होती और निद्रा आ जाती है। फिर निद्राके बाद गर्भाशयका यथाविधि संकोच होता है। यदि गर्भाशयके मुखका विकास होनेके पहले गर्भ जलकी थैली टूट जाय, तो सन्तानका मस्तक गर्भाशयके अविकसित मुखको लग जाता है और गर्भाशय बलपूर्वक संकुचित हो जाता है। ऐसे समयपर अत्यन्त वेदना होती है। फिर तत्काल प्रदाह आदि नाना विध उपद्रव उपस्थित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भाशयपर दबाव आनेसे सन्तानको हानि पहुँचनेकी संभावना है। इस अवस्थामें अफीम गर्भाशयके वेगको शमन करके मंगलविधान करता है।

यदि गर्भाशयकी वातवाहिनियोंमें उग्रता आनेपर भी गर्भिणी वेदनासे थकी न हो, योनिपथ शुष्क और उष्ण हो, तो अफीम सेवन करानेपर या गुदद्वारमें पिचकारी देनेपर तत्काल लाभ हो जाता है। गर्भाशयमें संतानका शिर नीचेके बदले पार्श्वमें हो, तो पूर्ण मात्रामें अफीम द्वारा गर्भाशयको शिथिल करा फिर सम्हालपूर्वक संतानके शिरको ऊर्ध्व कर देना चाहिये, एवं मूत्रमार्गमें अर्बुद आदि होनेसे प्रसव होनेमें प्रतिबन्ध होनेपर अफीमद्वारा गर्भाशयके उत्पन्न वेगका सत्वर शमन कराना चाहिये। जिससे गर्भाशयके विदारण आदि भयंकर आपत्तिका निवारण हो जाता है। आंवल (जरायु) या योनिपथ विदीर्ण हो जानेपर उस विपत्तिसे संरक्षणार्थ केवल अफीम ही अवलम्बन है।

प्रसवके पश्चात् आंवलको निकालनेके लिये उत्पन्न हुई पीड़ा (After pains) पर अफीमका अर्क कपूरके जल या और कोई सुगन्ध प्रधान औषधिके साथ दिये जानेपर तत्काल वेदना निवृत्त हो जाती है।

अफीमका लेप वेदनास्थापक है, ऐसा पहिले माना जाता था; इस हेतु से सन्धियोंकी सूजन, कमरकी पीड़ा, अन्य स्थानोंमें वेदना, नेत्रव्यथा और फुफ्फुसावरणके चारों ओर शोथ, इन सबपर इसका लेप किया जाता था। कुछ समयसे निर्णत हुआ है कि अफीमका बाह्य त्वचापर लेप करनेपर संवेदना-ग्राही वातवाहिनियोंके सिरेपर और परिधि प्रान्तकी वातनाड़ियोंपर विशेष असर नहीं पहुँचता। इस हेतुसे बाह्य प्रयोग बहुत कम हो गया है।

कर्णशूल होनेपर अफीम और सज्जीखारको शराब मिलाकर कानमें डालते हैं। एवं दन्तशूल होनेपर इसका फाया दाँतकी पोलमें रखते हैं।

गुदामें व्रण, मस्से या त्वचा फट जानेपर अफीम और हरड़का लेप करनेसे वेदना कम हो जाती है। किन्तु यह लेप छोटे बच्चोंके अंगपर नहीं करना चाहिये।

कभी-कभी मात्रा अधिक होनेपर अफीमका नशा आ जाता है। तब कॉफीका कड़ा क्वाथकर उसमें शराब या नींबूका रस मिला कर पिलाया जाता है।

अफीम विष—अफीमका जहर चढ़नेपर आत्मघातके उद्देश्यसे अफीम खानेपर मुँहसे अफीमकी बास आना, नेत्रकी पुतली अति संकुचित होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अफीमके विषप्रकोप समान लक्षण शराबसे भी हो जाते हैं। किन्तु शराब पीनेपर मुँहसे शराबकी दुर्गन्ध आती है; और नेत्रपुतली विकसित रहती है। इस तरह मस्तिष्कगत वातवाहिनी टूटकर अर्दित (मुँहका लकवा) या पक्षघात रोगमें भी अफीमके सदृश लक्षण भासते हैं। परन्तु अर्दितमें एक नेत्रकी पुतली छोटी और दूसरी पहिले जैसी या बड़ी प्रतीत होती है। पक्षाघातमें जिस ओर आघात होता है; उस ओरका हाथ चेतनाहीन हो जानेसे उसे उठाकर छोड़नेपर लकड़ी के समान नीचे गिर जाता है। दूसरी ओरका हाथ नहीं गिरता।

अफीमके जहरपर १० रत्ती नीलाथोथा जलमें मिलाकर पिला देवें। जिससे वमन होकर अफीम निकल जायगी। अफीम न निकलनेपर स्टमकपम्प द्वारा आमा-शयको धोकर सब अफीम निकाल लेना चाहिये। फिर तेज काफी बनाकर अधिक मात्रामें पिला देवें। हाथ-पैरोंपर राईका लेप करें। मुँहपर शीतल जलके छींटे (या गीला कपड़ा) मारते रहना चाहिये। किसी तरह रोगीको सोने न देना चाहिये।

अफीमके समान वजनमें पोटास परमेंगनेट (जो कुएँमें जल शुद्ध करनेके लिये डालते हैं वह) जलमें घोलकर पिला देनेसे विष प्रभाव नष्ट हो जाता है। अफीमके परिमाणका बोध न हो तो ४ से ८ ग्रेन पोटास परमेंगनेटको ४-८ औंस जलमें मिला-कर पिला देवें।

किसी स्थानपर कुचलने या शस्त्र लग जानेसे त्वचा छिल गई हो तो अफीमका ... करनेपर वेदना दूर हो जाती है।

(१) पक्व अतिसार और रक्तातिसार पर—जातिफलादि वटीका सेवन दिनमें ३ बार करावें। जैसे-जैसे दस्त कम होते जाँय, वैसे वैसे मात्रा कम करें और देरसे देते रहें अन्यथा कब्ज हो जाता है।

(२) ज्वर, अफारा और उदरपीड़ा-सहित अतिसार—अहिफेनादि मिश्रण दिनमें २ या ३ बार जल या मट्ठेके साथ देवें।

(३) अर्शके मस्सेकी पीड़ा—मस्सेमें वेदना होती हो या रक्तस्राव होता हो, तब अहिफेनादि मलहमका लेप दिनमें २ बार शौच जानेके बाद करें।

(४) अभिष्यन्द (आँखोंका आना)—रसांजनादि लेप जलमें घिसकर दिनमें २ बार अंजन करें और पलकोंपर भी लेप करें।

(५) निद्रानाश—अफीम आध रत्तीको पीपलामूलका चूर्ण १ माशा और २ माशे गुड़ मिलाकर शामको (सोनेसे ३ घण्टे पहिले) दे देनेसे शान्त निद्रा आ जाती है।

(६) नारू—साँपकी काँचली और अफीमको मिला पतली पुल्टिस करके बाँधनेसे नारू मर जाता है।

(७) पेचिश—आकके मूलकी छाल १ रत्ती और अफीम चौथाई रत्ती मिलाकर मट्ठेके साथ दें या अहिफेनादि वटीका सेवन करावें। इस तरह दिनमें ३ बार देनेसे नया पेचिश २-३ दिनमें ही दूर हो जाता है।

(८) फुफ्फुसोंसे रक्तस्राव—छोटी इलायचीके दाने और लाखका चूर्ण २-२ रत्ती और अफीम पाव पाव रत्ती मिलाकर दिनमें २ बार देनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(९) आमाशय प्रदाह, अन्त्र प्रदाह, उदर्य्याकला प्रदाह आदिपर—अहिफेनादि मिश्रण या अहिफेनारिष्ट दिनमें ३ बार देते रहें। उदर्य्याकलाप्रदाह होनेपर उदरपर पारदप्रधान मलहमका लेप भी करते रहना चाहिये।

(१०) फुफ्फुसप्रदाह (न्यूमोनिया) पर—अति रक्तस्राव होता हो, तो बन्द कराने और कष्टको कम करानेके लिये आकके मूलकी छाल २ रत्ती या कटेलीके १ माशे चूर्णके साथ अति आवश्यकता होनेपर दिनमें २ या ३ बार अफीम देते रहें। कफ अधिक गाढ़ा और चिपचिपा हो तो ऐसी अवस्थामें अफीम नहीं दी जाती।

(११) तीव्र आमवात (Acute Rheumatic fever)—अफीम आध रत्ती, आकके मूलकी छाल २ रत्ती और सोडाबाईकार्ब १ माशाके साथ मिलाकर जलके साथ देवें। इस तरह दिनमें २ या ३ बार आवश्यकता अनुसार देवें।

(१२) प्रतिश्यायपर—अफीम चौथाई चौथाई रत्ती या अहिफेनासव २०-२० बूँद दिनमें २ बार देनेसे नया मन्द जुकाम रुक जाता है। कोई कोई कागजपर

आध रत्ती अफीमका लेपकर बीड़ी बनाकर धूम्रपान कराते हैं। यह उपचार प्रतिश्याय का वेग मन्द हो जानेपर ही करना चाहिये।

सूचना—नया तीव्र प्रतिश्याय हो, उस समय आयुर्वेदिक दृष्टिसे अफीम नहीं देनी चाहिये। अन्यथा बाहर निकलनेवाला विष भीतर ही रह कर विविध प्रकारके उपद्रव उत्पन्न करेगा।

(१३) फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pleurisy)—फुफ्फुसावरणमें शूल चलता हो, कुछ जल संगृहीत हो गया हो, तो अफीमको सैंधानमक और आककी छालके साथ मिलाकर दिनमें २ बार देते रहें। फुफ्फुसावरणपर थोड़ा सेक करें और फिर गरम वस्त्र लपेट लेवें।

(१४) क्षय रोगमें खाँसीसे निद्रा न आनेपर—अफीम चौथाई रत्ती शामको मुनक्कामें भरकर निगलवा देनेसे रात्रिको शान्त निद्रा आ जाती है।

(१५) नये वेदनाप्रधान ज्वर और पित्तज्वरमें निद्रा लानेके लिये—अहिफेनारिष्ट, द्राक्षासवमें मिलाकर दिनमें २ बार देते रहें।

(१६) वातशूल—वृक्क, बस्ति, उपान्त्र, पित्ताशय, अन्त्र किसी भी स्थानमें प्रदाह होनेसे शूलजन्य तीव्र वेदना होती हो, तो उसपर अफीम देनेसे वेदना शमन हो जाती और निद्रा आ जाती है।

(१७) कर्णशूलपर—अहिफेनारिष्टको निवाया करके या अफीम और सज्जीखारको बराबरमें मिलाकर कान मे डालें और ठण्डे समयमें या रात्रिके समयमें १०-२० मिनट सेंक कर ऊपर गरम कपड़ा लपेट लेवें। ठण्डी वायु या ठण्डा जल न लगने देवें, तो शूलकी निवृत्ति जल्दी होजाती है।

(१८) दन्तशूल—अहिफेनारिष्टमें फोहा डुबोकर दाँतकी पोलमें रखनेपर वेदना शमन हो जाती है।

(१९) गुदाकी त्वचा फटना—अफीम और हरड़ को घिसकर लेप करें अथवा अहिफेनादि मलहम लगाते रहें।

(२०) कामोत्तेजनाके लिये—यदि कामोत्तेजना कम हो गई हो; शुक्र-पतन जल्दी हो जाता हो, तो वीर्यस्तम्भन वटीका सेवन करावें। किन्तु इस वटीका सेवन लम्बे समय तक न किया जाय तो अच्छा है। अन्यथा शुक्रका अधिक क्षय होनेसे परिणाम हानिकर होता है।

(२१) प्रसवकालमें प्रसववेग शमन हो जानेपर—शारीरिक निर्बलता या गर्भाशयकी निर्बलताके कारण अथवा गर्भ जल निकल जानेपर प्रसववेग उत्पन्न न हो तो अफीम, कस्तूरी और पीपलामूलको नागरबेलके पानमें दिया जाता है; अथवा अहिफेनारिष्टकी पिचकारी गुदामार्गमें लगायी जाती है। कभी कभी गर्भजलकी थैली टूट जानेपर गर्भिणीको १५-२० मिनट तक गरम जलमें बैठाना भी पड़ता है।

(२२) गर्भपातको रोकनेकेलिये—चोट लग जानेसे यदि गर्भपात होजाने का भय हो, तो रुग्णाको शय्यापर आराम करावें और गुदाद्वारा अहिफेनारिष्टकी पेचकारी लगावें।

(२३) मक्कलशूल—प्रसव हो जानेके पश्चात् गर्भाशयमें जो शूल उत्पन्न होता है, उसे आयुर्वेदने मक्कलशूल (After pains) संज्ञा दी है। उसपर अफीम चौथाई रत्ती और कपूर आध रत्ती मिलाकर दिया जाता है। आवश्यकता पर १ घण्टे पर दूसरी बार देवें। उस समय गर्भाशयपर तेल लगाकर सेक करना भी हितकारक है। इस प्रयोगसे तत्काल शूल शमन हो जाता है।

(२४) मधुमेह—पेशाबमें शक्कर जानेपर अफीमका सेवन कराना हितकर माना गया है। अफीम और शिलाजीत मिलाकर दिया जाता है। अफीमकी मात्रा सहन हो उतनी दी जाती है। शिलजीत २-२ रत्ती दिनमें २ बार गोदुग्धके साथ देते रहें। अफीम मधुमेहको दूर नहीं कर सकती; किन्तु यकृत्पर अंकुश लाकर शक्करके उत्पादन कार्य्य (Glycogenic function) का ह्रास कराती है। यह प्रयोग जीवन पर्यन्त किया जाता है।

(२५) अफीमका नशा अधिक होजानेपर या अफीमके विषका प्रभाव मारक दशातक पहुँच जानेपर हींगको पानीमें घोलकर नशा दूर होने तक २-४ बार रोगीको पिलाते रहें।

(९) अमरूद।

सं० अमृतफल, मधुफल, पाखेत, खैतक। हिं० अमरुद, सफरी। बं० पेयारा, मोआचोफल। ओ० प्याड़ा। म० पेरू। गु० जामफल, जमरूख। क० परेलं। ते० जामपण्डु। मला० मलंपेर। फा० अम्रूद। लें० Psidium Guyava.

परिचय—इसका वृक्ष छोटा होता है। इसकी अनेक उपजाति बोयी जाती हैं। पत्तोंकी लम्बाई ३-४ इञ्च, पुष्पदण्ड आधा इञ्च लम्बा, ऊपर १ से ३ फूल, फल लगभग गोलाकार। इसकी एक उपजाति (P. Pomiferum) है, उसमें फल प्रायः अण्डाकार होते हैं। इस जातिके फलोंमें अम्लता कुछ अधिक रहती है। फलोंमें गर्भके २ प्रकार हैं। एकमें सफेद और दूसरेमें लाल गर्भ होता है। सफेद जाति विशेष मधुर है।

गुणधर्म—मधुर, वृष्य, हृद्य, स्निग्ध, रुचिकर, बल्य और वीर्यवर्द्धक है। यह विषमज्वरमें हितावह है। कृमि, वात, तृषा, विदाह, मूर्च्छा, श्रम, भ्रम, और शोषका नाश करता है।

इसके फलोंका साग होता है। मुरब्बा बनता है और ताजा मेवारूपसे भी खाया जाता है।

उपयोग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, अमरूदके पान (पत्ते) ओषधि कार्यमें व्यवहृत होते हैं। वे अच्छे ग्राही हैं। तीव्र अतिसारमें गुदभ्रंश होनेपर इसके पानोंकी पुल्टिस बनाकर बाँध देनेसे शोथ कम हो जाता है और गुदा भीतर बैठ जाती है। अन्तरप्रयोगरूपसे अमरूदके पान और नागकेशरकी उड़दके समान गोलियाँ करके दी जाती हैं। पुराने अतिसारमें इसकी छालका क्वाथ अधिक गुणकारक है।

विषमज्वर पीड़ितोंको अमरूद खिलानेपर लाभ पहुँचता है। कीटाणुका नाश हो जाता है और पारी टल जाती है। चातुर्थिक ज्वरके रोगीको भी लाभ पहुँचनेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

नेत्राभिष्यन्द (आँख आने) पर रात्रिको सोनेके समय इसके पानोंकी पुल्टिस करके बाँधी जाती है। पुल्टिस बाँधनेसे लाली जल्दी दूर होकर शोथ और वेदना दूर हो जाती है।

आधाशीशी—हरे कच्चे अमरूदको सुबह पत्थरपर घिसें। जो कल्क तैयार हो उसे कपालपर जहां दर्द हो वहां लगा देनेसे २-३ घण्टेमें ही जादूके समान आधाशीशी दूर हो जाती है। यह प्रयोग अनेक रोगियोंपर अजमाया गया है और सबको लाभ पहुँचा है। क्वचित् किसीको पूरा लाभ न हो, तो दूसरे दिन सुबह इसी तरह लेप करना चाहिये।

(१०) अम्लोनियां।

सं० चांगेरी, चुक्रिका, दन्तशठा, अम्ललोणिका, अश्मन्तक। हिं० अम्लोनिया, अम्बिलोण, अम्बिलोना, अम्मी, खट्टीबूटी चूक, तिपतिया। पं० खटकल, छोटा चूका। बं० आमरूल, त्रिपत्ती। मं० आंबटी, भूई सर्पटी। गु० चांगेरी, खाटीलुणी। क० कुल्लम, पुलुचे। ते० पुलिचिन्त। मला० पुळियारेल। को० तेल लुप्प। अं० Indian Soral. ले० Oxalis Corniculata.

परिचय—यह भारतके सब उष्ण प्रदेशोंमें होती है। यह छोटी जातिका क्षुप है। पान ३ ३ साथमें, ऊपरमें हृदयाकृति होते हैं। फूल छोटे, पीले। पञ्चाङ्ग और पानका स्वाद खट्टा। इसका विशेष उपयोग सागके लिए होता है।

मात्रा—स्वरस १ से २ ड्राम।

गुणधर्म—अम्लोनिया दीपन, पाचन, रुचिकर, रूक्ष, उष्ण, कफवात नाशक और पित्तवर्द्धक है। अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ और अतिसार रोगमें हितावह है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार चांगेरी शीतल, रुचिकर, दीपन, हृद्य, पित्तशामक, दाहप्रशामक, रक्तसंग्राहक, शोथहर और सारक है। इसके स्वरससे सूक्ष्मधमनियां (केशिकाओं) का संकोच होकर रक्तस्राव बन्द होजाता है। नव्यशोध अनुसार इसके रसमें जीवन सत्व अवस्थित है।

उपयोग—अम्लोनियाका उपयोग भारतमें प्राचीन कालसे हो रहा है। रकसंहिताकारने अम्लस्कन्धमें चांगेरीका उल्लेख किया है। एवं अतिसार और र्शमें भी इसे प्रयुक्तकी है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, चांगेरीका उपयोग रोगियोंके भोजनमें खटापन (और स्वाद) लानेके लिये तथा अपचन (जिसमें आमाशय रस कम उत्पन्न होनेसे मुँह फीका हो उस) रोगमें होता है। रक्तातिसार (रक्त प्रवाहिका और गुदभ्रंशमें इसका अच्छा उपयोग होता है।

इसे पीसकर शोथपर बांधनेसे दुःख और जलन कम होकर सूजन दूर होजाती है। बालकोंके उत्राक, वमन और बेचैनीपर यह उत्तम ओषधि है। पित्त प्रकोपसे होनेवाले शिर दर्दपर इसके रसका लेप किया जाता है और ज्वरमें पानोंका फाण्ट दिया जाता है।

धतूरेका नशा चढ़नेपर इसका स्वरस पिलानेपर नशा उतर जाता है। त्वचाके मस्सेपर यह लगाया जाता है। नेत्रके पुराने सफेद दागपर इसके रसका अंजन किया जाता है।

(११) अलसी।

सं० अलसी, रुद्रपत्नी, वल्कला, नीलपुष्पी, पिच्छला, क्षुमा,। हिं० अलसी तीसी, धीजरी। बं० मसिना। म० जवस। गु० अलसी। क० अतसि। ता० अलिविरल। ओ० पेसु। अं० Common flax; बीजोंको Linseedi. ले० Linum usitatissimum.

परिचय—अलसीके क्षुप श्वेत और बागोंमें कतवार रूपसे नैसर्गिक उत्पन्न होजाते हैं। एवं तैलके लिए भारतके सब प्रान्तोंमें बोयी भी जाती है। क्षुपकी ऊँचाई २ से ४ फीट, मूल सफेद; ४ से १० इञ्च लम्बी, पान १ से ३ इञ्च लम्बे, फूल सुन्दर नीले रंगके, चक्राकार जिनका व्यास आध से १ इञ्च तक होता है। औषधि रूपसे विशेषतः बीज और तैल काम में लाये जाते हैं।

गुणधर्म—रसमें मधुर, पित्तनाशक, पाकमें कटु, बल्य, कफवात वर्द्धक, शुक्र-नाशक, रक्त पित्तप्रकोपक, पिच्छल और कासहर है। डाक्टर देसाईके मतानुसार अलसी के बीज स्नेहन, मार्दवकर, बल्य, वेदनास्थापक, मूत्रल और कासहर हैं। तैल विरेचन और व्रणरोपण है।

अलसी कल्पः—

(१) अतसी फाण्ड—बीजोंका फाण्ड खांसीमें दियाजाताहै। इससे कण्ठ और श्वासनलिका के भीतरका कफ जल्दी छूटता है। इससे मूत्रका परिमाण बढ जाता है, किन्तु इसमें वेदना शामक गुण न्यून है।

अलसीके कूटे हुए बीज १। तोला, मुलहठी आध तोला, आधा नींबू और दो तोले मिश्रीको उबलते हुए १० औंस जलमें डालकर ४ घण्टे ढक देवें। फिर छानकर उपयोगमें लेवें। मात्रा २ से ४ औंस। नींबू और मिश्री मिलाने से स्वाद रुचिकर बन जाता है। इसे अलसीकी चाय भी कहते हैं। यह मूत्रल और कफघ्न है।

(२) अलसीकी पुल्टिस—अलसीके आटेको १५-२० मिनट तक तवेपर सेकें; किन्तु उसे शुष्क न होने देवें। पुल्टिस जितनी बड़ी बनानी हो उसकी अपेक्षा १ इञ्च चारों ओर अधिक फ्लेनलका टुकड़ा या दूसरा कपड़ा लेवें और चारों ओर किनारेपर १-१ इञ्च चौकोर कपड़ा काट डालें, ताकि तह अच्छी बन सके। एक दूसरे बरतनमें जल गरम करें। गलेपर पुल्टिस बाँधनी हो तो उबलता हुआ जल २५ तोले और छातीपर लगाना हो तो ७५ तोले (लगभग एक सेर) जल चाहिये।

कपड़ेको पाटेपर फैलावें। एक कटोरेमें उबलता हुआ जल निकालें और उसमें गरम किया हुआ अलसीका आटा तुरन्त मिलाकर गरम की हुई छुरी (लेपनी) से चलाते रहें। अच्छी तरह मिल जानेपर वह बरतनको नहीं चिपकता। ऐसा हो जानेपर कपड़ेपर चौथाईसे आध इञ्च मोटा मिश्रण लेपनीसे फैलावें। बीच बीचमें लेपनीको गरम जलमें भिगोते जायँ ताकि पुल्टिस लेपनीको न चिपके। फिर लेपनीको तैलमें डुबोकर पुल्टिसपर फिरा लेवें। जिससे सब भागपर तैल लग जाय। एक इञ्च किनारा मोड़ें। सामान्यतः गोल बीड़ा करें और गरम तश्तरी या थालीमें रख ऊपर दूसरी तश्तरी ढककर पुल्टिसको रोगीके पास ले जांय। चमड़ीपर तैलका हाथ लगावें और दुःखते भागपर पुल्टिस लगा देवें। लगानेमें जल्दी न करें। रोगीको उष्णता सहन हो हो सके, तब पुल्टिसको ठीक लगावें। फिर पुल्टिस के ऊपर रूई या वस्त्रकी मोटी तह रखकर बाँध देवें। पुल्टिस निकालनेके समय तैल लगाकर अलसीकी तहोंको पोंछ लवें। फिरसे पुल्टिस लगानी हो तो २-२ घण्टेपर लगाते रहें।

यह पुल्टिस श्वासनलिकाप्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह, या अन्य भागके पीड़ित स्थान-पर लगानेमें उपयोगी है। गांठ या फोड़ेपर पुल्टिस बाँधनी हो तो उसके अनुरूप गोल छोटी पुल्टिस बना लेवें। इस पुल्टिससे शोथ और खिंचाव कम हो जाता है तथा वेदना भी शमन हो जाती है। यदि शोथका प्रारम्भ होनेपर पुल्टिस बाँधी जाय, तो सूजन नहीं बढ़ सकती। देरसे लगानेपर सूजन जल्दी पक जाती है। अलसीकी पुल्टिस सब पुल्टिसोंमें श्रेष्ठ मानी गई है।

उपयोग—अलसीका उपयोग अति प्राचीन कालसे भारतमें हो रहा है। इस वृक्षके रेशेसे वस्त्र बनते हैं। इस हेतुसे उपनयन प्रकरणमें क्षत्रियोंको क्षौम वस्त्र धारण करनेका विधान किया है। चरक संहितामें रक्षोघ्न ओषधियोंमें अलसीका उल्लेख है। सुश्रुत संहितामें भी प्रसूताके कमरेमें अन्य औषधियोंके साथ अलसी रखनेकी सूचना दी है। एवं कितनेही रोगोंपर अलसीका उपयोग किया है।

डाक्टर खोरीने लिखा है कि, अलसी स्निग्ध, कफनिःसारक और मूत्रजनन है। बड़ी मात्रामें रेचन और छोटी मात्रामें वृक्कोंको उत्तेजना देती है। श्वसनयन्त्र, पचनसंस्था और मूत्र यन्त्रकी श्लैष्मिक कलाओंके प्रदाहमें अलसीका फाण्ट अति हितकारक है। स्नेहन और मूत्रल गुण होनेसे यह मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शर्करा (पेशाबमें छोटे छोटे पथरीके कण जाना) और शूल रोगमें हितावह है।

अलसीके तैलका धुआं मस्तिष्कमें संगृहीत कफ (या प्रतिश्यायजन्य पतले रस) और हिस्टीरियापर लाभदायक है। अलसीमें तैलकी मात्रा अधिक होनेसे उसके क्वाथ का उपयोग वस्तिकार्यमें होता है। अलसीकी पुल्टिससे सेक करनेपर फोड़े, विद्रधि, गांठ, संधिवात, आमवात, शोथ, शूल, निमोनियामें होनेवाला फुफ्फुसप्रदाह आदिपर लाभ पहुँचता है।

अलसीका तैल अर्शरोगीको उदरशुद्धिके लिये दिया जाता है। एवं अलसीके तैलके साथ चूनेका जल मिला मलहम बनाकर जले हुए भागपर लगानेसे आराम हो जाता है।

व्रण पकानेके लिए इसकी पुल्टिसको २-२ घण्टेपर बदलते रहनेसे फोड़ा बहुत जल्दी पक जाता है।

सुजाक या अन्य हेतुसे मूत्रदाह होनेपर अलसीका फाण्ट पिलानेसे दाह शान्त हो जाती है।

वक्तव्य—(१) अलसीका तैल २ विधिसे निकाला जाता है। उष्णता पहुँचायेबिना दबाकर कोल्हूमें निकालते हैं, तेल चिकना, पीला और किञ्चित् वास और तेलिया स्वादयुक्त होता है।

(२) बीजोंको सेककर निकाला हुआ तैल, अति उग्रवास वाला होता है।

पहिले प्रकारका तैल २ से ४ ड्राम देनेपर शौच शुद्धि होती है; और मलकी गाँठे निकल जाती हैं। वह अन्त्रकी कमजोरीसे होनेवाले कब्जपर और अन्त्र रोगमें हितावह है। दूसरे प्रकारका तैल चूनेसे नितरे हुए जलके साथ समभाग मिला मलहम बना जले हुए भागपर लगाया जाता है।

(१२) अमलतास।

सं० आरग्वध, दीर्घफल, चतुरङ्गुल, रेचन, हेमपुष्प, राजतरु, ज्वरान्तक। हिं० अमलतास, किरमाला, धनबहेड़ा, बानरकाकड़ी। नेपा० राजवृक्ष। बं० सोंदाल, सोनालु, सुंदा, रारवालनड़ी। ओ० सुनारि। म० बाहवा, गरमाल, चिमकनी। गु० गरमालो। मा० किरमालो। क० कक्के, हेगाके। ते० रेलचेट्टु। मला० कोन्ने। कों० कक्कायि। अं० Purging Cassia, Puddingpipe tree. ले० Cassia Fistula.

परिचय—मध्यम कदके वृक्ष। उत्पत्ति स्थान—भारतके अनेक प्रान्त। ऊँचाई २० से ३० फीट। पान (पत्र) संयुक्त १ से १॥ फीट लम्बे, शीतकालमें पतनशील। पान और फूल बसन्तऋतु उतरनेके समय नये आते हैं। पीले फूलोंकी बहुत लम्बी मञ्जरी होती है। फली १ से २ फीट लम्बी गोल, नली जैसी, पहिले हरी, पककर सूखनेपर लाल-काली। फली शीतकालमें पकती है।

मात्रा— फलीका गूदा ६ माशेसे २ तोले तक।

गुणधर्म—आरग्वध रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्रंशन, मृदु, रुचिकर और गुरु है। ज्वर, उदरकृमि, उदरशूल, कफोदर, पित्तप्रकोप, हृद्रोग, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, त्रिदोष, कण्डू; कुष्ठ, और मलावरोधका नाशक है। ज्वरकालमें मलावरोध होनेपर अमलतास अमृतसमान उपकारक है।

नव्यमतानुसार फलीका गूदा सारक, दाहशामक और वेदनाशामक है। अमलतासके विरेचनसे आमाशयके पित्तका निःसरण होता है। एवं मल, आम और कफ भी निकल जाता है। ज्वरावस्थामें मांसधातुको उष्णता पहुँचती रहती है, जिससे उसमें बहुत मल उत्पन्न होता है, वह मल आरग्वधके सेवनसे निकलकर मांसकी उष्णताका ह्रास होता है।

आरग्वध कच्चे और पक्के मल, जो अन्त्रमें संगृहीत हों, उसे उसी स्थितिमें ही निकाल देता है। हरड़ जिस तरह आम पचन करानेके साथ मलको निकालता है, उस तरह पचनकार्य आरग्वध नहीं करता। दूषित आमका पचन नहीं कराना चाहिये, उसे तुरन्त बाहर निकालना चाहिये। इस हेतुसे चाहे जितना ज्वर शरीरमें भरा हो, उस समय अन्त्रके संशोधन अर्थात् आम और मलको निकालने और अन्त्रके प्रदाहके शमनार्थ निर्भयरूपसे आरग्वधका उपयोग हो सकता है। जिस तरह डाक्टरीमें लिक्विड पेरेफिन और एरण्ड तैलसे स्रंशन करा (मलको धीरे धीरे सरका) कर बाहर निकालना, यह कार्य होता है, उसी तरह अमलतासकी फलीके गुदासे स्रंशन गुणकी प्राप्ति होती है; किन्तु लिक्विड पेरेफीनका जितना अंश पच जाता है, वह देहके लिये उपकारक नहीं होता, उसमें यह दोष है। एवं एरण्ड तैल विरेचन करानेके पश्चात् अन्त्रका आकुञ्चन कराता है, जिससे दूसरे दिन मलावरोध हो जाता है, ये दोनों दोष अमलतासमें नहीं है। इसलिये ज्वरावस्थामे उदरशोधनार्थ अमलतास इन दोनोंसे श्रेष्ठ माना गया है। अमलतासके विरेचनसे अति विरेचन नहीं होते; एवं कभी निर्बलता भी नहीं आती; अर्थात् यह सौम्य स्रंशन औषधि है। यह अन्त्रमें स्रंशन गुणकी प्राप्ति कराता है, इस हेतुसे उदरशूल उदरवात और उदावर्तकी भी निवृत्ति होती है। सौम्य स्रंशन गुणके हेतुसे अमलतासकी योजना आवश्यकता पर क्षयमें भी उदरशुद्धिके लिये की जाती है।

अमलतासते उदरगत मल और कृमि निकल जाते हैं। फिर मलविष या कीटाणु-विषका प्रवेश रक्तमें नहीं होता। एवं रक्तके प्रसादनका कार्य भी कुछ अंशमें यह करता है। इन दोनों हेतुओंसे इस विषसे उत्पन्न सब चर्मरोगों (कुष्ठ) का नाश हो जाता है।

अमलतास रक्तकी तीक्ष्णता और उष्णताको कम करता है। इस हेतुसे ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त (मुँह और नाक आदिसे होनेवाले रक्तस्राव) की अधःप्रवृत्ति कराकर विकार दूर करनेके लिये अमलतास दिया जाता है।

आमवात, उदरमें मलसंग्रह, उदरमें वातसंग्रह, हृदयशूल और विविध वातरोगोंमें हृदयपर आघात पहुँचनेसे हृदय शिथिल बनता है। ऐसी स्थितिमें अमलतासका सेवन करानेपर उदरका शोधन हो जाता है। फिर हृदय कष्टसे बच जाता है।

वक्तव्य (१) अमलतासकी फलीके गूदेमें कुछ हीक आती है, इस हेतुसे सेवनकालमें फलीके गुदेके साथ थोड़ा गुलकंद मिला जलके साथ उबाल छानकर पिलाना विशेष लाभदायक है।

(२) केवल फलीका गुदा देनेपर उदरमें कुछ पीड़ा होती है। इस हेतुसे कितनेही चिकित्सक गुड़ मिला लेते हैं।

(३) यदि अमलतासका सेवन अधिक वार होवे, तो मूत्रका रंग गहरा हो जाता है।

उपयोग—अमलतासका उपयोग चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिताकालसे वैद्य और ग्रामवासी अत्यधिक परिमाणमें कर रहे हैं। यह अति निर्भय और उत्तम उदर-शोधन करनेवाली औषधि है। चरकसंहिताकारने कण्डूघ्न और कुष्ठघ्न दशेमानियोंमें, वमनोपग और आस्थापन बस्तिकी औषधियोंमें तथा तिक्त स्कंधमें आरग्वधका उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त कल्पस्थानमें अमलतासके १२ योग दिये हैं। सुश्रुत संहितामें आरग्वधादिगण, श्यामादिगण, श्लेष्मसंशमन वर्ग, विरेचन द्रव्य विकल्प, अधोभागहर औषधसमूह तथा भगंदर, व्रणशोधन, विद्रधि, वातरोग और श्लीपद आदिमें आरग्वधकी योजना की है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, रक्तकी उष्णता बढ़नेपर या शरीरमें मल संचय होकर वातरक्त, आमवात आदि रोग होनेपर अमलतास विरेचन रूपसे दिया जाता है। यह सौम्य औषधि होनेसे स्त्रियों और बालकोंको भी निर्भय रूपसे दी जाती है। पित्तकी प्रधानता होनेपर निशोथके साथ और यकृत्‌की क्रिया सम्यक् न होनेपर मकोयके साथ देते हैं। यह ज्वरमें मलावरोध होने और अन्त्रप्रदाह होनेपर भी हितावह है।

व्रणशोथ, वातरक्त और आमवातमें शोथ होनेपर उसपर अमलतासके गूदेका लेप किया जाता है।

कण्ठमें गाँठ सूज जानेपर जल पीनेमें भी कष्ट होता हो, तो अमलतासकी छाल

१ तोलेको थोड़े जलमें उबाल, उसमेंसे थोड़ा थोड़ा मुँहमें डालते जाना चाहिये। इससे गांठोंका शोथ दूर हो जाता है।

वातवाहिनियोंके आघातसे उत्पन्न अर्दित आदि वात रोगोंमें अमलतासके पानों का रस पिलाया जाता है और पक्षाघात पीड़ित स्थानपर मर्दन भी कराया जाता है।

(देसाई)

(१) अन्त्रकी निर्बलतासे रहनेवाला मलावरोध—(अ) अमलतासके फूलोंका गुलकन्द २ से १० तोलेतक रात्रिको दूधके साथ देनेसे सुबह उदरशुद्धि होती है।

वक्तव्य—यह मलको बाहर फेंकनेका कार्य करता है, किन्तु अन्त्रको-बल नहीं देता। अतः अन्त्रको बलवान बनानेके लिये कम मात्रामें भोजनके बाद कुचिलेका सेवन भी कराते रहना चाहिये। एवं अति आवश्यकता हो, तब ही आरग्वध या अन्य सारक औषधि देनी चाहिये।

(आ) अमलतासकी फलीका गूदा १ तोला और हरड़ ६ माशेको २४ तोले जलमें उबालकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान, ६ माशे गुड़ मिलाकर पिला देनेसे ३-४ घण्टेमें १ दस्त साफ आ जाता है और अन्त्रका आकुंचन होनेमें भी सहायता मिल जाती है। यह प्रयोग अर्शमें मलावरोध रहनेपर भी उपकारक है।

(२) ज्वर—बुखारमें मलावरोध होनेपर द्राक्षाका रस या दूध अथवा गुलकन्दके साथ अमलतासकी फलीका गूदा देवें। (चरक चिकित्सा ३–२२७) यह नये बुखारमें निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। मल शुष्क, गांठदार हो तो गुलकंद मिलाना चाहिये। यकृत्का पित्त तेज हो और गुदामें जलन होती हो, तो द्राक्षाका रस मिला दिया जाता है। नाजुक देहमें आमाशय पित्त तीव्र बननेपर उसे निकालना हो तो दूध मिलाया जाता है।

(३) कुष्ठ—अमलतासके पञ्चाङ्गके कषायका स्नान, हाथ पैर धोने, जलपान करने, आदि कार्यमें उपयोग करनेसे अन्तर्बाह्य, दोनों मार्गसे लाभ पहुँचता रहता है। जिससे नये और पुराने, सब प्रकारके कुष्ठोंमें लाभ पहुँचता है। इसके कषायसे सिद्ध किया हुआ घृत खिलानेपर अधिक सहायता मिलती है।

(४) व्रणशोधन—अमलतासके पानोंके क्वाथसे व्रणको धोते रहनेसे वह शुद्ध होकर जल्दी भर जाता है।

(५) अर्श—बवासीरके रोगीको प्रायः कब्ज रहता है। अधिक कब्ज रहनेपर कष्ट बढ़ता है और रक्त गिरनेका भय रहता है। इस हेतुसे कब्ज और वेदना होनेपर अमलतासकी फलीका गूदा १ तोला, हरड़ ६ माशे और बीज निकाली हुई मुनक्का १ तोला मिलाकर ४० तोले जलमें उबालें। ५ तोले जल शेष रहनेपर छानकर पिला देवें। इस तरह सुबह शाम ३-४ दिनतक पिलानेपर कब्ज दूर होती है; मस्सोंकी वेदना शान्त होती और मस्से मुलायम और छोटे बन जाते हैं।

(६) नासा रक्तस्राव (नकसीर)—मस्तिष्कमें उष्णता और रक्तवृद्धि होनेपर नाकमेंसे रक्तस्राव होता है। ऐसी अवस्थामे शिरपर जल छिड़कनेपर रक्तस्राव बन्द हो जाता है; किन्तु मस्तिष्कमें उष्णता रह जाती है। यदि उसे तुरन्त दूर नहीं की जाय, तो अन्य प्रकारसे हानि पहुँचती है। अतः उष्णता शमनार्थ अमलतासकी फलीका गूदा और गुलकन्द २-२ तोले मिला, क्वाथकर पिला देनेसे मस्तिष्कमें तुरन्त शान्ति होती है तथा मूत्रमें दाह होता हो, तो वह भी दूर हो जाता है।

(७) उदरकृमि—अधिक गुड़ शक्कर खानेवालोंको मलावरोध बहुत दिनोंतक रह जाता और फिर उदरमें कृमि उत्पन्न होते हैं। उनाक अग्निमांद्य, पाण्डुता, शारीरिक निर्बलता, खुजली, आलस्य, तन्द्रा, किसीको मन्द मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको २॥ तोले अमलतासकी फलीके गुदा और ६ माशे वायविडङ्गका क्वाथकर, २ तोले एरण्ड तैल मिलाकर सुबह पिला देनेसे ३-४ घण्टेमें मल और सूक्ष्म कृमि निकल जाते हैं। विरेचन हो जानेपर खिचड़ी खिलावें। आवश्यकता हो तो यह प्रयोग ३-४ दिनतक करें।

(१३) अर्जुन।

सं० अर्जुन, ककुभ, नदीसर्ज। हिं० अर्जुन, कहू, कोह, अञ्जना। बं० अर्जुन गाछ। म० सादड़ा, एन। गु० अरजुन साजड़, धोलो साजड़। क० मद्दि चेका। ता० मरुदम पट्टै। ते० मद्दिपट्टा। मला० नेमदिलम्। को० मत्रीरुकु। अं० Arjuna Myrobalan, ले० Terminalia Arjuna.

परिचय—अर्जुनकी कितनी ही जाति और उपजाति अनेक पहाड़ोंपर होती हैं। टर्मिनेलिया अर्जुनकी ऊँचाई ६० से ७० फीट। टर्मिनेलिया टोमेण्टोसाकी ऊँचाई ८० से १०० फीट। इस जातिकी काठियावाड़के पहाड़ोंपर ऊँचाई १५ से २५ फीट। तनेकी छाल, सफेद, मोटी, हल्की और नरम, सूखी छालका रंग बाहरसे भूरा, भीतरसे लाल। वर्षमें एक बार बाहरकी छाल सर्पकी त्वचाके समान निकल जाती है। पान ४ से ६ इञ्च लम्बे, आमने सामने, किन्तु एक पान किञ्चित् ऊँचा। इस पानकी बीचकी नसकी बाजूमें मधुमय लसीका ग्रन्थि (Nectareal Gland) हरे रंगकी रहती है। पुष्प हल्के-पीले या सफेद, अति छोटे; दुर्गन्धयुक्त, कलगीके ऊपर नरपुष्प और नीचे द्विलिंगी पुष्प। फल कच्चे होनेपर हरे-पीले, पककर सूखनेपर भूरेलाल रंगके, ५ खड़ी धारयुक्त, १ से २ इञ्चके लगभग अण्डाकार।

रासायनिक संगठन—कलकत्ता मेडिकल कालेजके अनुसंधान अनुरूप १२ प्रतिशत टेनिन और सुधा लवण (चूनेका नमक) २२.४ प्रतिशत मिले हैं।

मात्रा—छालका चूर्ण ६ माशेसे १ तोला तक, गुड़के साथ, ऊपर दूध पिलावें। गुड़में खट्टापन या लवण न हो, यह देख लेना चाहिये; अन्यथा शक्कर मिलावें।

गुणधर्म—अर्जुन शीतल, हृदयपौष्टिक, और कसैला (आकुञ्चन करनेवाला) है; व्रण, पित्तप्रकोप, श्रम, तृषा, वातप्रकोप, क्षत, क्षय, विषप्रकोप, मेद, प्रमेह और व्रण रोगपर हितकारक है।

नव्य चिकित्साके अनुरूप डाक्टर देसाईने लिखा है कि, अर्जुनकी क्रिया चूना और कषायाम्लके समान होती है। इससे शनैः शनैः रक्तवाहिनियाँ और सूक्ष्म कैशिकाओंका आकुञ्चन होता है। फिर रक्तदबाव बढ़ जाता है। हृदयकी पोषणक्रिया योग्य होती है। हृदयका आराम-काल लम्बा होता है। इस हेतुसे हृदयको बल मिलता है। हृदयस्पन्दन योग्य और सबल होते हैं। बढ़ी हुई स्पन्दन संख्या कम होजाती है। रक्तवाहिनियोंमेंसे रक्तवारि जो शरीरमें टपकता है, वह कम हो जाता है; और हृदयको उत्तेजना मिलती है। रक्ताभिसरण चक्रमें हृदयका जितना महत्व है, उतना हीं रक्तवाहिनियोंका है। रक्तवाहिनियोंका आकुञ्चन हुआ हो या, उनमें शिथिलता आ गई हो, तो हृदया अपना कार्य योग्य नहीं कर सकता। अर्जुन रक्तको भी सुधारता है। रक्तपित्त और जीर्णज्वरमें रक्त विकृत होजाता है और रक्ताणुओंका रक्तवाहिनियोंमेंसे भीतर बाहर जाना बन्द नहीं होता। उसे सुधारनेके लिये अर्जुन दिया जाता है। अर्जुनके सेवनसे रक्तस्राव बन्द होता है। इसकी यह क्रिया बलवती होती है।

इसमें चूना अधिक होनेसे टूटी हुई अस्थि जुड़ जाती है। व्रणशोथमें रक्तवाहिनियाँ विकसित होकर उनमेंसे रक्तवारि बाहर झरता है। इन दोनों स्थितियोंमें अर्जुनके लेपसे लाभ हो जाता है।

संक्षेपमें अर्जुन हृदयोत्तेजक, हृदयबल्य, रक्तस्रावरोधक, शोणित स्थापन (रक्त पौष्टिक), शोथहर, सन्धानकारक और व्रण लेखन है।

उपयोग—सामान्य जनता अर्जुनको जंगली वृक्ष मानती है, किन्तु आयुर्वेदकी दृष्टिसे यह उत्तम हृदयपौष्टिक और भग्नसंधानकारक है। नव्य चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे भी यह श्रेष्ठ ओषधि मानी जाती है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि, हृदयमें शिथिलता आनेपर अर्जुन गुड़के साथ दूधमें उबालकर दिया जाता है। हृदयमें शिथिलता आनेपर शोथ उत्पन्न होता है। अर्जुन देनेसे शोथ बनना कम होता है। कारण; रक्तवाहिनियोंमेंसे रक्तस्थ रक्तजलका टपकना बन्द हो जाता है। पहिलेके उत्पन्न शोथ (त्वचाके नीचे संगृहीत जल) को मूत्रविरेचन और मूत्रविरजनीय औषध देकर कमी कराना चाहिये।

अर्जुनमें हृदयबल्य और उत्तेजक गुण मिश्रित होनेसे हृदय रोगपर यह अति मूल्यवान औषध है। हृदयपेशी अशक्त, बलहीनऔर नरम होना, धमनियोंमें रक्तदबाव की न्यूनता होना और हृदयका प्रसारण होना (Dilated), इन लक्षणोंसे युक्त हृद्रोगमें अर्जुनका प्रशंशनीय परिणाम होता है। ये लक्षण दक्षिण भागमें रहे हुये त्रिपत्र कपाट (Tricuspid ralve) की विकृति होनेपर उत्पन्न होते हैं। इसमें हृदय-

स्पन्दन सुननेमें स्पष्ट नहीं आते। इसके अतिरिक्त वातश्लैष्मिक ज्वर (Influenza) में हृदय अशक्त हो जाता है, उसपर भी अर्जुनका अच्छा उपयोग होता है। देह क्षयकारक जीर्णज्वरमें हृदय अशक्त होजाता है; और नाड़ी बहुत तेज होजाती है, उसपर भी अर्जुनका उत्तम उपयोग होता है। इसके सेवनसे रक्तमें चूनेका अंश बढ़ता है; रक्त लाल होता और समस्त शरीरमें उत्साह आता है।

हृदयपर अर्जुनका परिणाम डिजिटेलिसके समान नहीं होता। यह डिजिटेलिस-के समान संग्रहीत होकर नहीं रहता। इससे मूत्र परिमाण बढ़ जाता है, और उसमें कुछ क्षार भी बढ़ जाता है।

चोट, मूढ़मार, ठोकर लग जाना, व्रणशोथ, अस्थिभंग, रक्तस्राव आदि रोगोंमें रक्तसञ्चय कम होनेपर और रक्तस्राव बन्द करनेके लिये अर्जुनका उदर सेवन और स्थानिक लेप कराया जाता है, अर्जुनसे रक्तको जमा देनेका (स्थिर कर देनेका) गुण बढ़ जाता है, यह इसकी अति महत्त्वकी क्रिया है। इस क्रियाके हेतुसे और रक्तवाहि-नियोंकी आकुञ्चन क्रियाके हेतुसे रक्तस्राव बन्द होजाता है और शोथयुक्त भागमेंसे रक्त योग्यरूपसे बहने लगता है। जिससे व्रणशुद्धि और व्रण रोपण होता है। यह सर्व रक्तस्रावी रोगोंपर दिया जाता है। नेत्राभिष्यंदमें नेत्रपर इसका लेप हितावह है।

(देसाई)

(१) हृदय क्षीणता—शारीरिक निर्बलता आने, अधिक रक्तस्राव हो जाने या दीर्घकाल तक बीमार रहने अथवा जीर्णज्वरसे पीड़ित रहने पर हृदय निर्बल होजाता है और रक्तवाहिनियाँ शिथिल होजाती हैं। हृदयकी धड़कन और नाड़ीका बल न्यून होजाना, अग्निमान्द्य, स्फूर्तिका ह्रास, मलावरोध और उदासीन मुखमण्डल आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। ऐसी अवस्थामें अर्जुनका सेवन अमृतरूप उपकारक होता है।

(२) अस्थिभंग—हड्डी मुड़ जाने या टूट जानेपर अर्जुनके कल्कको लगा ऊपर अर्जुनछाल रखकर पट्टी बाँधनेपर हड्डी जुड़ जाती है। साथ साथ ४-४ माशे अर्जुन चूर्ण घी शक्करके साथ प्रातः सायं देते रहना चाहिये।

(३) व्रण—फूटे हुए व्रणोंको अर्जुनके क्वाथसे धोते रहनेपर कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जिससे सामान्य व्रण नाशक मलहम भी जल्दी लाभ पहुँचा सकता है।

(४) जीर्ण ज्वर—जीर्ण मन्द मन्द ज्वर रहनेपर अर्जुनकी छालका दुग्धा-वशेष क्वाथ थोड़ी शक्कर मिलाकर प्रातः सायं देते रहनेपर शारीरिक निर्बलता और पाण्डुता दूर होती है, जिससे जीर्ण ज्वरको निकालनेमें सुविधा मिल जाती है।

(५) रक्तातिसार—अर्जुन छालके चूर्णको बकरीके दूध और जलमें उबाल दुग्धावशेष क्वाथकर सुबह शाम पिलाने अथवा मक्खनके साथ अर्जुन चूर्ण देते रहने पर रक्त गिरना जल्दी बन्द हो जाता है। अतिसार तीव्र हो तो, कड़ुवे इन्द्रजौका चूर्ण भी ३-३ माशे साथमें देते रहना चाहिये।

(१४) अशोक।

सं० अशोक, कर्णपूरक, विशोक, मधुपुष्प, रक्तपल्लव, पट्पदमंजरी, हेमपुष्प। हि० अशोक, अशोगी, वीरो। कोल—हुसनगिद्‌वा, उमनगिद्‌वा) वं० अशोक, अस्पाल। म० गु० क० अशोका। ता० अशोक पट्टै। तै० अशोक पट्ट। क० अशोक चेक्क। मला० अशोकपट्टे। ले० Saraka Indica.

परिचय—मोटा, सीधा, सुन्दर, छायादार, सर्वदाहरावृक्ष। उत्पत्ति स्थान—कुमाऊं, मध्य और पूर्व हिमालय, बंगाल, दक्षिण भारत, मध्यप्रान्त। पान-वृन्तरहित या लगभग वृन्तरहित। पर्ण ४ से ६ जोड़ी, ३ से ९ इञ्च लम्बे, सामान्यतः लम्बगोल या लम्ब गोल और नोकदार। पर्ण पहिले श्वेताभ, फिर रक्ताभ (या नीलाभ) अन्तमें गहरे हरे। लटकते हुए गुच्छे थोड़ी थोड़ी दूरपर। तूरें सघन ३ से ४ इञ्च चौड़े। पुष्पवृन्तलाल। पुष्प पहिले तेजस्वी, संतरेके रङ्गका (Grange-scarlet), फिर लाल। पुंकेसर ३ से ८, लम्बे तन्तुयुक्त। फली ४ से १० इञ्च लम्बी, १॥ से २ इञ्च चौड़ी, चिपटी ; बीज ४ से ८। बम्बईमें पुष्प डिसेम्बरसे मई तक आते हैं।

मात्रा—छाल १ से २ तोलेका दुग्धावशेष क्वाथ, दिनमें २ या ३ बार दिया जाता है।

गुणधर्म—शीतल, रसमें कड़वा, मधुरविपाकी, सुगन्धित, अस्थिसंधानक, ग्राही, हृद्य तथा पित्त, दाह और श्रमका नाशक है। अपची, सब प्रकारके व्रण, गुल्म, अर्श, उदरकृमि, शूल उदररोग, आध्मान, ज्वर और रक्तरोग नष्ट करता है। शरीरकी कान्तिको बढ़ाता है।

नव्य मतानुसार अशोकछाल ग्राही, रक्तस्राव-रोधक और वेदनास्थापन है। स्त्रियोंके गर्भाशयके रोग-अत्यार्तव और रक्तप्रदरपर विशेष व्यवहृत होती है।

उपयोग—अशोककी कीर्ति भगवान् रामचन्द्रजीके समयसे है। सीताजीने लंकामें १ वर्ष अशोक वृक्षके नीचे व्यतीत किया था। यह स्त्रियोंके रोगमें अति हितकारक है। चरक संहितामें कषायस्कंध और वेदनास्थापन औषधसंग्रहमें अशोकका उल्लेख किया है। चक्रदत्तने रक्तप्रदरपर प्रयोग किया है। सुश्रुतमें अशोककी गिनती रोध्रादिगणमें की है। एवं अनेक रोगोंके प्रयोगोंमें अशोककी योजना की है।

डाक्टरीमें अशोकका सत्व (Extract) निकालकर प्रयोगमें लाते हैं। उसका गुणग्राही और गर्भाशयशामक होता है। वह बीजाशयपर कुछ उत्तेजना दर्शाता है। अस्वाभाविक रजःस्राव, अति रजःस्राव, रक्तप्रदर, प्रसवके पश्चात् रक्तस्राव, इन सबका अवरोध करानेके लिये व्यवहृत होता है।

यदि सामान्य मात्रामें इसका सेवन कराया जाय तो हृदय, रक्तदबाव और श्वासोच्छ्वासपर कुछ भी असर नहीं होता; किन्तु मात्रा अधिक होनेपर कुछ अवसाद-

कता लाता है। अन्त्रकी पेशियोंपर भी इसका शामक प्रभाव होता है। संभवतः यह प्रभाव स्वतन्त्र नाडी मन्डल (सहानुभूति दर्शक वातनाड़ियाँ—Sympathetic nervous system) द्वारा पहुँचता है। जो अन्त्रकी वातनाड़ियों और गर्भाशयकी व्यापक संचालक नाड़ियोंसे कुछ अंशमें सम्बन्ध वाला है।

रक्तप्रदर—अशोककी छालका दुग्धावशेषक्वाथ दिनमें २ या ३ बार देते रहनेसे गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न रक्तप्रदर, अति रजःस्राव और उसमें होनेवाली वेदना सब दूर होती हैं। यदि अशोक छालके साथ कांटेवाली चौलाईकी जड़ दारुहल्दी ३-३ माशे और दालचीनी १ माशा मिला देवें, तो लाभ अधिक पहुँचता है।

(१५) आक

सं० अर्क, मंदार, क्षीरदल, विक्षीरा, खर्जुघ्न, अलर्क, शिवपुष्पक, शुकफल। हिं० आक, आकड़ा, मंदार। कोल०—पलानी, पालती। संता० अकोना। बं० आकंद। म० रुई। गु० आकडो। ता० एरुक्कु। ते० गिल्लेडु। क० एक्का। मला० एरुक्का। ले० (1) Calotropis procera (छोटे फूलवाला आक) (2) Calotropis Gigantea (बड़े फूलवाला आक)

परिचय—पहिली जातिकी ऊंचाई ६ से १५ फीट (बिहारमें ऊंचाई ४ से ८ फीट तक।)

उत्पत्ति स्थान—पश्चिम और मध्यभारत, सिन्ध, पंजाब, राजपूताना, गुजरात, महाराष्ट्र, सी० पी०, बिहार, बंगाल आदि प्रदेश। यह हिमालयके ऊर्ध्वप्रदेशमें—(३५०० फीटसे ऊपर) नहीं होता। पान मोटे, लगभग वृन्तरहित, सामान्यतः ३ से ९ इञ्च लम्बे, ४-५ इञ्चतक चौड़े, अण्डाकार, नोकवाले। पुष्पके छत्राकार तुर्रे पानके पासमेंसे निकलते हैं। फूल बैंजनी छायावाले सफेद। पुष्प बाह्यकोप ५। पुष्पाभ्यन्तर कोप ५। पुंकेसर ५ गहरे बैंजनी रंगके पुंकेसरके तन्तु परस्पर मिलकर स्त्री केसरके चारों ओर एक नलीके स्तम्भके सदृश बन जाते हैं। उसके बाहर बैंजनी रंगके सिरे परागकोपपर लगे रहते हैं। परागकोपमें दो खण्ड होते हैं। प्रत्येक कोपमें पराग परमाणु चिपके रहते हैं। ये सब आईग्लाससे प्रत्यक्ष दीखते हैं। स्त्रीकेसर १। हलके रंगका। गर्भाशयके दो खण्ड, पीले-हरे, दोनोंपर नलिका हलके बैंजनी रंगकी।

दूसरी जाति—छोटे वृक्ष या खड़ी झाड़ी। ऊंचाई १८ से २० फीट। हिमालयमें ३७०० फीट ऊंचाई तक, पंजाबसे आसामतक। राजपूताना और गुजरातमें क्वचित् ही। पान ४ से ७ इञ्च लम्बे, १ से ३ इञ्च चौड़े। फूल आधसे २ इञ्च व्यासके, हलके बैंजनी। डोडी ३ से ४ इञ्च लम्बी (पहिली जातिसे छोटी) इसमें दूसरी जातिके फूलके खण्ड फैले हुये और पहिली जातिके खड़े होते हैं।

औषध रूपसे दूध, पानकी भस्म, पानका रस, मूल, फल और मूलकी छाल, ये सब व्यवहृत होते हैं।

मात्रा—मूलकी छालका चूर्ण १ से ३ रत्ती, दिनमें ३ बार रसायन, बल्य, स्वेदजनन और कफघ्न गुणके लिये। वमन करानेके लिये १५ से ३० रत्ती। पेचिश और दस्तोंको रोकनेके लिये छालका चूर्ण २ से ५ रत्ती। दूधकी मात्रा १-२ रत्ती।

वक्तव्य—(१) आककी जड़ एप्रिल अथवा मई मासमें खोदकर तुरन्त जलसे धोकर वायुमें सुखा देवें। दूध सूख जानेपर छालको निकालकर सुखावें। फिर ऊपरसे डाट जैसी छालको छीलकर निकाल देवें, केवल अन्तरछाल रहने देवें। उसे सुखा कूटकर बोतलमें भर लेवें।

(२) नये कोमल आककी अपेक्षा पुराने आककी छालमें गुण अधिक होते हैं।

गुणधर्म—दोनों प्रकारके आक सारक, रसमें चरपरा, कड़वा, उष्णवीर्य, शोधन, दीपन, मूत्रजनन, वात, कुष्ठ, कण्डू, विष, कृमि, शोफ, कफ, मेद, विसर्प, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कफोदर और उदरकृमिका नाशक है।

आकके फूल वृष्य, लघु, दीपन और पाचन हैं। अरुचि, प्रसेक, अर्श, श्वास और कासको दूर करते हैं। दूध रसमें कड़वा, उष्णवीर्य, स्निग्ध, कुछ नमकीन, लघु कुष्ट, गुल्म और उदररोगका नाशक तथा विरेचन है। अर्कमूलकी छाल स्वेदल, श्वासघ्न, उष्ण, वान्तिकर और फिरंगरोग नाशक है।

लाल आककी अपेक्षा सफेद आकका वीर्य अधिक उष्ण होता है।

नव्यमतानुसार मूलकी छाल कड़वी, चरपरी, उष्ण, दीपन, पाचन, पित्तस्रावी, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक, आक्षेपहर, रसग्रन्थियां और त्वचाके लिये उत्तेजक, जीवन विनिमय क्रिया (चयापचय) के लिये उत्तेजक, बल्य और रसायन है। अधिक मात्रामें सेवन करनेपर वामक, विरेचन और दाहजनक है। कम मात्रामें आमाशयमें स्पष्ट उत्तेजक होनेसे आमाशय रसका योग्य वहन होता है। अधिक मात्रामें लेनेपर वान्ति हो जाती है। वमन होनेके साथ यह रक्तमें भी मिल जाता है, जिससे श्वसन केन्द्र और वमन केन्द्र, जो मस्तिष्कमें रहते हैं, उनको उत्तेजना मिलती है। फिर त्वचासे बाहर निकलनेके समय त्वास्थ्य कैशिकाओंका विकास होता है।

वामक धर्म आमाशय द्वारा और फिर वमन केन्द्रके द्वारा भी प्राप्त होता है, परिणाममें कफ, आम, विष और मलादि बाहर निकल जाते हैं।

इसमें स्वेदल धर्म उत्तम है। इस हेतुसे अति स्वेद आता है। कफघ्नधर्म भी योग्य होनेसे फुफ्फुस और श्वासनलिकामेंसे चिपका हुआ कफ बाहर निकल जाता है। इसके साथ आक्षेपहर धर्म रहता है, जिससे श्वासनलिका और फुफ्फुस-कोषाणुओंके संकोचविकासमें होनेवाला प्रतिबन्ध दूर होता है।

अर्क मूलकी छालका रसायन गुण पारदके समानही प्रबल है। जिससे वह

यकृत्‌की क्रियाको सुधारता है और पित्तस्राव उत्तम प्रकारसे कराता है। इनके अति-रिक्त उत्तेजक गुणके हेतुसे भिन्न-भिन्न अन्तःस्रावी रसग्रन्थियोंको उत्तेजना देकर रसस्राव भी अधिक कराता है, जो चयापचय क्रियाको उत्तेजित कराता है। परिणाममें देह सबल बनती है।

फूल, दीपन, पाचन, कफघ्न और आक्षेपहर हैं। मूलकी छालकी अपेक्षा फूलमें यह धर्म अधिक स्पष्ट है।

दूध अधिक लगानेपर दाह होकर फोला हो जाता है। पतला लेप करनेपर बाल गिर जाते और कुछ वेदनास्थापन गुणकी प्राप्ति होती है। उदरसेवन करानेपर विरेचन होने लगता है। यह गुण लगभग छालके समान है, किन्तु न्यूनांशमें है।

पान—वातहर, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और दारक हैं। पानका चूर्ण जीर्ण व्रणपर छिड़कनेपर व्रणके भीतरके दूषित अंकुर नष्ट होकर जल्दी व्रण भर जाता है। (डा० देसाई)

आकके दूध और पानोंके रसकी भावना, शृंगभस्म, अभ्रकभस्म, शंखभस्म और शीशा भस्मको दी जाती हैं। आककी भावनावाली शृंगभस्म कफप्रकोप, बालकोंके उब्बारोग, क्षयरोग और श्वासरोगपर उपकारक है। अभ्रकभस्मको आककी भावना देनेसे श्वास और क्षयरोगपर तुरन्त लाभ पहुँचता है तथा वह रसायन बन जाती है। शंखभस्म आककी भावनावाली होनेपर नारुरोगपर अति प्रभाव दर्शाती है। रक्तमें रहे हुए सब नारुओंको जला डालती है। शीशाभस्मको आककी भावना देनेसे अपना रसा-यनगुण विशेष दर्शाता है।

अर्ककल्पः—

(१) अर्कादि वटी—आकके फूलोंकी चोफुलियाँ और कालीमिर्चको सम-भाग मिला आकके पानोंके रसमें ६ घण्टे खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। मात्रा—१ से २ गोली दिनमें ३ बार जलके साथ। हिस्टीरिया, श्वास और अपस्मारपर अति सस्ती और उत्तम औषधि है। तीव्र आक्षेपावस्थामें यह वटी २-२ घण्टेपर ३-४ बार दी जाती है।

(२) अर्कमूलादि वटी—आकके मूलकी अन्तरछाल ८ तोले, सोहागेका फूला २ तोले और अफीम १ तोला मिला, कुड़ेकी छालके अष्टमांश क्वाथमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाते जायं और सोंठके चूर्णमें डालते जायं। मात्रा १ से २ गोली दिनमें ३ बार जल या मठेके साथ। पेचिश, उदरशूलसह अतिसार, रक्तातिसार, जीर्ण संग्रहणी आदिमें उत्तम लाभदायक है।

सूचना—(१) रोग जितना पुराना हो उतनीही मात्रा कम देनी चाहिये।

(२) दस्तमें अति दुर्गन्ध आती हो अथवा कच्चा मल भरा हो, तब तक यह वटी न देवें। दस्त या पेचिशके प्रारम्भमें ३ दिन तक केवल आकके फूलोंका चूर्ण २-३ रत्ती देते रहना चाहिये अथवा एरण्ड तैल देकर पहिले उदरशुद्धि करनी चाहिये।

(३) यदि अधिक वार दस्त होता हो और पेचिशका कष्ट अधिक हो तो रोगीको केवल मट्ठेपर रखना चाहिये। कम कष्ट हो तो दही भात या खिचड़ी देना चाहिये।

अर्कादि मिश्रण—आकके मूलकी छाल, सैंधानमक और अजवायन, यह तीनों समभाग मिलाकर चूर्ण करें। मात्रा ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार। यह कफको बाहर निकालने में हितकारक है।

(४) नयी खांसी और पुरानी खांसी तथा श्वासरोगमें कफ होनेपर यह मिश्रन दिया जाता है। श्वासके दौरेके समय यदि कफप्रकोप हो तो १-१ घण्टेपर ४ बार निवाये जलके साथ दे देनेसे वेग शान्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें स्वेदल गुण होनेसे चर्मरोग और गौण कुष्ठपर भी यह व्यवहृत होता है।

(४) अर्क क्षार—आकके पंचांगको खड्डेमें जलाकर राख करें। ४-७ गुने जलमें मिलाकर २-३ घन्टे रख देवें। जल नितर जानेपर उसे ऊपरसे सम्हालकर निकाल लेवें। उसे कड़ाहीमें डालकर उबाल लेनेपर सब पानी जल जाता है। फिर तलेमें क्षार तैयार हो जाता है। मात्रा-२ से ४ रत्ती, घीके साथ दिनमें २ बार। यह कफको बाहर निकालनेमें उत्तम है।

(५) अर्कादि क्वाथ (निघण्टु रत्नाकर)—आकका मूल, जीरा, सोंठ-कालीमिर्च, पिप्पली, भारंगीमूल, छोटी कटेलीकी जड़, कांकड़ासिंगी और पुष्करमूल, इन ९ औषधियोंको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। ६४ तोलेका १६ तोले जल रहने पर उतारकर छान लेवें। उसके ३ हिस्सेकर २-२ घण्टेपर ३ बार पिला देवें। उपयोग-सन्निपातमें शरीर शीतल हो जाने तथा दाह, श्वास, कफप्रकोप आदि उपद्रव होनेपर यह क्वाथ रामबाणके समान कार्य करता है।

(६) अर्कादि क्वाथ—(लोलिम्बराज)—आकका मूल, धमासा, देवदारु, चिरायता, रास्ना, निर्गुण्डीके पान, बच, अरनीकी छाल, सुहिंजनेकी छाल, चित्रकमूल, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, सोंठ, अतीस और मांगरा, इन १६ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। इसमेंसे ४ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्सेकर २-२ घण्टेपर पिलावें। आवश्यकता रहे, तो चौथी बार भी दे सकते हैं।

यह क्वाथ वातप्रधान सन्निपातमें अति प्रभावशाली है। हमने सैंकड़ों बार इसका उपयोग किया है। सन्निपातमें तन्द्रा, शीत, श्वास, धनुर्वात, दांत भिच जाना,

अति पसीना आना आदि तथा सूतिकाज्वरमें वातप्रकोपके लक्षण होनेपर यह दिया जाता है। छातीमें कफ संचित हुआ हो, तो उसे भी बाहर निकाल देता है।

(७) अर्क तैल—आकका दूध ८ तोले, हल्दी २० तोले, मैनसिल ९॥ तोले, सरसोंका तैल ४० तोले लेवें। हल्दी और मैनसिलको मिला आकके दूधमें खरल कर लेवें। फिर आकके पानोंका रस डालकर चटनी बनावें। यह चटनी, तैल और २ सेर जलको मिला पीतलकी कलई लगी हुई कड़ाहीमें मन्दाग्निसे तैल सिद्ध करें। पानी जल जानेपर कड़ाहीको नीचे उतारकर तुरन्त तैल दूसरे बरतनमें निकाल लेवें। ठण्डा होनेपर बोतलमें भर लेवें। यह तैल पामा, खुजली, व्यूची, खुजलीवाले व्रणोंपर लगाया जाता है। गञ्ज होनेपर यह तैल शिरपर भी लगाया जाता है।

(८) प्लीहान्तक चूर्ण—आकके पके पीले पत्ते और सैंधानमक १-१ सेर लेवें। उसे एक घड़ेमें क्रमशः रखें। पहिले आकके पान रखें ऊपर थोड़ा नमक, फिर उसी तरह पान और नमक की तहें लगा ढक्कनसे ढककर कपड़मिट्टी करें। वह सूखने पर जमीनमें १ गज लम्बा-चौड़ा गढ्ढा खोद उसमें चारों ओर तथा नीचे ऊपर गोबरी भर उसके बीचमें घड़ा रखकर अग्नि देवें। ठण्डा होनेपर घड़ेको निकाल, कपड़मिट्टी हटाकर राख जैसा चूर्ण निकाल लेवें। मात्रा-१-१ माशा दिनमें २ बार सिरके या निवाये जलके साथ देनेसे प्लीहावृद्धि, जीर्णज्वर, अग्निमान्द्य, मलावरोध, उदरवात और आमप्रकोप दूर होते हैं

(९) अर्कादि नस्य—गोबरीकी राखको कपड़छान करके १० तोले लेवें। उसे आकके पीले पानों (पत्तों) के रससे भिगोकर छायामें सुखावें। इस तरह ७ बार भिगो, सुखाकर बोतलमें भर लेवें। उसमेंसे थोड़ासा (१ रत्ती लगभग) सुँघानेसे बहुत छींके आती हैं और मस्तिष्कमेंसे संचित कफ या मल निकल जाता है। जिससे जुकाम, आधाशीशी और शिरदर्द दूर होकर श्वासोच्छ्वास सरलता से आने जाने लगता है।

वक्तव्य—(अ) सगर्भा स्त्री, बालक और अति कोमल शरीरवालोंको नहीं सुँघाना चाहिये।

(आ) नाकमें उष्णता प्रतीत होने पर घी सुंघावें।

(इ) विशेषतः यह प्रयोग रोगीको सूर्य के सामने रखकर कराया जाता है।

(१०) रसांजन वर्ति—शुद्ध रसौत १० तोला लेकर उसे थूहरके दूधकी भावना देवें। फिर आकके दूधकी ३ भावना देवें। फिर बारबार दूध लगाकर छायामें सुखाते जायें। अन्तिम बार उसको अति पतली सलाइयाँ बना लेवें। ये सलाइयां पुराने नाड़ी व्रणमें भरनेपर व्रणका भीतर शोधन करती और मुँह चौड़ा बनाती हैं।

(११) अर्कमूल फाण्ट—आकके मूलकी अन्तरछाल १ तोलेको ४० तोले उबलते जलमें डालकर ढक देवें और उसे २० मिनट बाद छान लेवें। मात्रा १। से २॥ तोले तक, दिनमें ३ बार, २-२ रत्ती सैंधानमक मिलाकर देते रहें। यह अपचन, कफ-

प्रकोप, उदरशूल आदिपर उपकारक है। यदि वमन करानेके लिये देना हो, तो १० से १५ तोले जलमें १ तोला शहद मिलाकर पिलाना चाहिये।

उपयोग—आक दिव्य औषधि होनेसे इसे वनस्पति-पारद कहा गया है। इसीसे आकका उपयोग प्राचीनकालसे हो रहा है। आकके सफेद-लाल भेद और छोटा-बड़ा भेद आचार्योंने किये हैं; किन्तु वनस्पति शास्त्रमें इसके मुख्य २ विभाग माने गये हैं। गुण धर्मकी दृष्टिसे विचार किया जाय, तो दोनोंके गुणधर्ममें विशेष अन्तर नहीं है।

चरकसंहितामें भेदनीय और स्वेदोपग दशेमानियोंमें तथा शिरोविरेचनमें अर्कका उल्लेख किया है। एवं अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, उदरकृमि, शोथ, उन्माद, विषप्रकोप, ग्रन्थि और व्रण आदिके प्रयोग और शिरोविरेचन रूपसे आकका उपयोग किया है। सुश्रुतसंहितामें ऊर्ध्व भागहर (वमन) और अधोभागहर (विरेचन) औषधि समूहमें अर्कका उल्लेख किया है। एवं श्वास, कर्णशूल पागल कुत्तेका विष, वातरोग और श्लेष्माभिष्यन्दपर आकको व्यवहृत किया है। इसकी दतौनसे कृमिदन्तक और मसुढ़ेमें पूय होने (पायोरिया) पर लाभ पहुँचता है।

डाक्टर वॉट लिखते हैं कि, आकके मूलकी छालमें रसायन, कीटाणुनाशक ग्राही और स्वेदल गुण होनेसे यह वातरक्त, फिरंगसे उत्पन्न पेचिश, अतिसार और जीर्ण आमवातादिमें निर्भयरूपसे व्यवहृत होती है। मात्रा २ से ४ रत्ती दिनमें २ बार।

डाक्टर मुइदिन सरीफने लिखा है कि, आकके पुराने मूलकी छालका चूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंके लिये स्राव वर्द्धक है तथा त्वचारोग, अन्त्रावतरण (Hernia) उदरकृमि, कफप्रकोप, जलोदर और सर्वाङ्ग शोथपर अति उपयोगी है। आक का सूखा दूध आक्षेपज व्याधियां—अपस्मार, हिस्टीरिया, पक्षाघात और धनुर्वात आदिमें अति हितकारक है। मात्रा १-१ रत्ती, १-१ घण्टेपर ३-४ बार शहद के साथ।

(१) **वमन विरेचन**—अर्कमूल फाण्ट या आकके मूलकी अन्तरछाल २ से ४ माशे निवाये जलके साथ देवें अथवा आकके दूधका चूर्ण २ से १॥ मात्रा देनेपर वमन-विरेचन और स्वेदन क्रिया होकर देह शुद्ध हो जाती है।

(२) **वातप्रकोपज सन्निपात**—सन्निपातमें दाँत भिंच जाना, आक्षेप, श्वासप्रकोप, तन्द्रा, शरीर शीतल हो जाने पर और छातीमें कफ संगृहीत होनेपर अर्कादि क्वाथका सेवन कराया जाता है।

(३) **प्लीहावृद्धि**—प्लीहा बढ़ी हो, मंद-मंद ज्वर आ जाता हो, अग्नि अति मन्द हो और मलावरोध भी रहता हो, ऐसी अवस्थामें प्लीहान्तक चूर्णका सेवन दिनमें ३ बार १५-२० दिन तक कराना चाहिये। प्लीहा अधिक बढ़ी हो तो प्लीहापर तैल लगाकर आकके पत्तोंसे सेक भी करते रहें। फिर १५-२० मिनट बाद आकके पत्ते और ऊपर रुई रखकर पट्टी बाँध दें।

(४) **कफप्रधान श्वासरोग**—अर्कादिमिश्रण, अर्कादिवटी या अर्क क्षार-

का सेवन करावें अथवा आककी चौफूलियां ४ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग और और अकरकरा १-१ तोला मिलाकर चूर्ण करें। उसमेंसे ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार जल के साथ सेवन कराते रहनेसे कफोत्पत्ति बन्द होती है। कफ सरलतासे निकलता रहता पचनक्रिया सबल बनती और उदरशुद्धि होती रहती है।

सूचना—बीड़ी या तमाखूका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

(५) मुखपर काला दाग—हल्दीको आकके दूधके साथ खरलकर लम्बी गोली बना लेवें। उसे गोदुग्धमें घिसकर लेप करते रहने से दीर्घकालके दाग भी कुछ दिनोंमें दूर हो जाते हैं।

(६) दंतशूल—दांतोंमें गड्ढे होकर शूल चलनेपर आकका दूध या दूधका चूर्ण भर देनेसे उसमें रहे हुये कृमि मरकर वेदना शांत हो जाती है।

(७) फिरंगक्षत—फिरंगके हेतुसे मूत्रेन्द्रियपर घाव हो जाता है। उसे आकके पत्तोंके रससे धोते रहनेपर घावभर जाता है। इसके साथ पारदप्रधान ओषधि या सत्यानाशीके रसका उदर सेवन भी कराना चाहिये।

(८) फिरंगजनित रक्तविकार—फिरंग रोग पुराना होनेपर या कच्चेपारद वाली दवा खानेपर सारे शरीरपर फोड़े या रक्तविकारके दघोड़े हो गये हों, तो उसे आक के मूलकी अन्तरछाल अच्छा लाभ पहुँचाती है रक्त और त्वचा, दोनोंपर यह ओषधि कार्य करती है। पसीना लाती, उदरशुद्धि करती, और रक्तका शोधन करती है तथा कीटाणु और विषको जलाकर रोगीको निरोग बनाती है।

(९) वृषणवृद्धि—आकके मूलकी अन्तरछालको सिरका, कांजी या खट्टे मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे अण्डकोषमें रहीहुई वायुका शोषण हो जाता है और जल उतरता हो, तो वह भी बन्द हो जाता है।

(१०) वातशूल—वायुके हेतुसे देहके किसी भी भागमें शूल निकलता हो या वेदना होती हो, तो उस स्थानपर तैल लगा फिर आकके पत्तोंको गरमकर उनसे २० मिनट सेक करें। फिर गरम-गरम आकके पान रखकर और ऊपर रुई रखकर पट्टी बाँध देवें।

(११) कफकास—(अ) अर्कमूल त्वक्‌का चूर्ण अथवा अर्कादि वटी देते रहें। अर्क मूलत्वकका सेवन करना हो, तो मात्रा २-२ रत्ती दिनमें ४ बार देवें। इसके सेवनसे कण्ठमें स्निग्धता रहती है। श्वासनलिकाका शोथ कम होता और कफ सरलता से बाहर आता है। कफ गाढा और अति चिपचिपा हो तो पतला होकर निकलने लगता है। उदर शुद्धि होती और पचनक्रिया सबल बनती है।

(आ) आककी कोमल शाखा और फूलोंको पीस ६ माशे लेकर घीमें सेकें। फिर गुड़ मिलाकर पाक बनाकर रोज सुबह सेवन कराते रहनेसे जिस पुरानी खांसीमें

हरा-पीला, दुर्गन्धवाला और बन्धा हुआ चिपचिपा कफ निकलता हो, वह भी थोड़े दिनोंमें दूर हो जाती है।

(१२) आधाशीशी—आकके मूलको जलाकर, धुएंको सुंघावें।

(१३) घुटनेका शोथ—आकके दूधका पतला लेप ३ दिनतक करनेपर वेदना सहित जानु शोथ दूर हो जाता है।

(१४) कर्णशूल—आकके पके पीले पत्तोंपर सरसोंका तेल लगाकर अग्निपर गरम करें। फिर रस निचोड़कर कानमें डालें।

(१५) गलगन्ड (Goitre)—कसीस और कुलिंजनको आकके दूधमें घिसकर दिनमें दो बार लेप करते रहनेसे १-२ मासमें गलगण्ड शमन हो जाता है। यह लेप गण्डमालपर भी फायदा पहुँचाता है।

(१६) नारू—आकके फूलोंको पीस पुल्टिस बनाकर बाँध देनेसे या आकके दूधका लेप करनेसे नारू निकल जाता है। साथ साथ ४ रत्ती हींग या १ माशा शंख-भस्म अथवा चार रत्ती नौसादर दहीके साथ मिलाकर खिला देने और भोजनमें दही भात देते रहनेसे भी भीतरमें रहे हुये सब नारू जल जाते हैं।

(१७) पेचिश—एरण्ड तैलका जुलाब देकर फिर दिनमें ३ बार मट्ठेके साथ अर्कमूलादि वटीका सेवन करावें। यह अति दिव्य ओषधि है। डाक्टरी मतानुसार बेसिलिस और एमिबा, दोनों प्रकारके कीटाणुओंसे उत्पन्न पेचिश (Bacillary and Amoebic dysentery) पर यह प्रयोग अच्छा कार्य करता है।+

(१८) पुराना अपचन—अर्कमूल फाण्ट अथवा प्लीहान्तक-चूर्णका सेवन करानेसे पुराना अपचनरोग, जिसमें दूषित डकारें आती हों, उदरमें भारीपन और वायु भरा रहता हो, भोजनकी इच्छा न होती हो, मलावरोध रहता हो, वह कुछ दिनों में दूर हो जाता है। उदरमें पीड़ा होती है, तो वह भी दूर हो जाती है।

(१९) दुष्टव्रण—जिस व्रण या फोड़ेमेंसे पूय निकलता रहता हो, भीतरका मांस सड़ जानेसे दुर्गन्ध आती रहती हो, उसको शुद्ध बनानेके लिये आकके मूलकी अन्तरछालका चूर्ण डालते रहनेसे २-४ दिनमें सड़ा हुआ मांस निकलकर व्रण-स्थान

+ बेसिलरी अर्थात् उद्भिद् कीटाणुप्रधान पेचिस होनेपर जिह्वा लाल रहती है, शौच होनेके समय किनछना पड़ता है, समस्त उदरमें वेदना होती है, दस्तमें दुर्गन्ध नहीं होती और आममय सफेद दस्त होते हैं। एमेबिक अर्थात् प्राणिज कीटाणुप्रधान प्रवाहिका होनेपर पेचिसका वेग नियमित बढ़ता है, जिह्वा मैली रहती है। शौचमें प्रायः किनछना नहीं पड़ता। दस्त अधिक परिमाणमें होता है और दुर्गन्धमय खट्टी आम और रक्तमिश्रित, विशेषतः लाल आमकी गोलियां होती हैं तथा यह रोग दीर्घ-क दुख देता रहता है

लाल, शुद्ध बन जाता है। फिर कपूर, राल, सिंदूर या अन्य औषधिका मलहम लगाते रहनेसे घाव जल्दी भर जाता है।

(२०) नाड़ीव्रण— व्रण दीर्घकालतक रह जानेपर, उसका पूय समीपकी किसी रक्तवाहिनीमें प्रवेश कर जाता है और वह फिर दूरतक नाड़ीको दुष्ट बना देता है, उसे नासूर कहते हैं। इसका मुँह कभी कभी बहुत छोटा होता है। जिससे उसमें दवा जा नहीं सकती। ऐसी अवस्थामें रसाञ्जन वार्तिकी शलाका भीतर भरते रहनेसे नाड़ीके भीतर का शोधन होता है और मुँह चौड़ा हो जाता है। फिर नाड़ी व्रणमें नीम तैल या अन्य किसी भी प्रकारका व्रणरोपण तैल डाल सकते हैं और ऊपर मलहम लगा सकते हैं।

(२१) अर्श—बावासीरमें मस्से सूज जानेपर अति वेदना होती है। उसके लिये अजवायन, आक और इमलीकी छालको अग्निपर डालकर नलीद्वारा मस्सोंको धुआं देवें फिर भांगको जलके साथ चटनीकी तरह पीस; थोड़ा निवायाकर पुल्टिस बनाकर बांध देनेसे वेदना और शोथ दूर हो जाते हैं।

(२२) बद गांठपर—सफेद कत्था और उसारेरेवनको समभाग लेकर (या केवल उसारेरेवनको) आकके दूधमें घिसकर लेप करते रहें। यह लेप दिनमें २-३ बार लगाते रहनेसे ३-४ दिनमें कच्ची गांठ बिखरकर बैठ जाती है। यह उपयोग गांठकी प्रथमावस्थामें किया जाता है।

(२३) प्रसूताकी सांधे जकड़ना—सूतिकारोगमें वायु लगने, कीटाणु-प्रकोप होने अथवा अपथ्य सेवन आदि भूलोंसे सांधें जुड़ जाती हैं। एवं जिससे रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, उनको भात, दही या थोड़ीसी खटाई देनेपर भी संधि स्थानोंमें वेदना होने लगती है। साथ साथ बुखार, कब्ज, अपचन, उदरमें भारीपन, गर्भाशयमें वेदना आदि भी प्रायः हो जाती हैं। उनको आकके मूलकी छाल, चिरायता, देवदारू, रास्ना, बच, पिप्ली, पीपलामूल और निगुंण्डी, इन ८ औषधियोंको समभाग मिला १-१ तोलेका क्वाथकर दिनमें ३ बार पिलाते रहने और शीतसे रक्षा करनेपर सांधे छूट जाते हैं और सूतिकारोग भी दूर हो जाता है। आक्षेप आता हो, तो वह भी शमन हो जाता है। आक्षेप आते हों तो इस क्वाथमें १ रत्ती हींग भी मिला देना चाहिये।

वक्तव्य—यदि कब्ज रहता हो तो एरण्ड तैल देना चाहिये अथवा सुबह २ माशे कुटकीका चूर्ण देना चाहिये।

आक्षेप (धनुर्वात) आता हो, दांत भिंच जाते हों तो गर्भाशयमें विकार समझकर गर्भाशयको उत्तरबस्ति देकर शुद्ध करना चाहिये। गर्भाशयमें त्रिफलाक्वाथ चढ़ाकर उसे धोलेवें। फिर तगरचूर्ण को १६ गुने तैलमें उबालकर, छान शीतलकर उसकी पिचकारी लगानी चाहिये। गर्भाशय शुद्ध होनेपर वातप्रकोप सरलतासे दूर हो जाता है।

(२४) श्लीपद—पैर हाथीके पैर जैसा मोटा हो जानेको हाथीपगा, फीलपांव या श्लीपद कहते हैं। उसपर आकके मूलको घिसकर मठे या सिरकेमें घिसकर दिनमें ३ बार लेप करते रहनेसे श्लीपदकी पीड़ा और ज्वर दूर हो जाते हैं और मूल रोगमें लाभ पहुँचता है।

(२५) बालकोंका डब्बारोग—आकके पानका रस १० बूँद और चौथाई रत्ती सैंधानमक मिलाकर पिला देनेसे एक वमन और एक दस्त होकर डब्बारोग शमन हो जाता है। कफ अधिक जमा हो तो छातीपर निवाये सरसोंके तैलकी मालिश करके गरम कपड़ा पहना देवें। पेटमें अफारा हो, तो उदरपर तेल लगाकर ५-१० मिनट आकके पत्तोंसे सेंक करनेसे अफारा भी दूर हो जाता है।

(२६) बालकों का उदररोग—आकका पान १ इंच चौकोर लेकर कूटें। उसे छटांक भर जलमें उबालें। २-३ उफान आने पर नीचे उतारकर छान लेवें। उसमें १ रत्ती सैंधानमक मिलाकर ३ वर्षके बच्चेको पिला देवें। इस तरह रोज सुबह पिलाते रहनेसे २-३ दस्त साफ आते रहते हैं। एक सप्ताहमें उदर मृदु बन जाता है। प्लीहा और यकृत् बढ़े हो, तो वे भी कम हो जाते हैं। भोजनमें खिचड़ी, चावल, मट्ठा, कुलथीका यूष आदि देना चाहिये।

(२७) कुष्ठ और चर्मरोग—अर्कमूल त्वक्‌का सेवन २-२ रत्ती मात्रामें दिनमें ३ बार कराते रहें या फूलकी चौफूलियोंके चूर्णका सेवन करावें। साथसाथ आकके मूलको मट्ठे या सिरकेमें पीसकर पतला पतला लेप भी करते रहनेसे २-३ मासमें शनैः शनैः रोग दूर होकर शरीर स्वस्थ बन जाता है।

यदि गलित कुष्ठ हो जानेसे हाथ पैरोंकी अंगुलियाँ सूज गई हो, नाकमेंसे लाल श्लेष्मा गिरता हो, मुखमण्डल सूजा हुआ भासता हो, कानोंकी पालियां बड़ी हो गई हों, शरीरके किसी भी भागमें क्षत होनेपर जल्दी घाव न भरता हो, तो ऐसी अवस्थामें भी अर्कमूल त्वक् कार्य करती है; अथवा आकके मूल ६-६ माशेका क्वाथकर रोज सुबह पिलाते रहें। भोजनमें पथ्यका पालन आग्रहपूर्वक करें तो ४-६ मासमें रोग दूर हो जाता है।

(१६) आँधी झाड़ा।

सं० अपामार्ग, शिखरी, खरमञ्जरी, पराकपुष्पी। हिं० आँधीझाड़ा, लटजीरा, चिरचिरा, ओंगा, चिंचीड़ा। बं० अपाङ्। म० आघाड़ा। गु० अघेड़ो। मार० आंधो झाड़ो, ओंगा। सिं० मर्जिका। ता० नायुरुवि। मला० कडलाडि। कों० काँटे मोग्रि। पं० फुटकण्डा। फा० खारे वाजू। अ० अत्कुमह। अं० Rough Chaff flower. ले० Achyrathes Aspera.

परिचय—अपामार्गमें दो जाति हैं। एक सफेद और दूसरी लाल। दोनों

प्रकारके क्षुप भारतमें सर्वत्र वर्षाऋतु आनेपर निकल आते हैं। किसी किसी स्थानपर ये बारहों मास रह जाते हैं। सामान्यतः यह क्षुप वर्षा पड़नेपर प्रारम्भ होकर शरद् ऋतुमें बलवान बन जाता है। फिर शीतकालके अन्ततक पुष्प और फलसे सुशोभित रहता है। वसंत आनेके पश्चात् शनैः शनैः सूखता जाता है। ऊंचाई १ से ३ फीट। पान लम्बे और गोल। पुष्प छोटे प्रायः रक्त लम्बी मंजरीपर। फल नीचे मुड़े हुए भूरे या भूरे लाल रंगके।

रक्त अपामार्गके पानोंपर लालबिन्दु भी होते हैं; किन्तु कभी पान बिल्कुल लाल रंगका नहीं होता।

शाखाओंके अन्तमें गाँठें रोमवाली १ से ३ फीट लम्बी, सुतली जैसी पतली, शलाका या मंजरी निकलती है। उसपर पुष्प आते है। फूल चमकीले, हरे लाल रंगके होते हैं। फूलोंका मुँह नीचे झुका हुआ। औषधरूपसे पंचांगका उपयोग होता है।

अपामार्गमें रहा हुआ जवाखारके सदृश क्षार पानोंमें २१°/५० । शाखाओंमें ३८°/०१ और मूलमें २८°/५८ प्रतिशत रहता है। इसपरसे अपामार्ग कितनी महत्त्व की ओषधि है। यह सहज लक्ष्यमें आसकेगा। अपमार्गकी राख आयुर्वेदीय द्रव्योंमें अग्रगण्य है।

मात्रा—मूल ६ माशेसे १ तोला। राख ५ से १५ रत्ती। क्षार २ से ४ रत्ती, घृतके साथ। बीज ६ माशेसे १ तोला।

गुणधर्म—अपामार्ग रस में कडवा, उष्णवीर्य, चरपरा, सारक और कफघ्न है; तथा अर्शकण्डू, उदररोग, आम और रक्तविकारका नाशक, ग्राही और वान्ति करानेवाला है।

लाल अपामार्ग शीतल, चरपरा, कफवात नाशक तथा व्रण, कण्डू और विषको हरनेवाला, संग्राही और उत्तम वान्तिकारक है। अपामार्ग चरपरा, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कफनाशक तथा सिध्म, उदररोग, अपची, प्रमेह, कण्डू और अर्शका नाशक एवं वान्ति करानेवाला है।

अपामार्गके तण्डुल रसमें मधुर, विपाकमें दुर्जर, विष्टम्भकारक, वातुल, रूक्ष तथा रक्त और पित्तका प्रसादक हैं।

अपामार्ग की डंडीका दतौन करने से दाँत साफ और दृढ़ होते हैं।

डाक्टर देसाईके मत अनुसार अपामार्ग कड़वा, चरपरा, तीक्ष्ण, दीपन, अम्लता नाशक, रक्तवर्द्धक, शुद्धिकर, अश्मरीहर, मूत्रल, मूत्रकी अम्लता नाशक, स्वेदल, कफघ्न और पित्तसारक है। शरीरपर इसकी क्रिया शीघ्र होती है। फिर भी अन्य प्रयोजक द्रव्योंके साथ देनेसे बहुत अच्छाकार्य करता है। उदा० आमाशयके रोगमें कड़वी ओषधि के साथ, रक्तरोगमें लोहेके साथ, फुफ्फुस रोगमें सुगन्धित और स्नेहन द्रव्योंके

साथ, वृक्कोंके विकारमें स्नेहन द्रव्योंके साथ और सब प्रकारके पित्त रोगोंमें यकृति पर क्रिया करनेवाले द्रव्योंके साथ देना चाहिये।

भिन्न-भिन्न इद्रियोंपर अपामार्गकी क्रिया—

(१) मूत्रेन्द्रिय—अपामार्ग मृदु स्वभाव युक्त मूत्र जनन है। इसकी क्रिया प्रत्यक्ष मूत्र-पिण्डों (वृक्कों) के भीतर रही हुई मूत्रजनक मांस पेशियों पर होती है। मूत्र पिण्डोंके भीतर अपामार्ग उत्तम मूत्र जनन कार्य करता है। सामान्य ज्वर में अपामार्ग सेवनसे मूत्रका परिमाण बढ़ जाता है। हृदयोदर रोगमें अन्य (अर्जुनादि) हृदय वल्य ओषधिके साथ अपामार्ग क्षार दिया जाता है। जिससे मूत्रकी अम्लता कम होती है; अर्थात् मूत्रमें ईंटके चूर्णके रंगकी अम्ल मृतिका होनेपर और सन्धियों में क्षार जमने वाली प्रकृतिवालोंको अपामार्गका सेवन अनेक मासतक करानेसे लाभ होता है।

तेरे वृक्कसे मूत्रनलिका पर्यन्त मार्गका प्रदाह शमन करनेका गुण अपामार्गमें अवस्थित है। इसी हेतुसे सुजाक, वस्ति प्रदाह और वृक्क प्रदाह में वेदना कम करानेके लिये अपामार्ग स्नेहन और मूत्रजनन (शीतल मिर्च, छोटी इलायची, अलसी आदि) ओषधियोंके साथ देना चाहिये। अपामार्गका क्वाथ मूत्राशय गत अश्मरीको तोड़नेमें व्यवहृत होता है। मूत्रेन्द्रियके रोगमें अपामार्गके साथ मुलहठी, गोखरू और पाठा, ये औषधियां सर्वदा उपयोग में लेनी चाहिये। (पुनर्नवा, सारिवा, शीतल मिर्च भी हितकारक हैं)

त्वचा—अपामार्गका स्वेदजनन धर्म अत्यल्प है। सामान्य ज्वरमें मूत्र और स्वेद वृद्धिके लिये अपामार्ग दिया जाता है। अंगपर अधिक वसा निकलनेपर अपामार्ग के बीजकी रोटी खिलानेसे वह कम हो जाती है अर्थात् मेंदो रोगमें यह उपाय हित कारक है।

श्वास संस्था—अपामार्ग से फुफ्फुस और श्वासनलिका स्थित श्लेष्मा पतला होता है। और पतला श्लेष्मा अल्प प्रयाससे बाहर निकल जाता है। इस हेतुसे अपामार्गको क्षार स्वभाव युक्त और कफघ्न कहा है। श्वास नलिकाके आशुकारी प्रदाह और चिरकारी प्रदाहमें विशेषतः श्लेष्मा चिपचिपा और गाढा होनेपर अपामार्ग का अच्छा उपयोग होता है। जीर्णकफ प्रधान रोगोंमें अपामार्गका क्षार, ६४ प्रहरी पिपली, अतीस और कुचिला, इन औषधियोंके मिश्रणको घी और शहदमें मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। इससे जीर्ण ज्वर दूर होता है। कफ कम होता; निस्तेजता नष्ट होती, हृदय और नाड़ीमें बल आता, अन्न पचन होने लगता, और रोगीका वजन शनैः शनैः बढ़ने लगता है। जीर्ण कफ रोगमें अपामार्गक्षार दिव्य औषध है।

यकृत्प्लीहा—नूतन और जीर्ण विषम ज्वरमें अपामार्गकी राख या मूलीका

चूर्ण त्रिकटुके साथ मिलाकर नागरबेलके पानके रसके साथ दिया जाता है। इससे यकृत्प्लीहा वृद्धि दूर होकर ज्वर आना बन्द हो जाता है।

जननेन्द्रिय—अत्यार्तव और उससे होनेवाली कमरकी वेदना दोनों अपामार्गकी राखके सेवनसे दूर होती हैं। एवं अनार्तवमें भी इससे अच्छा लाभ पहुँचता है।

विषप्रकोप—अपामार्गमें विषनाशक धर्म है। यू० पी० में अपामार्गकी कोमल मंजरी और दक्षिणमें मूल पागल कुत्तेका विष न चढ़नेके लिये देते हैं। मूल प्रत्येक समय १-१ तोला देना चाहिये। चूहेके विषपर कोमल पत्तों का और मंजरीका रस शहदके साथ देना चाहिये। विच्छू काटनेपर डंक स्थानपर पत्तोंकी पुल्टिस बांधते हैं, और मूलोंको घिसकर जल पिलाया जाता है।

अपामार्गका कल्प—

(१) अपामार्गका क्वाथ—मूलका चूर्ण २॥ तोलेको जल २५ तोलेमें मिला मंदाग्निपर उबालकर आधाजल जलावें। फिर छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस दिनमें ३ बार।

(२) अपामार्गक्षार—ग्रीष्मऋतुमें सुबह अपामार्गके क्षुपोंको एक गढ़े में जलाकर सफेद राख करें। फिर उसमें ८ या १६ गुने जलमें मिलावें। जलनितर जानेपर ऊपरसे स्वच्छ जलको सम्हाल पूर्वक निकाल सूर्यके तापमें या कड़ाईमें चूल्हेपर चढ़ाकर सुखालें। उसे अच्छे डाट वाली बोतलोंमें भर लेवें।

उपयोग—अपामार्गका उपयोग अति प्राचीन काल (वैदिक काल) से आयुर्वेदमें हो रहा है। यह सैंकड़ों रोगोंको दूर करता है, अतः इसे दिव्य औषधि कही है। इस अपामार्गकी प्रार्थनाका मन्त्र अथर्वण संहितामें भी लिखा है, उसका भावार्थ यह है कि "हे! अपामार्ग, तू हमारे क्षुधा, तृषा जनितरोग, इन्द्रियों की निर्बलता, सतान, हीनता, क्षुधा, तृषा, कामशक्ति और नेत्रशक्तिकी निर्बलता आदि विकारोंको दूर कर।"

शुक्ल यजुर्वेदमें नमूचिकी कथामें भी अपामार्गका उल्लेख मिलता है; नमूचि के शिरसे अपामार्गके क्षुपकी उत्पत्ति दर्शायी है। चरक संहिताके भीतर सूत्रस्थानके प्रथम अध्यायमें फलिनी औषधियोंमें अपामार्गका उल्लेख किया है। फिर दूसरे अध्यायका नामही अपामार्गतण्डुलीय अध्याय रक्खा है, और शिरोविरेचन में अपामार्ग बीजका उपयोग किया है। वमनोपग कषाय और शिरोविरेचनो पग कषायमें अपामार्ग का उल्लेख किया है। पुनः शिरोरोग चिकित्सामें अपामार्ग आदि औषधियोंके तैलके नस्य लेनेको लिखा है। एवं उन्माद आदि रोगमें अंजन प्रयोगके भीतर अपामार्ग मिलाया है। कर्ण रोगपर भी अपामार्गके क्षारका उपयोग किया है।

सुश्रुत संहितामें वीरतर्वादीगण उत्सादन (मांसवर्धनको घटानेका) कार्य, शिरोविरेचन और वात संशमन वर्गमें अपामार्गका उल्लेख किया है; और अर्श, कृमि, विष प्रकोप, अपस्मार, कर्णपाली वर्द्धन आदिके प्रयोगोंमें अपामार्ग को मिलाया है।

बालकोंकी बुद्धि और स्मरण शक्ति बढ़ानेके लिये वाग्भट्टाचार्यने वचादि घृतमें अपामार्गको मिलाया है। एवं बालकोंके ग्रह प्रतिषेधमें भी अपामार्गको प्रयुक्त किया है।

इसके स्वरसकी पिचकारी गर्भाशयमें दी जाय तो प्रसूताको तत्काल प्रसव वेगकी प्राप्ति हो जाती है। सूखे पानोंका धूम्रपान करानेसे कफसरलतासे निकल जाता है; और दमेका वेग शमन होता है।

डॉक्टर देसाईके मतानुसार भोजनके पहिले अपामार्गका सेवन करनेसे आमाशयमें पाचक रस बढ़ जाता है, तथा आमाशयमें वात नाड़ियोंके प्रदाहसे उत्पन्न वेदना दूर हो जाती है। इस कारणसे अपामार्ग अपचन रोगमें, विशेषतः आमाशयकी शिथिलता, दुःख और जम्भाई आना आदि लक्षण प्रतीत होनेपर भोजन करनेके पहिले अपामार्ग कड़वे रसवाली औषधि (कलम्भा, चिरायता आदि) के साथ देना चाहिये। भोजनके बाद अपामार्ग देनेपर आमाशयकी अम्लता कम होती है, और आम (श्लेष्म) गल जाता है। इस हेतुसे अम्लता युक्त अपचन (विदग्धाजीर्ण) में भोजनके पश्चात् २-२ घंटेपर अपामार्ग का क्वाथ निवाया पिलाया जाता है।

अपामार्गकी क्रिया यकृत्‌के ऊपर अति हितकारक होती है। यकृत्‌की पित्त वाहिनीका शोथ कम होता है; यकृत्‌की क्रिया सुधरती है; और यकृतमेंसे रक्तयोग्य प्रकारसे वहन होने लगता है। इस हेतुसे पित्ताश्मरी और अर्शरोगमें अपामार्गका उपयोग किया जाता है।

इससे अन्त्रस्थ अम्लता कम होती है; श्लेष्मा गलता जाता है और अन्न नहीं सड़ता। इस हेतुसे अपामार्ग गुल्म और शूल रोगमें प्रयुक्त होता है।

अपामार्गमेंसे क्षार रक्तमें सत्वर मिश्रित होता है। रक्तमें रञ्जित कणोंकी वृद्धि हो जाती है; उनका रंग सुधरता है, तथा रक्तवारिका क्षार धर्म बढ़ जाता है। रक्त मिश्रित होनेपर सत्वर क्षार शरीर से बाहर निकलता है। इसका विशेष भाग वृक्क द्वारा, तथा कुछ अंश त्वचा, फुफ्फुस, आमाशय और यकृत्‌के पित्त द्वारा बाहर निकलता है। जिन-जिन इन्द्रियोंमें से बाहर निकलता है, उन उन इन्द्रियोंकी जीवन विनिमय क्रिया सुधरती है और सब शारीरिक क्रियाको उत्तेजना मिलती है।

कितनेही विशेष प्रकृतिके मनुष्योंको अश्मरी होती है; और कितनोंहीके संधिओंमें क्षार संगृहीत होता है। ऐसी प्रकृतिवालोंको अपामार्गका क्षार अति गुण कारक है। इससे वायु और कण्डू कम होते हैं। इस तरह गंडमालापर भी अपामार्गक्षार व्यवहृत हो सकता है।

रतौंधी—पर अपामार्गका मूल लगभग १ तोला तक रात्रिको सोनेके समय देते हैं। क्षार देना अच्छा है, और क्षारके साथ कुचिला देना विशेष श्रेयस्कर है। रतौंधीमें उत्तम पौष्टिक आहार, उत्तम शराब आदि देनी चाहिये।

नेत्रकी पुतलीपर उत्पन्न फूलेको—काटनेके लिये अपामार्गके मूलको शहद में घिसकर अंजन करते हैं।

दंतशूलमें—पानोंका रस मसूढ़ेपर मसलते हैं, अथवा क्षार दंत कोटरमें भरते हैं। अपामार्गके डंडेसे प्रतिदिन दतौन करते रहने से दांतों में कोटर नहीं होते।

चर्मकील—सूक्ष्म मांस वृद्धि आदि त्वचाके रोगोंको जलादेनेके लिये अपामार्ग के क्षारका उपयोग किया जाता है।

कानोंमें मैल जमजानेसे वेदना अथवा कर्णनाद होनेपर अपामार्ग क्षारको तैलमें मिला, उबाल, वस्त्रगाल करके तैलके बूंद कानमें डालना चाहिये।

पत्तोंको पीस, गरमकर आमवात और संधिवातके शोथमें वेदना कम करानेके लिये पीड़ित संधिस्थानोंपर बाँधा जाता है।

अपामार्ग पञ्चाङ्ग उबालकर उस क्वाथसे स्नान करनेपर कण्डू दूर होती है।

काँटा लग जानेपर अपामार्गका स्वरस दिया जाता है; और पान पीसकर जखमपर बाँधा जाता है।

वात संस्थाके विकारपर, विशेषतः भूतोन्माद रोगमें अपामार्ग के स्वरससे अति लाभ होता है। इससे हृदयकी धड़कन भी कम होजाती है। (देसाई)

विषमज्वर वालेके कण्ठमें इसकी जड़को ऊनी वस्त्रमें बांधकर पहनादेनेसे ज्वरकी पाली चूक जाती है। गण्डमालापर इसके मूलके छोटे छोटे मणियोंकी माला बनाकर पहिननेसे लाभ होजाता है। एवं इसके मूलको तावीज़में रखकर अपतन्त्रक (Hyrteria) की रोगिणीके हाथपर बांधनेसे अनेकोंको लाभ होगया है। इसकी जड़को प्रसूताकी कमरपर बांधनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है। ये सब इस औषधमें दिव्य प्रभावशाली गुण रहते हैं।

श्वेत कुष्ठपर अपामार्गकी राखको मालकागनी या सरसोंके तैलमें मिलाकर लेप करते रहनेसे लाभ पहुँचता है।

कुत्तेके विषपर अपामार्गका चूर्ण १-१ तोला शहदके साथ दिनमें दो बार चटावें; तथा दंशस्थानपर सैंधानमक डाला हुआ घीकुंवारका गर्म बांधने से ३ दिन में विष निवृत्त होजाता है।

शरीरपर बढ़े हुऐ मस्से (मांसार्शहर) अपामार्गक्षार और हरतालको जलमें मिलाकर लेप करनेसे मस्से जल जाते हैं। इससे बहुत जलन होती है। इस-लिये निर्बल प्रकृतिवालोंपर यह प्रयोग नहीं करना चाहिये।

नासार्श (नाकमें अर्श) होनेपर अपामार्ग तण्डुल, रसोईघरका धुँआ और सैंधानमकको तैलमें मिला सिद्ध कर नस्य देनेसे कुछ दिनोंमें मस्सा नष्ट हो जाता है।

व्रण भरने के लिये अपामार्गकी श्वेत राखको शहद या घी में मिलाकर लेप करें। या शुष्क छानी हुई राख बुरकावें।

नासूरमें अपामार्गका रस पहुँचाने से लाभ होजाता है।

(१) शिरोविरेचन—मस्तिष्कमेंसे कफ आदि मलका स्राव कराकर रोग दूर करनेके लिये इसके बीजके चूर्णका नस्य करानेसे शिरमें संगृहीत कफ पतला होकर निकल जाता है, एवं कीड़े पड़े हों, तो वेभी गिर जाते हैं। फिर शिरदर्द, भारीपन, पीनस, आधा शीशी, स्मृतिनाश आदि विकार शमन होजाते हैं। शिरो विरेचनके लिये यह उत्तम औषध है। मस्तिष्कगत जीर्ण रोगोंमें यह अति लाभदायक है। यह शिरो विरेचन, शिरके भारीपन, मस्तिष्क शूल, पीनस, अर्धावभेदक, कृमि, अपस्मार, पीनस और मूर्च्छा रोगमें प्रयुक्त होता है।

(२) शिरदर्द—अपामार्गके तण्डुलकी खीर खिलावें। यह क्षीर दुर्जल है। अतः अग्नि अतिमंद हो, तो नहीं देनी चाहिये। विशेषतः मेदोवृद्धि और कफप्रधान प्रकृतिवालोंको हितकर है।

(३) विषमज्वर—अपामार्गके मूलको प्रातःकाल उठनेपर तुरन्त बाँये हाथ पर बांध देनेसे एवं अपामार्गके पानोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर ज्वर बढनेके पहिले खिला देनेसे ज्वर रुक जाता है।

(४) प्लीहावृद्धि—अपामार्ग क्षार और गुड मिलाकर दिनमें २ वार देनेसे थोड़ेही दिनोंमें प्लीहा दूर होजाती है।

(५) अश्मरीकण—मूत्रमें रेती जैसे कण जानेपर आँधीझाड़ाके क्षारको गोखरू या पाठाके क्वाथमें देनेसे मूत्राशय शुद्ध होजाता है, रेत निकल जाती और उसकी नयी उत्पत्ति बन्द होजाती है।

(६) अर्श—अपामार्गके मूलका चूर्ण शहदके साथ देकर ऊपर चावलका धोवन पिलावें। या अपामार्ग बीजोंका कल्क चावलके धोवनके साथ पिलानेसे रक्तस्राव दूर होता है।

(७) कृमिरोग—अपामार्ग और शिरीषके पानोंके स्वरसमें शहद मिलाकर पिलावें।

(८) नेत्रव्यथा—आंख आनेसे पीड़ा होती हो, तो अपामार्गके मूल और सैंधानमकको ताम्रपात्रपर दहीकी मलाई या घीमें घिसकर अंजन करें।

(९) शुक्र—नेत्रमें फूला पड़ा हो, तो अपामार्गके मूलको शहद में घिसकर अंजन करते रहनेसे १-२ मासमें कट जाता है।

(१०) नक्तान्ध्य—रतौंधीवालेको रात्रिको सोनेके समय अपामार्गके मूलका चूर्ण १-१ तोला शहदमें मिलाकर ३ दिन तक चटाने से नेत्रदृष्टि स्वच्छ होजाती है।

(११) रक्तस्राव—शस्त्रसे घाव लगकर रक्तस्राव होनेपर अपामार्कके पानोंका

स्वरस घावमें भरदेनेसे तत्काल रक्तबन्द होजाता है। एवं अपामार्गके पत्तोंकी पुल्टिस बनाकर बांध देनेसे रक्तस्राव और शोथ दूर हो जाता है।

(१२) प्रसवकाल में कष्ट—(अ) अपामार्गके मूलको जलमें घिस, नाभि, वस्ति और योनि पर लेप करनेसे या योनिमें अपामार्गके ताजे मूलको धारण करने अथवा अपामार्गके रसकी गर्भाशयमें पिचकारी लगानेसे तत्काल सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

(आ) यदि प्रसव वेदना होती रहे, वेग उत्पन्न होते रहें, फिर भी प्रसव न होता हो, तो अपामार्गकी जड़ १ तोला और २ तोले गुड़का क्वाथकर पिलानेसे सत्वर प्रसव हो जाता है।

(१३) गर्भधारण योग—अपामार्गके मूलको दूधमें घिस ऋतुस्नाता स्त्रीको पिलानेसे गर्भधारण हो जाता है। जिस स्त्रीका गर्भाशय शुद्ध हो और पुरुषका वीर्य सबल हो उनको लाभ मिल जाता है।

(१४) योनिशूल—अपामार्गके दो पान योनिमें रखनेसे भयंकर योनिशूल दूर होजाता है, अथवा अपामार्ग और पुनर्नवाके मूलको जलमें घिसकर लेप किया जाता है।

(१५) मासिकधर्ममें वेदना—मासिक धर्मके समय गर्भाशयका संकोच होकर शूल चलता हो, और मासिक धर्म शुद्ध न होता हो तो ३ दिन तक प्रतिदिन अपामार्गके ताजेमूलको लाकर योनिमें धारण करें। इस तरह ३-४ मास तक करते रहनेसे रजःस्राव योग्य मात्रामें होता है; और शूलका निवारण हो जाता है।

(१६) काँटालगना—बबूल आदिके काँटे लगनेपर उस स्थानपर अपामार्ग के पानका रस डालने या पानोंकी पुल्टिस बाँधनेसे तत्काल वेदना निवृत हो जाती है।

(१७) निद्रानाश—निद्रा न आने वालोंको अपामार्ग और काक जंघाका क्वाथ दिनमें ३ समय पिलानेसे रात्रिको शान्त निद्रा आजाती है।

(१८) उन्माद—आचार्य वङ्गसेन लिखते हैं कि, उन्माद रोगीको अपामार्ग मूल २ तोले और श्वेत पुष्पके बरियारे (खरैंटी) के जड़की छाल १ तोलेका दुग्धावशेष क्वाथकर पिलानेसे घोर उन्मादोंकी भी तत्काल शान्ति हो जाती है।

(१८) कफवृद्धि—अपामार्गकी राख अदरखके रस और शहद या केवल शहद्के साथ दिनमें ३ बार चटानेसे कफ सरलतासे निकल जाता है। फिर कास और श्वास रोग दूर हो जाते हैं।

(२०) विच्छूकाविष—जहांतक विष चढ़ा हो वहाँ तक अपामार्ग मूलको जलमें घिसकर, लेप करनेसे और अपामार्ग मूलका जल जब तक कड़वा न लगे, तब तक थोड़ा थोड़ा १५-१५ मिनिटपर पिलाते रहनेसे विष दूर हो जाता है।

जंगलकी जड़ी बूटीकार लिखते हैं कि, राजवैद्य संतशरणजी कहते हैं कि इसके पानोंका रस हाथमें लगाकर बिच्छूको पकड़ा जाय, तो वह चाहे कैसा डंक मारे, तो

भी विष नहीं चढ़ता। इसके पानोंका रस निकाल जहाँ तक विष चढ़ा हो, वहाँतक इसके रसकी पंक्ति करनेसे विष उतरने लगता है। फिर जैसे जैसे विष उतरता जाय वैसे वैसे पंक्ति नीचे नीचे करते रहनेसे अन्तमें डंक स्थानमें विष आजाता है फिर वहाँ पर पानकी पुल्टिस बाँध देनेसे वेदना दूर हो जाती है।

मधुमक्षिका, ततैया आदिके विषपर पानोंकी पुल्टिस बाँधनेसे वेदना सहित शोथ दूर हो जाता है।

(१७) आंवला।

सं० आमलकी, वयस्था, धात्रीफल, अमृतफल, वृष्या। हिं० आंवला, आमला, आंवरा। बं० आमलकी, आमला। म० आंवलकंटी। गु० आंवला, अमला। फा० आम्लज्ञम्। क० नेल्लिकायी। मला० ता० नेल्लिकाई। ते० उसिरीकाय। अं० Emblic Myrobalan ले० Phyllantus Emblica.

परिचय—आंवला भारतमें सर्वत्र होता है। जंगलोंमें नैसर्गिक होता और बागोंमें बोया जाता है। ऊँचाई स्थान भेदसे न्यूनाधिक। राजपूतानेमें २० से ३० फीट, काठियावाड़में १५ से २० फीट। पान समीवृक्षके पानके सदृश, लम्बाई लगभग आध इञ्च, फूल नर-मादा अलग अलग, लाल-पीले। नरफूल डण्ठलवाला। मादा फूल डण्ठलरहित। फल गोलाकार ६ खांचवाला। भारतके अनेक प्रदेशोंमें आमल-एकादशी (फाल्गुन शुक्ला ११) को आंवले की पूजा होती है।

वक्तव्य—बाजारमें आंवले प्रायः निःसत्व मिलते हैं। अतः अच्छे परिपक्व आंवलोंको तोड़कर चटाईपर सूर्यके तापमें सुखा लेना चाहिये। कलमी आंवले जिनका उपयोग मुरब्बेमें अधिक होता है, उसमें गुण न्यून माना जाता है।

मात्रा—चूर्ण १॥ माशेसे ६ माशेतक अम्लपित्त और अत्यार्त्तवमें ६ माशेसे १ तोलेका फाण्ट। स्वरस ३ से ४ माशे तक।

वक्तव्य—आंवला मर्यादित मात्रामें पित्तस्रावी और सारक है। मात्रा अधिक होनेपर विरेचन कराता है।

गुणधर्म—आंवला कसैला, खट्टा, मधुर विपाकयुक्त, शीतवीर्य और लघु है। दाह, पित्त, वमन, प्रमेह और शोफ आदिका नाशक और रसायन है। एवं रक्तपित्त, श्रम, मलावरोध और अफाराको दूर करता है। आंवलेमें मुख्य रस अम्ल होनेसे वातको, शीतवीर्य और मधुररस होनेसे पित्तको तथा रूक्ष गुण और कसैलारस होनेसे कफको दूर करता है, अर्थात् आंवलेका उपयोग तीनों दोषोंकी विकृतिपर होता है। देहके किसी भी मार्गसे श्लेष्मका निःसरण होनेपर, उसे कम करानेमें आंवला उपयोगी है। पित्तप्रकोपसे उत्पन्न दाह और पाकके शमन करने तथा वातना-

ड्रियों की विकृति या निर्बलतासे उत्पन्न शारीरिक शिथिलताको दूर करनेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। तीनों दोषोंपर लाभदायक होनेसे इसे अमृतफल उपनाम दिया है। एवं यह माताके सामान उपकारक होनेसे इसे धात्रीफल भी कहते हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार ताजे पके आंवले दीपन, पाचन, पित्तशामक, अनुलोमक, मूत्रजनन, रुचिकर, बल्य, पौष्टिक, कान्तिवर्धक त्वचारोग नाशक और वाजीकर हैं। ये सब धर्म कुछ कुछ अंशमें हैं। ताजे आंवले रोज खानेपर नीरोगी मनुष्यकी सब क्रिया सबल होकर (रसायन गुण प्राप्त होकर) निर्बलता दूर होती है। इन सब गुणोंके हेतुसे आंवलेको रसायन माना गया है।

सूखे आंवले स्तम्भन, श्लेष्महर, शोणितस्थापन और बड़ी मात्रामें पित्तस्रावी और लंघन हैं।

आंवलेका मुख्य कार्यक्षेत्र रक्त है। शीतवीर्यके हेतुसे यह रक्तकी उष्णता और तीक्ष्णताको कम करता है, शोधन गुणके हेतुसे रक्तके भीतर आये हुए विष, मल आदि को दूरकर रक्तको शुद्ध करता और रक्त धातुके वर्णको भी लाभ पहुँचाता है। रक्तके अनुरूप मांस धातुमें प्रवेश होनेपर मांसस्थ अग्निको प्रदीप्त करके मांसके मलको जलाता और पेशीकोषोंको शुद्ध बनाता है। इसी तरह अस्थियोंके भीतर प्रवेश होनेपर मज्जाको और वीर्याशयमें गमन करनेपर शुक्र धातुको विशुद्ध बनाता है। एवं वात नाड़ियोंको भी सुदृढ़ बनाता है। इन सब धातुओंपर आँवलेका कार्य होता है, इसीलिये आंवलेको रसायन कहा गया है। इस रसायन गुणके लिये आचार्योंने आमलकी रसायन और च्यवनप्राशादि अनेक कल्प निर्माण किये हैं।

आमलकी कल्प—

(१) आमलकी रसायन प्रथम विधि—नये सूखे आंवलोंको कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर ताजे आंवलेके रसकी भावना २१ दिनतक रोज देते रहें और छायामें सुखाते रहें। पश्चात् बोतलमें भर लेवें। मात्रा १॥ माशेसे ३ माशे। अनुपान गोदुग्ध और शक्कर। यह प्रयोग रसायन और वृष्य है।

(२) आमलकी रसायन द्वितीय विधि—नये सूखे आंवलों का चूर्ण, ३ सेर लेकर १६ सेर आंवलोंके रसकी भावना दे देकर सुखावें। फिर आंवलेका चूर्ण, गोघृत और शहद ३-३ सेर, पिप्पलीका चूर्ण ३० तोले और मिश्री ६० तोले मिला अमृतवानमें भर वर्षाकालके प्रारम्भमें राखके भीतर दबा देवें। ४ मास होनेपर निकाल लेवें। मात्रा ३ से ४ माशे यह प्रयोग रसायन और वृष्य है। इसके सेवनसे दीर्घकाल पर्यन्त युवावस्था कायम रहती है, उत्साह और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है, नपुंसकता दूर होती है और सब रोग शमन होते हैं। इसे १ वर्षतक पथ्यपालन सहित सेवन करनेका विधान किया है।

(३) आमलकी-पिप्पली रसायन—आंवलेका चूर्ण ३ सेर, पिप्पलीका

चूर्ण १० तोलेको मिलाकर ताजे आंवलोंके रसकी ७ भावना देवें। मात्रा १॥ से ३ माशे तक। अनुपान-घी शक्कर अथवा शहद। उपयोग—यकृत् निर्बल होनेसे जिनको मन्दाग्नि रहती हो और निर्बलता आई हो, उनके लिये यह रसायन अति हितकारक है।

(४) आमलक्यादि वटिका—ताजे आंवलोंको उबालकर नरम करें। फिर घियाकसपर कसकर उसकी चटनी बनावें। उसके साथ स्वादिष्ट बन जाने योग्य परिमाणमें जीरा, कालीमिर्च, सोंठ, सैंधानमक और हींग मिलाकर ४-४ रत्तीकी लम्बी वड़ियां बनाकर छायामें सुखालेवें। ये वटी रुचिकर और पाचक है। इनमेंसे १-१ वडी मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे लालास्राव, आमाशय रसस्राव,यकृत्के पित्तस्रावादि बढ़ते हैं। जिससे अरुचि, अग्निमान्द्य और मलावरोध दूर हो जाता है। क्षुधाप्रदीप्त होती और मन प्रसन्न होता है।

इनके अतिरिक्त च्यवनप्राशावलेह, धात्रीरसायन, आंवलेका मुरब्बा, त्रिफला (हरड़के वर्णनमें लिखा है), रसायन चूर्ण (गिलोयके वर्णमें लिखा है) आदि अनेक प्रयोग शास्त्रकारोंने निर्माण किये हैं।

उपयोग—आंवलेका उपयोग अति प्राचीनकालसे होता आ रहा है। चरक संहिताकारने वयः स्थापन, ज्वरहर, कासहर और कुष्ठहर दशेमानियोंमें आंवलेका उल्लेख किया है। चरक संहिता और सुश्रुत संहितामें पचनसंस्थाके अनेक प्रकारके रोगोंमें इसका उपयोग किया है। चरक संहितामें विरेचनोपग औषधिसमूहमें तथा सुश्रुत संहितामें अधोभागहर संशमन ओषधियोंमें भी आंवला लिया है। इनके अतिरिक्त आंवलेमें सेन्द्रिय लोह विशेषांशमें होनेसे सुश्रुत संहिताकारने पाण्डुरोगमें आंवले की स्वतन्त्र योजना की है और वाजीकरण गुणकी प्राप्तिके लिये विशेष प्रयोगोंका विधान किया है।

ओषधिके अतिरिक्त अचार, चटनी और शाकमें भी आंवलेका उपयोग प्राचीनकालसे होता आ रहा है। इसका सेवन प्रतिदिन करते रहनेपर भी कुछ हानि नहीं होती; किन्तु सर्व रोगोंमें पथ्य रूप होनेसे लाभ ही पहुँचता है। आंवलेके सेवनसे रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, इन सब धातुओंमेंसे मलिन या मृत परमाणु देहसे बाहर निकल जाते हैं और उस स्थानपर नूतन सबल परमाणुओंका प्रवेश हो जाता है। इस हेतुसे आंवलेका सेवन करनेवालोंको स्वास्थ्य और युवावस्था दोनों की प्राप्ति होती है आंवलोंके सेवनसे मलावरोध, मूत्रावरोध और रक्तविकारकी उत्पत्ति नहीं होती। अनेक रोगोंकी उत्पत्ति इन मलावरोधादि कारणोंसे ही होती है। कारण नष्ट होनेसे कार्यकी प्राप्ति ही नहीं होती।

आमाशयका पित्त तीव्र बननेपर अम्लपित्त और अरुचिकी प्राप्ति होती है। इसपर आँवलेका सेवन हितावह है। यदि आमाशय पित्त और यकृत् पित्तका स्राव कम

होनेसे अरुचि और अग्निमान्द्य रहते हों तो आँवलेकी वड़ियोंका सेवन कराया जाता है।

आँवलेका कार्य नेत्रेन्द्रिय, मूत्रयन्त्र और प्रजनन यन्त्रमें भी होता है, इस हेतुसे विविध नेत्ररोग; प्रमेह और प्रदररोगोंमें आँवलेका सेवन कराया जाता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि आँवलेमें श्लेष्माका ह्रास करानेका धर्म विद्यमान है। बहुत और पतला कफ गिरने, नाकमेंसे बहुत श्लेष्मस्राव होने, प्रमेह और प्रदर, इन सब रोगोंपर आँवले, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय और मुलहठीका क्वाथ करके दिया जाता है।

वस्तिप्रदाहमें आँवले और हल्दीका क्वाथ करके सेवन कराया जाता है। इससे मल शुद्धि होकर पेशाबमें गदलापन कम हो जाता है। यह क्वाथ पित्त प्रकोपमें देनेसे उत्तम लाभ मिलता है। शौचके साथ पित्त गिरनेसे देहमें हलकापन आ जाता है।

अत्यार्तवमें आँवलेका चूर्ण १-१ तोला प्रत्येक बार शहदके साथ दिया जाता है।

अतिसार और प्रवाहिकामें आँवले गुणकारक हैं। जीर्णप्रवाहिकामें आँवलेके पत्तोंका फाण्ट मेथीके साथ दिया जाता है। (देसाई)

(१) श्वेतप्रदर—आँवलेके बीजोंको जलमें पीस ठण्डाईकी तरह छान शक्कर और शहद मिलाकर पिलाते रहनेसे ४-६ दिनोंमें प्रदररोग, जिसमें सफेद पतला जल जैसा स्राव होता हो, वह शमन हो जाता है। यदि दुर्गन्धमय गाढ़ास्राव होता हो, तो आँवलोंके हिमके सेवनके साथ उत्तरवस्ति*द्वारा गर्भाशयको भी आँवलेके फाण्टसे धोते रहना चाहिये।

(२) अपचन जनित ज्वर—आंवला ५ तोले, चित्रकमूल २ तोले, छोटी हरड़ ५ तोले, पिप्पली १ तोला, सेंधानमक २ तोला मिला चूर्णकर ४-४ माशे निवाये जल के साथ सेवन करानेपर उदरशुद्धि होकर ज्वर निवृत्त हो जाता और पचनक्रिया सबल बन जाती है।

(३) वमन—आंवले का चूर्ण, चन्दनके घासेके साथ मिलावें। फिर शहद मिलाकर या शक्कर डालकर चटानेसे पित्तप्रकोपज वमन बन्द हो जाती है।

(४) प्रमेह—जिस प्रमेहमें मूत्र गंदला आता हो, उसपर आंवलों का स्वरस, हल्दी और शहद मिलाकर पिलावें अथवा आंवले और हल्दीका चूर्ण शहदमें मिलाकर चटानेसे ४-६ दिनमें ही प्रमेह दूर हो जाता है।

---

* डूश—चीनी मिट्टी, कांच और एनेमलके आते हैं। उनमेंसे किसी भी प्रकारके डूशमें आँवलेके फाण्ट या हिम भरकर गर्भाशय धोनेकी नली द्वारा योनि-मार्गसे जल चढ़ानेपर गर्भाशय साफ हो जाता है। इस क्रियाको उत्तरवस्ति कहते हैं।

(५) मुखशोष—ज्वरावस्थामें मुँह सूखने और तृषाकी शान्ति न होनेपर आंवले और मुनक्का को पीस चटनी बनाकर चटावें या गोलियां बना मुंहमें रखकर रस चुसावें। इस प्रयोगसे अरुचि भी दूर हो जाती है।

(६) मूत्रकृच्छ और मूत्रदाह—आँवलेका स्वरस और ईखका तुरन्त निकाला हुआ रस, दोनों को मिलाकर या केवल आंवलेके स्वरसमें शहद मिलाकर पिलानेसे उष्णता बढ़कर उत्पन्न हुये पित्तप्रकोपज लक्षण थोड़ा थोड़ा मूत्र आना, बूंद-बूंद मूत्र उतरना, मूत्रमें दाह होना, ये सब शमन हो जाते हैं।

सूचना-(१) यकृत् निर्बल हो तो घी कम खाना चाहिये।

(२) मूत्रमें अम्लता बढ़ी हो तो यह प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(७) अम्लपित्त (अ)—आंवलेका चूर्ण ६-६ माशे केलेके खम्भे के रस या कच्चे नारियलके जलके साथ सुबह-शाम सेवन कराते रहना चाहिये।

(ब) रात्रिको २० तोले जलमें १ तोला आंवला, कांच, पत्थर या मिट्टीके बरतनमें भिगो देवें। सुबह मसल छान १-१ माशे सोंठ और जीरे का चूर्ण मिलाकर पिलाते रहें।

(८) नाकमें से रक्तस्राव—आँवलेका रस पिलावें या चूर्ण खिलावें और आंवलोंको घी में भून कांजीमें या मट्ठे में पीसकर मस्तिष्कपर मोटा मोटा लेप करें।

(९) शिरदर्द—मस्तिकमें उष्णता बढ़नेसे शिरदर्द बना रहता हो, तो आंवलेका चूर्ण, घी-शक्कर मिलाकर सुबह सेवन कराना चाहिये।

(१०) रक्तपित्त—नाक, मुख, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदिसे रक्तस्राव होता हो, तो आँवलेका चूर्ण ६-६ माशे घी-शक्करके साथ सुबह और रात्रिको कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये; अन्यथा आंवलेका रस शहदके साथ देते रहें।

वक्तव्य-(१) भोजन जल्दी पचन होने वाला और पौष्टिक देना चाहिये।

(२) शराब, सिगरेट आदिका व्यसन हो तो उसे छुड़ा देना चाहिये।

(३) गरम मसालेका उपयोग कम कर देना चाहिये।

(४) सूर्य के तापमें फिरना छुड़ा देना चाहिये।

(११) रक्तातिसार और पेचिश—आँवलेके रसमें शहद और घी मिलाकर देवें, ऊपर बकरी का दूध १० तोले दिनमें ३ बार पिलावें,

(१२) कामला—आँवले, हल्दी और सोनागेरूको अच्छी तरह पीस आँखों में अञ्जन करनेसे कामलेके विकारसे नेत्रोंकी रक्षा होती है।

(१३) रक्तार्श—बवासीर के मस्सेमेंसे अधिक रक्तस्राव होता हो, तो दहीकी मलाइके साथ आँवलेके चूर्णका सेवन कराना चाहिये।

(१४) दृष्टिमान्द्य—आंवलेका चूर्ण, रसौत, शहद और घी मिलाकर सुबह

शाम अंजन करते रहने से थोड़े ही दिनोंमें पित्त प्रकोपजन्य दृष्टिकी मन्दता और तिमिर आदि रोग दूर होते हैं।

(१५) शुष्ककास—आंवलेके चूर्णको दूधमें मिला गरम करके सुबह शाम पिलाते रहनेसे जो खाँसी वेगपूर्वक चलती रहती है, वह कम हो जाती है। यदि रक्त-स्राव होता हो, तो भी बन्द हो जाता है।

(१६) नपुंसकता—आमलकी रसायन या च्यवनप्राशावलेहका सेवन शान्तिपूर्वक पथ्य पालन सहित ३-४ मास तक करने से जीर्ण नपुंसकता दूर हो जाती है; तथा शरीर सबल और तेजस्वी बन जाता है।

(१७) पाण्डु—आँवलेका रस ईखका तुरन्त निकाला हुआ रस और शहद मिलाकर सुबह शाम सेवन करने और पथ्यका पालन करनेसे जीर्ण ज्वरादि कारणोंसे आई हुई पाण्डुता दूर हो जाती है।

(१८) स्वरभंग—अधिक बोलने या पित्तप्रकोपसे आवाज बैठ गई हो, तो आंवलेका चूर्ण दूधके साथ सेवन कराना चाहिये।

(१९) सोमरोग—स्त्रियोंकी पेशाब रोकनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है और अत्यधिक स्राव होता रहता है। जिससे शरीर बिल्कुल निस्तेज हो जाता है। ऐसी अवस्थामें आंवलेके रसमें शक्कर और शहद मिलाकर रोज सुबह पिलाते रहने और पके केले खिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ हो जाता है।

(२०) जीर्णप्रवाहिका—पेचिस रोग अति पुराना होनेपर अति त्रास पहुँचाते हैं, उस अवस्थामें अफीमवाली औषधिसे लाभ नहीं पहुँचता। ऐसी अवस्थामें आंतोंके भीतरके क्षत गहरे हो जाते हैं। इस रोगपर आंवलेका हिम अति लाभदायक है। पथ्य पालनपूर्वक १ मास सेवन करनेपर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

(२१) तारुण्यपिटिका—युवावस्थामें किसी किसीको चेहरेपर फुन्सियां हो जाती हैं, उनको आंवलेके हिमसे मुँह धोते रहनेपर फुनसियां दूर हो जाती हैं। इसी तरह मुखमण्डलके काले दाग, पसीनेमें दुर्गन्ध आना, गर्मीके दिनोंमें घामोडिया हो जाना आदिपर भी आंवलेका हिम हितकारक है।

(२२) शीतलाके दाग—शीतलारोगसे मुँहपर दाग रह गये हों, तो आंवले और तिलको दूध या जलमें भिगो, पीसकर मर्दन करनेसे दाग़ दूर हो जाते और मुख-मण्डल तेजस्वी बन जाता है।

शिरदर्द—पित्तप्रकोपसे और कण्ठ या नासादिपर अस्त्र चिकित्सा करनेके पश्चात् होनेवाले शिरदर्दमें कपालपर आंवलेका लेप करनेसे वेदना शान्त हो जाती है।

सूचना—(१) जिनके रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, या जिनको चावल खानेपर उदरमें भारीपन आजाता हो, या खट्टे पदार्थ खानेसे संधिस्थानोंमें दर्द हो

जाता हो, तो उनको आंवलेका उपयोग कम लाभ पहुँचाता है। ऐसी अवस्थामें आंवलेका उपयोग करना हो तो दूध साथमें न देवें। यदि दूध देना ही हो तो, आध-घण्टे बाद देना चहिये।

(२) हृदयका स्पन्दन अति बढ़ गया हो, पचन क्रिया मन्द हो, तो आंवलेके चूर्णकी मात्रा १॥-२ माशेसे अधिक न होनी चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर स्पन्दन बढ़ जाता है और कम मात्रामें दीर्घकालतक सेवन करानेपर हृदयरोगपर लाभ पहुंचता है।

(१८) इन्द्रायन

छोटी इन्द्रायनके संस्कृत नाम—ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, गवादनी, मृगादनी, विषघ्नी, गवाक्षी, सूर्या, पीतपुष्पी। लाल इन्द्रायनके संस्कृत नाम—विशाला, महाफला, चित्रफला, त्रपुसी, रम्या, दीर्घवल्ली, महेन्द्रवारुणी। सफेद पुष्पवाली बड़ी इन्द्रायनके नाम—श्वेतपुष्पी, मृगाक्षी, नागदन्ती, वारुणी, गर्जचिर्भटा।

हिं०, इन्द्रायन, करांटी, टकमकी, चिसलम्भी। म० कारीट। गु० जंगली इन्द्रावणा, गायवसुकणां। राज० तस्तुम्बा। अं० Pseudo Colocynth, ले० Cucumis Trigonus (छोटी इन्द्रायन)

हिं० लाल इन्द्रायन। वं० माकाल, माखाल। गु० रातां इन्द्रावणा। म० कांकतोंडी, कवंडल, कौंडल। क० काकेमंदली। ते० अव्वगद् पण्डु। ता० कुरट्टै। मला० काकफलम्। ले० Trichosanthes Palmata (लाल इन्द्रायण)

श्वेतपुष्पी विशाला—हिं० बड़ी सफेद इन्द्रायण, फरफेन्दू, तुम्बा, इंदारुकी, बड़ाईनारुना। वं० राखालशशा। म० कडु इन्द्रावण, कडु वृन्दावन। गु० इन्द्रवर्णा, इन्द्राणां। पं० कौड तुम्मा। सिं० ओनाडेडा। फा० ख़बुजहे रुबाह। अ० हन्जल हिंज़ल। वलू० खरकुष्ट। मला० कटुवेल्लरि। को० कावंडलि। ते० चट्टिपापर। ता० पेदिकारि। अं० Colocynth Bitter-Appce ले० Citrullus Colocynthis।

हिं० कांटेदार इन्द्रायन। मा० कांटे इन्द्रावण। गु० कांटाला इन्द्रावणां। ले० Cucumis Prophetaram

परिचय—इन्द्रवारुणीकी वेल भारतमें सर्वत्र होती हैं। इसमें मीठी और कड़वी दो जाति हैं। मीठीमें भी कुछ कड़वापन रहता है। नमक लगा, कुछ समय रखकर, फिर धो देनेसे कड़वापन कम हो जाता हैं। औषध रूपसे कड़वी जातिका उपयोग होता है। वेल जमीनपर फैलती रहती है। लम्बाई ४ से १० फीट। पान (पत्र) १ से २ इञ्च व्यासके, ५ कोनवाले तथा ५ खंडयुक्त। पुष्प पीले, रूएंदार

सफेद। नरपुष्प और मादा पुष्प आधसे १ इञ्चके। फल १० पट्टोवाला लगभग १॥ इञ्चका। सामान्यतः बड़े कागदी नीबू जितना बड़ा, कच्चा होनेपर हरा, पकनेपर पीला होता है।

विशाला—इसकी वेल लगभग ३० फीट लम्बी जो, भारतमें सर्वत्र पाई जाती है। पान २ से ६ इञ्च व्यासके, पुष्पासफेद। इनमें नरपुष्पोंकी जोड़ी होती है। इसके बांजूमेंसे कलगी निकलती है। उसपर ५ से १० पुष्प, कलगी ६ इञ्च लम्बी, मोदाफूल एकाकी, पुष्पदण्ड लगभग १ इञ्च लम्बा, फल १॥ से २ इञ्च व्यासका (सामान्यतः नारंगी जितना बड़ा), लाल १० पट्टेवाला होता है। औषध रूपसे फल और मूल व्यवहृत होते हैं।

श्वेत विशाला—इसकी वेल जंगली और कांटेदार इन्द्रायनसे बड़ी होती है। विशेषतः यह तरबूजके खेतोंके भीतर भारतके अनेक प्रान्तोंमें होती है। परन्तु २-३ कांटेदार, पान ३ से ७ खण्डवाले, पुष्प नर-मादा एक ही बेलपर अलग अलग, फीके पीले रङ्गके, फल गोल २-३ इञ्च व्यासके, पहिले हरे, फिर पीले, सफेद-पट्टेवाले, चिकने और चमकीले होते हैं।

कांटेदार इन्द्रायण—इसकी वेल वर्षा ऋतुमें निकल आती है। यह बलुचिस्थान आदि स्थानोंमें बारों मास रहती है। इसके फूलोंपर कांटी होती हैं। वेलकी लम्बाई २ से ६ फीट, पान १ से १॥ इञ्च लम्बे, फूल पीले, फल पहिले हरे और फिर पीले, लम्बगोल और वेनके समस्त अंगपर खुरदरे सफेद रुएँ होते हैं तथा वेलके सब अंग कड़वे होते हैं।

मात्रा—इन्द्रायन गर्भ, २ से ३ रत्ती। इन्द्रायणमें भरी हुई कालीमिर्च २ से ६ रत्ती। श्लेष्मानिःसारणार्थ लाल इनयणकी फलकी छाल ½ से १ रत्ती, दिनमें ३ बार।

गुणधर्म—रस और विपाकमें कड़वी, चरपरी, शीतल, रेचनी, रसमें लघु, उष्णवीर्य तथा कामला, पित्त, कफ, श्लीपद, गुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, इन सबमें उदरशोधनार्थ व्यवहृत होती है। मूढगर्भ गिरानेके लिये भी दी जाती है।

लाल इन्दायनके फलोंकी छाल वामक और कम मात्रामें श्लेष्मानिःसारक है। फलोंका गूदा विरेचन कराता है। मूल शोफहर और ज्वरघ्न है। कांटेदार इन्द्रायणमें आमाशय पौष्टिक और रसायन गुणभी रहा है।

नव्यमतानुसार विरेचन, वान्तिकर, विषहर, रक्तशोधन, ज्वरघ्न, कृमिघ्न और शोथहर।

बड़ी इन्द्रायनके गुणधर्म—इन्द्रायण (कोलोसिन्थ) की मात्रा अधिक होनेपर यकृत् और अन्त्रको प्रबल उत्तेजना देती है, पित्तके जलीय अंश और पित्त द्रव्यके निःसरणमें वृद्धि कराती है। (इस हेतुसे पित्ताश्मरीमें प्रतिबन्ध होकर उत्पन्न होनेवाले कामलामें लाभ पहुँच जाता है)। थोड़ी मात्रामें सेवन करनेपर अन्त्रकी परि-

चालनक्रिया और स्रावणक्रिया बढ़ा देती है और यकृत्को भी उत्तेजित करती है। इसके सेवनसे आममिश्रित जलवत् पतला विरेचन होता और उदरमें मरोड़ आता है। मात्रा अत्यधिक हो जानेपर उदरस्थ अवयवोंमें प्रदाह उत्पन्न कराती है आमाशय, लघु अन्त्र और बृहदन्त्रमें प्रदाह होनेसे मल, रक्त और आममिश्रित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वृक्कोंको उत्तेजना देकर मूत्रकी वृद्धि कराती है। अधिक मात्रा हो जानेपर वृक्क और वस्ति भी प्रदाहग्रस्त हो जाते हैं। अतः इसका उपयोग कभी मूत्रल हेतुसे नहीं होता। किसी किसीको गर्भाशयमें भी प्रदाह होकर गर्भस्राव हो जाता है (अतः सगर्भाको इन्द्रायण नहीं देनी चाहिये) इसके सेवनसे आमाशयमें उष्णता आनेके हेतुसे कभी-कभी उबाक और वमन भी हो जाती है। इसके निवारणार्थ कपूर मिला देना चाहिये।

औषध कल्पः—

(१) संशोधनचूर्ण—बड़ी इन्द्रयनके पके फलमें छोटा छिद्रकर बीजको निकाल डालें। फिर कालीमिर्च भर, कपड़मिटीकर चूल्हेके पास जमीनमें दबा देवें। १ मास बाद निकाल, मिर्चसहित फलके समान वजनमें कालीमिर्च, सोया और सैंधानमक मिलाकर चूर्णकर लेवें। यह चूर्ण अजीर्ण, ज्वर, उदरशूल 'उदरवात, मलावरोध, उदरकृमि, त्वचारोग आदिपर प्रयुक्त होता है। मात्र-१ से ४ रत्ती जलके साथ।

(२) विशालावलेह—विशाला (कोलोसिन्थ) के सूखे फलोंको तोड़, बीज बीज निकाल डालें फिर १५ तोले गर्भ लेवें। एलवा ३० तोले, कालादाने १० तोले, साबुन ७॥ तोले, छोटी इलायचीके दाने २॥ तोले लें और शराब (६० ॰/॰) १ गेलन लेवें। पहिले शराबमें इन्द्रायण-चूर्णको ४ दिन भिगोवें। फिर शराबको टपका लेवें। पश्चात् एलवा, साबुन और कालादाना मिलाकर अवलेह जैसा गाढ़ा करें। सबके अन्तमें छोटी इलायचीका चूर्ण मिला लेवें। मात्रा १ से ४ रत्ती।

(३) विशालादि वटी—विशाला (कोलोसिन्थ) के फलका गूदा २० भाग, एलवा ३५ भाग, कालादाना ३५ भाग, लौंग १० भाग लेवें। इन सबको मिला जलके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बांधें। मात्रा-१ से २ गोली सोंठके फाण्टके साथ देवें। उपयोग—यह उदरशोधनके लिये अति लाभदायक है। आवश्यकतापर १ घण्टे बाद थोड़ा सौंफका अर्क पिलावें या वटी देकर ऊपर थोड़ी सौंफ खिलावें।

(४) इन्द्रायनमें भरी हुई कालीमिर्च—पकी बड़ी इन्द्रायनमें कालीमिर्च भर, ऊपर इन्द्रायनका पान लपेट फिर मिट्टी लगाकर बाटीकी तरह सेकें। सिक जाने-पर इन्द्रायनको ठंडा होने देवें। और फिर सम्पुट तोड़कर मिर्च निकालकर छायामें सुखा लेवें।

मात्रा—२-२ रत्ती जलके साथ।

उपयोग—अपचन, मलावरोध, आमप्रकोप, उदरशूल, आफरा, मन्द-मन्द

ज्वर, अरुचि, अग्निमान्द्य आदिको दूर करता है। इसी तरह अजवायन भी इन्द्रायनमें भरकर तैयार की जाती है।

(५) इन्द्रायनके साथ रक्खी हुई अजवायन—काँटेदार इन्द्रायनके फलोंको एक अमृतबान या घड़ेमें भरें, उसमें रह सके उतनी अजवायन डाल देवें। इन्द्रायनके ऊपर ३-३ इंच अजवायन रहनी चाहिये। उसे अच्छी तरह बन्द रखें। इसे ३ मास बाद उपयोगमें लेवें। अजवायनकी मात्रा १ मासा जलके साथ।

उपयोग—अपचन, आफरा, उदरशूल, उदरकृमि, थोड़ा थोड़ा दस्त होते रहना और अपचन जनित ज्वर ये सब दूर होते हैं।

वक्तव्य—काँटेदार इन्द्रायन का उपयोग विरेचन कार्यके लिये होता है, किन्तु यह श्वेत विशाला जैसी उग्र नहीं है।

(१९) इमली

सं० अम्लिका, चिञ्चिका, तिंतिडीका, चुक्रिका। हिं० इमली, अम्बली, कटारे, अम्लिका। बं० तेंतुल अम्बली, इमली। ओ० तेंतूली। म० चिञ्च। गु०-आँवली। फा० अ० हवारा, जोश। क० हुणिसे। ता० पुलियम पजम्, चिंतपण्डु। ते० चिंतपण्डु। मला० आम्लम्। को चिंचा। अं० Tamarind tree.

ले० Tamarindus Indica

परिचय—सर्वदा हरा बड़ावृक्ष। उत्पत्ति स्थान—भारतके सब शीतोष्ण प्रदेश। ऊँचाई ६० से ८० फीट। घेरा १५ से २५ फीट। मुख्य पान (पत्र) ३ से ६ इंच लम्बे। पर्ण २० से ४० जोड़ी सीकों पर। नये पान और फूल गर्मीके अन्तमें आते हैं। पुष्प सफेद, पीले और लाल, मिश्रितरंगके होते हैं। फूलके बहिरवासमें ५ पुट-पत्र। दलचक्रमें ५ पंखड़ियां, पुंकेसर ७ से १०, इनमें ३ पूर्ण, शेष अपूर्ण स्त्रीकेसर १७ गर्भाशय हरा, चमकीला, चिकना होता है। योनिसूत्र हरा, फली लाल-भूरी ३ से ६ इञ्च लम्बी; ३ से १० बीजवाली होती है और फली बसन्त में पकती हैं। इसकी लकड़ी सफेद, बास खट्टी, स्वाद खट्टा कसैला होता है। औषध रूपसे इसका सर्वाङ्ग उपयोगी है। आयुर्वेदके मतानुसार इस वृक्षकी छाया और वायु प्रसूता और रोगीके लिये हानिकर है।

गुणधर्म—इमलीके कच्चेफल-खट्टे, अति पित्तकर, लघु रक्तकारक, वातशामक और बस्तिशोधक हैं। पक्केफल मधुराम्ल, हृद्य, भ्रांतिनाशक, श्रमनिवारक, उष्ण, रूक्ष, पित्तशामक, लघु, रुचिकर, दीपन, मलावरोधनाशक, वातजित तथा शोफ और पाकोत्पत्तिकर हैं। छालकी भस्म कसैली, उष्ण, कफनाशक, और वातहर होती है। पान शोफहर, रक्तदोष और व्यथानाशक, क्षार शूल और अग्निमान्द्यनाशक, इमली

काथार अति अम्ल, वातहर, कफकर, और दाहकारक है। शक्कर मिलाकर सेवन करनेपर दाह, पित्त, कफ, और व्याकुलता का नाशक हैं। फूल कसैला, मधुराम्ल और रुचिकर, अग्निप्रदीपक, लघु, वातकफनाशक और प्रमेह हर है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार पकी फलीका गूदा पिपासाघ्न, रोचक, दाहशामक, आनुलोमिक और रक्तपित्तप्रशामक है। फलीके छिल्केकी राख क्षारस्वभावयुक्त, मूत्रजनन और सारक है। छालकी राख मृदु स्वभावयुक्त, मूत्रजनन और सारक है। छाल की राख मृदु स्वभावयुक्त और मूत्रजनन है। फूल शोथहर और रक्त संग्राहक है।

सूचना—इमलीका उपयोग दूधके साथ नहीं करना चाहिये। एंव संधि संधि में वेदना वातविकार, विद्रधि कुष्ठ और वृक्क विकारमें नहीं करना चाहिये।

तिंतडी कल्पः—

(१०) चिञ्चिका शर्वत—एकसेर बीजरहित पकी इमली लेकर चीनी मिट्टी, पत्थर या कलई किये हुए वर्तनमें २ सेर जलमें रात्रिको भिगो देवें। जल कमसे कम इमलीसे एक अंगुल ऊपर रहना चाहिये। सुबह जल सह इमलीको चुल्हेपर चढ़ावें। २-३ उफान आनेपर नीचे उतारकर छान लेवें। उसमें २सेर शक्कर मिलाकर शर्वत बना लेवें। फिर गरम-गरम छान लेवें। शीतल होनेपर बोतलमें भर लेवें। मात्रा १ से २तोले। आवश्यकतापर१-१घण्टेपर३-४बार जलके साथ। उपयोग-पित्तप्रकोप,अपचन जन्य वमन, दाह और व्याकुलताको दूर करता है। गर्मीके दिनोंमें सेवन कराने पर व्याकु- दूर होती है, लू लगनेसे रक्षण हो जाता है। शराब, गांजा, भांग, धतूरे आदिका नशा आनेपर भी इस शर्वतका अच्छा उपयोग होता है।

(२) चिञ्चिकहिम—बीजरहित पकी इमली ४ तोले, पिण्ड-खजूर, मुनक्का खट्टे मीठे अनार दाने और फालसा १-१ तोला लें। सबको ४० तोले जलमें भिगोवें। १-२ घण्टे बाद मसलकर छानलेवें। इसमेंसे ४ हिस्साकर १-१ घण्टेपर पिलाते रहनेसे शराब का नशा उतर जाता है।

(३) चिञ्चिकादिवटी—पकी बीजरहित इमली, मट्ठेमें भिगोकर शुद्ध किया हुआ छिल्के रहित लहसुन और भिलावा इन तीनोंको समभागमिलाकर इमलीके फलोंको ८ गुने जलमें भिगोकर निकाले हुये जलमें खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली १५-१५ मिनटपर प्याजके २-२ तोले रसके साथ देते रहनेसे ३-४ घण्टेमें कालेरा दूर हो जाताहै। यह उपचार रोग होनेपर तुरन्त करना चाहिये।

उपयोग—इमलीका उपयोग भोजन, घरेलू औषधि और शास्त्रीय प्रयोगोंमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। चरकसंहिताकारन और सुश्रुत संहिताकारने अनेक रोगोंपर इमलीका प्रयोग किया है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, पित्तज्वर या किसी भी ज्वरमें कब्ज और दाह

होनेपर इमलीका पना बनाकर दिया जाता है। अत्यार्तवमें फलीके छिल्केकी राख और सुजाकमें छालकी राख लाभ दायक है। पानोंकी पुल्टिस व्रणशोथ पर बांधी जाती है। नेत्राभिष्यन्दमें पुष्पोंको नेत्रपर बाँधते हैं।

डाक्टर खोरीने लिखा है कि, पकी इमलीका गर्भ रक्तपित्त (Scurvy) नाशक श्रमहर और सारक है। ज्वरमें तृषा अधिक लगने तथा लू लगनेपर इसका पानक पिलाया जाता है। यह पानक पित्तकी वमनको भी दूर करता है। जीर्ण मलावरोधके रोगीको सारक रूपसे इसका सेवन कराया जाता है। स्थानिक शोथ और प्रदाहपर फलीका गूदा और पानोंको पीस गरम करके लगाया जाता है। मुखपाक और कण्ठक्षत होनेपर इसके पानोंके फाण्टसे कुल्ले कराये जाते हैं। पेचिशमें इसके बीजोंकी गिरीकी चूर्ण दिया जाता है। सुजाक और मूत्रकी अतिक्रिया अम्ल होनेपर इमलीका क्षार घीकेसाथ मिलाकर दिया जाता है।

(१) वमन—इमली वृक्षकी छालको जला, राखकर ८ गुने जलमें मिलावें। १ घंटे बाद ऊपर ऊपर से जल नितार कर छान लेवें। उसमेंसे ५-५ तोले जल आध आध या एक एक घण्टेपर (या वमन होनेपर) पिलाते रहनेसे आमाशयिक पित्तेतज होनेसे होनेवाली खट्टी और उष्ण वमन बन्द हो जाती है। अपचन जन्य वमनमें भी यह लाभ पहुँचाती है। यह जल अम्लपित्तमें भी सुबह पिलाने और भोजनके २ घण्टे बाद पिलानेमें उपयोगी है। इसजलसे अम्लपित्तकी वमन और दाह दूर होते हैं।

(२) उदरशूल—अपचन होकर उदरशूलहोताहो तो इमलीकी सफेद राख २-से ४ मासे तक शहदके साथ मिलाकर चटावें। आवश्यकतापर १-१ घण्टेपर २-३ बार चटाने से उदरशूल, अफारा, अपचन, और मलावरोध दूर होते हैं।

(३) विसूचिका—वर्तमानमें कालेरोका अति प्राब होरहाहै। कालेराकी प्रारम्भावस्थामें चिंचिकादिवटीका सेवन करानेसे तुरन्त लाभ होजाता है। एवं यह वटी अपचनपर भी उपकारक है।

(४) व्याकुलता—गर्मीके दिनोंमें धूपमें फिरनेपर बहुत बैचेनी होती है। उसपर चिञ्चिका शर्बत पिलाया जाता है। अथवा इसके फूलोंमें से गुलाबके पानोंके समान गुलकंद बनाकर सेवन कराया जाता है। गुलकंद बनानेमें समान शक्कर मिलाई जाती है। मात्रा २ से ४ तोलेतक।

(५) अर्श—इमलीके फूलोंकाशाक दही और अनारदानोंका रस मिलाकर पकावें, उसमें धनिया और सोंठ मिलाकर सेवन करानेसे बवासीरकी वेदना शान्त होती है। और उदर शुद्धि होती है। विशेषतः यह दोपहरके भोजनके समय दिया जाताहै।

(६) नेत्रकीलाली—इमलीके पानोंकारस और दूधमिलाकर कांसीकी थाली में कांसी के कटोरेसे या ताम्बेके कटोरेसे खूब घोटें। फिर आंखोंके पलकपर तथा चारोंओर लगादेनेसे लाली, अश्रुस्राव और दाह दूरहो जातेहैं।

(७) सोमरोग—मूत्रोत्पत्ति चाहिये उससे अधिक होती हो, मूत्रधारण शक्ति कमहोगईहो और इस मूत्रविकारसे देहक्षीण होगयाहो, तो ४ माशे इमलीकी गिरीको रात्रिके समय जलमें भिगोदेवें। दूसरे दिन सुबह छिल्के निकाल, दूधके साथ पीस छानकर पिलादेवें। इसके सेवनसे स्त्री पुरुष, दोनोंको लाभ पहुँचता है। हड्डियां निर्बल हुई हों, वे फिर से सबल बन जाती हैं।

(८) अतिस्वेद—स्वेदअति उत्पन्न होताहो और देहमेंसे दुर्गन्धनिकलती रहती हो, तो पकी इमलीकी गिरीको और इमलीके फूलोंको जलमें पीसकर लेप करने से दुर्गन्ध दूर होजाती है।

(९) क्षत कास—कफमें थोड़ा थोड़ा रक्तआताहो, ऐसी अवस्थामें, इमली-के बीज अच्छा लाभ पहुँचाते हैं। बीजों को तवेपर सेक, ऊपरसे छिल्के निकालकर कपड़ छानचूर्ण करें। इसमेंसे २-२ माशे चूर्ण घी और शहदके साथ दिनमें ३-४ बार देते रहनेसे थोड़ेही दिनोंमें रक्तस्राव और पीलाकफ गिरना दूर होजाता है। खांसी का वेग शान्त होता है और कफ सरलतासे निकलने लगताहै। कफ सफेद हो जानेपर सितोपलादिचूर्ण अथवा दूसरी औषधिका उपयोग करना चाहिये।

(१०) जीर्णआमातिसार और आमसंग्रहणी—आमाशयकी पचनक्रिया विकृत बननेपर आमाशयमेंसे बहुतसा दूषित आम अन्त्रमें जाताहै। फिर वह यकृत्-का पित्त मिलनेपर पचन होता है। यदि यकृत् निर्बल होतो आमाशयसे निकला हुआ खट्टापित्त और आमकापचन या योग्य रूपान्तर नहीं होता। फिर दुर्गन्धमय गरम गरम पतला दस्त होता है और आम भी साथमें जाताहै। आंतोंमें उग्रताआनेपर आंतोंकार-सभी साथमें निकलता रहताहै। ऐसी अवस्थामें इमलीका सेवन आशीर्वादके समान है। पकी इमली खिलायी जाती अथवा इमलीके फूलोंके गुलकंदका सेवन कराया जाताहै।

(२०) इशरमूल।

सं० ईश्वरमूल, अर्कमूल, अहिगन्धा, ईश्वरी, नाकुली। हि० इशरमूल, इशलांगला। म० सापसण, कडुला, सापशी गु० नोलवेल। कच्छी-अर्क-मूल। अ० फा० जरावंदे हिंदी। क० ईश्वरवल्ली। ते० ईश्वरवेरु, गोविल। ता० अडगम, कर्कुगाडो। गोआ—सापुस। सिं० सापसंद। अं० Indian Birthioort ले० Aristolochia Indica.

परिचय—एरिस्टोलोकिया=प्रसव करानेमें उत्तम। इण्डिका=भारतीय। यह बहु वर्षायु झाड़ीनुमा वेल है। कभी वृक्षसे लपटी हुई कभी जमीनपर फैली हुई। पुरानी वेलके तनेका व्यास १॥ इञ्चतक। पान अखण्ड या अविभाजित, लम्ब-गोल, लम्बे, सकड़ा भाग आधसे पौन इञ्च लम्बा, सबसे चौड़ा भाग ४ से ५ इञ्च

लम्बा और ३ इञ्च चौड़ा। फूल गहरे हरे रंगके। फली १॥ से २ इञ्च लम्बी। यह बङ्गाल, महाराष्ट्र, मद्रास, काठियावाड़ सौराष्ट्र आदि अनेक स्थानोंपर होती है।

इसकी जड़ और काण्डको टुकड़े करके सुखा देते हैं। छाल धूसराभ, पीत वर्णकी और डाटके समान। मूल गहरे पीले-लाल रंगके। सुगन्ध कपूरके समान, स्वाद भी कपूरके समान कड़वा। मूलके ऊपर कंद होता है।

यह ओषधि पहले ब्रिटिश फार्माकोपियामें थी। १९१४ ई० से कम की है। डाक्टरीमें केवल मूल और कन्दको उपयोगमें लेते थे। इस ओषधिके भीतर मुख्य द्रव्य एरिस्टोलॉकिन (Aristolockrin) है। यह सर्प विषनाशक है।

मात्रा—पंचाङ्गका चूर्ण ५ से १५ रत्ती, त्रिकटुसह नागरवेलके पानमें। मूलका चूर्ण ४ से ८ रत्ती, पानोंका स्वरस २ से १० माशेतक।

गुणधर्म—रसमें कड़वी, सर्प विषहर, विषघ्न, शान्तिप्रद और बल्य। कुष्ठ, कण्डू और कफकी नाशक।

डाक्टर कीर्तिकरके मतानुसार मूल अति कड़वा, उत्तेजक, पौष्टिक और रजोनिःसारक है। सविरामज्वर और अन्य पीड़ाओंपर प्रयोजित होता है।

यह बम्बईमें बालकोंके अन्त्र व्याधियोंपर विशेषतः व्यवहृत होता है। विसूचिकामें उत्तेजक और पौष्टिक रूपसे दिया जाता है; और इसका लेप उदरपर भी किया जाता है।

ताजे पानोंका स्वरस बालकोंके गलौघ (Croup) रोगमें अति उपयोगी है। कुछ भी दबाव किये बिना यह सरलतापूर्वक वमन कराकर लाभ पहुँचाता है।

डॉ० राधागोविन्दकरके मतानुसार बलकारक, उतेजक और कफ निःसारक। ज्वररोग और ज्वरान्त दौर्बल्यपर उपकारक। यह अपचन और अतिसारमें व्यवहृत होता है।

डॉ० देसाईके मतानुसार ईश्वरमूल कपूर सदृश सुगन्धवाली और कड़वी है। यह देहके सब मार्गोंपर क्रिया करनेवाली उत्तम ओषधि है। यह कड़वी, पौष्टिक, वातहर, ग्राही, गर्भाशय उत्तेजक, संविशोथघ्न, वात नाड़ियोंको उत्तेजक, स्वेदजनक, ज्वरघ्न, नियतकालिक ज्वर प्रति बन्धक और विषघ्न है।

सूचना—इस ओषधिको कभी उबलना नहीं चाहिये। अन्यथा सुगन्धित तैल उड़ जायगा ओषधिका गुण बहुत कम हो जायगा।

ईश्वरमूलकल्पः

(१) सान्द्रभूत ईश्वरमूल विलयन—(Liquid Arisjolochial Concentratus) मूलका चूर्ण १० औंस और मद्यार्क (२०°/॰) २५ औंस यथाप्रयोजन लें। पहले ५ औंस मद्यार्क मिलाकर ३ दिन रहने देवें। पश्चात् पर्कोलेशन

क्रियाद्वारा टपका लेवें। बारबार १२ घण्टेके अन्तर २-२औंस मद्यार्क मिलाते जाँय। इस तरह २० औंस द्रव तैयार करलें। मात्रा आधसे २ ड्राम।

(२) ईश्वरमूल अर्क—(Tinct. Aristolochial) मूलका चूर्ण ४ औंस और मद्यार्क (७०°/₀) २० औंस या यथाप्रयोजन लें। पहिले ४ औंस मद्यार्क मिलावें। ४० घण्टेतक भिगोवें। फिर और मद्यार्क मिलाकर पर्कोलेशन प्रक्रिया द्वारा २० औंस अर्क बना लेवें। मात्रा आधसे एक ड्राम।

दूसरी विधि—पञ्चाङ्गका चूर्ण ८ औंस और देशी शराब २० औंस बोतलमें भर एक सप्ताह रहने देवें। रोज ३-४ समय बोतलको चला लेवें। फिर छान लेवें। मात्रा १ से २ ड्राम।

उपयोग—ईश्वर मूलके सेवनसे आमाशयकी पचनक्रिया बढ जाती है, और अन्त्रकी शिथिलता कम हो जाती है। अन्त्ररोग होनेपर यह अति मूल्यवान औषधि है। अपचन, वमन, अजीर्णजनित विसूचिका, कीटाणुजन्य विसूचिका, अतिसार, ग्रहणी बृहदन्त्रमें वायुका भरा रहना और जीर्ण प्रवाहिका, इन रोगोंपर ईश्वरमूलका सेवन कालीमिर्चके साथ करानेका विशेष रिवाज है।

बालकोंके दांत निकलनेके कष्टको कम करानेके लिये यह श्रेष्ठ औषधि है। दांत आनेके समय ज्वर, वमन, हरे-पीले दस्त होना आदि विविध विकार उपस्थित होते हैं। उस अवस्थामें ईश्वरमूल दिया जाता है। यह बालकोंको तुरन्त लागू हो जाता है। बालकोंके उदरकृमिको दूर करनेके लिये इसे दूधमें घिसकर पिलाना चाहिये। श्वेत कुष्ठपर इसका प्रयोग शहदके साथ किया जाता है।

(१) ज्वर—सब प्रकारके ज्वरोंपर ईश्वरमूल हितकारक है। ज्वरावस्थामें शिर-दर्द, मूत्रदाह, हाथ पैर टूटना, बेचैनी प्रलाप आदि लक्षण होनेपर ईशरमूलका चूर्ण, या फाण्ट देनेपर थोड़े ही समयमें प्रस्वेद आने लगता है, मूत्रवृद्धि होती है फिर शिर-दर्द दूर होता है; थकावट नहीं आती; ज्वर शमन हो जाता है; और पचनक्रिया प्रबल बनती है।

(२) कफ प्रधान ज्वर—कफज्वर होनेपर बार-बार कास आती है; और कष्ट पूर्वक कफ निकलता है। उसपर ईश्वरमूलका प्रयोग अदरख या नागरबेलके पानेके रस और शहदके साथ करनेसे वातवाहिनियां उत्तेजित होती हैं। जिससे कफ सरलतासे बाहर निकल जाता है। (शुष्क कास हो तो अदरख या पानका रस नहीं देना चाहिये)

(३) विषम ज्वर—विषमज्वरमें सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, सबपर इसका उपयोग होता है। ज्वर नया हो या पुराना, सबपर ईशरमूल गुणकारी है। पालीके बुखारोंमें ६ घण्टे पहिलेसे २-२ घण्टेपर ईश्वरमूल और तगरका का फाण्ट पिलाते रहें। यदि ज्वर आजाय, तो दूसरी पालीमें चला जाता है। यह औषधि चढ़े हुए ज्वरमें भी दे सकते हैं इससे क्विनाइनके समान कभी हानि नहीं

होती। यह स्वेदल और मूत्रल होनेसे विषको प्रस्वेद और पेशाब द्वारा बाहर फेंक देते हैं।

(४) आशुकारी आमवत रोगमें—ज्वर १०२° से १०६° तक बढ़ जाता है। देहमें स्थान स्थानपर बिच्छू काटनेके समान दर्द होता है। सांधाओंमें क्षार संगृहीत होनेसे शोथ भी आजाता है। इसपर ईश्वरमूलका उपयोग यवक्षार के साथ किया जाता है। उदर शुद्ध न हो, तो निशोथ भी देना चाहिये। एवं दुखते हुये सांधोंपर जलमें घिस लेपकर ऊपर एरण्ड या नागरवेलका पान बांध देवें। जिसमें प्रस्वेद आकर और मूत्रशुद्धि होकर वेदना और शोथका ह्रास हो।

(५) जीर्ण आमवातमें—आमवात पुराना होनेपर यह औषध प्रातः सायं कम मात्रामें त्रिकटु और निवाये जलके साथ एकाध मासतक दी जाती है। इससे धातुओंमें लीन विकार जलकर प्रस्वेदके साथ निकल जाता है और रोगदमन हो जाता है। एक बार आमवात हो जानेपर इसका आक्रमण बारबार होता रहता है। विशेषतः वर्षाऋतुमें या अधिक शक्कर खानेपर। अतः पूर्ण पथ्यका पालन करना चाहिये।

(६) सूतिका ज्वर—यह बहुधा गर्भाशयमें विष रहनेसे आता है। उस विषको बाहर निकाले बिना ज्वर शमन नहीं होता। इस विकारमें इश्वरमूल त्रिकटु (या चित्रकमूल) के साथ देनेसे गर्भाशयमें उत्तेजनाकी वृद्धि होकर विष निकल जाता है, और ज्वर निवृत्त हो जाता है।

(७) प्रसवकष्ट—प्रसवावस्थामें कष्ट होनेपर यदि प्रसव न होता हो, ईश्वरमूल पीपलामूलके साथ देनेसे गर्भाशयका अधिक बलपूर्वक संकोच होता है। परिणाम में गर्भको बाहर निकालनेमें सहायता मिल जाती है। यह क्रिया अति स्पष्ट और निश्चत होती है। साथ साथ गर्भको भी बाधा नहीं पहुंचती तथा आंवल और दूषित रक्तको बाहर फेंक देनेमें भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

(८) गलौघ—बालकोंकी छातीमें कफ भर जाने और कण्टमें आवरण आ जाना गलौघ (Croup) होनेपर ईश्वरमूलके पानोंका रस पिलाया जाता है। इससे वमन होकर कण्ठ खुल जाता है; और बालक सरलतापूर्वक दुग्धपान करने लगजाता है। कण्ठमें जो झिल्ली आगई हो. वह टूट टूटकर निकल जाती है; और किसी भी प्रकारकी निर्बलता नहीं आती।

(९) सर्पविष—यदि सर्प विषका रोगी बेहोश हो गया हो, तो ताजे ३ पत्तोंको कालीमिर्चके साथ जलमें पीस छटांक भर जलमें मिला, छानकर मुँहमें डाल देवें। इस औषधके प्रतापसे थोड़ेही समयमें चेतना आती है। चेतना आध घण्टेमें न आवे, तो पुनः दूसरी मात्रा देदेवें। ताजे पानोंके अभावमें पञ्चाङ्ग या मूलका उपयोग (४-६ माशे मात्रामें) किया जाता है।

कर्नल चोपराने सर्प विषपर पानोंका ताजा रस पिलानेको कहा है, वह विशेष हितावह माना जायगा। साथ साथ सांपके काटे हुए स्थानपर तत्काल घावकर कुछ रक्त निकाल दिया जाय और तुरन्त, ईश्वरमूलके पत्तोंके रसकी मालिश की जाय, तो वह भी विष शमनमें सहायता पहुँचाता है।

सांप, बिच्छू, गोह, चूहे आदिके विष, अफीम आदि ओषधियोंके विष और धातु—उपधातुओंके विषको दूर करनेके लिये ईश्वरमूलको कालीमिर्च या रीठेके जलमें या चिरमीके मूलके साथ पीसकर पिला देनेसे ४-६ बार वमन होकर विष दूर हो जाता है। यदि वमन अधिक हो, तो घी और मिश्रीमिला दूध अथवा भात या साबूदानेकी खीर बनाकर खिलावें।

कर्नल चोपरा, डाक्टर नादकर्णी, एन्सली आदि अनेकोंने इसे सर्पविषकी सफल औषधि दर्शायी है; किन्तु डाक्टर हसकर और कैयसके अनुसंधान अनुसार कालेनागके दंशके पूर्ण विषके शमनमें बिल्कुल निरर्थक सिद्ध हुई है।

सूचना—सगर्भावस्थामें ईश्वरमूलका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा गर्भपात होजाता है। गर्भपात होनेके उदाहरणभी मिले हैं। मासिकधर्म बन्द होजाने और कष्टसे आनेपर यह गुणकारी औषध है।

एरण्ड।

सं० एरण्ड, गन्धर्वहस्तक, हस्तिकर्ण, व्याघ्रदल, दीर्घदण्डक, चित्र-बीज, रुबु, वातारि। हि० एरण्ड, अरण्ड, अण्ड, रेण्ड। बं० भरेण्डा। आ० ऐरी। कोल—जराविन्दी। म० एरण्डी। गु० एरण्डो। क० हरलु (तेलको हरे लेनाई)। ता० आमणक्कु (तेलको आमुदम) मला० चिट्टामणक्कु (तेल-को अमानक्कू एना) ते० अमुदमु (तेलको अमुदम) फा० वेदंजीर। अ० खिरवा। अं० Castor oil Plant. ले० Ricinus Communis.

परिचय—छोटा सर्वदा हरा वृक्ष। ऊंचाई ६ से १० फीट। पान हरे या रक्ताभ, १ से २ फीट व्यासके। डण्ठल ४ से १२ इञ्च। मंजरीमें नरफूल, आध इञ्च व्यासके, मादा फूलके बाह्यकोष उतने ही लम्बे। डोडी आध से एक इञ्च लम्बी, लगभग गोलाकार। बीज लम्बगोल, चिकने, इसकी मुख्य ३ जाति हैं। (डा० मूलरने ने १७ जाति दर्शायी है।) दोमें फल हरे और एकमें लाल होते हैं। हरे फल, और कम ऊंचाई वाले वृक्षकी एरण्डीमेंसे तैल अधिक निकलता है।

वक्तव्य—इनमेंसे ओषधरूपसे छोटी जातिके मूल और तैल तथा बड़ी जातिके पानोंका उपयोग करना चाहिये। तैल बीजोंको दबाकर और उबालकर निकालते हैं। इनमेंसे दबाकर निकाला हुआ तैल विशेष लाभदा-यक है। उबालकर निकाला हुआ तैल दाहजनक है।

खली वामक और जहरी है। पशु खा नहीं सकते। खादके लिये हितकर है। उसमें नाइट्रोजन और अन्य क्षार अवस्थित हैं।

मात्रा—एरण्ड तैल २ ड्रामसे १ औंस या अधिक। बालकोंको एक ड्राम।

गुणधर्म—धन्वन्तरि निघण्टुकारके मतमें एरण्ड रसमें कड़वा, मधुर, विपाकी, उष्णवीर्य और वातनाशक है। उदावर्त' प्लीहा, गुल्म, बस्तिशूल और अन्त्रवृद्धि (अन्त्रावरण Hernia) को दूर करता है। यह गुरु, वातशामक और रक्तविकार-नाशक है। फल मधुर, नमकीन, लघु उष्णवीर्य, भेदन, पित्त और वातको जितने वाला है।

राजनिघण्टुकारके मतानुसार रसमें चरपरा, विपाकमें कड़वा उष्णवीर्य और कफघ्न है। ज्वर, वात और कासको दूर करता है। लाल एरण्ड शोथ, पाण्डु, ज्वर, कफ, भ्रान्ति, श्वास और अरुचिको दूर करता है। इनके अतिरिक्त भावप्रकाशकारने कटिवात, बस्तिपीड़ा, शिरदर्द, उदररोग, बद, अनाह, कुष्ठ और आमप्रकोपमें भी लाभदायक कहा है।

एरण्डपान—वातहर, कफ और कृमिके नाशक हैं। एवं मूत्रकृच्छ्र, पित्तप्र-कोप और रक्तविकारको दूर करता है। गुल्म, बस्तिशूल, कफ, वात, कृमि और वृष-णवृद्धिको नष्ट करता है।

एरण्डफल—अत्युष्ण, गुल्म, शूल और वातरोगका नाशक है। एवं यकृदु-दर, प्लीहोदर, अर्श, श्लेष्मोदर, वातोदर आदिको दूर करता है और विरेचक है।

सूचना—एरण्डफलकी गिरीको उपयोगमें लेना हो तो उसमें रही हुई जिह्वा निकाल देनी चाहिये अन्यथा उबाक आती रहती है।

एरण्डतैल—अल्प, गुरु, उष्ण, मधुरविपाकी, सारक, चरपरा, दीपन, लेखन तथा कफ, मेद और वातका नाशक है। हृदय, बस्ति, पार्श्व, जानु, ऊरु, कमर, पीठ और हड्डी आदिके शूलका नाशक है। वातरक्त, प्लीहा, उदावर्त और शोफरोगमें आमप्रकोप होनेपर इसका प्रयोग होता है। रक्त एरण्डका तैल कड़वा, उष्णवीर्य और पित्तकारक है। राज निघण्टुकारने कुष्ठनाशक, रसायन और दीपन भी कहा है। इनके अतिरिक्त भावप्रकाशकारने योनिशोधघ्न, वीर्यशोधन और विद्रधिनाशक भी लिखा है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार एरण्डतैल सौम्य, स्रंसन, स्तन्यजनन, दाहशामक और वातहर है। मूल वातहर। स्रंसनवर्गमें एरण्डतैल यह अच्छा उदाहरण है। रात्रि-को १-२ ड्राम देनेपर दूसरे दिन सामान्यतः पतला और पीले रङ्गका एक (या दो) दस्त होता है। एरण्डतैलसे अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें मृदुता आती है। इससे मलकी गांठे शिथिल होकर नीचे चली जाती है। इस तरह मलको सरकानेवाले द्रव्योंको स्रंसन कहते हैं।

एरण्डतैलकी क्रिया अन्त्रके प्रारम्भिक १२ अंगुलवाले भाग (ग्रहणी) पर

होती है। इसकी क्रिया यकृतपर बिल्कुल नहीं होती। यह अति सौम्य होनेसे कभी दगा नहीं देता। मात्रा अधिक होनेपर कुछ पतला दस्त एकाध अधिक होता है। (फिर भी कभी हानि नहीं पहुँचाता) ऐरण्ड तैलमें पीछेसे कुछ कब्ज करनेका थोड़ा धर्म है। इस एरण्ड तैलके अतिरिक्त सारक स्रंसन—अनुलोमिक वर्गकी अन्य औषधियों—सूखे अंजीर, कालीमुनक्का, गन्धक, काहू (Lactuca Larmentora) आदि हैं। द्रव्योंसे भी विशेष और जलसदृश पतले दस्त नहीं होते। और उनसे अन्त्र का प्रदाह आदि कुछ भी हानि नहीं होती। इन सबमें एरण्ड श्रेष्ठ है।

एरण्डतैल सुबह खाली पेट होनेपर देना चाहिये। साथमें अदरखका रस मिला देना, यह उत्तम अनुपान है। अदरखके रस या सोंठका क्वाथ मिलानेसे आमको निकालनेकी क्रियामें और अग्निको प्रदीप्त करनेमें सहायता मिल जाती है।

स्रंसन औषधियां छोटे बालक, वृद्ध और स्त्रियोंको दी जाती हैं। एरण्डतैल सगर्भावस्थामें भी दे सकते हैं। स्त्रियोंके कटि स्थानमें रही हुई इन्द्रियोंका प्रदाह होता है, उसपर एरण्ड तैल देनेसे कुछ भी त्रास नहीं होता। एरण्ड तैलमें पीछेसे कब्ज करनेका धर्म भी है। अतः रोज रात्रिको सोनेके समय १-२ ड्राम देनेसे जीर्णमलावघरोध दूर होता है। (देसाई)

डाक्टर खोरीने लिखा है कि, एरण्डबीजके तेलके अतिरिक्त शेष सब द्रव्य अति विरेचक हैं। तैल प्रायः अदरखके रस (या सोंठके क्वाथ) चाय या दशमूल क्वाथके साथ दिया जाता है। यह तैल उदीपक (उग्र) नहीं है। सेवन करनेके पश्चात् जब वह ग्रहणी में पहुंचता है तब वहां उसके साथ आग्नेयरस (Pancreatic guice) मिल जाता है। फिर वह एरण्डाम्ल (Recinoleic acid) में परिणत हो जाता है। जो अन्त्रमें उग्रता लाता है। अन्त्रकी ग्रन्थियां और अन्त्रकी पेशी वृत्तिको उत्तेजित करता है। जिससे विरेचन क्रिया होती है। एरण्ड तैल यकृत्को कभी उतेजित नहीं करता। इसका परिणाम ४-५ घण्टेमें होता है। उदरमें कुछ भी वेदना या शूल उत्पन्न किये बिना प्रवाही विरेचन होता है। फिर अन्त्रपर शामक असर पहुंचता है। है। (उस समय अन्त्रका कुछ आकुंचन होता है) यदि एरण्डतैलके साथ ग्लिसरीन मिला दिया जाय तो विरेचन क्रिया बढ़ जाती है।

अन्त्रमें जो एरण्डाम्ल बनता है, उसका शोषण रक्त और तन्तुओंमें होता है। यदि छोटे बच्चेकी माताको एरण्ड तैल दिया गया हो तो वह दूध (स्तन्य) द्वारा बाहर निकलता है। जो बच्चेके उदरमें जाकर उसे विरेचन करता है। सेवन किये हुये एरण्डतैलमें खमीर आनेपर एरण्डविष (Risin) उत्पन्न होता है, वह अन्त्र, वृक्क और मूत्राशयमें तीव्र वेगसे उष्णता उत्पन्न कराता है। कभी-कभी यह उग्रता पितनलिकामें प्रदाह ला देता है। फिर कभी कामला और मूत्र कृच्छताकी संप्राप्ति करा देता है। अतः कामला या यकृत् प्रदाहसे पीड़ितोंको कभी एरण्ड तैल नहीं देना चाहिये।

एरण्ड तैल आफरा, मलावरोध, ज्वर, आमवात, प्रजनन और मूत्रसंस्थाके अवयवोंमें प्रदाह, वृक्कप्रदाह, सुजाक, अश्मरी, गुदनलिकासंकोच, मूत्रमार्गमें संकोच आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है। अतिसारका प्रारम्भ होनेपर यदि आंतोंके भीतर उग्रताउत्पादक मल या अन्य द्रव्य अवस्थित होनेसे अन्त्रस्राव अधिक होता हो और उसमें रक्तसंचय अधिक हुआ हो तो एरण्ड तैलका सेवन कराना अति हितकारक है। इससे निर्बलता नहीं आती, बल्कि बल बना रहता है। उदरगुहा और विटपभाग (पेड़ू) पर शस्त्रक्रिया करनेपर एरण्डतैलका सेवन कराया जाता है।

यदि आन्त्रिकज्वर (मधुरा—Typhoid) सगर्भावस्था, प्रसवावस्थाके पहले और प्रसव होनेपर (Postnatal) मलावरोध हो, तो एरण्डतैलका प्रयोग किया जाता है। अन्त्र अथवा वृक्कके भीतर शूल चलनेपर अदरखके रस (और शहद) के साथ मिलाकर देनेपर शूल शमन हो जाता है। अन्त्रमें यदि गोलकृमिके हेतुसे प्रदाह हुआ हो, तो उसमें और उदर्य्याकला प्रदाह और पेचिशमें अफीमके अर्कके साथ एरण्डतैल दिया जाता है। जिससे वेदना शान्त होती है और उदरकी शुद्धि होती है। यदि शारीरिक कमजोरी अधिक प्रतीत होती हो, तो ५ से १० बूँद तार्पिन तैलको भी मिला देना चाहिये।

पाकोन्मुख विद्रधि (फोड़ा पकनेकी अवस्थामें) हो, तो उसपर बीजोंकी गिरीको पीस पुल्टिसकर बांधनेसे जल्दी पाक हो जाता है। आमवातज और वातरक्तज शोथपर पुल्टिस बांधनेसे वेदना कम हो जाती है।

यदि छोटे शिशुकी माताके स्तनपर प्रदाह होनेपर स्तन्यस्राव रुकता हो और उस हेतुसे वेदना होती हो, तो एरण्डके पानोंको पीस पुल्टिस बनाकर बांधनेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है। यदि मासिक धर्मकालमें रजःस्राव योग्य न होता हो, तो अधिवस्तिक प्रदेश (नाभिके नीचेके भाग) पर एरण्डके पानोंको निवाया करके बांधा जाता है। उदरगुहाके अवयवों (यकृत् प्लीहादि) की चिरकारीवृद्धि होनेपर और चिरकारी चर्मरोगोंमें एरण्डमूलकी छालका सेवन रक्तप्रसादन रूपसे कराया जाता है। (डा० खोरी)

उपयोग—एरण्डका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीनकालसे अत्यधिक रोगोंपर हो रहा है। यह अति निर्भय घरेलू औषधि है। बालक, वृद्ध, सगर्भा आदिको भी निर्भयतापूर्वक दी जाती है। चरक संहितामें अंगमर्द प्रशमन, स्वेदोपग और भेदनीय दशेमानियोंमें एरन्डका उल्लेख किया है। स्वेदाध्यायमें एरण्डके पानपर रोगीको लेटानेका कहा है। इनके अतिरिक्त मधुरस्कंध, वातघ्न औषधसमूह और अनेक रोगोंकी औषधियोंमें एरण्डका उपयोग किया है। सुश्रुतसंहितामें अधोभागहर संशमन औषधियोंमें एरण्डकी गणना की है।

एरण्डके पान, बीज और मूलका क्वाथ स्वेदोपग है, अर्थात् स्वेदसाध्य रोगोंमें

हितकारक है। चर्मविकार, रक्तविकार, शोथ, जलोदर, रक्तमें विषप्रकोपसे उत्पन्न ज्वरादिविकार, आमप्रकोपसे उत्पन्न व्याधियां आदिमें स्वेद देनेसे लाभ होता है, उन सब रोगोंमें एरण्डका प्रयोग किया जाता है।

(१) बालकोंके वमन विरेचन—कभी छोटे बालकोंके उदरमें दूधकी गोली बन जाता हैं। फिर वह सड़ने लगता है। एवं उससे वमन विरेचन होते हैं। ऐसी स्थितिमें इस त्रासदायक मल (गोली) को बाहर निकालनेके लिये एरण्डतैल उत्तम औषध है। पारा और चूनेके मिश्रणसे गांठे गिरती तो हैं, किन्तु एरण्डतैलसे जैसे उदरका फिर संकोच हो जाता है, वैसा पारेसे नहीं होता।

(२) जीर्णउदरवेदना—जीर्ण उदरवेदनामें रोज रात्रिको सोनेके समय एरण्ड तैल कम मात्रामें लेते रहनेसे शनैः शनैः वेदना निवारण हो जाता है।

(३) प्रवाहिका—(अ) पेचिशमें आम और रक्त गिरता हो तो प्रारम्भावस्थामें एरण्ड तैल देनेसे आमप्रकोप आधा कम हो जाता है और रक्तस्रावमें भी लाभ पहुँच जाता है।

(आ) यदि पेचिशमें रक्त न आता हो आम गिरता हो और ज्वर हो तो एरण्ड मूलको बकरीके दूध और जलमें उबालें। फिर दूध शेष रहनेपर छानकर पिलावें। यह उपचार सुबह और रात्रिको दिनमें २ बार या दिनमें ३ बार करना चाहिये।

(४) अर्श और गुदाकी त्वचा फट जाना—रोज रात्रिको एरण्डतैल देनेसे बहुत लाभ हो जाता है। कितनेक आचार्य एण्डतैलके साथ थोड़ा शिलाजीत भी देते हैं। एवं कई वैद्य त्रिफलाके क्वाथके साथ एरण्डतैल देते हैं।

(५) उपान्त्रप्रदाह (Apendicitis)—छोटे बड़े अन्त्रके संयोग स्थानपर उपान्त्र (Apendix) रूप एक अवशिष्ट भाग रहा है। वह कभी कभी सूज जाता है, जिससे नाभिके दाहिनी ओर असह्य वेदना होती है; शौचशुद्धि नहीं होती; वमन होती है, ज्वर आ जाता है, नाड़ी तेज चलने लगती है और सूक्ष्म हो जाती है। इस रोगके प्रारम्भमें एरण्ड तैल देनेसे शस्त्र क्रियाकी आवश्यकता नहीं रहती। इसमें एरण्डतैल और हींगके जलके मिश्रणकी बस्तिभी दी जाती है।

सूचना—इस रोगमें उदरवेदना बहुत होती है, उसे दूर करनेके लिये अफीम नहीं देनी चाहिये। आवश्यकतापर खुरासानी अजवायन दे सकते हैं।

इस रोगकी मुख्य औषधि कुचिला है। कुचिलाप्रधान अग्नितुण्डी वटीका सेवन ४-६ मास तक पथ्यपालन सह करानेसे रोग निवृत्त हो जाता है।

(६) वातप्रकोप और वातशूल—वातरोगमें एरण्डतैल उत्तम गुणकारक है। इस हेतुसे इसे वातारि संज्ञा दी है। कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, कफशूल, आमवात, और संधिशोथ, इन सब रोगोंमें एरण्डमूल और सोंठका चूर्ण

क्वाथ करके दिया जाता है। एवं वेदनावाले स्थानपर एरण्डतैलकी जाती है। इन सब रोगोंमें एरण्डतैलके साथ शिलाजीतका सेवन भी कराना चाहिये।

गृध्रसी (Sciatica) और कटिशूलके लिये भावप्रकाशकारने एरण्डके बीजोंकी छिल्की निकाली हुई गिरी १-१ तोलेको दूधमें पकाकर (खीर बनाकर) सुबह पिलाते रहनेसे थोड़ेही दिनोंमें रोग दूर हो जाता है।

(७) नूतन और तीव्र आमवात—एरण्डतैल रोज सुबह खाली पेट होनेपर देनेसे लाभ जल्दी होता है।

(८) घुटनेका जीर्ण वातशोथ—इसपर एरण्डतैल और शीलाजीतके मिश्रणसे जैसा गुण मिलता है; वैसा अन्य किसी औषधिसे नहीं मिलता।

(९) स्तनोंमें गांठ बन जाना—स्तनोंपर एरण्डतैलका मर्दनकर फिर एरण्डपत्र बांध देनेसे स्तन्यप्रकोपसे उत्पन्न गांठ बिखर जाती है; और दूध अधिक उतरता है।

(१०) स्तनवृन्तकी त्वचा फट जाना—स्तनवृन्तके चारों ओर त्वचा फट जाती है; उनपर एरण्डतैल लगानेसे तुरन्त लाभ हो जाता है।

(११) नेत्रोंमें धूल, रेती गिरना—स्वच्छ वस्त्रसे छाना हुआ और बीजों को दबाकर निकाला हुआ तेल नेत्रमें डालनेपर, नेत्रमें प्रवेश हुये अणु (धूल, कोयले आदि) बाहर निकल जाते हैं। एवं कुकूणक रोगमें उसकी तीक्ष्णता भी कम होती है। एरण्डतेलके अञ्जनसे नेत्रोंमेंसे जलस्राव होता है; इस हेतुसे इसे नेत्र विरेचन कहा है।

(१२) अर्श—अर्शके मस्सेमें दाह होनेपर एरण्डतेलको घीकुंवारके गुदेके साथ मिलाकर बांधनेसे जलन शान्त हो जाती है। यदि शोथ आया हो तो, वह भी दूर हो जाता है।

(१३) पैत्तिक शिरदर्द—उष्णतासे शिरदर्द होनेपर मस्तिष्कपर एरण्ड तैलकी मालिश करानेसे वेदना तुरन्त शमन हो जाती है।

(१४) वातरक्त—एरण्डके बीजोंकी गिरीको दूधमें पीस गरमकर शोथ स्थानपर बांधें और ६ माशे सोंठ और १ तोले एरण्डमूलका क्वाथ करके दिनमें २ बार पिलाते रहें तथा पिलानेके समय ६ माशे शहद मिला लेना चाहिये।

(१५) विषमवृद्धि—अन्डकोष बड़े हों और रोग नया हो तो एकमास तक पथ्यपालनसह रोज सुबह दूधके साथ एरण्डतैल पिलानेसे वृद्धि दूर हो जाती है।

(१६) श्लीपद—हाथीके पैर जैसा मोटा पैर हो गया हो या अन्य भागमें श्लीपद हुआ हो, तो एरण्डतैल गोमूत्रके साथ पिला देनेसे श्लीपदजन्य वेदना और

...र दूर हो जाते हैं एवं श्लीपदका बल भी कम हो जाता है। रोग नया हो तो १ मासके सेवनसे कीटाणु नष्ट होकर रोगशमन हो जाता है।

(१७) उदरशूल—एरण्डमूल और सोंठका क्वाथकर उसमें १ रत्ती हींग और २ रत्ती कालानमक मिलाकर पिलानेसे अपचनजन्य शूल निवृत्त हो जाता है।

(१८) योनिशूल—एरण्ड तैलमें रूईके फोहेको भिगोकर योनिस्थानमें धारण करनेसे शूल (वेदना) शान्त हो जाता है।

(१९) कामला—प्रसूताको होनेवाले कामलाकी प्रारम्भावस्थामें एरण्डके पानोंका रस १ तोलेको दूधके साथ मिलाकर रोज सुबह ५ दिनतक पिलानेसे कामला दूर हो जाता है। एवं शोथ आया हो, तो वह भी दूर हो जाता है।

(२०) कानमें जन्तुका प्रवेश—पुराने गाढे एरण्ड तैलसे कान भर देवें और ऊपर रूई लगा देनेसे जन्तु मरकर निकल जाता है। यदि जन्तुने कानके भीतर काट लिया हो तो २-४ दिनतक एरण्डतैल डालते रहना चाहिये।

(२१) प्लीहावृद्धि—एरण्डमूलका क्वाथ सुबह शाम पिलाते रहने और और प्लीहापर एरण्ड पानोंकी पुल्टिस बांधते रहनेसे प्लीहावृद्धि दूर होती है, उदर शुद्धि होती है और मन्द मन्द ज्वर उत्पन्न करनेवाला विष जल जाता है।

(२२) प्रसवकष्ट—प्रसवकालमें कष्ट कम करानेके लिये सगर्भाको ५ मास हो जानेपर एरण्ड तैलसे १५-१५ दिनपर उदरशुद्धि कराते रहें।

(२१) एरण्ड ककड़ी।

सं० मधुकर्कटी। हिं० एरण्ड ककड़ी, अण्डखर्बूजा, पपीता, पपैया। म० पपई। गु० एरण्ड काकड़ी, पपैया, झाड़चिभड़ी; काठचिभड़ी। सिं० कठचिभड़ी। बं० पेपिया। पं० अरण्ड खरबूजा। फा० अम्बेह हिन्दी। क० पांपनायि। ता० पप्पायि। तै० बोप्प विपण्डु। मला० पप्पायम्। अं० Papaw tree ले० Carica Papaya.

परिचय—इसका वृक्ष भारतमें सर्वत्र होता है। पत्ते एरण्डके सदृश होनेसे इसे एरण्ड ककड़ी कहते हैं। लकड़ी अति निर्बल होती है। इसकी अनेक उपजाति भारतमें बोयी जाती है। ऊंचाई ८ फीटसे ३० फीटतक। नर-मादा फूलके वृक्ष अलग अलग होते हैं। फूलका रंग सफेद। फल गोल या लम्बगोल। जो फल लम्बा और कम बीजवाला हो, वह अधिक स्वादु होता है। कच्चे फलका रंग हरा, पकनेपर पीता-भहरित। कच्चे फलोंका शाक और अचार बनता है। पक्के फल स्वादके लिये खोये जाते हैं।

वृक्षकी शाखापर घाव करनेसे दूध निकलता है। पान और कच्चे फलोंमेंसे भी दूध निकलता है, यह दूध आमाशय पौष्टिक है। औषध रूपसे दूध और पानोंका ... होता है।

मात्रा—दूधका चूर्ण १ से २ रत्ती; भोजनके साथ या भोजनके पश्चात् छायामें सुखाये हुये पानोंका चूर्ण ½ से १ रत्ती, १ औंस जलमें फाण्ट करके पिलाया जाता है।

गुणधर्म—एरंड ककड़ी कच्ची और पकी, दोनों सारक, वात, पित्त और कफकी नाशक, रुचिकर, बल्य, पथ्य, सर्वरोगनाशक, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि और अर्श की नाशक और मांसपाचक है, इसका दूध जीभपर लगाने या कच्ची एरण्ड ककड़ी खिलानेपर कण्ठशालुक (कण्ठमें कृत्रिम झिल्ली आना), प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होते हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार एरण्ड ककड़ीका दूध अत्यन्त पाचक, कृमिघ्न वेदनाशामक, स्तन्यजनन, कुष्ठघ्न, और उदररोगका नाशक है। यह बकरे और सूअर के आमाशयमें मिलनेवाले पाचक द्रव्य (Pepsin) की अपेक्षा उच्च प्रति का है। यह पाचक द्रव्य आमाशयके अम्लरसके भीतरही कार्य करता है। उसकी क्रिया अन्त्रमें चालू नहीं रहती; किन्तु इस दूध (पेपेन) की क्रिया आमाशयके अम्लरस और अन्त्रके क्षाररस, दोनोंमें समान रूपसे होती है। अन्त्रमें भी इसकी क्रिया चालू रहती है। पाचकद्रव्य पेपशिनसे मांसका पचन होकर बहुत उपद्रव्य उत्पन्न होता है। इसके दूधसे मांस पिघलता है और पचन होता है; किन्तु अन्य उपद्रव्य उत्पन्न नहीं होता। दूध वेदनाशामक है, किन्तु यह पाचक द्रव्य नहीं है। इसके दूधका सेवन करानेपर अथवा लेप करनेपर दूध छूटता है; और उससे गोल कृमियोंका नाश होता है।

पानोंकी क्रिया हृदयपर डिजिटेलिसके समान होती है। कारण पानोंमें विष द्रव्य डिजिटेलिसके समान हैं। उससे नाड़ीकी गति कम होती है। हृदयके स्पन्दन नियमित होते हैं। हृदयके आरामका समय बढ़ता है, प्रस्वेद आता है और मूत्र परिमाण बढ़ जाता है। इसके पान हृदयबल्य और ज्वरघ्न हैं। इसमें कुछ पाचक धर्म भी है।

रासायनिक संगठन—फलोंके दूधके भीतर एक पाचक द्रव्य है। जिसमेंसे एक भागको २४० गुने अन्नमें मिलानेपर उसे नरमकर डालता है। यह दूधको जमा देता है। यह अम्ल या क्षारके भीतर समान ही काम करता है।

एरण्डककड़ीके ताजे दूधमें दूनी शराब (९०%) मिला, कुछ समयके बाद छान सत्वमय भागको सुखा लें। और ऊपर बचे हुये भागको निकाल डालें।

पानोंके भीतर एक कार्पाइन (Carpine) नामक द्रव्य है, उसकी क्रिया डिजिटेलिसके समान हृदयपर होती है। यह कार्पाइन द्रव्य पानोंके निम्न अंशमें है। वह जलमें गीला नहीं होता। शराबमें कुछ मिलता है।

फल पूर्ण रूपसे बढ़ जानेपर, किन्तु अपक्व हो तब तक उसपर अनेक खड़े चीरे किये जाते हैं। जिससे उसमेंसे दूध टपकने लगता है। उस समय उसके नीचे स्वच्छ कांचकी तस्तरी या प्याला रख उसमें दूध इकट्ठा करते हैं। उसे सूर्यके तापमें सुखा-

नेपर सफेद चूर्ण बन जाता है। इस चूर्णको अच्छी डाटवाली शीशीमें रखना चाहिये। इस दूधको जल्दी ही सुखा लेना चाहिये अन्यथा गुण कम हो जाता है। अग्निपर सुखानेसे भी बल न्यून हो जाता है।

उपयोग—एरण्ड ककड़ी मूल अमेरिकाकी है। यहांपर ४०० वर्षसे आई है। अतः प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उपयोग प्रतीत नहीं होता।

डॉक्टर देसाई लिखते हैं कि, पचन संस्था (आमवात, अन्त्र) के रोगमें इसके दूधका अति उपयोग होता है। यह विलायतमें राजमान्य हुआ है, इसकी स्तुति जितनी की जाय उतनी कम ही है। इससे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती। इस हेतुसे सबको इसका जरूर उपयोग करना चाहिये।

यह सत्व भोजनके बाद दिया जाता है या मांस पकनेपर उसके ऊपर लगा लिया जाता है। अनुपान अदरखका रस।

ज्वर या हृद्रोगमें भी रोगीके खानेके मांस आदि पदार्थोंको इसके पत्तोंमें बांध गरम राखमें भूने। जिससे वह नरम होकर पचनमें लघु बन जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तोंमेंसे सत्वका कुछ अंश उसके उदरमें जाता है।

(१) अमाशयका जीर्णप्रदाह—आमाशयका प्रदाह, व्रण, अर्बुद (कर्कस्फोट) अम्लपित्त और अपचन रोगमें दूधका चूर्ण दिया जाता है। इसके साथ सज्जीखार और अफीम आवश्यकतानुसार मिला सकते हैं। इससे आमाशयमें पच्चिपा श्लेष्म पिघलता है, और अन्नका सम्यक पचन होकर रस तत्काल रक्तमें मिलता है।

(२) गोलकृमि—इनको मारनेके लिये ताजा दूध १ तोला, शहद १ तोला और उबलता हुआ जल ४ तोले मिलावें। शीतल होनेपर पिला देवें। फिर २ घण्टे बाद एरण्ड तैल देवें। इस मात्रासे कभी-कभी उदरमें मरोड़े आते हैं। ऐसा होनेपर नींबूका रस और शक्कर देवें।

(३) प्लीहा और यकृद्वृद्धि—यकृत और प्लीहा बढ़ जानेपर ताजा दूध शक्करके साथ दिया जाता है। प्रतिदिन १ तोला समान मिश्रीके साथ मिला, तीन हिस्से करके दिनमें ३ समय जलके साथ देवें।

(४) कण्ठरोहिणी और कन्ठशालुक—इन रोगोंमें स्वरयन्त्रके द्वारपर कीटाणुओंका पर्दा आ जाता है। इस हेतुसे श्वासावरोध होता है। ऐसी अवस्थामें ताजे दूधको जलमें मिलाकर तैयार किये हुये प्रवाहीको फुरेरीसे कण्ठमें लगाना चाहिये जिससे कीटाणुओंका सफेद पर्दा गल जाता है।

(५) व्युची—कानपर व्युची, तल हाथका जीर्ण व्युची, दाद और कण्डू रोगपर एरण्ड ककडीका दूध और सोहागेको उबलते हुये जलमें मिलाकर लेप किया जाता है।

(६) स्नायु—नारुपर इसके पानोंके रसमें अफीम मिलाकर लेप करनेसे वह जल्दी बाहर आ जाता है।

(७) हृदयरोग—हृद्रोगमें पानोंका फाण्ट दिया जाता है। हृदयके कपाटके विकारमें यह विशेष उपयोगी है। इसके फाण्टसे घबराहट कम होती है।

ज्वरमें हृदय अशक्त होकर नाड़ी अतितेज हो जानेपर पत्तोंका फाण्ट देनेसे नाड़ीकी गति शान्त बनती है। ज्वर कम होता है और पेशाब साफ आजाता है। इस रोगमे मूत्रल, स्वेदल और विरेचन औषध एरण्ड ककड़ीके पत्तोंके साथ दिया जाता है।

(२२) ककोड़ा।

सं० कर्कोटकी, स्वादुफला, कुमारिका, विषप्रशमनी। हिं० ककोड़ा, खेखसा, ककोरा। बं० कांकरोल। म० करटोले। गु० कंटोला। कों-फागिल। क० माडहागर। ते० आगाकर। ता० एगारवलि। मला० वेंपावल। ले० Momordica Dioica.

परिचय—इसकी वेल भारतमें सर्वत्र होती है। नर-मादाकी वेल अलग-अलग होती है। नर वेलको वंध्याककोटी कहते हैं। पान २ से ४ इंच लम्बे, चौड़े, ३ या ५ कोनयुक्त। तन्तु आधे भागमें। फूल २ से ६ इंचका, पीला। फल १ से ३ इञ्च तक लम्बा होता है। इसके नीचे ६ से १ फूट लम्बा कन्द होता है, इसका औषधि रूपसे उपयोग होता है।

मात्रा – कंद ½ से १।। तोलेतक शक्कर या शहदके साथ। मात्रा अधिक होनेपर वमन हो जाती है।

गुणधर्म—चरपरा, उष्णवीर्य, कड़वा, विषनाशक, वातहर, पित्तशामक, दीपन और रुचिकर। पान रुचिकर, वृष्य और त्रिदोषहर। कन्द मस्तिष्क रोगपर हितकर।

नव्यमतानुसार ककोड़ेका मूल (कन्द) विषहर, उपलेपक और शोथहर है। फल उत्तेजक, ग्राही, आरोग्यवर्द्धक, अधिक मात्रामें सारक, रक्तशोधक और मूत्रल है।

कोमलफलोंका शाक ज्वर, पित्तप्रकोप, कफविकार, कास, श्वास, शोथ, उदर-रोग, कुष्ठ, त्वचारोग, शूल, गुल्म, प्रमेह, अरुचि, अर्श, अतिसार, ग्रहणी आदि रोगोंमें हितावह है। पान कृमि, क्षय, कास, हिक्का, अर्श आदिके नाशक हैं।

उपयोग—प्राचीन आचार्योंने इसका औषध रूपसे उपयोग कम किया है। ज्वर, अर्श, नेत्ररोग आदिमें साग खानेकी सलाह दी है। कंदका चूर्ण रक्तार्शमें रक्त-स्रावको बन्द करनेके लिये दिया जाता है। विषैले जन्तुओंके काटनेपर कंदको जलमें घिसकर लेप किया जाता है। छातीमें कफका संग्रह होनेपर कंदका चूर्ण निवाये जलके साथ दिया जाता है।

पैत्तिक शिरदर्दपर पानोंके स्वरसमें कालीमिर्च, रक्तचन्दन, नारियलका जल मिलाकर कपालपर मर्दन किया जाता है।

सूखे फलोंका चूर्ण सुंघानेसे छींके आकर मस्तिष्कगत दूषित कफ निकल जाता है। फिर शिरदर्द और नासारोग निवृत्त हो जाते हैं। मन्द कामलामें भी इसका नस्य कराते हैं।

कंदका चूर्ण २-४ तोले निवाये जलमें मिलाकर पिलानेसे वमन होती है, जिससे आमाशयस्थित विष आम और दूषित कफ निकल जाते हैं।

विसर्प, विद्रधि, रक्तविकार, नेत्रपीड़ा, शिरदर्द और कासरोगमें कन्दके चूर्णका सेवन कराया जाता है। स्तनपर गांठ होनेपर इसका लेप किया जाता है। रक्तार्शमें कन्दका चूर्ण शक्करके साथ खिलाया जाता है।

(२५) कटभी।

सं० कुंभी, कुम्भीर, पर्पटद्रुम, स्वादुपुष्पा, दधिपुष्पिका। हिं० कटभी कटही, हारिमल। बं० कुम्भी, कुंभ। म० वाकुंम्भा। गु० वापुंवा। संता कुंविर। क० वेल्लाम ता० पइलीपट। अं. Patana Oak ले० Careya Arborea

परिचय—वृक्षकी ऊचाई ३० से ६० फीट। यह भारतके अनेक प्रान्तोंमें होता है। पान १२ इंच लम्बा, ६ इञ्च चौड़ा। मंजरी ३ से ८ इञ्च लम्बी। पुष्प वृन्तरहित थोड़े। मंजरीपर विशेषतः ३ फूल सफेद। तन्तुलाल। फल २॥ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौड़े, हरे रंगके। फलका आकार घड़ेके समान होनेसे कुम्भी नाम दिया है। लकड़ी अति दृढ़। इसमेंसे बन्दूकोंके दस्ते बनते हैं। इसके फल, फूल, पान और छालका औषध रूपसे उपयोग होता है।

मात्रा—छाल ६ से १२ रत्ती। फूल क्वाथके लिये ६ माशे।

गुणधर्म—छाल ग्राही, शामक, विषहर और व्रणरोपण। पान विषहर और व्रणरोपण। फल ग्राही, पाचन और कफहर।

उपयोग—प्राचीन ग्रन्थोंपरसे कटभीका निर्णय नहीं होता। वर्तमानके आचार्योंने गुजराती वापुंवा (म० वाकुम्भा) को कटभी माना है। उसीका गुणधर्म और उपयोग यहाँ दिया है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि, कटभीकी छाल उत्तम ग्राही है। सूखी खाँसीपर इसकी छालकी गोलीकर मुँहमें रखनेके लिये दी जाती है, अथवा क्वाथ करके कुल्ले कराये जाते हैं। प्रसूतावस्थामें प्रदाह शमनार्थ फूलों (फलोंकी नलिका, जो बम्बई और करांचीके बजारमें वापुम्बाके नामसे मिलती है उसका) का क्वाथ पिलाया जाता है।

(१) शुष्ककास—खाँसीपर फूल या ताजीछाल शहदके साथ देनेसे वेग शमन होता है। शिथिलतासह अपचनपर फूलोंका अचार या क्वाथ दिया जाता है।

(२) प्रदर—श्वेतप्रदर नया होनेपर छालका चूर्ण और शहद मिलाकर देते हैं।

(३) स्थानिकशोथ—पीड़ादायक शोथपर छाल कुचलकर बांधी जाती है।

(४) व्रण—छालका काढ़ाकर व्रणको धोनेसे शुद्ध होता है और पानोंकी पुल्टिस बाँधनेसे भर जाता है। दुष्ट व्रणपर भी लाभ पहुँचाता है। पुल्टिस दिनमें ४-५ समय बदल देनेसे जल्दी घाव भर जाता है।

(५) सर्पविष—मानभूमके संताल लोग सर्प विषपर इसकी छालका रस पिलाते हैं; और छालको पीस घावपर मोटा मोटा लेप भी करते हैं।

(२४) कड़वा कैथ

सं० तिक्तकपित्थ, गरुड़फल। म० कडुकविठ, जंगली बदाम, कौरी। गोआ-कोस्टो। क० मृवाही, गरुड़फल। क० सर्वोलु शुंबरक। ता० नीरु-डिमुट्टु। मला० कोटी, वेत्ती, मरवेट्टा। कों० खष्ट, गडफल। ते० नीरुडु, अड़वी बदानु। ले० Hydnocarpus Wightiana.

परिचय—वृक्षकी ऊंचाई ४० से ५० फीट। पान ५ से ८॥ इञ्च लम्बे। फूल पीले। फूल का वेग लगभग आध इंच। फल लगभग गोल। बीज बीज पीताभ।

गोआमें बीजोंको कोष्टो कहते हैं। इसका तैल निकलता है, उसे खस्टेल कहते हैं। यह भी चौल मोगरा तेल है। बाजारमें जो तेल मिलता है, वह विशुद्ध नहीं है। अतः बीजोंको खरीदकर तेल निकलवाना चाहिये।

इस जातिमें एक दूसरा वृक्ष है, जिसे जड़ंगी कैथ (Hydnocarpus Venenata) संज्ञा दी है, तथा इस वर्गकी अन्य जातिका वृक्ष, जिसे आसाममें लम्टन (TarKtogenos Kunzii) कहते हैं, इन दोनोंमेंसे भी चौलमोगरा तेल निकलता है।

गुणधर्म और उपयोग—आगे चौल मोगरामें देखें।

(२५) कड़वी तुम्बी।

सं० कटुतुम्बी, इक्ष्वाकु, तिक्तबीजा, महाफला, कटुकालाबु,। हिं० कड़वी तुम्बी, कड़वी लौकी, तिक्त लौको। बं० तितलाऊ। गु० कड़वी तुंबर कड़वा दूधी। म० कडु, भोपले। कों० कडुदूद्दी। क० कहिसोरे। ता० शुरै ते० अलाबुकु। मला० कैपचुरम्। अं० Bitter bottle gourd ले० Lagenaria vulgaris

परिचय—यह भारतके सब प्रान्तोंमें होती है। इसमें कड़वी मीठी २ जाति हैं। कड़वी औषधकार्यमें और मीठी साग बनानेमें काम आती है। पान ६ इञ्च व्यास-

के, ५ कोनवाले। तन्तु लम्बे दो शाखायुक्त। नर फूल सफेद ६ इञ्चका। मादा फूल १ इञ्चका। फल लगभग १॥ फीट लम्बे, नीचेका भाग चौड़े पेठवाली शीशीके सदृश।

मात्रा—कफ निःसारणार्थ पानका चूर्ण १-१ रत्ती। वमन विरेचनार्थ इन्द्र-वारुणीके अनुरूप फलके गुदाकी मात्रा। सूखा गर्भ १ से २ रत्ती सेंधानमक, शहद और मट्ठे के साथ। वमनार्थ बीजोंकी गिरी ४ से ६ रत्ती।

गुणधर्म—कड़वी तुम्बी रसमें कड़वी, विपाकमें कड़वी तथा वात, पित्त, कास, विष, व्रण, शोथ और ज्वरनाशक। वमन और विरेचन कराती है। कड़वी तुम्बीका धर्म इन्द्रायनके समान है। इसका गर्भ अति कड़वा, प्रबल वामक और भेदक है। पान और प्रतान वामक, और छोटी मात्रामें श्लेष्मनिःसारक है। इस औषधसे तुरन्त वमन और जलके समान विरेचन होने लगते हैं। और इतने बलके साथ होने लगते हैं कि, रोगीकी अवस्था विसूचिकाके समान होजाती है। छोटी मात्रामें लेनेपर जम्भाई आकर कफ गिरता है और दस्त साफ आता है।

उपयोग—इसका उपयोग प्राचीनकालसे हो रहा है। चरकसंहितामें अलाबु-कल्प लिखा है। अन्य ग्रन्थकारोंने ज्वर, अर्श, अश्मरी, शोथ, कर्णरोग, दन्तकृमि, योनिरोग आदिपर प्रयोग किया है।

(१) दंतकृमि—कड़वी तुम्बीका मूल चबानेपर सब कृमि मर जायंगे, उसे थूककर निकाल देवें फिर थोड़े समयके पश्चात् निवाये जलसे कुल्ले कर लेवें।

(२) नासार्श—नाकमें मस्से होनेपर कड़वी तुम्बीके मूलको बासी जलमें पीस उसकी बूंद नाकमें डालनेसे मस्से दूर हो जाते हैं।

(३) शोथ—जन्तु काटनेसे सूजन आई हो या सांधा सूज गया हो, तो उस-पर तैल लगावें। फिर कड़वी तुम्बी और जटामांसीको कांजीमें डालकर उबालें। उसकी भाप देनेसे और कल्कसे सेक करनेसे जल्दी लाभ हो जाता है।

(४) गलगण्ड—(Goitre)—गलेपर सूजन आई हो, तो रात्रिको कड़वी पकी तुम्बीमें जल भरकर रख देवें। सुबह १०-२० तोले जल पिलावें। इस तरह ७ दिन करनेपर गलगण्ड मिट जाता है भोजनमें अधिक नमक, तेजमिर्च, ज्यादा खटाई, और गुरुभोजन नहीं देना चाहिये। केवल दूध भातपर रह जाय तो विशेष लाभ मिलता है।

कड़वी तुम्बीका रस २० तोले और तैल ५ तोले मिलाकर पीतलकी कड़ाहीमें मन्दाग्निपर उबालें। रस जल जानेपर कड़ाही उतारकर तेल अलग निकाल लेवें। शीतल होनेपर शीशीमें भर लेवें उसमेंसे गलण्डपर लगाते रहें।

(५) कर्णशूल—कानमें वेदना होती है या कृमि प्रवेश कर गया हो, तो कड़वी तुम्बीका रस भरकर २-४ मिनट रखनेपर वेदना शमन होती है और जन्तु घुस गया हो तो वह मर जाता है।

(६) पैरफटना—कड़वी तुम्बीके बीजको जलमें पीसकर ३ दिनतक बिवाईके ऊपर लगानेसे बिवाई मिट जाती है और पैर मुलायम बन जाता है।

(७) कफप्रकोप—कड़वी तुम्बीका मूल १ रत्ती अथवा गर्भ चौथाई रत्ती और एक रत्ती पिप्पली मिलाकर शहदके साथ देनेसे कफ सरलतासे गिरने लगता है।

(८) आंवल रुकना—प्रसव हो जानेके पश्चात् आंवल रुकी हो, तो कड़वी तुम्बी, सांपकी कंचुली, और कड़वी तोरईके मोटे चूर्णको कड़वे तैलमें मिला अग्निपर डालें फिर उसपर एक नलिका रख योनिमें धुआं प्रवेश करानेपर आंवल (अमरा) गिर जाती है।

(९) विषप्रकोप—सब प्रकारके विषप्रकोपपर मूल या फलके गर्भको गरम जलके साथ पिलानेसे तुरन्त वमन होकर विष निकल जाता है।

(१०) रतौंधी—कड़वी तुम्बीकी राखको शहदमें मिलाकर नेत्रमें अञ्जन करते रहें और पौष्टिक भोजन लेते रहें, तो दृष्टि स्वच्छ हो जाती है। तमाखू, गांजा आदिका व्यसन हो तो छोड़ देना चाहिये या कम कर देना चाहिये।

(११) कामला—(अ) कामलाकी प्राप्ति पित्तनलिकामें अवरोध होनेपर होती है। कभी थोड़ा अवरोध होनेपर धीरे धीरे ४-६ दिनमें कामला होता है, कभी पूरा अवरोध होनेपर १२ घण्टेमें ही। धीरे-धीरे कामला हो रहा हो तो कड़वी तुम्बीके ४-४ तोले पानोंका क्वाथकर २-३ दिन पिलानेसे कामला दूर हो जाता है; अथवा पानोंका रस २ तोले पिलावें।

(आ) इसके फलके गर्भके चूर्णका नस्य करानेपर पीला पानी टपककर कामला दूर होजाता है। घी सुंघानेके बाद नासिकादाह शमन होजाता है और पानी टपकना बन्द हो जाता है।

(१२) रक्तविकार—तुम्बीमें जल भर रखें। उसमेंसे थोड़ा पीते रहनेसे रक्तकी शुद्धि हो जाती है। फिर फोड़ा फुन्सी होना, खुजली चलना, त्वचाविकार आदि दूर होजाते हैं।

(१३) योनिसंकुचन—कड़वी तुम्बीके बीजोंकी गिरी और लोधको जलमें घिसकर योनिके भीतर लेप करनेसे योनिका आकुंचन होजाता है। प्रसव होनेके पश्चात् योनिशिथिल हो जाती है, ऐसे समयपर यह प्रयोग उपयोगी होता है।

(२६) कड़वी तोरई।

सं० तिक्तकोषातकी, राजकोषातकी, कर्कोटको, धामार्गव, महाजाली। बं० घोषालता। म० कडुदोडके, रानतुरई। को० नागताली। गु० कडवी तुरीआ, कड़वी गिसोड़ी। क० कहिहीरे। ता० पेप्पीर्कम्। त० वेरिबिरा। अं० Baramara. Bitter Luffa. ले० Luffa Acutangula (Var Amara)

परिचय—यह बेल भारतके अनेक प्रान्तोंमें जंगल और खेतोंकी बाड़पर निकल आती है। कभी मीठी तोरईके साथ बागके भीतर भी होजाती है। इसके पान मीठी तोरईके समान, किन्तु छोटे, फूल पीले रंगके मधुर सुगन्धके। फल भी मीठी तोरईके समान। पान ५-७ कोणयुक्त, ४ से६ इञ्च लम्बे, उतने ही चौड़े। नर-मादा फूल अलग अलग। नर फूलकी पुष्पधारक सलाका ½ से १ फूट लम्बी। मादा फूलकी पुष्पधारक सलाका नहीं होती। फल ३ से ६ इञ्च लम्बा। १॥ इञ्च मोटा, १० खड़ी धारायुक्त।

मात्रा—बीजकी गिरी ५ से ८ रत्ती। उबाक और वमनार्थ १० से १५ रत्ती वमन कराती है। २ से ५ रत्ती उपलेपक और कफघ्न गुण दर्शाती है। गिरीको पीस जलके साथ मिलानेपर जल हरी आभावाला सफेद बन जाता है।

गुणधर्म—रसमें कड़वी, विपाकमें चरपरी और तीक्ष्ण है। पित्त, आम कफ और मलको शोधन करती है तथा आध्मान, कुष्ठ, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, शोफ, गुल्म और विषप्रकोप आदिको दूर करती है।

डॉक्टर देसाईके मतानुसार कड़वी तोरई कड़वी, दीपन, मूत्रल, विरेचन, वामक, उदरजित्, शिरोविरेचनकारी, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषघ्न है। छोटी मात्रामें क्षुधावर्द्धक और उदरशोधक है। इससे इन्द्रियोंकी क्रिया सुधरती है। मध्यम मात्रामें विरेचन कराती है; और मूत्रकी मात्रा बढाती है। बड़ी मात्रामें वमन और जलसदृश विरेचन कराती है। बीजों की गिरीकी क्रिया कफघ्न और वामक (इपिकाक्युआनाके समान) है।

डाक्टर मुईदीन शरीफने लिखा है कि, भारतीय वनस्पति द्रव्योंके भीतर वामक द्रव्य इपिकाक्युहानाके समकक्ष कटु घोषातकी के बीज ही है। इसकी मात्राभी इपिकाक्युहानाके समान है। यह कम मात्रामें कफघ्न और स्नेहन है। क्योंकि, इसमें तैल और शुभ्रप्रथिन (Allramim) रहे हैं। संग्रहणी और पेचिशपर यह बहुत अच्छा काम देता है।

वक्तव्य—डाक्टर मुईदीन शरीफने लिखा है कि इसके पके और सूखे बीज एवं विना धारावाली तोरईके बीज वामक हैं। इनमें विना धारावाली तोरईके बीजोंकी क्रिया अनिर्णित है। कभी १० से १८ रत्तीसे मात्रामें अच्छी वान्ति हो जाती है; किन्तु कभी उतनी मात्रासे बिल्कुल वमन नहीं होती या घण्टोंतक प्रबल वेगपूर्वक वान्ति होती रहती है। एवं धारावाली तोरई-के बीज इससे कम मात्रामें देनेपर अच्छी तरह वमन कराती है, और वह नियमित कार्य करती है।

इसके फल वामक हैं, किन्तु इसके फलका कौनसा निश्चित् भाग विशेष वामक है, यह साधारण जनता नहीं जानती। जिससे बीजसह समूचे फलको कार्यमें लाते हैं। उसे रात्रिको भिगो सुबह जलको छानकर वमन, विरेचनके लिये देते हैं। इस

तरह शीतल जल देनेपर उदरमें बहुत दर्द होता है; और कार्य अनिर्णित और अनियमित बन जाता है। अतः वह रीति ठीक नहीं है। यथार्थमें इसके बीजके भीतर वमन करानेवाला निश्चित भाग है। इसके बीजकी गिरी सबसे उत्तम वमन करानेवाली औषधि है। वह डाक्टरी इपिकाक्युआना जितने वजनमें देनेपर उसके समान गुण दर्शाती है। बीजकी गिरी थोड़ी मात्रामें उपलेपक और कफघ्न काम करती है। इसके अतिरिक्त बीजकी गिरीका असर संग्रहणीपर अच्छा होता है। इपिकाक्युआनाके योग्य अनेक रोगियोंपर इसके बीजका प्रयोग समान वजनमें करनेपर गुण उसके समान आया है।

धामार्गव कल्पः—

(१) धामार्गव अर्क—कड़वी तोरई पंचांगका चूर्ण १ भागको शराब (९०%) २० भागमें मिला एक सप्ताह भिगोकर छान लेवें। मात्रा १ से २० बूंद।

(२) धामार्गव फाण्ट—बेलके तन्तु १ तोलेका उबलते हुये १ पाइण्ट (२० औंस) जलमें आध घण्टा भिगोकर छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस दिनमें ३ बार।

(३) धामार्गव हिम—बीज रहित २ फलको १ पिण्ट शीतल जलमें एक घण्टा भिगोकर छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस।

(४) धामार्गव क्षार—कड़वी तोरई पंचांगको जलाकर सफेद राख करें। काली राख हो, तो निकाल डालें। फिर १६ गुने जलमें भिगो देवें। १२ घण्टे बाद ऊपरसे स्वच्छ जल नितार लेवें। उसे कड़ाहीमें उबालनेपर नीचे क्षार रह जायगा। मात्रा २ से ४ रत्ती घीके साथ। उपयोग आमाशयके खट्टे पित्त और कफको दूर करनेके लिए उपयोगी है।

उपयोग—कड़वी तोरईका उपयोग चरक संहितामें हुआ है। धामार्गव (कड़वी तोरई) और कृतवेधन (कड़वी नेनवा) के कल्प बनाये हैं। सुश्रुत संहितामें कड़वी तोरईको उभय भागहर अर्थात् वमन विरेचन करानेवाली कहा है। इसका उपयोग कुष्ठ, अर्श, विषप्रकोप, कामला, गण्डमाल आदि रोगोंपर किया है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, कर्कस्फोट और सड़नेवाले व्रणोंको धोनेके लिये इसका हिम अति हितकारक है। इससे व्रणकी शुद्धि होकर जल्दी भरते हैं। आधा शीशीमें या शिरदर्दमें हिम या फलोंके किञ्चित् चूर्णका नस्य कराया जाता है। इससे नाक बहता है; और दर्द दूर हो जाता है। कामलामें फलोंके गर्भके चूर्णका नस्य कराया जाता है। जिससे अत्यन्त पीला श्लेष्म निकलता है। फिर देहका पीला रंग कम हो जाता है; किन्तु यह औषधि सबको उपयोगी नहीं होती (बलवान मनुष्यको देनी चाहिये)

यकृदाल्युदर, प्लीहोदर और यकृत्के विकारसे उत्पन्न जलोदरमें इसका अर्क अति उपयोगी होता है। प्रारम्भमें बड़ी मात्रामें देकर फिर मल-मूत्रके परिमाण अनुसार मात्रा न्यूनाधिक करनी चाहिये। बालकोंकी यकृद्वृद्धिमें यह हितावह है।

पागलकुत्ता काटनेपर विष न चढ़नेके लिये इसका हिम प्रतिदिन प्रातः कालको ७ दिनतक देते हैं। इससे वमन और विरेचन होकर विष बाहर निकल जाता है। इस तरह सब प्रकारके विषपर, उस विषकी नाशक औषधि न मिले, तब तक हिम दिया जाता है।

(१) वमन कराना—एक फलको रात्रिको एक सेर जलमें डालें, उसमेंसे ४ तोले जल सुबह पिलानेपर वमन विरेचन होकर उदरशुद्धि हो जाती है। अफारा, वायु, कफ विकार, पित्तप्रकोप, पाण्डु, विषविकार, प्लीहावृद्धि, गुल्म, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, जीर्णज्वर, श्वास आदि रोगोंमें हितकारक है।

(२) शिरदर्द—अति दुखःदायी शिरदर्द हो, जिसमें मस्तिष्कके भीतर कृमि हो गये हों, नासिकासे दूषित स्राव होता हो, उसपर सूखे फलका कपड़छान चूर्ण सुंघाने पर नासिकासे जलस्राव होकर शिरदर्द शमन हो जाता है। यह तीव्र औषधि है। सर्व सामान्य मनुष्योंके लिये उपयोगी नहीं है।

(३) स्नायु—इसके पानोंको कुछ गरमकर रस विकार और नारुके शोथपर बांधनेमें आता है। कच्चे फलोंका रस भी शोथ और विषैले जन्तुओंके दंशपर लगाया जाता है।

(४) अर्श—(अ) कड़वी तोरईके मूलको जल या तोरईके पानोंके रसमें घिसकर मस्सेपर लेप करते रहनेसे मस्से गिर जाते हैं।

(आ) कड़वी तोरईका क्षार १ तोलेको ४० तोले जलमें मिला लेवें। उसमें बैंगनके टुकड़े डालकर उबालें। बैंगन नरम हो जानेपर जलको निकाल डालें। फिर घी का छोंक देकर पका लेवें। इसका सेवन गुड़ मिलाकर करें। हो सके उतना बैंगन खाकर ऊपर मट्ठा पीवें। इस तरह एक सप्ताहतक बैंगनपर रह जानेसे अर्श सब जल जाते हैं।

(५) कामला—देवदाली फलके समान इसका उपयोग होता है। फलका बारीक चूर्णकर सुंघानेसे पीला पानी टपकता रहता है। छींके भी आती रहती है। नासिकामें दाह हो जाता है। इस तरह पानी टपककर कामला दूर हो जाता है। घी सूंघानेपर नासादाह शमन हो जाता है।

(६) चूहेकाविष—वमन विरेचन हो उतनी मात्रामें कड़वी तोरई पञ्चांगका क्वाथ या फाण्ट अथवा हिम देनेसे जहरी चूहेका विष नष्ट हो जाता है।

(७) कुष्ठ—(विविध प्रकारके चर्मरोग) दाद, ब्यूची, पामा, श्वेतदाग आदि कुष्ठ कहलाते हैं। उन रोगोंमें भीतरके मलोंका शोधन करनेपर वे सरलतासे दूर हो जाते हैं। इस हेतुसे धामार्गव फाण्ट कुछ दिनों तक २-२ औंसमें मात्रा दिनमें ३ बार देते रहना चाहिये, अथवा सूखी तोरईमें रात्रिको जल भर, रोज सुबह ५ तोले पी लिया करें, तो अति बढ़े हुए कुष्ठ भी शमन हो जाते हैं।

(२९) कतीला ।

सं० सुवर्णपुष्प, सुवर्ण कार्पास । हिं० कतीला, गोंदका झाड़, गलगल, गंगाल, गेजरा, गनिआर, गवड़ी, कुम्वी । वं० गोलगोल । पं० कुम्वी । सर० गजरा । फा० गोने । म० गलेरी । अ० कतीरा । क० अरसिना वुरग, गगिला । गु० कडाया गुंदनुं झाड़ । म० गलगल, कथल्या डीगाचे झाड़ । ता० कन्निगेरम, कोंगु, कत्तिलवा, पिनार । ते० गुगुं, कांगु । ओ० कोएटोपोलास । अं० Yellow Silk Cotton tree ले० Cochlospermum Gossypium

परिचय—गोसिपियम=रूई कोक्लोस्पर्मम=मरोड़ीके सदृश मुड़े हुए बीजयुक्त । यह वृक्ष छोटा होता है । ऊँचाई ८ से १८ फीट । छाल मुलायम, राख जैसे रंगकी । पान लगभग ४ से ७ इञ्च लम्बा, हथेलीको अँगुलियों जैसा; ३ से ५ विभागयुक्त । फूल ४ से ५ इञ्च व्यासके, शाखाके अन्तमें तुरे के सदृश, तेजस्वी पीले । फूल पानके पहिले आते हैं । डोडी २ से ३ इञ्च लम्बी, लगभग अण्डाकार । बीज स्क्रु सदृश रुएं से आच्छादित ।

सी० पी० और बिहारमें पुष्प जनवरीसे मार्च तक, फल मार्चसे जूनतक । पत्ते नवम्बर दिसम्बरमें गिर जाते हैं । वृक्ष दिसम्बरसे अप्रैलतक पत्र रहित रहता है । डोंडी में से कपास पीले रंगका निकलता है । इस वृक्ष को गोंद बहुत आता है । गोंदके हेतु से वृक्षको हानि पहुँचती है ।

गोंद—हिन्दी कतीरा । म० कथल्या । गु० कडाया । ते० कोंकीड गोगु बंक । ता० तनकुपिशिनम् । मला० शिमिपंगपश । यू० कतीरा—इ—हिन्दी । इसे जलमें डालनेपर खूब फूलता है । इस गोंदमें सफेद, अति हल्का और बड़ा टुकड़ा हो, उसे अच्छा माना है । इसके स्थानपर व्यापारी गूल (Sterculia Urens) का गोंद दे देते हैं । कतीला स्वादमें फीका है, यह गोल नहीं होता । इसमें चिपचिपापन नहीं है । पानी आंवले (Flacourita Cataphracta) के गोंदको भी कतीरा कहते हैं । इसे गुणमें समान माना है ।

औषधि रूपसे गोंदका ही सर्वत्र व्यवहार होता है । इसके वृक्षके बीजोंकी गिरी भूनकर खाते हैं । वे गोल और तैलमय होनेसे उनको अन्नके स्थानपर उपयोगमें ले सकते हैं । कोमल पत्तोंको पीस कल्क बनाकर शिरपर मर्दन करनेसे शीतलता आती है । इसके पके बड़े पानोंमेंसे लोहा गालनेकी भट्टीके लिये धौंकनी (Bellows) बनाई जाती है । रुईके तन्तु लम्बे न होनेसे सूत या वस्त्र बनानेमें उपयोगी नहीं है, किन्तु उसका उपयोग गद्दो तकिये भरने और ओषधियोंके लेपके लिये होता है ।

मात्रा—गोंदकी मात्रा ३ से ६ माशे दूधके साथ ।

गुणधर्म—इस गोंदके सेवनसे मल सर्प के समान लम्बा और अधिक उतरता

है। इसमें स्नेहनधर्म बहुत कम है। बल्य गुण बिल्कुल नहीं है। यह गोंद ग्राही, कफघ्न और पौष्टिक है। गर्भाशय क्षत, मूत्राशय क्षत, प्रदर, गर्भाशयकी शिथिलता आदिपर लाभदायक है। गर्भस्राव रोकने के लिये यह घरेलू औषध है। उसे ट्रेगेकेन्था (Tragacantba) गोंदके प्रतिनिधि रूपसे ले सकते हैं।

उपयोग—गोंद जननेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें प्रयुक्त होता है। अत्यार्तव, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदरमें इससे अच्छा गुण आताहै। गर्भाशयके रोगोंपर यह सेलखड़ी और मिश्रीके साथ दिया जाता है। इसका उपयोग डाक्टर देसाई ने बहुत समय किया है।

(३०) कपूर।

सं० कर्पूर, स्फटिक, हिम, शीतलरज, शशधर। म० कापूर। गु० कपुर। फा० काफ़ूर। बं० कर्पूर। मला० ता० कर्पूरम। ते० कर्पूरमु। क० कपूर। अं० Camphor।

ले० (1) Cinnamomum. Camphora —(जापान का कपूर)

(2) Dryobalanops. Aromatica—(सुमात्रा का कपूर)

(3) Blumea. Balsamifera—(चीनी कपूर)

(4) Cinnamomum. Citriodorum camphora (भारतीयकपूर)

परिचय—कपूर ४ जातिके वृक्षों में से निकलता है और रासायनिक रीतिसे अन्य वृक्षोंके तैलमेंसे भी तैयार होता है।

पहली जाति सिनामोमम् केम्फोरा है। यह भारतमें बोई जाती है। वृक्ष (या झाड़ी) सदा हरा। वृक्ष २० से ३० फीट ऊंचा। भारतके वृक्षोंसे कपूर नहीं मिलता, जापान और चीनके वृक्षोंसे कपूर निकलता है।

दूसरी जाति ड्रायोवेलेनोप्स एरोमेटिका है। यह जाति सुमात्रा और बोर्नियोंमें होती है। इस जातिके कपूरको भीमसेनी कपूर कहते हैं। वृक्षकी ऊंचाई १५० फीट। घेरा ३५ फीट। इस कपूरको अन्य कपूर के समान उबाला नहीं जाता। कपूर वृक्षों के चीरे और पोले भागमें जमा हुआ मिलता है। बड़ी आयुके वृक्षोंकी मोटी शाखाओं को काट देनेपर थोड़ेही दिनोंमें रस टपक कर जम जाता है। यह कपूर जलमें डालनेपर डूब जाता है।

तीसरी जाति (ब्लूमिया बालसमि फेरा) के वृक्ष हिमालय, नेपाल, सिकिम, आसाम, खासिया, चटगांव आदि स्थानोंमें होते हैं। फिर भी इस जातिके वृक्षोंका कपूर चीनसे ही भारतमें आता है। यह सर्वदा हरी रहनेवाली झाड़ी या छोटा वृक्ष है।

चौथी जाति सिनामोमम् सिट्रियोडोरम् की उपजाति केम्फोरा है। यह भारत में बोये जाती हैं। वृक्ष २० से ३० फीट ऊंचा, सर्वदा हरा, पान २ से ५ इन्च लम्बा, से २ इञ्च चौड़ा, मुलायम। इसका कपूरभी चीन जापानसे यहां आता है।

कपूरतैल—(Camphor oil) कपूर जम जानेके बाद जो प्रवाही रह जाता है उसे कपूरका तैल कहते हैं। यह पारदर्शक, मन्द पीलेरंगका, कुछ चिपचिपा, और कड़वा होता है। वार्निस करनेवाले उसका विशेष उपयोग करते हैं।

मात्रा—½ से २ रत्ती, शराब या दूधके साथ।

सूचना—कपूर स्तन्य (दूध) को कम कराता है। अतः संतानवती माताको नहीं देना चाहिये।

गुणधर्म—शीतल, वृष्य, चक्षुष्य, लेखन, लघु, मधुर और कड़वा। कफ, पित्त, विष, दाह, तृषा, मुँहकी विरसता, मेद और दुर्गन्धको नष्ट करता है।

डा० राधागोविन्दकरके मतानुसार कपूर मस्तिष्क और सुषुम्णाको उत्तेजक, हृदयोत्तेजक, धमनी आकुंचक, आक्षेपहर, वातहर, दीपन, दुर्गन्धनाशक, रक्त में श्वेताणुकी वृद्धिकारक, कफघ्न, कासहर, श्वासहर, ज्वरनाशक, स्वेदजनक, दाहशामक, वाजीकर, जननेन्द्रियकी उग्रताहारक (कामोत्तेजना शामक) और स्तन्य नाशक है।

छोटी बड़ी मात्रा अनुसार कपूरकी क्रियामें भेद हो जाता है। आयुर्वेदीय सामान्य मात्रामें पहिले मस्तिष्क, सुषुम्णा, हृदय, रक्ताभिसरण क्रिया और श्वासोच्छ्वासको उत्तेजना देता है। तथा प्रस्वेद बढ़ाता है। फिर शामक, पीड़ाहर और आक्षेपहर गुण दर्शाता है। एवं धमनीको दृढ़ बनाता है और स्पन्दनकी वृद्धि कराता है। फिर समग्र शरीरमें स्फूर्त्ति और उष्णता बढ़ाता है, तथा कभी कभी कभी प्रस्वेद ला देता है। आयुर्वेदीय बड़ी मात्रामें यह दाहजनक और मादक असर दर्शाता है, तथा मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, व्याकुलता और निद्रा आना आदि लक्षण प्रकाशित करता है। शरीर प्रस्वेदसे भीग जाता है। तथा नाड़ीके स्पन्दन घट जाते हैं। कपूरकी जननेन्द्रिय पर क्रिया विशेष रूपसे प्रकाशित होती है। प्रकृति और मात्रा भेदसे कभी उत्तेजना तथा कभी शामकता दर्शाता है।

अत्यधिक मात्रा सेवन करानेपर बहुधा वमन हो जाती है। यदि वमन न हुई तो मादक क्रिया दर्शाता है। मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर आना, प्रलाप, आक्षेप, बेहोशी और निद्रा आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें धमनीकी दृढ़ता और स्पन्दन, दोनों कम हो जाते हैं। मुँह पाण्डु वर्णका तथा शरीर शीतल और प्रस्वेद पूर्ण हो जाता है। यह अवस्था ४-६ घण्टे रहकर फिर चेतना आ जाती है। इस परिमाणसे भी मात्रा अधिक हो जानेपर कभी कभी बच्चोंकी मृत्यु भी हो जाती है।

कपूरका बाह्य प्रयोग करनेपर अत्युग्रता साधक गुण दर्शाता है।

त्वचा—कपूरके त्वचापर प्रयोग करनेपर (१) क्षीण पाक शामक (Weakly Antiseptic) (२) स्थानिक रक्ताभिसरण क्रियामें उत्तेजना और (३) प्रारम्भिक उत्तेजना के पश्चात् वातनाड़ियोंपर अवसादकता। बाह्यप्रयोग-मर्दन (Linim

ents) और मलहम रूपसे होनेपर रक्तप्रणालियोंमें प्रसारित होती है; स्थानिक उष्णता फिर स्पर्श लोप होता है। इस क्रियाद्वारा कपूर प्रत्युग्रताद्वारा उत्पादन (Counrter Irrit ation) या वेदनाशामक गुण दर्शाती है।

पचनसंस्था—कपूर आमाशयमें जानेपर मृदुउत्तेजना दर्शाता है। यह मंद अग्निपत्र नाशक है; और तार्पिन तैलके समान क्रिया दर्शाता है। सब रक्तवाहनियोंको प्रसारित करता है। यह आमाशयमें रसस्राववर्धक और आमाशयकी मन्थन क्रिया-वर्धक होनेसे शुद्धस्थानिक पचन क्रियाकी वृद्धि करता है।

आमाशयमेंसे अन्त्रमें जानेके समय हृदयपर प्रतिफलित उत्तेजना दर्शाता है। फिर नाड़ी दृढ़ होती है, और स्पन्दन बढ़ जाते हैं, तथा सुषुम्णामें भी उत्तेजना पहुँच जाती है।

रक्त—कपूर मर्दन करनेपर या उदरमें सेवन करनेपर चर्म और श्लैष्मिक कलामेंसे शोषित होकर रक्तमें प्रवेश करता है। यह बिना रूपान्तर हुए रक्तमें प्रतीत होता है। पचन क्रियाकी उन्नति होनेके हेतुसे रक्तमें श्वेताणुओं (Leucocytes) की संख्या बढ़ाता है।

वातसंस्था—कपूर पहले मस्तिष्क वल्कल (Cerebral cortex) पर उत्तेजना दर्शाता है। परिणाममें सामयिक प्रलाप और भ्रमसह मस्तिष्ककी विकृति और शिरदर्दकी उत्पत्ति, मांसपेशियोंकी क्रिया अनियमित बनना, मांस कम्पन और अपस्मार-के सदृश देरसे खिंचाव होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर क्रमशः अचेतना और अज्ञानावस्था निवृत हो जाती है। अधिक मात्रासे उत्तेजना वृद्धिहोकर चक्कर आने लगते हैं; नाड़ी मृदु हो जाती है। फिर शिरदर्द, मूर्च्छा, प्रलाप, आक्षेप और बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अन्तमें नाड़ी अतिमन्द और हृदयका पतन होकर मृत्यु हो जाती है।

कपूरकी वातसंस्थापर क्रिया शक्ति और प्रकृति भेदसे भेदवती हो जाती है। किसी किसी को ५-१० ग्रेनके सेवनसे सार्वांङ्गिक उत्तेजना और स्फूर्तिका बोध होता है। इसके विपरीत किसी-किसीको स्थिरता और स्वस्थता का अनुभव होता है।

कपूरके योग्यमात्रामें सेवनसे मस्तिष्क में रहे हुए केन्द्रस्थान उत्तेजित होनेसे विविध यन्त्रोंकी क्रिया विकृति दूर हो जाती है। हृदयकेन्द्र उत्तेजित होनेपर हृदयको बल मिलता है। धमनियोंके केन्द्रस्थानको उत्तेजना मिलनेसे धमनीके रक्त दबावमें सुधार, श्वासकेन्द्र उत्तेजित होनेपर कफनाश, स्वेद केन्द्रकी उत्तेजना द्वारा स्वेद जनन, जननेन्द्रिय केन्द्र उत्तेजित होनेसे कामोत्तेजना और इसी तरह अन्य यन्त्रोंको भी लाभ पहुँच जाता है।

रक्ताभिसरणक्रिया—सूक्ष्म मात्रामें प्रतिफलित क्रिया द्वारा हृदय उत्तेजित होता है, हृदय बलपूर्वक कार्य करने लगता है, धमनियोंपरभी उत्तेजनाका असर पहुँच जाता है। फिर धमनियां संकुचित होकर वेगपूर्वक दबाव बढ़ जाता है, किन्तु कपूर

शिराओंके भीतर पहुँचनेके बाद मांसपेशियोंपर साक्षात् क्रिया दर्शाकर हृदयको मंद बनाता है। एवं प्रसारक क्रिया केन्द्रकी अवसादकता होनेसे रक्तदबाव का ह्रास हो जाता है। स्वेद वाहिनियां प्रसारित होती हैं, जिससे प्रस्वेद आता है, और शारीरिक उत्ताप गिर जाता है।

उत्तेजनाके अतिरिक्त कपूरकी उत्तम विशेषक्रिया यह है कि, अतिशय उष्णता या दूसरे किसी भी कारणसे हृदयमें कुछ विकृति हो जाती हो तो कपूर देते रहनेसे उत्पन्न नहीं होती। इस हेतुसे कपूर को हृदय संरक्षक कहा है।

श्वाससंस्था—कपूर द्वारा श्वासकेन्द्रपर उत्तेजना पहुँचती है। इस हेतुसे श्वासोच्छ्वास क्रिया शान्त, सबल और गम्भीर बनजाती है। एवं निःश्वासके साथ कपूर बिना रुपान्तर हुए बाहर निकलता रहता है। जिससे कफ पतला और शिथिल होता है; तथा सरलतापूर्वक बाहर आजाता है।

त्वचा—कपूरकी स्वेदजनन क्रिया प्रस्वेद केन्द्र द्वारा स्वेद ग्रन्थियां उत्तेजित होनेपर होती हैं। साथ साथ कैशिकाएं प्रसारित होती है। जिससे प्रस्वेद आने में सहायता मिलती है। स्वेद मार्ग से कपूर बाहर निकलता है, इस हेतु से देह में से कपूरकी वास आती है; और त्वचापर शीतलता आजाती है।

जननेन्द्रिय—कपूर छोटी मात्रामें कामोत्तेजक और अधिक मात्रामें शामक है। कपूर सगर्भा स्त्री को अधिक मात्रामें देने से कभी कभी गर्भपात हो जाता है।

मूत्रसंस्था—कपूर वृक्कों में पहुँचने पर रूपान्तरित होकर पेशाबके साथ बाहर निकलता रहता है। जिससे मूत्रमार्ग में कुछ दर्द होने लगता है। 33408

कपूर कल्पः—

कपूर हिंगुवटिका—कपूर और हींग समानभागलें, उसे मिलाने पर रस होने पर (या शहद मिलाकर) २-२ रत्तीकी गोलियां बनवाकर निगलवा देवें; अथवा २-३ माशे अदरखके रस या २-४ तोले दूध में मिलाकर ३-३ घण्टेपर देते रहनेसे रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है; तथा शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति आजाती है। यह वटी शक्तिपात, कफप्रकोप; बेहोशी, प्रलाप, निद्रानाश, आध्मान, शीताङ्गावस्था आक्षेप आदि अनेक उपद्रवोंपर प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

(२) कर्पूर अर्क—कपूर और मद्यार्क (Alcohol १०°/₀) सममाग मिला लेवें। इस अर्कके २ बूँदमें १ ग्रेन कपूर है। मात्रा ३ से, ८ बूँद। उपयोग-यह विसूचिका, अपचन, वान्ति, अतिसार आदिपर हितावह है।

दूसरी विधि—कपूर २ औंस और रेक्टीफाइड स्पिरिट १२ औंस और पीपरमेंटका तैल २ औंस लेवें। पहले कपूरको स्पिरिटमें गला देवें। फिर पिपरमेण्टका तैल मिला लेवें। मात्रा ५ से १० बूँद शक्करके साथ।

उपयोग—वमन, अतिसार, और विसूचिकापर तत्काल लाभ पहुँचाती है।

जहरी कीड़ेके दंशपर लगाया जाताहै। दांतोंमें दर्द होनेपर फोहा दांतमें रखें; या निवाये जलमें कपूरअर्क मिलाकर कुल्ले करें। कर्णशूलचलनेपर २ बूँद कानमें डालें।

विसूचिकाका प्रारम्भहोनेपर आध आध घण्टेपर यह अर्क देते रहें, तो ३-४ मात्रा देनेपर रोग काबूमें आजाता है। विसूचिकाकी यह निर्भय और उत्तम औषधि है। यदि गाँवोंमें यह अर्क तैयार न मिलसके तो तत्काल १ मासा कपूर २ माशे शक्कर-में मिलाकर खिलादेना चाहिए। कदाच वमन होकर कपूर निकलजाय तो फिर दूसरी बार देदेवें। केवल कपूर दे देनेपर भी कालेरा दबजाताहै।

(३) कर्पूर तैल—(Camphorated oil)—कपूरको ४ गुने जैतून नारियल या तिलके तैलमें मिलानेसे कपूर तैल तैयार हो जाता है। तेल समान्य गरम कर उसमें कपूरका चूर्ण डालकर ढकदेनेसे कपूर मिल जाता है। कपूरके चूर्ण और तैलको बोतलमें भर डाटलगा कड़क धूपमें रखदेनेसे भी कपूर तेलमें मिलजाता है। इसे डाक्टरीमें लिनिमेण्ट केम्फोरा भी कहते हैं।

उपयोग—यह तैल उत्तेजक और वेदनानिवारक है। चोट लगनेसे उत्पन्न शोथ और वेदना, मोचसे आई हुई सूजन, जीर्ण आमवातमें सांधे और कमरमें वेदना तथा मासिकधर्म आनेपर और गर्भावस्थामें कमरकी पीड़ा होनेपर १०-१५ मिनटतक मालिश करने पर लाभ हो जाता है।

(४) कपूरका मलहम—कपूर, सफेद राल, मुर्दासंग और मोम १-१ तोला, वेसलीन या घी ५ तोले लेवें। वेसलीन या घी को गरम करके मोम मिला लेवें, फिर कुछ गरम घीमें राल, कपूर और मुर्दासंगका चूर्ण डालकर मलहम बनालेवें। इस मलहम को थालीमें डालकर १०-२० बार पानीसे धो लेवें। यह मलहम अति सड़ेहुए घावोंको शोधित करके भर देता है। फोड़ेके लिये उत्तम औषधि है।

(५) कर्पूरमिश्रित दन्तमञ्जन—कपूर १ भाग और चाकमिट्टी (या सेलखड़ी) ९ भाग कपूर को थोड़ी शराबमें मिलाकर फिर चाकमिट्टीमें मिलाकर कपड़छानकर लेवें। प्रतिदिन दांतोंपर घिसनेके लिये यह दन्तमञ्जन हितकारी है। यह दांतों को साफ करदेता है, कीटाणुओंका नाश करता है; और कफके भीतर रहे हुए कफ और मलको आकर्षित करके बाहर निकालदेता है।

(६) कपूर हिम—कपूर १॥ माशे, सफेद मिर्च १॥ माशे, छोटी इलायची १॥ माशे तथा बादाम, सौंफ और मिश्री १॥-१॥ तोले लें। पहले मिर्च, इलायची, बादाम और सौंफ को चटनीकी तरह पीसें। फिर कपूर और मिश्री मिला २० औंस जलके साथ छानलेवें। मात्रा १ से २ औंस। इस हिमका उपयोग लू लगना, दाहज्वर, ज्वरमें थकावट, अपचन, अपचनजनित अतिसार और विसूचिकामें हृदयकी शिथिलतासे चक्कर आना आदि विकारों पर २-२ घण्टेपर ३-४ बार दिया जाताहै।

(७) अमृतबिन्दु—कपूर, पिपरमेण्टकेफूल, अजवायनकेफूल, तीनों सम-भाग मिला लेवें। थोड़े ही समयमें जल हो जायगें। इसे अमृतबिन्दु, अमृतधारा, जीवनधारा, जीवनरक्षक, आदि अनेक नाम दिये है मात्रा २ से ५ बूँद शक्कर या जलके साथ।

उपयोग—वान्ति, अतिसार, विसूचिका, अग्निमाद्य, अफारा, उदरकृमि, उदर-शूल, दंतशूल, शिरदर्द, आक्षेप, चर्मरोग, दूषितव्रण, हिस्टीरिया, बालकोंके नृत्यवात (Chorea), पार्श्वशूल, आमवातजसंधिशूल, गृध्रसीकाशूल, कटिशूल, जुकाम, बुखा-रमें व्याकुलता, कफप्रकोप आदि अनेक रोगोंमें तत्काल प्रभाव दर्शाता है।

इसका उदर सेवन कराया जाताहै; एवं बाहर लगानेमें भी उपयोग होता है। दंतशूलमें दांतोंमें फोहा रखें। शिर दर्दमें ८ गुने तैलमें मिलाकर कपालपर लगावें। शूलस्थानपर ८ गुने तैलमें मिलाकर मर्दन करें। व्रण साफ करनेके लिए फोहा उसपर रखें। जुखाममें उदर सेवनके अतिरिक्त सूंघाया जाता है। सारे शरीरमें खुजली चलने-पर तैलमें मिलाकर मालिश करावें। और ३-३ बूँद जलमें मिलाकर दिनमें ३ बार सेवन भी करावें। गाँवोंमें यह एक ही दवा अनेक रोगों पर काम देती है।

(८) अमृतवाम—अमृतबिन्दु १ औंस, नीलगिरीतैल ३ औंस, मोम ४ औंस और १६ औंस वेसलीन या तिली (या सरसों) का तैल लेवें। पहले तेल (या वेसलीन को गरम करें, उसमें मोम मिलाकर उतार लेवें। निवाया रहनेपर अमृतबिन्दु और नीलगिरीतेल मिलाकर शीशियोंमें भर लेवें। यह बाम शिरदर्द, पार्श्वशूल उदर-शूल, संधि शोथ, कमरकी वेदना, जहरी कीड़े का दंश, हाथ पैर फटना, होठफटना, खुजली चलता, मांसपेशियोंमें बांयटे आना, इन सब स्थानोंपर मालिश करनेसे तत्काल वेदना शमन हो जाती है।

उपयोग—कपूरका उपयोग प्राचीनकालसे भारतमें हो रहा है। यह उत्तम घरेलू औषधि है। कपूर शक्तिपात और अविचारपन होनेपर वातनाड़ी उत्तेजक रूपसे विशेष प्रभाव पहुँचानेके लिए प्रयोजित होता है। इसकार्यके लिये यह विशेष प्रकारके तीव्र ज्वर, मोहजनक विष प्रयोग, मद्यजप्रलाप और वात नाड़ियोंकी अव्य-वस्था जनित विविध व्याधियों, (उन्माद, हिस्टीरिया काली खांसी और शुक्रमेह) पर प्रयोजित होता है। यह अनेक बार ज्वरोंमें उत्तेजना पहुँचाने और प्रस्वेद लानेके लिए प्रयोजित होता है।

ज्वररोगमें प्रस्वेदलाने और उष्णता कम करानेके लिये कपूर अति उपयोगी है। यदि ज्वर निर्णय न हुआ हो, तो १-२ दिन रोगी को केवल कपूरके जलपर रख देना चाहिये। शीतला, रोमान्तिका, ग्रन्थिज्वर, मधुरा, शोथज्वर और विसर्प रोगपर गुणकारक है। कपूर सेवनसे हृदयका संरक्षण होता है। रक्ताभिसरण क्रिया, मस्तिष्क और मस्तिष्कगत केन्द्रस्थानों पर उत्तेजना पहुँचती है। आमाशय और अन्त्रमें वायु

संग्रहीत नहीं होती। कपूर का यह धर्म उत्तम है। फिरभी सब प्रबल और सामान्य ज्वरोंपर प्रारम्भावस्थासे ही कपूर नहीं दिया जाता।

ज्वररोगमें शक्तिपात, मानसिक अस्थिरता, निद्रानाश, मृदुप्रलाप और आक्षेप आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, तथा ये लक्षण मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य और प्रदाह जनित न हों, तो कपूर वातसंस्थाको उत्तेजित करके विशेष लाभ पहुँचाता है। ज्वरमें अवस्था भेदसे हींग, कस्तूरी या अफीम आदि औषधिके साथ प्रयोजित किया जाता है।

नवचिकित्सकोंने हृदयको उत्तेजना देनेके लिए डिजीटेलिस व्यवहृत किया है, किन्तु कपूरका फल उसकी अपेक्षा विशेष है। डिजीटेलिससे केवल हृदयको उत्तेजना मिलती है किन्तु कपूरसे हृदयके अतिरिक्त मस्तिष्क और विविध केन्द्रस्थानोंको भी उत्तेजना मिल जाती है। कभी कभी डिजीटेलिससे लाभ नहीं होता। ऐसे समयपर कपूरसे कार्य सिद्धि हो जाती है। यदि उदरमें वायु संग्रहीत होनेसे हृदयमें शूल और घबराहट होते हों तो डिजीटेलिस के बदले कपूर देना ही अति हितकारक माना जाता है।

ज्वरमें कफवृद्धि होनेपर उसे निकालने और कासको कम कराने तथा खांसनेकी शक्ति कम हुई हो, तो श्वासकेन्द्रको उत्तेजना देने के लिये डिजीटेलिस उपयोगी नहीं होता, किन्तु कपूरसे रक्ताभिसरण और श्वासोच्छ्वास, दोनों क्रिया उत्तेजित होजाती हैं। कर्पूरमें ये दो गुण होनेसे ज्वरमें डिजीटेलिसकी अपेक्षा कर्पूर श्रेष्ठ है। ज्वरमें कफवृद्धिपरभी कर्पूरहिंगु वटिका लाभदायक है एवं बेहोशी को दूर करनेकेलिये भी इसे शहदमें मिलाकर जिह्वापर मालिश की जाति है।

कर्पूर कममात्रामें कामोत्तेजक और ज्यादा मात्रामें कामशामक होनेसे जननेन्द्रियके विकारोंपर अति उपयोगी है। इनदोनों गुणोंमेंसे कामशामक—धर्मका उपयोग अधिक होता है।

(१) सन्निपातमें बेहोशी—यदि नाड़ी अतिमृदु और तेज हो, तो कर्पूरहिंगुवटिका के साथ आधरत्ती कस्तूरीभी मिलादेनी चाहिये। रोगी बेसुध हो, तो कर्पूर हिंगुवटी और कस्तूरी को अदरख के रस या शहदमें मिला चटा देना चाहिये। यह चाटण ४-४ घण्टेपर नाड़ी सुधरनेतक देते रहना चाहिये।

(२) मधुरा और प्रलापक सन्निपात—इन रोगोंमें नाड़ी क्षीण और तेज, शुष्क, जिह्वा तथामृदु प्रलाप आदि वातसंस्थाके अवसादनके लक्षण प्रतीत होते हों, तो कर्पूरहिंगुवटी का प्रयोग किया जाता है।

सूचना—यदि जिह्वालाल हो तथा उदरमें वेदना सह अतिसार हो, तो कपूरका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(३) विसूचिका—हैजेकी यह अत्युत्तम औषधि है। इससे वमन और दस्त का दमन, खिंचावका ह्रास तथा हाथ पैरोंमें उष्णता आना, ये सब कार्य सरल-

तापूर्वक होजाते हैं। रोगका प्रारम्भ होनेपर तुरन्त कर्पूरार्क का प्रयोग करना चाहिए; और जबतक रोगशमन न हो, तबतक बार बार आध आध घण्टेपर देते रहें।

(४) अतिसार—विषूचिकाकी प्रथमावस्थाके समान ग्रीष्मऋतुके प्रकोप से अतिसार (Summer Diarrhoea) होनेपर कर्पूरअर्कके समान अन्य औषधि नहीं है। यदि नये दूषित जलके हेतुसे अतिसारकी उत्पत्ति हुई हो, तो भी कर्पूरअर्क उपकारक है।

(५) तमकश्वास, जीर्णकास, कालीखांसी—कफप्रधान रोगोंपर कर्पूर अति प्रशस्त औषध है। कालीखांसी, तमकश्वास, और श्वासनलिका के जीर्ण प्रदाहपर कर्पूरके सेवनसे बेचैनी कम होतीहै। खांसनेके साथ सरलतासे कफ गिरताहै और हृदय-की शक्ति बढती है। तमक श्वासका वेग बढनेपर ३-३ घण्टेपर २-३ बार कर्पूरहिंगुवटी देनेसे वेगका दमन हो जाता है।

वयोवृद्ध मनुष्यके श्वासप्रणालिकाके जीर्णप्रदाहमें खांसी चलती है, तो भी कपूर अति लाभदायक है। कपूर सितोपलादिके साथ मिलाकरके देना चाहिये।

(६) प्रतिशाय—जुकाम होनेपर कपूरकी पोटलीकर बार-बार सूँघते रहने पर सम्मुख कपालमें वेदना, बार-बार छींकें आना और नासिकाके जलस्राव आदि का दमन हो जाता है। एवं ज्वर आनेके पहले कपूरअर्क दे दिया जाय, तो प्रतिश्याय निवृत्त हो जाता है। यदि शिरदर्द हो तो कपालपर अमृतधारामकी मालिश कर लेनी चाहिये।

(७) जीर्णप्रतिश्याय—कितनेही रोगियोंको प्रतिश्याय रोग जीर्ण होकर अति संताप देता रहता है। कुछ दिनोंतक रोगीके नाक और आंखसे जलस्राव होता है, तथा रोगी हांपता रहता है। कुछ दिनों तक रोगी स्वस्थ हो जाता है। किसी-किसी रोगीको रोज सुबह एकाध घण्टे या कुछ मिनटोंतक प्रतिश्याय रहता है अथवा बार-बार प्रतिश्याय होता रहता है। क्वचित् दिनोंके बाद होता है और१-२दिनतक स्थिर रहता है। साथमें कपालमें अतिवेदना, नाकमें दाह होना, किसीको नाकमें खुजली आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह कष्टकर जीर्ण विकारभी कपूरअर्क के उदर सेवन और कपूरके सूंघनेसे दूर हो जाता है।

(८) हृद्रोग—हृदयकी शिथिलता होनेपर उदरमें वायुका संग्रहनियमपूर्वक होता है फिर उस हेतुसे हृदयक्रियामें प्रतिबन्ध होकर श्वासका दौरा हो जाता है। वह कपूरसे कम हो जाता है। कपूरसे हृदय सबल होता है। यह शिथिलता बहुधा तीव्र ज्वर और कफरोग में होती है। इस हेतुसे हृदय विकृतिपर कपूरका महत्त्व है। नागर-बेलके पानमेंरखी कपूर खिलानेसे लाभ सत्वर पहुँचता है। हृदयकी धड़कन बढ़ जाने पर कपूर हिंगुवटी ३-३ घण्टेपर देनेसे हृत्कम्प कम हो जाता है। हृदय फूल जानेपर

धड़कन बढ़ जाती है और कभी कभी हृत्कम्प होता है। ऐसी स्थितिमें औरश्वासप्रकोपमें कर्पूर हिंगुवटिका गुणकारक है।

(९) उन्माद और आक्षेप—मस्तिष्क और सुषुम्णा स्थित केन्द्रस्थान की विकृतिके हेतुसे उत्पन्न व्याधियोंमें कर्पूर लाभदायक है। कपूर सेवनसे केन्द्रस्थानोंकी शिथिलता दूर होती है। प्रसवावस्थामें उन्माद, आक्षेप, कालीखांसी शिरदर्द और तमक श्वासका दौरा आदि पर कपूर विविध औषधियोंके साथ दिया जाता है। सूतिका क्षेपमें कस्तूरी मिला देना विशेष लाभदायक है। सूतिकाके उन्मादपर खुरासानी अजवायन के साथ हितावह है।

(१०) कामोन्माद—योनि-कण्डूयन, स्त्रियोंका कामोन्माद (Nymphomania) पुरुषोंका कामोन्माद (Satyromania) तथा विनाहेतु शिश्नका उत्थान होते रहना आदि रोगोंपर कपूर लाभदायक है। कपूर २-२ रत्ती दिनमें दो वार देते रहनेस जननेन्द्रियकी उग्रताका ह्रास कराकर लाभ पहुंचाता है। यदि गुदनलिकामें कृमि हो जानेसे स्त्रियोंको कामोन्माद हुआ, तो तार्पिन तैलकी बस्ति या पिचकारी देनेकी व्यवस्थाभी करनी चाहिये।

(११) हिस्टीरिया—मासिक धर्म आनेके पहल हिस्टीरियाका दौरा होनेपर केवल कर्पूर अमृतबिन्दु या कर्पूरहिंगुवटिका सेवन करानेसे दौरा रुक जाता है।

(१२) शुक्रमेह और स्वप्नदोष—वीर्यस्रावपर कर्पूरके समान उपयोगी औषध बहुत कम है। शुक्रमेह, मूत्रके साथ वीर्यका निकलना, स्वप्नमें वीर्यपात, इन विकारोंपर रात्रिको कपूर २-२ रत्ती दूधके साथ देना चाहिये। यदि कपूरको खुरासानी अजवायनके साथ दिया जाय तो लाभ सत्वर पहुँचता है।

(१३) सुजाक—इसरोगमें शिश्न दृढ़ हो जानेपर उसमें वेदना होती है। उसपर २-२ रत्ती कपूर और चौथाई रत्ती अफीम मिलाकर देना चाहिये, तथा शिश्न और सिवनीपर मालिश करनेके लिये कर्पूर तैल देना चाहिये या १-२ माशे कर्पूरकी पुल्टिश बांधनी चाहिए।

(१४) गर्भाशयमें वेदना—मासिकधर्मके समय गर्भाशयमें अतिदर्द होने पर कर्पूर ४-४ रत्ती दिनमें दो वार देना चाहिये, या आवश्यकतापर २ घण्टेबाद पुनः दूसरी मात्रा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त कर्पूरतैलकी कटिदेशपर मालिशकरने और गुदामें पिचकारी देनेसे वेदना सत्वर निवृत्त हो जाती है।

(१५) स्तन्यशोषणकराना—संतान गुजरजानेपर माताके स्तनोंका दूध कम करानेके लिये कपूरका उपयोग उदर सेवन और लेप, दोनों रूपसे करना चाहिये।

(१६) मक्कलशूल—प्रसव होनेके बाद शूल (After pains) उपस्थित होनेपर कर्पूर महोपकारक है। उस समय ५ रत्ती कपूर ½ रत्ती अफीमके साथ मिलाकर देने से शूल शमन हो जाता है।

(१७) शक्तिक्षय—विविध यान्त्रिक प्रदाह होनेपर यदि रोगी निर्बल हो, नाड़ी क्षीण हो और शरीर शीतल हो, तो उग्रताका ह्रास करानेके लिये कपूर १-१ रत्ती मात्रामें वार-वार देते रहना चाहिये।

(१८) सोमरोग—स्त्रियों को सोमरोग होनेपर वारवार मूत्र अधिक मात्रा में आता रहता है। मूत्र धारण की शक्ति अति कम हो गई हो तथा शरीर धीरे-धीरे निस्तेज और निर्बल बनता हो उसपर कपूरके सेवनसे लाभ पहुंचता है।

(१९) आमवातजवेदना—जीर्ण आमवातमें कर्पूर २ से ५ रत्ती तथा अफीम ½ रत्ती मिलाकर ४ माशे सोंठके फाण्टके साथ देनेसे या अमृतबिन्दु देनेसे निद्रा आती है, वेदना निवृत्त होती है, और प्रस्वेद आकर लाभ हो जाताहै। इसरोग-पर वेदनावाले स्थानपर कर्पूरकी वाष्पदेनेसे भी प्रस्वेद आकर सत्वर लाभ पहुँचताहै।

आमवातमें संधियोंकी वेदना कम कराने, अकड़े हुएभागोंमें रक्ताभिसरण वढ़ाने और प्रस्वेद द्वारा विषको वाहरनिकालने के लिये कर्पूरतैल या अमृतनामकी मालिश कराई जातीहै।

(२०) वालकोंकी खांसी—छोटे वालकोंको खांसी होनेपर अमृतनाम या निवाये कर्पूरतैलकी छातीपर मालिशकी जातीहै। ज्वरमें कमर और पुट्ठेकी हड्डीपर कर्पूरअर्क का लेप दिनमें २-३ वार करनेसे नितम्बपर झुर्रि नहीं पड़ती।

(२१) शुक्र—नेत्रमें फूलाहोनेपर कर्पूरको वड़के दूधमें मिलाकर अंजन करनेसे फूला जल्दी कट जाता है।

(२२) योनिकण्डू—योनिके चारों ओर खुजली, व्युची और पामा आदि चर्मरोगोंपर कपूर और जसदके फूलको तैल या वेसलीनमें मिलाकर लगाना चाहिये, इस तरह वेदना विहीन दुष्टक्षतपरभी कर्पूरका उपयोग होता है।

(२३) दूषित व्रण—फूटे हुए व्रणपर कर्पूरमलहम लगाने या कर्पूरका चूर्ण लगादेनेसे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं; और व्रणरोपण जल्दी हो जाता है।

(२४) पशुओंका क्षत—यदि घावमें कीड़े पड़ गये हों तो उसमें भी कर्पूर भर देनेसे कीड़े मरजाते हैं; और व्रणका रोपण जल्दी हो जाता है।

(२५) दंतशूल—दन्तक्षतजनित शूल चलनेपर दांतोंकी पोलमें कपूरको वड़के दूधमें मिलाकर भरदेनेसे लाभ हो जाता है।

(२६) मुखदौर्गन्ध्य—मुँहसे दुर्गन्ध निकलनेपर कपूर, शीतलमिर्च, छोटी इलायचीके दाने और सोहागेके फूलेकी गोलियां वनाकर मुँहमें रक्खी जाती है। एवं विविध दन्तमञ्जनोंमें दुर्गन्ध नाशके लिये कपूर मिलाया जाता है।

(२७) विसूचिकामें खिंचाव—१ भाग कर्पूरको २ भाग तार्पिनके तैलमें गलाकर मर्दन करनेसे या अमृतवाम लगानेसे विसूचिकामें वांईटे दूर हो जाते हैं।

(२८) कुचीलेका विष—कुचीलेके विषको निवृत्त करानेके लिए कर्पूर उपयोगी है इससे विषजन्य आक्षेपका बल घटजाताहै।

(२९) व्युची, पामा, दुष्टव्रण—व्युची, पामा, दुष्टव्रण, कण्डूस्थान आदिपर धुंआ देनेसे इनमें रहेहुए कीटाणु नष्ट होकर रोगका जल्दी निवारण होता है।

(३०) नेत्रकण्डू—नेत्रकी भांपणींमें कीटाणुओंकी आबादी होजानेपर खुजली आती रहती है। वह स्थान अति लाल भासता है और बाल निकलजाते हैं। इस विकारपर कर्पूर मिश्रित औषधिका अंजन नीबूके रसके साथ करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

(३१) स्नायु—घीके साथ कर्पूर खिलाने और लगाने या कर्पूरकी पुल्टिस बांधनेसे नारु सत्वर बाहर निकलता है।

(३२) आगन्तुक घाव—शस्त्रका घाव लगकर रक्तस्राव होनेपर कर्पूर भरदेने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है, पाक नहीं होता; और घावभी मिट जाता है।

(३३) ततैया विष—ततैया मधुमक्षिका आदिके काटनेपर अमृतबाम या अमृतधारा अथवा कर्पूरअर्क लगानेसे विषका दमन हो जाता है। विच्छूके विषपर बाहर लगाने के अतिरिक्त नागरवेलके पानमें ४ रत्ती कपूर खिलाने से जल्दी लाभ पहुँचता है।

(३१) कबर।

हिं० कबर, खबर, पाकर। फा० कबर, कारक। अ० कबर, अफुक। तुर्क० कबरिया। कुमा० उलटकांटा। बलु० खबरो। तुर्क० कब्रिश। अं० Caper plant ले० Capporis Spinosa.

परिचय—यह कांटेदार झाड़ी नदी और नहरके किनारेपर होती है। आयुर्वेदमें जिस तरह करीरका उपयोग हुआ है, उस तरह यूनानीमें कबरका। शाखा पेन्सिलसे अंगुष्ठके समान मोटी। पान सादे। मोटे, चिकने, चमकीले, गोल या लम्बगोल, २ इञ्च लम्बे, पानके अग्रभागपर पीछे मुड़े हुये छोटे कांटे। पानकी बास पीसी हुई राईके समान तीक्ष्ण। स्वाद पहले नमकीन फिर चरपरा। फूल सफेद, २ से ४ इञ्च व्यासके, मुरझानेपर बैंजनी। फल हरा (पकनेपर लाल नारंगी), खुरदरे पृष्ठवाला, प्रायः लम्ब गोल, २ से ४ इञ्च बड़ा।

औषध रूपसे मूलकी छाल, कली और फलोंका अधिक उपयोग होता है।

छालको जलमें मिला नलिका यन्त्रसे अर्क निकालनेपर लहसुन सदृशवास आती है। कबरके अर्कको तैलमें मिलाकर खरल करनेपर दुग्धीकरण (Emulsion) बन जाता है।

इसके पुंकेसर बहु संख्य अति सुन्दर, चरपरे और उग्रवासवाले होते हैं। ये

केपर (Caper) नामसे मसालारूपसे यूरोपमें विकता है। औषध रूपसे विशेषतः छाल प्रयोजित होती है, तथापि इसी केसरमें भी यही गुण है।

मात्रा—स्वरस ६ माशेसे १ तोला। छाल २ से ४ माशे।

गुणधर्म—मूलकी छाल उष्ण, उत्तेजक, श्लेष्मघ्न, मूत्रल, दाहक, चरवरी और उदरवातनाशक है। यह कफ प्रधानरोग, लकवा, जलोदर, संधिवात, यकृत् और प्लीहावृद्धि तथा नष्टार्त्तवपर प्रयोजित होती है। बाह्योपचार रूपसे व्रण, विद्रधि, ग्रन्थि, शोथ, प्लेग की गांठ, पूयव्रण आदिपर पुल्टिस रूपसे बांधनेमें उपयोगी है।

इसकी कलिका और फलमें आमपाचक और मूत्रलगुण होनेसे जीर्ण आमवात और शोथरोगमें लाभ दायक हैं।

पुंकेसरमें मूत्रल और सारक गुण उत्तम है। रक्तपित्त (स्कर्वी) रोगमें यह यूरोपके भीतर घरेलू रूपसे उपयोगमें आता है। यह जुकामको सत्वर दूरकर शरीरमें उत्तेजना उत्पन्न करता है। फल और कलियोंका सिर्का यूरोप और अमेरिकामें बिकता है।

अचार हिन्द, फ्रान्स, स्पेन, इटली, अफगानिस्थान, तुर्कस्थान आदि अनेक देशोंमें दीर्घकालसे प्रचलित है। वह संधिवात और अन्य वातरोगपर लाभदायक है।

इसमें उष्ण गुण होनेसे यह आमाशय और अन्त्रमें रहे हुए आमको जलाता है; उत्तेजक गुणके हेतुसे अन्त्रकी परिचालन क्रियाको बढाकर शौचशुद्धि कराता है। अन्त्रस्थ कृमियोंको नष्ट करता है; और बाहर निकालता है। अपचन होने और शीत लगनेसे जिनको श्वासका दौरा बार बार हो जाता हो, उनके लिये कबरका अचार हितकर है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार कबरकी क्रिया साधारणतः सेनेगा (Senega) के समान है। इस तरह कबर और वरनाकी क्रिया भी लगभग समान है। यह उष्ण, उत्तेजक, श्लेष्मघ्न, मूत्रल और कफघ्न है। कबरमें रहा हुआ क्वेर्सेटिन (Quercetin) वृक्कोंमेंसे बाहर निकलता है। हृदयपर इसकी क्रिया कितनेक अंशमें डिजिटेलीस (Digitalis) के समान शामक है।

यूनानीमें इसे दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष कहा है; किन्तु जो झाड़ उष्ण देशोंमें उत्पन्न होते हैं; उनकी जड़ तीसरे दर्जेमें गरम होती है। फल तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें रूक्ष तथा मतान्तरमें गरम और तर हैं। बीज तीसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष हैं। पुष्प दूसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष है। यह उष्ण प्रकृतिवालोंके आमाशय, वस्ति, वृक्कस्थान और मस्तिष्कको हानि पहुँचाती है। अधिक कालतक प्रयोग करते रहनेसे खाज उत्पन्न होती है।

मात्रा—स्वरस ६ माशेसे १ तोला। छाल २ से ४ माशे।

उपयोग—डाक्टर देसाईके मतानुसार कबर कफप्रधान रोगोंमें दिया जाता

है। आमवात, शोथ और वातव्याधिपर इसका उपयोग होता है; यकृत् और प्लीहा-वृद्धि तथा अनार्चवमें यह हितकारक है। एवं व्रणोंपर इसका लेप किया जाता है।

(१) तीव्र वातवेदना—इसका स्वरस जल मिलाकर पिलावें (केवल स्वरस देनेसे मुँहमें फाले हो जाते हैं। स्थानिक लेप करनेसे भी लाभ हो जाता है। सांधाओंमें पीड़ा हो, तो पानोंकी पुल्टिस बनाकर बांधी जाती है।

(२) सूतिकारोग—बीजोंको बकरीके दूधमें उबालकर पिलावें अथवा इसके फलोंका अचार भोजनके साथ देते रहें।

(३) कर्णशूल—कबरके पानोंका रस कानमें डालनेसे कीटाणु नष्ट होकर शूल शमन हो जाता है।

(३२) कमल।

सं० सफेद कमलको पुण्डरिक और श्वेतपद्म। लाल कमलको रक्त-पद्म, पुष्कर, शतमत्र। नीलकमलको नीलपद्म, नीलपंकज। हिं० कमल, कंवल, पुरइन। बं० कमल, पद्म। म० गु० कों० राज० कमल। क० कमल-तवारि। ते० कालुंग, तामर। ता० अम्बल, तमरै। मला० अरविन्द। पं० कांवल। सिं० पवन। अं० Secred Lotus. ले० Nelumlium Specia-sum (सफेद या गुलाबी)

सुश्रुतसंहिताकथित कमलप्रकार—

(१) पद्म= ईषत् श्वेत, सूर्योदय विकासी।
(२) उत्पल= ईषन्नील।
(३) नलिन= ईषद्रक्त।
(४) कुमुद= चन्द्रोदयविकासी, कूई, नीलोफर।
(५) सौगंधिक= चन्द्रोदयविकासी, अति सुगन्धवाला कुमुद। नीले कमलको सौगन्धिक कहते हैं, ऐसा धन्वन्तरि निघुण्टु परसे भी जाना जाता है। फिर भी इसके लिये आचार्योंका मतभेद है।
(६) कुवलय= रक्तकमल।
(७) पुण्डरीक= अतिश्वेतकमल।

भावप्रकाशकारने श्वेतपद्मको पुण्डरीक, रक्तको कोकनद और नीलको इन्दीवर संज्ञा दी है। इनके अतिरिक्त पीला कमल (तुर्की कमल—Nuphar Tuteum) भी होता है; किन्तु यह भारतमें नहीं होता।

कमलमें पुष्प, वर्ण और आकार भेदसे अनेक जाति हैं। इन सबमें मुख्य दो भेद हैं। सूर्यविकासी और चन्द्रविकासी। सूर्यविकासी बड़े और चन्द्रविकासी छोटे हैं। आचार्योंने सूर्यविकासीको कमल और चन्द्रविकासीको कुमुद कहा है। दोनों-

में श्वेत, रक्त, नील, तीन तीन भेद हैं। कुमुद और कमलके पर्याय नाम परस्पर मिल गये हैं।

कुमुदके पर्याय शब्दोंमें सितोत्पल संज्ञा दी है। इस परसे कैयदेव निघण्टुके टीकाकारका मत है कि, चन्द्रविकासी कमलको उत्पल कहा गया है और सूर्यविकासी को ही कमल (पद्म) कहा गया है। दोनोंके भेद दिखानेके लिये पृथक् संज्ञा चाहिये।

पद्ममूलके नाम—शालूक, पद्मकन्द, मृणालमूल, भिसाण्ड। (कमलकन्द)

कमलनालके नाम—बिस, मृणाल, पद्मनाल, कमलदण्ड। (कमलकी डण्डी)

कमलकेसरके नाम—पद्मकेसर, किञ्जल्क, कांचनक, उत्पलकेसर। (कमलकेसर)

कमलबीज—पद्मबीज, पद्माक्षं, कमलाक्ष, पद्मकर्कट। (कमलगट्टा)

पुष्पाधार—कमलकर्णिका, पद्मबीजकोष, पद्मकोष, कमलगर्भ। (कमलका छत्ता)

कमलगट्टेके अन्य भाषाओंके नाम—बं० पद्मबीज। म० कमलकांकड़ी। गु० पबड़ी, कमलकांककड़ी। ता० तामरविरै। तै० तामरकाडा। क० तवैबीज।

परिचय—यह बड़ा जलज क्षुप है। तना पतला, लम्बा, शाखामय। पान २ से ३ फीट व्यासके। पान और पुष्पकी डांडी ३ से ६ फीट लम्बी। पुष्प ४ से १० इञ्च व्यासका। कमलका छत्ता २ से ४ इञ्च व्यासका। पुष्प वसन्तऋतुमें आते हैं। सूर्योदय होनेपर कमल विकसित होते हैं। सूर्यास्त होनेपर बन्द हो जाता है। फिर दूसरे दिन सूर्योदयके समयपर खुलता है। पुष्प वर्षाऋतुके अन्ततक आते हैं। फिर पखड़ियां झड़ जाती हैं; बीजाशय बढ़ने लगता है। पश्चात् फलोत्पत्ति होती है। श्वेत कमलमें बीज ८ से २० और रक्तकमलमें ८ से ३० तक होते हैं। बीज लम्बगोल होते हैं। कुछ दिनोंमें पकते हैं। पकने और सूखनेपर ऊपरके छिल्के कड़े हो जाते हैं। कच्चे कमलगट्टेका शाक बनता है। सुखनेपर औषध कार्यमें आते हैं। औषधिमें मिलानेके पहले भीतर रही हुई हरे रंगकी पत्तीको निकाल देनी चाहिये।

मात्रा—फूलोंका चूर्ण ३ से ६ माशे। फूलोंका फाण्ट १ से २ तोलेका। कमल कंद या ककड़ीका चूर्ण ६ माशेसे १ तोला। कमलकेसर १ से २ माशे।

गुणधर्म—कमल शीतल, वर्णकारक, मधुर, कफ और पित्तको जीतनेवाला तथा तृषा, दाह, रक्तप्रकोप, विस्फोट, विष और विसर्पका नाशक है। कमलोंके भीतर श्वेतकमलमें शीतल, मधुर, और कफपित्तजित गुण अधिक है। शेष कमलमें कुछ कम हैं। राज निघण्टुकारने रक्त कमलमें रक्तदोषहर और वृष्यगुण अधिक माना है धन्वन्तरि निघण्टुकारने नील कमलको रसायनमें श्रेष्ठ, देहको दृढ़ बनानेवाला और बालोंको काला करनेवाला कहा है। वैद्य निघण्टुकारने रक्त कमलको विस्फोटक, विष और रक्तविकारनाशक लिखा है।

कमलगट्टा—स्वादु, कड़वा और उत्तम गर्भस्थापक है। यह रक्तपित्तको शमन करता है; और वातको बढ़ाता है। राज निघण्टुमें कमलगट्टाको चरपरा, स्वादु, पाचक, रुचिकर तथा पित्तकी वमन, दाह और रक्तदोपका शामक कहा है। भावप्रकाशकारने कमलगट्टेको कफ वातहर माना है।

नाल—अविदाही, रक्त और पित्तकी शुद्धिकर, विष्टम्भकारक, मधुर, रूक्ष, दुर्जर, पित्त और दाहशामक है। राजनिघण्टुकारके मतमें मृणाल शीतल, कड़वी, कसैली, पित्त और दाहकी शामक, मूत्रकृच्छ्रनाशक और उत्तम रक्तवमनहर है। भावप्रकाशने वृष्य, पाकमें मधुर स्तन्यवर्द्धक तथा वात और कफको बढाने वाली भी कहा है।

कमलकी जड़—स्वादमें कसैली, विपाकमें कड़वी, शीतवीर्य तथा रक्तज और पित्तज रोगोंकी नाशक है। राजनिघण्टुमें मूल चरपरा, विष्टम्भकारक, रूक्ष, रुचिकर, कफहर, कसैला तथा शुष्क कास, पित्त, तृपा और दाहका नाशक कहा है।

कमलकेसर—कसैली, तृपनाशक और रूक्ष है; तथा रक्तपित्त, क्षय और पित्तप्रकोपको दूर करतो है। राजनिघण्टुकारने कमलकेसरको मधुर, रूक्ष, चरपरी, व्रणनाशक, शीतल, रुचिकर, पित्तशामक, तृपा और दाहकी नाशक लिखा है। चरकसंहितामें कमलकेसरको ग्राही और रक्तपित्त नाशक कहा है।

कोमलपान—शीतल, कड़वे, कसैले तथा दाह, तृपा, मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्तनाशक है।

छत्ता (कर्णिका)—कड़वा, कसैला, शीतल, मुखशोधक, लघु तथा तृषा, रक्तप्रकोप, कफ और पित्त विकारका नाशक है। कमलके फूलोंका रस शीतल, अत्यन्त वृंहण, त्रिदोषघ्न और सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाशक है।

कमलगट्टेका लावा—कमलगट्टेको भूननेसे उनका लावा बन जाता है। उसका उपयोग मखानेके समान होता है। वमन, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, गर्भाशयकी शिथिलता, रक्तस्राव, वीर्यकी उष्णता आदिपर लाभदायक है।

पान और डांडीमेंसे दूध जैसा चिपचिपा रस निकलता है, वह अतिसारके लिये अच्छी ओषधि है। अन्य जातिके कमलोंकी अपेक्षा उपरोक्त कमलोंमें गुण अधिक रहा है।

नव्यमतानुसार कमल पुष्प शीतल, दाहशामक, हृदय बलवर्द्धक, हृदय संरक्षक, रक्तसंग्राही, मूत्रल, मूत्र विरजनीय और ग्राही है। इसकी क्रिया सामान्यतः हृदय और छोटी रक्तवाहिनियोंपर डिज़िटेलिसके समान होती है। इसके सेवनसे रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है और हृदयकी गति शान्त और स्पन्दोंमें कमी होती है। मूत्रल और ग्राही गुण बहुत कम है। उष्णकटिबन्धमें उत्पन्न कमलकी अपेक्षा इरान, काश्मीर, तिब्बत, आदिशीतल प्रदेशोंमें उत्पन्न कमलमें गुण विशेषतर है।

कमलकेसर दाहशामक, रक्तसंग्राहक और कफ निःसारक है।

कमलककड़ी पौष्टिक, स्निग्ध, ग्राही, और रक्तसंग्राही है। कमल ककड़ीके लावेका चूर्ण कामेच्छाको कम करता है। एवं वमन, रक्तस्राव, दाह, प्रदर आदिमें भी हितकारक है।

कमलकी नाल और मूलका चूर्ण पौष्टिक, स्निग्ध, ग्राही और रक्तसंग्राही है। पानकी डोंडी शीतल और वेदना शामक है। वातरक्तज भयंकर शिरदर्द (Cephala lgia) पर इसे जलमें पीसकर लेप किया जाता है।

कमलकल्पः—

(१) कमलका शर्बत—पहले कमलका स्वरस निकालें या कमलके सूखे फूलों को ८ गुने जलमें उबाल अर्धावशेष क्वाथकर छान लेवें। फिर पुष्पसे दूनी शक्कर मिलाकर चासनी बना लेवें। इस तरह कमल और मुलहठी मिलाकरके भी शर्बत बनाया जाता है। मात्रा १ से २ तोले तक। यह तृषा, दाह, पित्तज शिरदर्द, चक्कर आना और उष्णताके हेतुसे उत्पन्न व्याकुलता को दूर करता है। यूनानी ग्रन्थकारोंके मतानुसार शीतला रोगमें यह शर्बत पिलानेसे दाने कम निकलते हैं। इस तरह यह अंशुघात (लू लगना) और रक्तविकारसे उत्पन्न ज्वरोंमें भी हितावह है। यदि कमलपुष्पके स्वरसमें शक्कर मिलाकर शर्बत बनाया जाय, तो वह विशेष लाभ पहुँचाता है। वह गर्भस्रावको भी रोक देता है।

(२) पद्मादि क्वाथ—कमल फूल, चन्दन, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, मुलहठी, सारिवा, नागरमोथा और मिश्रीका मन्दाग्निपर किया हुआ क्वाथ ज्वररोगमें अति हितकारक है। उस क्वाथसे हृदयका उत्तम रीतिसे संरक्षण होता है, पेशाब साफ आ जाता है; दाह कम होता है और बारबार दस्त लगते हों, तो बन्द हो जाते हैं। यह क्वाथ सगर्भा स्त्रियोंके लिये भी हितकारक है।

उपयोग—कमलका उपयोग शामक गुणके लिये होता है। यह दाह, ज्वर रक्तस्रावयुक्त रोगोंपर अधिक होता है।

ज्वरावस्थामें अति व्याकुलता होनेपर पुष्पोंको जलमें पीस कल्ककर हृदयपर लेप किया जाता है। कमलके पत्तोंपर रोगीको लेटाया जाता है और ऊपरसे पान ओढ़ाये जाते हैं। कमलनालके तन्तुका वस्त्रभी पहनाया जाता है। ये सब क्रिया ज्वरों में संरक्षणार्थ अति हितकारक सिद्ध हुई हैं।

रक्तपित्त, नाक, मुंह, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदिसे रक्त जानेपर रक्तकमलके पुष्प अथवा अन्य कमलकी केसरका उपयोग किया जाता है। दाह, रक्तार्श, मासिक धर्ममें रजःस्राव अधिक होना, इनके शमनार्थ कमलकेसरका सेवन मक्खन-मिश्रीके साथ कराया जाता है।

काश्मीरके लोग ८ मासतक कमलके मूलोंका सेवनकर जीवन निर्वाह करते हैं।

यह आहार कुछ वातुल है। बालकोंके लिये एवं अतिसार और प्रवाहिकाके रोगीके लिये हितावह है। जिससे उदरमें वायु उत्पन्न हो जाता है। यूरोप और चीनमें इसे पीसकर आटा बनाते हैं। उसे चीनी अरारूट (Chines Arrow Root) कहते हैं। गांठ या जड़को जलमें घिसकर दाद और त्वचारोगपर लगानेसे कीटाणुओंका नाश होकर रोग दूर हो जाते हैं। इसकी जड़का शाक और अचार बनाते हैं, और जड़के टुकड़ोंको सुखाकर रख लेते हैं। फिर चाहे तब शाक बना लेते हैं।

विसर्प; चर्मदाह और मस्तिष्ककी उष्णतामें कमलके फूल, कोमल पते, चंदन और आंवलेको मिला जलके साथ पीसकर लेप करनेसे दाह आदि विकार शमन हो जाते हैं।

(१) गर्भाशयसे रक्तस्राव—गर्भिणीके गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होनेपर फूलोंका फाण्ट देनेसे रक्तस्राव शीघ्र बन्द होता है। गर्भिणीके लिये यह उपाय सफल और निर्दोष है।

(२) रक्तार्श और रक्तातिसार—कमलकंदकी कांजी बनाकर देनेसे रक्तका गिरना और शुष्क पैतिक कासमें पुष्पका शर्बत हितकारक है; या रक्तार्शमें कमलकेशर को मक्खन मिश्रीके साथ देनेसे भी रक्तस्राव जल्दी बन्द हो जाता है।

(३) रक्तपित्त—कमलकी नालको जल और दूध समभाग मिलाकर पकावें। फिर दूध शेष रहनेपर छानकर पिलानेसे रक्तपित्त शमन हो जाता है। यदि रक्तपित्तसे रोगिणी माताके छोटे बालकोंके दांत हिलते हों तो, कमलकी नालसे पकाया हुआ दूध पिलानेसे उसके दांत भी दृढ़ हो जाते हैं। (सुश्रुत संहिता)

(४) गुदभ्रंश—पित्त प्रकोपसे उत्पन्न बालकोंके गुदभ्रंश रोगपर कमलके कोमल पानोंको शक्करके साथ खिलानेसे लाभ हो जाता है। (चक्रदत्त) इसरोगपर कमलकी जड़का चूर्ण भी शहदके साथ दिया जाता है।

(५) दाह— कमलके मूलको दूध या नारियलके जलमें पका, मिश्री या नमक मिलाकर खाया जाता है। इससे दाह शमन होता है; शरीर बलवान बनता है।

(६) मूत्रकृच्छ्रता—कमलके मूलका चूर्ण ६ माशे, घी ६ माशे, मिश्री ६ माशे, और जीरा ३ रत्ती मिलाकर सेवन करानेसे मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और अर्श दूर होते हैं। अर्शवालेको ऊपर मट्ठा पिलाया जाता है।

(७) ज्वरातिसार—कमल, कमलकेशर और अनारकी छालके चूर्णको चावलके धोवनके साथ देनेसे या फाण्ट पिलानेसे ज्वरातिसार दूर हो जाता है।

(८) हृदयकी धड़कन—पुष्पोंके फाण्टसे हृदयकी धड़धड़ या नाड़ीकी तेजी कम होजाती है; किन्तु यह औषधि हृदयके कपाटकी विकृति या जीर्ण हृद्रोगपर लाभ नहीं पहुंचा सकती। कमलका हृदय संरक्षक धर्म ज्वरचिकित्सामें दृष्टि-गोचर होता है। तीव्र और चालू (संतत आदि) ज्वरोंमें उष्णता के हेतुसे हृदयपेशी

निर्बल और दूषित (विषमय) हो जाती है। ये दोनों क्रिया (निर्बलता और दूषिता होना) कमलके फाण्टका प्रारम्भसे सेवन करानेपर नहीं होती। एवं रक्तमेंसे विष दूर करनेके उद्देश्यसे शीतला और अन्य संक्रामक ज्वरोंमें भी पुष्पोंका फाण्ट दिया जाता है।

(९) स्त्रियोंकी निर्बलता—कमलगट्टेके चूर्णको मिश्री मिले दूधके साथ १-२ मासतक सेवन करानेसे स्त्रियोंका शरीर सबल हो जाता है; माँसपेशियां दृढ़ बनती हैं और बारबार गर्भस्राव या गर्भपात होता हो, तो रुक जाता है। गर्भस्राव रोकनेके लिये कमलकेशर और मुलहठीका क्वाथ भी दिया जाता है। वह अधिक हितावह है।

(१०) प्रदर—स्त्रियोंके श्वेतप्रदर रोगपर कमल ककड़ीके चूर्ण, पाक, काँजी, ये तीनों लाभदायक हैं। नयारोग हो जल सदृश पतला और उष्णस्राव होता हो, तो सत्वर लाभ हो जाता है।

(११) अपचन और अपचन जन्य अतिसार—इस विकारमें कमलकंद के आटेकी काँजी ५-७दिनतक देनेसे उदर सबल होजाता है और पित्त प्रकोपसे होनेवाला अपचन और थोड़ा थोड़ा दस्त होना, यह विकार दूर हो जाता है।

(१२) वमन—वमन, उबाक, खट्टी डकार, कण्ठमें जलन आदिको रोकनेके लिये कमल ककड़ीकी कांजी लाभदायक होती है।

(३३) करील।

सं० करीर, ग्रन्थिल, तीक्ष्ण कण्टक, निष्पत्रक। हिं० करील, करीर, टेंटी, कचड़ा, सेत, करु। बं० करील। गु० केरडां। म० नेबती। मा० कैर। सिं० दोरा किरम, किरव। कच्छी-कैर, दोरा दवरा। क० चिप्पुरी, करीर। ते० करीरमु। ता० चिरकाल्ली। कों० किरल। ले० Capparis Decidua.

परिचय—यह काँटेदार झाड़ी है। ऊंचाई ४ से १० फीट; पुरानी झाड़ी २० फीटतक। पानका स्वाद चरपरा। मूल नरम जमीनमें बहुत गहराई तक प्रवेश कर जाता है। मूल सफेद भूरा, भीतरसे पीला भूरा। मूलको आड़ा काटनेपर बीचमें सछिद्र। वास चरपरी। स्वाद कड़वा। लकड़ी अति कठिन, चमकीली और कड़वी। इसे दीमक नहीं लगती। इससे कोल्हू, खेतीके शस्त्र, मथनी, प्याले, कुड़छी आदि बनाये जाते हैं। रेशेसे रस्सियाँ बटते हैं और जाल बुनते हैं। हरी शाखाएँ मसालकी तरह जलती हैं।

मात्रा—छालका चूर्ण १॥ से ३ माशे घीके साथ। राख १॥ से ३ माशे घी के साथ। पानका चूर्ण कफनाशके लिये २ से ४ माशे काली मिर्चके साथ मिलाकर।

गुणधर्म—वातश्लेष्महर, रुचिकर, रस चरपरा, उष्णवीर्य, अर्शोहर, आध्मान कारक, कीटाणुनाशक, व्रणहर, सारक, विषघ्न। फल-ग्राही, कसैला, मधुर, उष्ण और कफपित्तहर।

कच्चे फलोंका अचार अग्निप्रदीपक, वातहर, अर्शोहर और कृमिघ्न। अधिक खानेपर उदरवातवर्द्धक और मलावरोधकारक। शाक नेत्रदृष्टिके लिये हितावह।

कपोलोंको शिरपर मसलनेसे उस स्थानके बाल जम जाते हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार इसकी क्रिया कत्रके समान है (अर्थात् उष्ण उत्तेजक, श्लेष्महर और कफघ्न)। फल ग्राही। कली और कोमल पान वेदनास्थापक और स्फोटजनक। छाल कड़वी और सारक।

इसके पानोंके रसमें तांबेके पतरोंको ५० बार बुझानेसे भस्म सरलतासे बनती है और विशेष गुणप्रद बनती है। यह भस्म उदररोग, श्वास, कासपर अपेक्षाकृत विशेष कार्यकर होती है।

लकड़ीको जलानेपर लाख जैसा रस दूसरे सिरेपर निकलता है, वह दद्रुहर है।

अर्ककरीर—करीरके ताजे मूलोंके छोटे छोटे टुकड़ोंको हांडीमें भर पाताल यन्त्र या नलिका यन्त्रसे अर्क निकाल लेवें। मात्रा १ से २ माशे, शक्कर या जलके साथ। अपचन, अरुचि, उदरकृमि, अर्श और अग्निमान्द्यपर हितकारक। मस्सेपर लगानेमें भी उपयोगी है।

उपयोग—करीलका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। अरुचि, अर्श, विद्रधि, उदरशूल, अग्निमान्द्य, रक्तपित्त (Scuyup) आदिपर होता है। कानमें कीड़ेको मारनेके लिये ताजे पानोंका रस कानमें डाला जाता है।

यूनानी ग्रन्थकारके मतानुसार इसकी कोंपल और इस वन्दको समभाग मिला, कपड़छान चूर्णकर मासिकधर्मके दिनोंमें ६-६ माशे खिलाते रहनेपर गर्भधारण नहीं होता; एवं किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं होता।

(१) अर्श—अर्क करीर १० से २० बूंद तक दिनमें २ बार जलके साथ पिलाते रहनेसे और मस्सोंपर लगाते रहने पर थोड़े दिनोंमें मस्से मुर्झा जाते हैं।

(२) जीर्ण आमातिसारपर—फलोंका अचार खानेसे आम पचन होता है तथा अतिसार दूर हो जाता है।

(३) दन्तशूल—कोंपल या छालको चबानेसे कीटाणु मर जाते हैं तथा शूल शमन हो जाता है।

(४) संधिस्थानोंकीपीडा—लकड़ीकी राख घी के साथ दिनमें दोबार खिलानेसे जांघ और पैरोंकी संधियोंकी पीड़ा और कटिवात दूर होते हैं।

(५) श्वास—२०-२० बूँद करीर अर्क शक्करके साथ १-१ घण्टेपर २-३ बार देनेसे श्वासके दौरेका दमन होता है। अर्क देकर ५-७ मिनटके बाद निवाया जल एक दो घूंट पिलाना चाहिये। जीर्णरोगपर दिनमें ३ बार जलके साथ सेवन करावें।

(६) स्थानिकशूल—कोमल शाखाओंको पीसकर वेदनावाले स्थानसे सम्बन्ध प्रदेशपर लेप या पुल्टिस लगानेसे वहांपर त्वचा लाल होकर पीड़ित स्थानसे

रक्त आकर्षित होकर वेदना दूर हो जाती है। इस प्रकारके प्रयोगको प्रत्युग्रता साधक प्रयोग (Counter Irritant) कहते हैं। १५-२० मिनटमें दाह होनेपर लेप उठा लेवें। फिर ठण्टे जलसे धोकर घी वाला हाथ लगा लेवें। देर होनेपर फाला हो जाता है।

(३४) करेरूहा

सं० व्याघघण्टी, व्याघ्रवण्टो, व्याघ्रनखी, कण्टकलता, ग्रन्थिल। हिं० करेरुआ, अरदण्डा। रा० घोतोरण। बं० कालेकरे। पं० हिस. कर्विल। औ० ओग्रारो, लोभ्रोताई। मो० बगनई। कुमा० बिपुवा कांटा, उलटा-कांटा। क० मुल्लु कट्टारी। ता० इगुदी, इन्दु। गु० वाघांटो। म० वाघण्टी अन्ती, गोविंदा। ले० Capparis Geylanica.

परिचय—यह बड़ी कांटेदार झाड़ीनुमा बेल है। जड़ १॥ से ३ इञ्च मोटी। भीतरकी लकड़ी कठोर। लकड़ीपर छाल मोटी। मूलीके समान वासवाली। स्वाद चरपरा। शाखाएँ सुतली जैसी पतली। शाखा नलिकाकार नया भाग रक्ताभ, रूएंसे आच्छादित। पत्तोंके दण्ठलके मूलमें दो मुड़े हुए लाल नुकीले कांटे। पान, कड़वी वासवाले २॥ से ७॥ सेण्टीमीटर (१ से ३ इञ्च) लम्बे, लम्बगोलसा। फूल वसन्त ऋतुमें आते हैं, एकाकी या २-३। पहले सफेद फिर हल्के करौंदिये रंगके हो जाते हैं। फूल झड़ जानेपर फल होते हैं। फल लम्बगोल, लाल पिंगल, छोटे कागजी नीबूं जितने बड़े, सफेद गुदा और बहुसंख्य बीजवाले। स्वाद कड़वा। कच्चे फलोंका शाक होता है, लोगोंकी मान्यता है कि आर्द्रा नक्षत्रके अगले दिन फल खानेसे एक वर्षतक फोड़ा फुन्सी आदि चर्मरोग नहीं हो सकते और जहरी जीवोंका जहर नहीं चढ सकता। कच्चे फलोंका अचार कालीमिर्च, राई और तैल मिलाकर बनाया जाता है।

गुणधर्म—कबर या करोके सदृश। फल समान्यतः पित्तवर्द्धक, रुचिकर, उत्तेजक, वातश्लेष्महर, शोथघ्न और सूतिकाज्वरहर। छाल वेदना शामक और मूत्रल, प्रत्युग्रतासाधक रूपसे उपयोगमें आसकती है। इसके अचारके सेवनसे अग्नि प्रदीप्त होती है तथा पुराना अपचन और जीर्ण मलावरोध दूर होते हैं।

उपयोग—प्राचीनग्रन्थोंमें उपचार नहीं मिलते। वर्तमानमें निम्न रोगोंपर इसे प्रयोजित करते हैं।

(१) सूतिका ज्वर—फलोंका क्वाथ दिनमें २ या ३ वार देनेसे सूतिकाको विषप्रकोप या अपचन जन्य मन्द ज्वर रहता हो, वह दूर हो जाता है।

(२) फुन्सियां और मुंहासे—इसके मूलको शीतल जलमें घिसकर लेप करते रहनेसे गर्मीके दिनोंमें होनेवाली फुन्सियां, मुंहासे और नये कच्चे फोड़े बैठ जाते हैं।

(३) तीव्र अपचन—दूषित भोजन कर लेनेपर आमाशय और अन्त्रमें उग्रता (Issitation) आकर वमन विरेचन होने लगते हैं, साथ साथ उदरशूल, हाथ पैरोंमें शीतलता और व्याकुलता आदि लक्षण होते हैं। उसकी प्रारम्भिकावस्था में छालका चूर्ण, शराब या कांजीके साथ देनेसे सब लक्षण दूर होकर प्रकृति स्वस्थ स्वस्थ हो जाती है।

(४) नाड़ीव्रण और भगन्दर—मूलोंके कल्कको समभाग तैलमें मिलाकर तैलको पका लेवें। इस तैलमें बत्ती भिगोकर रखनेपर मूलमेंसे व्रण भर जाता है। कक्षा और जीर्ण गम्भीरव्रणको भी यह तैल भर देता है।

(५) व्रणशोथ—इसके पत्तोंकी पुल्टिस बांधनेसे शोथ बिखर जाता है।

(६) अर्शशोथ—पत्तोंकी पुल्टिस बांधनेसे मस्सोंकी सूजन दूर होती है।

प्लीहावृद्धि—आयुर्वेदीय विश्वकोषकार लिखते हैं कि करेरुआकी जड़की छाल और १० दाने कालीमिर्चको जलके साथ पीसकर प्लीहाके समान चौड़ी आध अंगुल मोटी रोटी बनावें। इस रोटीको प्रातःकाल शौच निवृत्त हुए रोगीको चित लेटाकर प्लीहापर रख कपड़ेसे खूब कसकर बांध देवें। ३ घण्टेतक चित सोते रहें। बंधनको ढीला न करें। १०-१५ मिनटबाद प्लीहास्थानमें दाह होने लगता है। दाह शनैः शनैः २ घण्टेतक बढ़ता जाता है। फिर शनैः शनैः कम होकर दूर हो जाता है। फिर रोगी इच्छानुसार दूध पीवें या खिचड़ी खावें। स्नान न करें। फिर प्लीहा स्थानको घी तैल वाला हाथ लगा लेवें। जल या प्रस्वेद भी न लगने देवें। अन्यथा वहां फाला हो जायगा। एक मास पर्यन्त गुड़, तैल, लालमिर्च, भूने चने या स्निग्ध, उष्ण, विष्टम्भ, दीर्घपाकी और भारी भोजनका त्याग करें। लघु और शीघ्रपाकी भोजनका सेवन करें। इस औषधिको एक समय बांधनेके हेतुसे प्लीहा शनैः शनैः कम होती जायगी। कभी कभी काले रंगका दस्त होता रहेगा। यह प्रयोग ७-८ वर्षके बालकसे लेकर ८० वर्षके वृद्धपर कर सकते हैं।

सूचना—जो अति डरपोक और नाजुक प्रकृतिवाले हों, उनपर यह प्रयोग नहीं करना चाहिये। कारण, समयके पहले बन्धन खोल डालें, तो लाभके स्थानपर हानि पहुँचती है। प्लीहा स्थानपर कुछ समय तक दाह होता रहता है। इस बाह्योपचारके पश्चात् एक मास पर्यन्त मंदारक्षार (आकके पक्के पान और सैंधानमकको हाँडीमें भर यथाविधि गजपुट देकर बनायी हुई भस्म) शहदके साथ प्रातः सायं ६-६ माशे देते रहें। तो विशेष हितावह माना जायगा, ऐसा आयुर्वेदीय विश्वकोषकारका अनुभव है।

(३९) करेला।

सं० करका, कारवेल्लक, कारली, कारवल्ली, कण्टपत्रा, पीतपुष्पा।

हिं॰ करेला करैला। म॰ कारले। को॰ कोराते। गु॰ कारेलां। बं॰ वड़ करेला, उच्छे गाछ। फा॰ कारेलीह। क॰ हागेल। तै॰ काकर। ता॰ पागल। मला॰ पावल। अं॰ Bitter gourd ले॰ Momordica Charantia

परिचय—इसकी वेल भारतके सब प्रान्तोंमें होती है। पान १ से ३ इञ्च व्यासके। फल (लम्बे, छोटे, हरे और सफेद रंगके) भेदसे इसकी कितनीही जातियां हैं। फल पकनेपर लाल हो जाता है। इसमें कुछ कड़वा, किन्तु प्रिय स्वाद है।

मात्रा—वृन्तसह पानोंका स्वरस १ से २ ड्राम। वालकको चौथाई मात्रा।

गुणधर्म—फल कड़वा, लघु, शीतल, वातकारक, सारक, दीपन और रुचिकर। ज्वर, पित्त, कफ, पाण्डु, प्रमेह, कृमि और रक्तविकारको दूर करता है। सुश्रुत संहितामें करेलेके पानोंके रसको उभयतो भागहर (वमन विरेचन करानेवाला) कहा है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार करेलेके हरे फल आनुलोमिक, पित्तशामक, कृमघ्न और मूत्रजनन हैं। वृन्तसह कोमल पान आमाशयपौष्टिक, मूत्रल, वामक और विरेचक है। इससे कभी-कभी वहुत वमन और विरेचन होते हैं। ऐसा हो तो प्रकोप शमनार्थ घी भात खिलाना चाहिये।

उपयोग—आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें करेलेका शाक रूपसे उपयोग किया है, किन्तु औषध रूपसे प्रयोग वहुत कम हुआ है। ज्वर और शोथमें करेले का साग देने का विधान किया है।

जीर्ण विषमज्वरमें यकृत्प्लीहावृद्धिके साथ उदरमें कुछ जलोत्पत्ति हुई हो, तो पानोंका स्वरस अति गुणावह है। इससे पेशाब वढ़ जाता है; एक दो बार शौच होता है; क्षुधा बढ़कर भोजन पचन होता है; तथा रक्तकी वृद्धि होती है। इस रोगमें प्रयोजक औषधोंकी गोलियां बनानेके लिये इसका स्वरस उपयोगमें लिया जाता है।

नये श्वासनलिकाप्रदाहमें पानोंका स्वरस बड़ी मात्रामें दिया जाता है एवं इसके साथ वच और शहद भी दे सकते हैं। वमन और विरेचन होकर प्रदाह कम हो जाता है।

पित्तप्रकोपमें पानोंका स्वरस सैंधानमक मिलाकर वमन और विरेचनार्थ दिया जाता है।

आमवात, वातरक्त, यकृत्प्लीहावृद्धि और जीर्ण त्वचारोगमें इसके फलका साग हितावह है। किन्तु फलोंका कड़वा रस निचोड़कर निकाल नहीं देना चाहिये। जीर्ण त्वचारोगमें पानोंके कल्ककी मालिश भी हितावह है।

कृमि गिरानेके लिये पानोंका स्वरस निवाये जलके साथ दिया जाता है। उससे कृमि मर जाते हैं।

मूलको पीस सैंधानमक मिला व्रण शोथपर बाँधा जाता है। इससे कभी-कभी गुण हो जाता है।

(३६) काँटे चौलाई ।

सं० मारिस, तण्डुलीय, कण्टक मारिष । हिं० काँटेदार मरसा, काँटे-चौलाई । वं० काँटानटिया, चांपा नटिया । गु० काँटालो तांदलजो, काँटालो डाभो । म० कांटे माठ । क० मुल्लुदण्डु । ता० मुल्लुक्किक्करै । ले० Amarantus Spinosus.

परिचय—भारतके सब प्रान्तोंमें यह होता है । तना १ से २ फीट ऊंचा । काँटे लगभग आध इञ्चके । पान १॥ से ४ इञ्च लम्बे । यह वर्षाऋतुका आरम्भ होनेपर निकल आता है । औषध रूपसे पञ्चाङ्ग, मूल और पानोंका उपयोग होता है ।

गुणधर्म—काँटे चौलाई मधुर, शीतल, सारक, मूत्रल, रक्तपित्त नाशक, विष-हर और ग्राही । डाक्टर देसाईके मतानुसार इसकी जड़ शीतल, मूत्रल, उत्तम स्नेहन, गर्भाशयको शक्तिप्रद और गर्भाशयकी वेदनाकी नाशक तथा स्तन्य जनन है ।

उपयोग—डाक्टर देसाईके मतानुसार इसके मूलका क्वाथ सुजाकमें देते हैं जिससे मूत्र वृद्धिहोकर पूय निकल जाता है, वेदना कम हो जाती है । फिर पूयोत्पत्ति बन्द हो जाती है । यह सुजाककी प्रथमा और द्वितीयावस्थामें उत्तम गुणकारक है । इसके क्वाथमें मुलहठी और अपामार्ग मिला देना चाहिये । (इसमें स्नेहन द्रव्य—Mucilaginious Properties) होनेसे यह अत्यार्त्तव रोग (Menorrhagia) पर हितकारक है । इसके फाण्टका उपयोग किया जाता है । इसके सेवनसे गर्भाशयका शूल दूर होता है तथा रक्तस्राव बन्द होता है । इसके साथ आंवले, अशोक छाल और दारु हल्दी बहुधा मिला देनेसे लाभ अधिक होता है ।

श्वेतप्रदर पर इसके मूलके क्वाथके साथ बीजा बोलका चूर्ण देनेसे जल्दी लाभ पहुँचता है ।

गर्भपात बार बार होता हो, तो इसके सेवनसे गर्भाशय शुद्ध होकर विकार निवृत्त हो जाता है । फिर गर्भपात नहीं होता ।

दूध (स्तन्य) बढानेके लिये पंचांगका क्वाथ पिलाते हैं ।

विद्रधि और व्युची रोगमें दाह कम करानेके लिये कांटेदार चौलाईके पानोंको पीसकर पुल्टिस बाँधते हैं एवं वद और विद्रधिको पकानेके लिये इसके मूलकी पुल्टिस बांधी जाती है ।

सुजाक या बहुमूत्रमें जब जलन होती हो, तब इसके पानोंका सागखानेपर मूत्रवृद्धि होकर दाह दूर होजाता है । रक्तविकार और पित्तविकारमेंभी इसका साग हितावह है ।

शराब नशा उतारनेकेलिये लाल डांडीका रस ४-४ तोले २ घण्टेपर दो बार पिलाया जाता है ।

इसके क्षारका सेवन करानेसे मूत्र कृच्छ्र, बहुमूत्र और अश्मरी रोग दूर होते

हैं। अश्मरी जनित तीव्र वेदना होनेपर क्षारको इसके रस ४-४ तोलेके साथ १-१ घण्टे पर २-३ बार देनेसे अश्मरी टूटकर निकल जाती है। अन्य समयमें आधसे १ माशा क्षार घीके साथ दिनमें दो समय या तीन समय सेवन कराना चाहिये।

सुवर्णभस्म इस काँटेदार चौलाईके रसमें पुटसे बहुत जल्दी बन जाती है। १० पुटमें अति मुलायम लालरंगकी सुन्दर भस्म तैयार होजाती है।

(३७) कालीमिर्च ।

सं० मरिच, यवनेष्ट। हिं कालीमिर्च, गोलमिर्च। बं० कालामरिच, गोल मरिच। पं० गोल मरिच। म० मिरवेल (बीजोंको मिरे)। गु० कालां-मरी काठि तीखा। फा० फिल फले अस्वद। अ० फिलफिले अविद्। ता० मिलागु। ते० मिरिआलु। क० मेनासु। म० कुरुमिलगु। ओ० गोलो मोरिको। सिं० गुलमिरिए। अं० Black Pepper ले० Piper Nigrum.

परिचय—नाइग्रम=काला। पिपर=काली मिर्च वाचक लेटिन शब्द है। कालीमिर्चकी बेल मद्रास और महाराष्ट्रमें होती है। नागरवेलके पानोंके समान इसके बीजोंको बोते हैं। यदि इस बेलको बढने देवें, तो २० से ३० फीट तक लम्बी होजाती है किन्तु फल अधिक और बड़े आवें, इस उद्देश्यसे बार बार ऊपरसे काटते रहते हैं। जिससे १०-१२ फीटसे अधिक लम्बाई नहीं होती। बोनेकी अपेक्षा कलम लगानेपर बेल अच्छी होती है।

ताजीमिर्चका अचार बनाया जाता है। ताजी मिर्चकी मंजरियोंको समुद्रजलमें डाल पीपेमें भरकर बाहर भेजते हैं। अर्धपक्व फल सुखाकर बेचते हैं, वह कालीमिर्च है। पक जानेपर छिलटे उतारनेसे सफेद मिर्च बनती है।

मात्रा—बीजोंका चूर्ण २ से ४ माशे।

गुणधर्म—बीज रसमें चरपरे, उष्ण वीर्य, रुचिकर, पित्तवर्द्धक, श्लेष्महर, वातहर, हृदयरोगशामक और कृमिघ्न हैं। ताजी हरी मिर्च पाकमें मधुर, अति उष्ण नहीं, चरपरी, गुरु, किञ्चित् तीक्ष्ण, कफस्रावी, पित्तको न बढ़ाने वाली है। सफेद मिर्च अति उष्ण या अतिरूक्ष नहीं है। इसका वीर्य अति उष्ण नहीं है। किञ्चित् पित्तव-र्द्धक, तीक्ष्ण, कुछ अंशमें सूक्ष्म, रुचिकर, दीपन, रस और विपाकमें चरपरी, कफघ्न और लघु है। युक्ति से सेवन करनेपर रसायन।

कालीमिर्चमें चरपरा रस होनेसे विशेषतः दीपन और शूलघ्न गुण दर्शाती है। जिससे अपचन, उदरशूल, आफरा, अरुचि, अग्निमान्द्य, अर्श, अतिसार, ग्रहणी और कृमि आदि रोग दूर होते हैं। उदर सेवनके अतिरिक्त मिर्चका उपयोग नस्य, अंजन, लेप और गंडूष रूपसे भी होता है।

कालीमिर्च पक्व होनेपर उसके छिल्टे सरलतासे दूर हो सकते हैं। फिर वह

श्वेत बन जाती है। पक्व होनेपर उसकी कटुताका ह्रास होजाता है; और स्वादु वीर्यका बल बढ़ जाता है। जिससे वह मस्तिष्कके लिये अधिक पोषक बनती है। दृष्टिकी कमजोरी आई हो, उसे वह दूर करती है। इसमेंसे चरपरापन कम होजाने और चक्षुष्य गुण अधिकतर होजानेसे आचार्योंने अनेक प्रकारके नेत्राञ्जनोंमें श्वेत मरिचका उपयोग किया है।

मिर्चमें कटुरस होनेसे वृष्य गुण नहीं है तथापि अग्निमान्द्य जनित निर्बलता और वृद्धावस्थाकी निर्बलतामें यदि कफ और वात धातु दूषित हुई हो, पित्तकी वृद्धि न हो, तो पथ्य आहार-विहारके साथ श्वेत मरिचका सेवन किया जाय, तो वह रसायन गुण दर्शाती है। इस हेतुसे आचार्यने "युक्त्या चैव रसायनम्, यह वचन कहे हैं।

यूनानी मतके अनुसार यह तीसरे दर्जेमें उष्ण और रूक्ष हैं। इससे उदर पीड़ा और आध्मानका नाश, डकार आना, कामोत्तेजना और विरेचन गुणकी प्राप्ति होती है। बार बार डकार आना, अरुचि, जीर्णज्वर, दांतोंका शूल, मसूढ़ेका शोथ, यकृत्पीड़ा, मांस पेशियोंका कुडना, प्लीहावृद्धि, कटिवात, पक्षाघात, श्वेत कुष्ठ, कण्ठमाला, नेत्ररोग और मासिकधर्ममें न्यूनता आदि विकारोंपर हितकारक है।

नव्य मतानुसार अल्प मात्रामें उष्ण, अग्निप्रदीपक, वातहर और उत्तेजक है। आभ्यन्तरिक प्रयोगमें मुँहके भीतर लालास्रावकी वृद्धि कराती है, तथा आमाशयकी क्रिया को उत्तेजित करा रसस्राव अधिक कराती है। इसके सेवनसे धमनीमें तेजी आती है। चर्म आदि यन्त्रोंकी क्रिया सतेज होती है। गुदनलिका, मूत्रयन्त्र, गर्भाशय और जननेन्द्रियपर इसकी उत्तेजक क्रिया विशेष रूपसे प्रकाशित होती है।

अधिक मात्रामें आमाशय और अन्त्रमें प्रदाह करती है, बाह्य प्रयोगमें चर्मप्रदाहक, प्रत्युग्रता साधक फिर वेदनाशामक रूपसे प्रकाशित होती है।

सूचना—अन्त्र और गुदनलिकामें प्रदाह होनेपर उसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। काली मिर्चका सेवन योग्य मात्रामें करनेपर हृदय, वृक्क, मूत्राशय, मूत्रमार्ग और लघु अन्त्रकी श्लैष्मिककलाको उत्तेजना देती है, फिर वह मलमूत्रके साथ बाहर निकल जाती है।

अति मात्रामें सेवन करनेपर उदरमें वेदना, वमन, मूत्राशय और मूत्रप्रसेक नलिका (Urethra) में अनुचित असह्य उत्तेजना तथा त्वचापर शीतपित्त (पित्ती Urticaria) के समान धब्बे प्रकाशित होते हैं।

मरिचकल्पः—

(१) अर्क मरिच—(Tinct. Pider) कालीमिर्च २॥ औंस और देशी शराब २० औंस लें। दोनोंको मिला ७ दिन तक रहने दें। दिनमें ३-४ समय चला देवें। फिर छान लेवें। मात्रा १ से २ ड्राम।

(२) मरीचाद्यवलेह—(Confeedtio Piper) काली मिर्चका कपड़-

छान चूर्ण २ औंस, विलायती जीरेका चूर्ण ३ औंस, शुद्ध शहद १५ औंस, तीनोंको मिला लेवें। मात्रा १ से २ ड्राम।

इनके अतिरिक्त डाक्टरीमें पल्विस ओपाई कम्पोझिटस बनानेमें भी कालीमिर्च व्यवहृत होती है।

(३) मरिचादिनस्य—कालीमिर्च, शिरीष बीज, वायविडंग और सब्जेको समभाग मिला कपड़छान चूर्णकर नस्य करानेसे मस्तिष्कमें रहे हुए, कफ, मल आदि विकार और कीटाणु निकल जाते हैं, और चेतनाकी प्राप्ति होती है। यह नस्य अपस्मार, हिस्टीरिया और बेहोशीमें हितावह है।

(४) मरिचादि चूर्णाञ्जन—श्वेतमिर्च, पीपल और समुद्रझाग १-१ तोला तथा काला सुरमा ९ तोले लेवें। सबको अच्छी तरह खरल कर लेवें। इसका अंजन करते रहनेसे कण्डू, फूला, कफजविकार और नेत्रमें मल आना आदि दूर हो जाते हैं।

उपयोग—आयुर्वेदमें अति प्राचीनकालसे ओषधि और मसालेमें मरिचका उपयोग होता है। चरक संहितामें दीपनीय, कृमिघ्न, शिरोविरेचन और शूलप्रशमन कषायोंमें एवं ज्वर, अग्निमान्द्य, अतिसार, गुल्म, चर्मरोग, कास, वातरोग आदि विविध रोगोंके प्रयोगोंमें काली मिर्च मिलायी है। सुश्रुतसंहितामें भी पिप्पल्यादि गण, त्रिकटु, बेसवार और विविध व्याधियोंके प्रयोगोंमें उपयोग किया है।

कालीमिर्च गुदनलिकापर विशेष असर पहुँचाती है। अतः ग्रहणी, अर्श और प्लीहावृद्धिपर कालीमिर्च, चित्रकमूल और काले नमकका चूर्ण मट्ठेके साथ दिनमें दो समय सेवन करानेसे लाभ पहुँचता है। इस तरह विविध रोगजनित निर्बलतासे या वृद्धावस्थामें प्राप्त अर्श रोग और गुदभ्रंशमे कालीमिर्चका चूर्ण शहद या मट्ठेके साथ दिनमें २ बार ३-४ मास तक सेवन करानेपर उपकार होजाता है। मट्ठेमें काली मिर्च, सेंधानमक और भूना हुआ जीरा मिलाया जाता है। अर्शरोगपर मरिचावलेह भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

गुदभ्रंशरोगमें कालीमिर्चके फाण्टसे गुदाका प्रक्षालन करके माजूफल और फिटकरीका चूर्ण छिड़कते रहना चाहिये।

सूचना (१)—आशुकारी गुदनलिका प्रदाहमें कालीमिर्चका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) कालीमिर्च शहदके साथ लेनेपर अन्त्रमें संगृहीत होती है, इस हेतुसे बीच-बीचमें सारक औषधिका सेवन करना चाहिये। मट्ठेका सेवन साथमें हो सके, तो किसी भी प्रकारका उपद्रव होनेकी सम्भावना नहीं है।

रास्तेमें चलनेसे थकावट आई हो, या मानसिक कष्ट पहुँचनेसे उदासीनता आई हो, उसे दूर करनेके लिए कालीमिर्च, सोंठ, दालचीनी, लौंग और इलायची

मिली चाय बनावें। फिर उसमें शक्कर और दूध आवश्यकतानुसार मिलाकर पिलानेसे तुरन्त उदासीनता और आलस्य दूर होकर शारीरिक स्फूर्त्ति और मानसिक प्रसन्नताकी प्राप्ति हो जाती है।

कालीमिर्च और लहसुनको पीस भोजनके प्रथम ग्रासमें घी मिलाकर सेवन करते रहनेसे वायु दूर हो जाती है। इस तरह मर्यादामें सतत सेवन करनेवालेको वात व्यथा कदापि नहीं होती। भारी भोजन और मांसाहार करनेवालोंको भोजन जल्दी पचन होनेके लिये भोजनके साथ सर्वदा मरिच चूर्णका सेवन कराना हितकारक माना है। अपचन और आफरापर भी यह व्यवहृत होती है।

दही आदि अभिष्यन्दी पदार्थोंका अधिक सेवन, शीत लग जाना, सूर्यके ताप में अधिक समय घूमकर तुरन्त शीतल जल पीना, तीक्ष्ण या विशक्त पदार्थोंका नस्य करना आदि कारणोंसे प्रतिश्याय उपस्थित होता है। इनके स्वरयन्त्र और कंठ आदि स्थानोंमें प्रदाह हो जाता है। साथमें ज्वर न हो कफ धातुमें विकृति होकर बारबार नेत्र मेंसे श्लेष्मा आता रहता हो, तो कालीमिर्चका चूर्ण सुंघाने और दूध या चायमें मिला पिलानेसे नया प्रतिश्याय तुरन्त दूर हो जाता है। साथ-साथ उपवास किया जाय, तो गुण सुनिश्चित मिलता है। यदि ज्वर हो और कंठस्थान, स्वरयन्त्र या फुफ्फुस नलिकामें प्रदाह फैल गया हो तो मरिचमिश्रित वच्छनाग वाली ओषधि नागगुटिका, श्वासकुठार, आनन्द भैरव या अन्य दी जाती है।

आफरा आना, अपचन और आमाशयकी शिथिलता जनित अग्निमान्द्यपर आमाशय उत्तेजक रूपसे इसका उपयोग किया जाता है। सुजाक और सुजाक जनित जीर्ण मूत्र प्रसेक नलिका प्रदाह (gleet) पर शीतल मिर्चके समान यह भी दी जाती है। अर्श और गुदानलिकाके विकारमें भी यह लाभदायक है। इसका सत्व पाइपरिन नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक (Antiperiodic) और ज्वर नाशक (Antipyretic) है। यह प्रस्वेद लाकर विषमज्वरको दूरकर देती है।

इसके तैलका उपयोग मांसपेशियोंमें आमवातजन्य वेदना, शिरदर्द और अर्श की वेदना पर लगानेमें होता है।

जीर्ण सुजाकमें कालीमिर्च हितावह है। कारण, कालीमिर्च वृक्कोंद्वारा मूत्रमार्गसे बाहर आती है; तब मूत्रपिण्डोंपर उत्तेजना दर्शाती है। जिससे मूत्रकी वृद्धि होतीहै। फिर मूत्राशय और मूत्रप्रसेक नलिका भी उत्तेजित होती है। इन सब भागों की श्लैष्मिक कलामें तेजी आती है।

श्वासरोगमें कालीमिर्च अच्छा लाभ पहुँचाती है। इस हेतुसे श्वासकुठारमें, कालीमिर्च मिलायी है। दौरेको यह दबात } विकारकी उत्पत्तिको कम कराती है। एवं कफ और कफकासमें लाभ पहुँचानेपर पित्तको प्रकुपित नहीं करती। चरक संहिकासपर घृत, शहद शक्करके साथ कालीमिर्चके सेवनको श्रेष्ठ उपचार दर्शाया है।

सफेद मिर्चका नेत्ररोगमें अंजन रूपसे और उदरमें सेवन रूपसे उपयोग होता है। नेत्राञ्जनमें सफेद मिर्च मिलानेपर नेत्रस्थ मल और विकारको बाहर निकाल दृष्टि को सबल बनानेमें सहायता मिल जाती है। एवं सफेद मिर्चका सेवन घी मिश्रीके साथ करनेसे मस्तिष्कगत उष्णता शमन होती, और दृष्टि बलवान बनती है। कितनेक चिकित्सक सफेद मिर्च, बादाम और सौंफको मिला जलके साथ पीस ठण्डाईके समान छानकर पिलानेमें विशेष गुण मानते हैं।

अर्दित (मुखके पक्षाघात) रोगमें यदि जिह्वा खिंचती है, तो कालीमिर्चके चूर्णको जिह्वापर घिसनेसे लाभ पहुँचता है।

वंगसेनाचार्यने तन्द्रानाशक अञ्जनमें मरिचको मिलाया है। शिरीष बीज और मरिच को बकरेके मूत्रमें पीसकर संज्ञा प्राप्तिके लिये अंजन करनेका लिखा है। एवं लोहभस्म सफेद लोध, सुरमा, मरिच और गोरोचनको खरल करके अंजन करनेसे भी तन्द्रानाश होनेका लिखा है। इस तरह कालीमिर्चके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर नस्य करानेसे भी तन्द्रा सत्वर दूर होती है।

अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अपस्मार और बेहोशीमें मरिचादि नस्य सुंघानेसे सत्वर चेतनाकी प्राप्ति होती है, और मस्तिष्कमेंसे कफ आदि मल निकलकर मस्तिष्क की शुद्धि होजाती है। सुश्रुत संहितामें अपतानकवात पर मरिच और बचाका चूर्ण खट्टे दहीके साथ प्रातःकाल भोजनके पहले पिलानेका विधान किया है।

बालककी मंदाग्नि हो, शरीर निर्बल रहता हो और जुकाम बना रहता हो, तो कालीमिर्चके चूर्णको घी शक्करके साथ प्रातः सायं चटाते रहनेसे शनैः शनैः अग्निप्रदीप्त होकर सब विकार दूर हो जाते हैं; और वह बलवान बन जाता है।

(१) अपचन और आफरा—कालीमिर्चका फांट बनाकर पिलावें, अथवा सोंठ, मिर्च, पीपल और हरड़के चूर्णको शहदमें मिलाकर देवें।

(२) विसूचिका—कालीमिर्च १ माशा, हींग १ माशा, कपूर दो माशे लें। पहले कपूर और हींग मिलावें। फिर मिर्च मिलाकर १६ गोलियां बनालेवें। विसूचिका प्रारंभ होनेपर तुरन्त आध आध घंटेपर एक एक गोली देते रहने से वमन और विरेचन बन्द होकर तथा कीटाणुओंका नाश होकर ४-६ घंटेमें ही रोगका दमन हो जाता है। हाथ पैरोंमें ऐंठन आती हों, तो प्याजके रसमें कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर मालिश करनेसे ऐंठन जनित पीड़ा दूर होजाती है।

(३) उदरशूल—अदरखका रस और नींबूका रस मिला उसमें १ माशा कालीमिर्चका चूर्ण डालकर पिलानेसे शूल निवृत्त हो जाता है।

(४) जुकाम—जुकामके लिये यह भारतवर्षकी घरेलू ओषधि है दूधमें कालीमिर्च मिला गरमकर पिलाया जाता है, अथवा कालीमिर्च मिलायी हुई चाय

पिलायी जाती है। यह नये जुकामके लिये सौम्य और श्रेष्ठ औषध है। सब कोईको निर्भयता पूर्वक दी जाती है।

सूचना—कालीमिर्च मिश्रित चाय या क्वाथ अति तेज होगा, तो हिक्का और मुखपाक हो जायगा, अतः प्रकृतिको अनुकूल रहे, उतनी काली मिर्च मिलानी चाहिये, एवं अति गरम क्वाथ नहीं पीना चाहिये।

(५) व्यर्थकास—कोमल तालूकी शिथिलता होनेसे वारवार खांसी आती है। जलपीने और भोजन आदिके निगलनेमें कष्ट पहुँचता है, उसपर कालीमिर्चके फाण्टसे कुल्ले कराये जाते हैं दिनमें २-३ समय कुल्ले करनेसे पीड़ा कम हो जाती हैं।

(६) हिक्का—एक सरावमें निर्धूम गोबरीकी अग्निपर १०-२० नग काली मिर्चोंको डालें, ऊपर छिद्रवाला ढक्कन रक्खें, उसमेंसे धुँआँ निकलनेपर ढक्कनके छिद्रपर एरण्डकी शाखा या दूसरी कोई नली रख, उस धुँएंका नस्य करें। मस्तिष्कमें धुँआँ पहुँचनेपर हिक्का बन्द होजाती है। एवं वातज शिरदर्द हो, तो वह भी शान्त होजाता है।

(७) अंजन नामिका—नेत्रके पक्ष्मपर फुन्सि होनेपर कालीमिर्चको जलमें घिसकर लेप करनेसे वह शमन होजाती है या पककर फूट जाती है।

(८) नक्तान्ध्य—रात्रिको नेत्रसे पूरा न दिखाता हो, तो सफेद मिर्चको दहीमें घिसकर प्रातः-सायं अञ्जन करते रहनेपर रतौंधी दूर होतो है, ऐसा वाग्भट्टाचार्यका मत है।

(९) बेहोशी—यदि सन्निपातमें बेहोशी निद्रावृद्धि होगई हो, तो श्वेत मरिच को शहद और घोडेकी लारमें घिसकर अञ्जन करनेपर जिस तरह सूर्य अंधकारको दूर करता है, उस तरह अति निद्रा और तन्द्राका निवारण होजाता है। त्रिदोष, सर्पविष आदि व्याधियोंमें अति निद्रावृद्धिके समयपर यह प्रयुक्त होता है।

(१०) नेत्रकण्डू—इमलीके जलमें कालीमिर्च घिसकर घी मिलाकर शामको अंजन करनेसे नेत्रकण्डू नष्ट होजाती है।

(११) शीतपित्त—पित्ती निकलनेपर कालीमिर्चके चूर्णको घीमें मिलाकर लेप किया जाता है। जिससे कण्डू और घब्बे, दोनों सत्वर दूर होजाते हैं एवं खानेके लिये भी मुख्य औषधके साथ मिर्च मिला देनेसे अधिक लाभ पहुँचता है।

(१२) नासारक्तस्राव—कालीमिर्चको दही और पुराने गुड़में मिलाकर पिला देनेसे नाकसे गिरनेवाला रक्त बन्द होजाता है।

(१३) व्रणशोथ—शोथपर कालीमिर्चको जलमें घिस निवायाकर लेप करनेसे व्रणशोथ और छोटे जन्तुके काटनेसे आया हुआ शोथ दूर होजाते हैं।

(३८) किरमाणी अजवायन।

सं० पारसीक यवानी, जन्तुनाशन, चौहार, यवानिका। हिं० किर-

माणी अजवायन, छुहरी अजमोद। वं० गेटेला। म० किरमाणी ओंवा, चोर ओंवा। गु० किरमाणी अजमो। का० वूई वूंटी। यू० तुख्म इप्स। अं० Worm Seed ले० Artemesia Moritima.

परिचय—यह क्षुप पश्चिम हिमालयमें काश्मीरसे कुमांऊ तक तथा पश्चिम तिब्बतमें होता है। ऊंचाई ६ इञ्चसे १॥ फीट। पान आधसे २ ईञ्च बड़े प्रायः सफेद रंगके। फूल गुण्डोके सदृश, कुछ तेजस्वी, गुलाबी या रक्ताभ। नया होनेपर उग्र सुगन्धयुक्त। स्वाद कपूर सदृश कड़वा। जलमें भिगोनेपर गुण जलमें आजाता है।

इस क्षुपके अविकसित पुष्पशीर्ष (Flower heads Santonica) मेंसे सेण्टोनिन (Santonin) नामक क्षारीय द्रव्य निकलता है। जो उदरमेंसे गोल कृमियों (Round worms Ascaris Lumbhicoids) को निकाल देनेके लिये दिया जाता है।

मात्रा—बालकोंको २ से ५ रत्ती। बड़ेको ४ से (माशे तक)। सेण्टोनीन शिशुको चौथाई रत्ती, २ से ५ वर्षके बालकको आधसे १ रत्ती।

गुणधर्म—रसमें कड़वा, उष्ण वीर्य, विपाकमें चरपरा, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक पौष्टिक और लघु है। यह त्रिदोष, जीर्ण, उदरकृमि, उदरशूल और आमका नाशक है। इसके गुण कुछ अंशमें खुरासीन अजवायनके समान है। नव्यमतानुसार अग्निप्रदीपक उत्कृष्ट कृमिघ्न और वेदनाशामक है। मात्रा अधिक होनेपर कामला जैसे लक्षण उपस्थित होते हैं।

सेण्टोनिन कृमिघ्न औषधोंमें उत्तम है। यह केंचवा (गोलकृमि) को नष्ट करनेके लिये अन्वर्थ है। इससे सूतके समान कृमि (Threadworm) सरलतासे दूर नहीं होते। एवं कद्दूदाना (Tapeworm) को मारनेकी इसमें कुछभी शक्ति नहीं है।

उपयोग—इस ओषधिके उपयोगसे निःसन्देह गोलकृमि स्थान च्युत होजाते हैं; किन्तु इसमें आनुलोमिक धर्म न होनेसे सर्वदा इसके साथ जुलाब देना पड़ता है। एरण्ड तैलके साथ इस चूर्णका प्रयोग किया जाता है; अथवा रात्रिको गुड़के साथ चूर्ण देकर सुबह एरण्ड तैलका जुलाब दिया जाता है।

(१) गोलकृमि—किरमाणी अजवायन ४ तोले और सोंठ १ तोला मिलाकर चूर्ण करें। उसमेंसे ६-६ माशे चूर्ण रात्रिको सोते समय निवाये जलके साथ देवें। दूसरे दिन सुबह एरण्ड तैलका जुलाब देनेसे गोलकृमि जीवित निकल जाते हैं।

(२) अपस्मार—किरमाणी अजवायन १ तोला, तमाखू (खानेकी) १ तोला और गुड़ २ तोला मिला १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली शीतल जलके साथ ७ दिनतक प्रातः सायं सेवन करानेसे अपस्मार दूर हो जाता है। तमाखुमिश्रणके हेतुसे बेचैनी होती है। कुछ चक्कर भी आते हैं। किसीको वमन भी हो जाती है; किन्तु इससे कोई अधिक हानि नहीं पहुँचती।

(३) कृमिज्वर—उदरमें कृमि हो जानेपर बुखार रहता हो तो किरमाणी अजवायनका फाण्ट दिनमें २ बार दिया जाता है। अरुचि, अग्निमान्द्य और व्याकुलता आदि लक्षणों सह कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(४) फिरंगविष—फिरंग होनेके कुछ वर्षों के पश्चत् पैरोंमें शूल चलता है, और चलनेकी क्रियामें भेद हो जाता है। किसी किसी को मूत्राशय और गुदामें असह्य वेदना होती है। ऐसे लक्षण उपस्थित होनेपर दूर करनेके लिये इस किरमाणी अजवायनका प्रयोग किया जाता है।

(५) अन्त्रकृमि जनित आक्षेप और अपस्मार—इन विकारोंपर सेण्टोनिन २-४ दिन देनेपर रोगोत्पादक कारणको नष्ट करके लाभ पहुँचा देता है।

सूचना—किरमाणी अजवायन या सेण्टोनिनके उपयोगसे गोल कृमियोंकी पक्षाघात हो जाता है किन्तु इसके बलसे बाहर नहीं निकल सकते। इस हेतुसे साथमें २ से ६ घण्टे बाद विरेचन देवें।

सेण्टोनिन सेवन—खालीपेट होनेपर सेण्टोनिन अधिक कार्य करता है, अथवा सामान्य विरेचन औषधिके साथ व्यवहार करनेपर शीघ्र क्रिया करता है। अन्य विरचनकी अपेक्षा एरण्ड तैलसे अच्छा परिणाम आया है। एरण्ड तैलसे सेण्टोनिनके सब दोष नष्ट हो जाते हैं। रात्रिको थोड़े एरण्ड तैलके साथ देवें। फिर सुबह आवश्यकता होनेपर पुनः एरण्ड तैल या अन्य विरेचन देनेसे कृमि जीवितावस्थामें बाहर निकल जाते हैं। कृमियोंको आक्षेप होनेसे वे अन्त्रको उत्तेजित करते हैं। फिर अन्त्र उनको बाहर निकाल देता है।

सेण्टोनिन लक्षण—सेण्टोनिनका प्रयोग करनेके आध घण्टेबाद (सेण्टोनिन रक्तमें पहुंचनेपर) नेत्र दृष्टिमें विकृति, पहले सब नीला, फिर पीला तत्पश्चात् बैंगनी भासना और कुछ घंटोंके बाद दृष्टि पुनः ठीक हो जाती है। पीत दृष्टि होती है, वह कांचपर विकार नहीं होता, किन्तु दृष्टि पटल और दृष्टि केन्द्रपर विशेष असरके हेतुसे होता है। गंध और स्वादमें परिवर्तन और मूत्रमें पीलापन आ जाता है। यह बस्तिसे बाहर निकलनेके समय बस्तिकी श्लैष्मिक कलाको उत्तेजित करता है। जिससे जल्दी मूत्र त्यागकी इच्छा होती है। सेंटोनिन मल मूत्रके साथ मल रूपसे बाहर निकलता है। इस हेतुसे क्षारके योगसे लाल हो जाता है। इनका पीला रंग क्षारके योगसे लाल बन जाता है।

सूचना—यदि सेण्टोनिनकी मात्रा अधिक हो जायगी, तो मांसपेशियोंमें आक्षेप और कम्प उत्पन्न हो जायगा। फिर अपस्मार समान मूर्छा और आक्षेप उत्पन्न होगा। आक्षेप कालमें श्वासोच्छ्वास मन्द चलता है, किन्तु सुषुम्णाके केन्द्रोंपर असर नहीं होता। इस तरह श्वास संस्थाके कालमें हृदय भी प्रभावित नहीं होता। यह प्रभाव मस्तिष्क वल्कल

(Cerebral Cortex) की विशेष क्रियासे उत्पन्न होता है। एवं कभी-कभी सुषुम्णाकेन्द्र भी आक्षेपमें फंस जाता है।

(३९) कीड़ामार।

सं० धूम्रपत्रा, गृध्रपत्रा, कृमिघ्नी। हिं० कीड़ामार, गंदन, गंदाली। गु० कीडामारी। म० किडामारी, गिधान, गंधाटी। ओ० पनिरी। ते० गाडिदे, कडगर। ले० Aristolochia Brecteate.

परिचय—ब्रेक्टियेट=पुष्पका आधार स्थान वृन्त पत्रयुक्त। पतली बहुवर्षायु बूंटी। तना १२ से १८ इञ्च लम्बा, निर्बल, जमीनपर फैला हुआ, शाखाओंवाला। पान धुएं जैसे रङ्गके १॥ से ३ इञ्च लम्बे और उतनेही चौड़े। पुष्प एकाकी, किरमजी रंगके। डोड़ी छोटे बेर जितनी बड़ी। बाह्य छा''पर ६ विभाग होते हैं। बीजकाले। क्षुपमेंसे उग्र गन्ध आती है। यह भारतके अनेक प्रान्तोंमें होती है।

मात्रा—पञ्चांगके सूखे चूर्णकी मात्रा ३ से ६ माशे तक सौंफ, दालचीनी आदि सुगन्धित पदार्थके साथ। स्वरस ½ से २ तोले। हिम १ से २ औंस। घन २ से ४ रत्ती।

सूचना—सगर्भा स्त्रीको यह ओषधि नहीं देनी चाहिये। आवश्यकतापर देनी हो, तो कम मात्रामें देवें। नहीं तो गर्भपात हो जायगा। यह स्त्रियोंके समान पशुओंके लिये भी गर्भपातक क्रिया दर्शाती है। इस हेतुसे इण्डियन फार्माकोपियामें से इसे निकाल देनेकी सूचना लगभग ५० वर्ष पहले मद्रासके सर्जन जनरलने की था।

गुणधर्म—कीड़ामार रसमें कड़वी, उष्ण, रुचिकर, दीपन, सारक, स्वेदजनन शोफहर, कृमिघ्न, कासनाशक। ज्वर, दांतोंके कृमि, विष और सांधाओंकी पीड़ाको दूर करती है। यह ताजी होनेपर विशेष गुण दर्शाती है। यह गर्भाशयको उत्तेजना देती है, इस सेतुसे कष्टार्त्तवमें उपयोगी है।

धूम्रपत्राकल्पः—

(१) कीटारिहिम—सूखे पञ्चांगका चूर्ण १। तोलेको २५ तोले उबलते जलमें मिलाकर शीतल होनेतक ढक देवें। फिर छानकर प्रयोजित करें। मात्रा १ से २ औंस।

(२) किटारिघन—ताजे पतोंके रसको स्वेदन यन्त्रपर गाढ़ा करें फिर उसके बराबर कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। मात्रा २ से ४ गोली।

उपयाग—यह ओपधि गुजरात काठियावाड़में घरेलू रूपसे सुप्रसिद्ध है। इसकी गर्भाशयपर क्रिया ईश्वरमूलके समान निश्चित और स्पष्ट है।

(१) प्रसववेदना—प्रसवावस्थामें गर्भाशयकी निर्बलताके हेतुसे प्रसवमें

बाधा पहुँचती हो, तो इसके स्वरस या सूखे मूलका चूर्ण ६ माशेका फाण्ट दिया जाता है। जिससे थोड़ेही समयमें गर्भाशय संकोच होनेका प्रारम्भ होता है। स्थानिक वेदना बढ़ जाती है। फिर गर्भ सरलतापूर्वक बाहर निकल आता है एवं प्रसवके बाद गर्भाशयको संकुचित करनेमें भी यह ओषधि अर्गटके समान क्रिया करती है।

(२) मासिकधर्म विकृति—मासिकधर्म न आना या मासिक धर्ममें कष्ट होना, पाण्डु और मलावरोध रहना आदि विकार हों, तो एकाध मास कीड़ामारका सेवन करानेपर, ये सब विकार दूर होकर स्त्री निरोगी हो जाती है।

(३) विषमज्वर—कीटारिघनकी २ से ४ गोली निवाये जलके साथ देनी चाहिये। कीड़ामारका ज्वरघ्न और स्वेदजनन धर्म स्तुति करने योग्य है। ज्वरावस्थामें यदि हाथ पैर टूटते हों, और सांधों सांधोंमें दर्द हो और सूजन आई हो, तो कीड़ामार, कालीमिर्च, मालकांगनी और समुद्रफलको समभाग मिला शराबमें पीसकर मर्दन या लेप भी कराना चाहिये।

(४) आमवातिकज्वर—संधि शोथ होनेपर कीटारिघनकी ४ गोली सोंठ का चूर्ण ६ माशेके क्वाथके साथ देवें, या कीड़ामार और सोंठका चूर्ण ३-३ माशे मिलाकर निवाये जलसे देवें।

सूचना—यदि ज्वरमें अतिसार होता हो, तो कीडामार नहीं देना चाहिये। क्योंकि इसमें सारक और भेदक गुण अवस्थित हैं। ऐसे रोगियों को ईश्वरमूल दिया जाता है।

(५) अपचन—अपचन होनेपर उदरशूल और बारबार थोड़ा थोड़ा दस्त होना, ये लक्षण उपस्थित हुए हों, तो इसके दो तीन पानोंका १ छटांक जलमें पीस छानकर जल पिला देनेसे मल शुद्धि होकर दस्त बन्द हो जाते हैं, उदरपीड़ा शमन होती है, और क्षुधा प्रदीप्त हो जाती है। अथवा कीटारिघनकी २ गोली निवाये जलके साथ देनेसे अपचन दूर होता है और उदरशुद्धि हो जाती है। साथमें मन्द ज्वर रहता है, तो भी दूर होजाता है। आवश्यकतापर ३ घण्टेपर दूसरी बार २ गोली दे देवें।

(६) उदरकृमि—कीड़ामारीमें कृमिघ्न धर्म निःसन्देह प्रबल है। इसके सेवनसे छोटे छोटे और गोल उदरकृमि निश्चित गिर जाते हैं। पानोंका स्वरस पिलावें। या ६ माशे बीजोंकी काफी बनाकर पिलावें।

अथवा उदरके गोलकृमियोंको निकालनेके लिये ३ दिनतक दिनमें २ बार इसका फाण्ट देवे। फिर चौथे रोज सुबह एरण्ड तैलका जुलाब देनेसे सब कृमि निकल जाते हैं। सूक्ष्म कृमि हो तो वे सब मरकर निकल जाते हैं एवं नयी उत्पत्ति भी बन्द हो जाती है।

(७) उदरशूल—इसका उपयोग तिक्त पौष्टिक गुणके लिये अधिक होता है। उदरशूलमें इसके दो पानोंका रस एरण्ड तैलके साथ मिलाकर दिया जाता है

अथवा उदरशूल शमनके लिये कीड़ामार, डीकामाली, एल्वा और थोड़ा कपूर मिला जलके साथ पीस निवायाकर उदरपर लेप करें। इस लेपका रिवाज गुजरात काठिया-वाड़में विशेष हैं।

(८) बालकोंका मलावरोध—बच्चोंको मलावरोध और उदरशूल हो, तो पानोंको जलसे पीस निवायाकर नाभिके चारों ओर लेप किया जाता है। अपचन और मलावरोध होनेपर कीड़ामार सत्वर फल दर्शाती है।

(९) विचर्चिका—कीड़ामारमें जन्तुघ्न गुण और चर्मरोगपर क्रिया अति स्पष्ट है। डॉ० एन्सली लिखते हैं कि, किसी प्रसारणी मांसपेशीके लाल दुर्दमनीय विचर्चिका (Obstinate Psoriasis) पर इसके चूर्णको एरण्ड तैलमें मिलाकर लगानेसे अच्छा परिणाम आता है। तामील देशमें इस प्रयोगका विशेष प्रचार है।

(१०) दुष्टव्रण—फूटे हुये व्रण और फिरंगके घावपर इसके घनको गरम दूधके साथ मिलाकर लगाया जाता है। पशुओंको घावलगकर कीड़े पड़ जानेपर इसके ताजे पानोंकी पुल्टिस बांधनेसे कीड़े मर जाते हैं एवं मनुष्यों अथवा पशुओंके व्रणोंमें कीड़े पड़नेपर कीड़ामारके पत्तोंका स्वरस घावमें निचोड़नेपर कीड़े मर जाते हैं।

(११) जन्तुदंश—यदि जहरीला जन्तु काट गया हो, तो इस दंशपर लगावें और पिलावें। यदि पशुके खानेमें विषैला जन्तु आ गया हो, तो रस पिलानेसे वमन और विरेचन होकर विष निकल जाता है।

(१२) सुजाक—इसके घनके साथ चौथाई रत्ती अफीम मिलाकर देनेसे मूत्रशुद्धि होती है; पेशाबमें वेदना तुरन्त दूर होती है, और पूयस्राव कम हो जाता है।

(१३) अस्थिवेदना—खट्टे पदार्थोंका अधिक सेवन करने या शीत लग-जानेपर अस्थियोंमें दर्द रहता है, तो कीड़ामार, रास्ना और त्रिकटुका फाण्ट बनाकर पिलाया जाता है एवं इनको जलमें पीस निवायाकर मर्दन भी कराया जाता है।

(४०) कुचीला।

सं० कुपीलु, रम्यफल, काकतिन्दुक, विषविन्दु, कारस्कर, विषद्रुम। बं० कुचिला, विषमुष्टि। म० काजरा। गु० झेरकोचला। फा० इफराकी अ-झेरकी। ते० मुसिड़ि। ता० विषमुट्टी। क० काराक काञ्जिवार। अं० Nux vomica, Poison nut ले० Strychnos Nuxvomica.

परिचय—इसके वृक्ष मद्रास सह्याद्रिपर्वत और बंगालमें अधिक होतेहैं। ऊंचाई ४० फीट सर्वदा हरावृक्ष। पान ३॥ इञ्च लम्बा, २ इञ्च चौड़ा, मुलायम। पुष्प निस्तेज हरे रंगके फ्रेबुआरीसे एप्रिलतक। फल १॥ इंच व्यासका, २ से ५ बीज-वाला। फल नारंगीसदृश और उतना बड़ा बीज आध इञ्च व्यासके चिपटे, गोल। इन बीजोंको ही कुचीला कहते हैं।

वक्तव्य--आयुर्वेद मर्यादा अनुसार कुचीलेका उपयोग शोधनकरके करना चाहिये। डाक्टरीमतानुसार शोधनकरने और जिभ्भी निकाल डालने पर कुचीलेका मुख्य द्रव्य-स्ट्रॅक्निया निकल जाता है।

मात्रा—बीजका चूर्ण १ से २ रत्तीतक। शुद्ध बीजोंकाचूर्ण २ से ३ रत्ती।

सूचना—मात्राअधिक होनेपर धनुर्वातकेसदृश चिह्न उत्पन्न होतेहैं।

शोधनविधि—कुचीलेको गोमूत्रमें ७ दिन भिगोवें। रोज गोमूत्र बदलदेवें। फिर ऊपरकी छाल और भीतरकी जिभ्भी निकालदेवें। ऊपरकी छाल सरलतासे न निकले तो १-२ दिन अधिक भिगोवें। फिर कुचीलेको जलसे धोकर छोटे छोटे टुकड़ेकर छायामें सुखावें। पश्चात् घीमें सेक लेनेसे शुद्धि होती है।

कितनेक चिकित्सक १ सेर कुचीलेको ५ तोले एरण्डतैल लगालेते हैं फिर कड़ाहीमें डालकर सेकलेते हैं। कुचीले पककर फूल जातेहैं। उसमेंसे १ को बाहरनिकाल, उसपर लकड़ीका टुकड़ा या मुट्ठी मारनेपर टूटजाय, तब शोधन हो जाता है। उसे फिर तुरंत निकाललेवें। पहली विधिकी अपेक्षा इसमें उग्रता अधिक रह जाती है। इस विधिमें स्ट्रिक्निया रहजाता है।

गुणधर्म—कुचीला कड़वा दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक, बल्य और वाजीकर है। बीजोंका लेप सबल पूतिहर और मृदुस्वभावी वेदना स्थापक है। छालके लेपसे संवेदक और संचालक वातनाड़ियोंके सिरे चेतनाहीन होते हैं। इस हेतुसे छालकालेप वेदना स्थापक है। कुचिला सब इन्द्रियोंकी क्रिया बढ़ादेता है। किन्तु उनमेंभी संचालक वातनाड़ियोंपर उसकी क्रिया अधिक होती है। मस्तिष्कपर इसकी क्रिया अधिक नहीं होती; किन्तु मस्तिष्कके नीचे जो जीवनीय केन्द्रहैं, उनपर तो अधिक दृढ होती है। इस तरह सुषुम्णाकाण्डके निम्नभागमें रहे हुए जीवनीय-केन्द्रपरभी इसकी विशेष उत्तेजना क्रिया होती है। इसकाण्डके निम्न सिरेपर जननेन्द्रियका केन्द्रस्थानहै, उसपर क्रिया निश्चित होती है। श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थानको उत्तेजना मिलनेसे रोगीकी श्वास खेंचनेकी शक्ति बढ जाती है। इस हेतुसे अच्छी तरह खांस सकता है और कफ गिरता है। हृदय और रक्तवाहिनियोंके केन्द्रस्थानको उत्तेजना मिलनेके हेतुसे हृदयकी संकोच विकास रूपक्रिया योग्य होती है। रक्तवाहिनियोंकी क्रिया सुधरती है और रक्तदबाव बढ जाता है।

वक्तव्य—जिनरोगोंमें देहमें शून्यता आगई हो, अर्थात् अग्निकास्पर्श होने या सुई चुभाने या चिंऊटी भरनेपर वेदना न होती हो, ऐसे संवेदना नाड़ियोंके रोगोंपर कुचीले मिश्रित औषधिसे विशेष लाभ नहीं पहुँचता।

कारस्करकल्पः—

(१) रम्यवटी—शुद्धकुचीला २ तोले, सिंगरफ १ तोला, जायफल, जावित्री, और अकरकरा तीनों ६-६ माशे, केशर ३ माशे और कस्तूरी १॥ माशे लेवें। सबको मिलाकर नागरवेलके पानमें ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनालेवें। मात्रा १ से २ गोली दिनमें १ या दोवार दूधके साथ। यह गोली कामोत्तेजक, उदरवातहर, अग्निप्रदीपक और हृदयपौष्टिक है। हस्तमैथुन और शारीरिक निर्बलतासे आई हुई मूत्रेन्द्रियकी शिथिलता और अफीमके व्यसनसे आईहुई नपुंसकता, स्वप्नदोष, शारीरिक निर्बलता और जीर्णवातरोगोंपर दीजातीहै। मस्तिष्क श्रमलेनेवालोंको शारीरिक और मानसिक निर्बलता आनेपर कार्य करनेका उत्साह नहीं रहता; आलस्य बना रहता है। स्मरणशक्तिका ह्रासहोजाताहै और कम्प होता है। इसतरह किसी किसीको शीतकालमें हृदय कांपने लगता है। इन सबको यह रम्यवटी आशीर्वादके समान उपकारक है।

(२) विषतिन्दुकादिवटी—कुचीला ३ तोले, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल तीनों १-१ तोला मिलाकर सोंठके क्वाथमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवें। मात्रा १ से २ गोली दिनमें २ वार जलके साथ। उपयोग—शीतज्वर, जीर्ण-ज्वर, आमप्रकोप, ज्वरपश्चात् अग्निमान्द्य और निर्बलता, कफप्रकोप और वातप्रकोप आदिको दूर करती है। जीर्णवात रोगपर विशेष हितकारक है। अफीमके व्यसनीको अफीमके स्थानपर देनेसे अफीमका नशा आता है; और कुछ दिनोंमें अफीम छूट जाती है।

(३) अर्ककारस्कर (Tinct. Nux Vomica) कुचीलेके बीजोंको वाष्पदेने पर नरम होते हैं। फिर छोटे-छोटे टुकड़ेकर, टोंचकर छायामें सुखालें। इन टुकड़ोंको या चूर्णको १० गुने उत्तम देशी शराबमें भिगोकर एक सप्ताह रहने देवें। फिर उसे दबाकर निचोड़लेवें। मात्रा ५ से १५ बूंद।

(४) समीरगजकेसरी—शुद्धकुचीला, अफीम और कालीमिर्च तीनों समभाग मिलाकर अदरखके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। मात्रा १-१ गोली सुबह शामं जलके साथ देवें ऊपर नागरवेलका पान खावें। इस औषधिको वातारि रसभी कहतेहैं। पुरानावातरोग—अर्दितवात, (मुंहटेढाहोजाना) गृध्रसीवात (चूतड़ोंमें आई हुई वादी) कम्पवात, वातशूल, कफप्रधानवता, हिस्टीरिया, कमरकी वेदना, कुब्जवात, हाथपैरोंका वात, अरुचि, अग्निमान्द्य, पुरानापेचिश, पेचिशसह जीर्णसंग्रहणी आदिपर दिया जाता है। यदि देहके किसीभी भागमें वातप्रकोप या पक्षाघातसे मांसपेशियां सुखती हों, तो इस दवाके सेवनसे लाभपहुँच जाता है।

(१) सूचना—उदरमें आम संगृहीत हो या आमप्रधानरोग हो उसपर इस औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) जिनको कब्ज रहताहो उनको सुबह १ वारही औषधि देवें या आधो मात्रा देकर ऊपर दूध पिलावें।

(३) नया तीव्रवातप्रकोप हो, आक्षेप आते हों, या अधिक ज्वरहो, उस अवस्थामें इसऔषधिका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(४) कुचीला प्रधान औषधि लम्बे समयतक देनी हो, तो १५-१५ दिनपर एक एक सप्ताह इसे बन्द रक्खें। क्योंकि, कुचीलेका विष (स्ट्रिक्निया द्रव्य) देहके भीतर संगृहीत होता है जो हानि पहुँचाता है।

(५) कुचीला प्रधान औषधिका उपयोग सर्वदा कममात्रामें करना चाहिये। जितना रोग पुराना हो और शारीरिक शक्ति जितनी कम हो, उतनीही मात्रा कम देनी चाहिए। मात्रा अधिक हो जानेपर नाड़ियां खिंचने लगती है, जम्भाईयां आतीहैं, मुंह अधिक खुलजानेपर बन्द नही होता। ऐसी अवस्था होनेपर दूधमें घृत मिलाकर पिलादेना चाहिये।

उपयोग—आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें कुचीलेका उल्लेख नहीं मिलता। सुश्रुतके सुरसादिगणमें विषमुष्टिक नाम है; किन्तु उल्हणाचार्य उसका अर्थ राजनिम्ब करते हैं। भावप्रकाशसे कुचीलेके उपयोगका प्रारम्भ हुआ है। वर्तमानमें यह अनेक रोगोंपर व्यवहृत होता है।

(१) शीतज्वर—कुचीला चूर्ण या कारस्करवटी शीतपूर्वक ज्वरमें अति गुणदायक है। इसके सेवनसे पाली चूकती है और शीतज्वरका हानिकर परिणाम दूर होता है। जीर्ण शीतज्वरमें तो यह विशेष उपयोगी है।

(२) हृदयकी निर्बलता—किसीभी रोगमें हृदय और नाड़ी शिथिल होनेपर कुचीला देनेका अधिक रिवाजहै। हृदय शिथिल होनेपर स्पन्दन स्पष्ट सुननेमें नहीं आते; नाड़ी निर्बल होती है। फिर नाड़ी मंद या सर्पकी चाल जैसी चलती है, या नाड़ी टूटती हुई चलती है। हाथ पैरोंकी अंगुलियां और कान शीतल होते हैं। थोड़ा सा श्रमकरनेपर श्वास भरजाताहै; और प्रस्वेद आताहै। ऐसी स्थितिमें कुचीला देनेसे शनैः शनैः प्रकृति सुधरने लगती है।

फुफ्फुसोंके रोगसे हृदयमें शिथिलता आनेपर भी उपरोक्तलक्षण भासमान होते हैं; किन्तु हृदयाधारिक (कौड़ी) प्रदेशपर हाथ रखनेपर हृदयकी धड़कन जोरसे जानीजाती है। ऐसी स्थितिमें कुचिला रोगीको जीवनदान देता है।

(३) हृदय कपाटकी जीर्ण विकृति—हृदयकपाटके जीर्ण रोगोंमें हृदय शिथिल बनजाता है। फिर हृदय फूल जाताहै। परिणाममें पैरोंमें शोथ आता है। उदरमें जल भरता है। यकृद् बढजाता है। पेशाब कम और लाल रंगका होता है। अन्न पचन नहीं होता। शौच शुद्धि नहीं होती। उदर- फूल जाता है और सोनेपर घबराहट उत्पन्न होती है। परिणाममें रात्रिको भी बैठा रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति

में कुचीला अति उपकारक है। साथमें लक्षण अनुरोधसे और औषधि मिला देनी चाहिये। यदि कफप्रधान विकारहै, तो कफघ्न द्रव्य, हींग और कपूर; जल शोथकी अधिकता है तो स्वेदजनन, मूत्रल और विरेचन औषधि तथा काफी, शराब आदि उत्तेजक औषधि मिलादेवें। हृद्रोगमें मांसरस और शक्कर देनेपर कुचीलेकी क्रिया शीघ्र होती है।

(४) निद्रानाश—पाण्डुरोग या अन्य रोगमें धमनियोंकी शिथिलताके हेतुसे जब निद्रानाश होता हो; तब कुचीला देनेसे निद्रा आने लगती है। पाण्डुरोग होनेपर कुचीलेके साथ लोहभस्म देनी चाहिये।

(५) श्वासप्रकोप—फुफ्फुसोंके तीव्रविकारमें श्वासोच्छ्वास क्रिया योग्य नहीं होती। घबराहट होती है; और रोगी थक जाता है। उसपर कुचीला उपयोगी है। कफनिःसरणमें कठिनता होनेपर कुचीला देना चाहिए। श्वास प्रणालिकाप्रदाह, फुफ्फुस प्रदाह, और श्वासपर कटेली आदि उत्तेजक कफघ्न औषधके साथ कुचीला देना चाहिये।

(६) राजयक्ष्मामें स्वेद—क्षयरोग में रात्रिका प्रस्वेद सामान्य आता है, वह कुचीला देनेपर बन्द हो जाता है।

(७) नपुंसकता—हस्तमैथुनसे उत्पन्न ध्वजभंगपर रम्यवटी का सेवन करावें। इस रोगपर कुचीलामिश्रित औषधि हितकारक है। इसहेतुसे बाजारमें पौष्टिक कामोत्तेजक पेटेण्ट औषधियाँ, जो बाजारमें बिक रही हैं; उनमेंसे अधिकांशमें कुचीलेका मिश्रण है।

(८) अफीमका व्यसन-छुड़ाना—जितनी मात्रामें और जिस-जिस समय अफीम सेवन करते हों उतनी ही मात्रामें और अधिक निर्बल मनवालेको दूनी मात्रासे विषतिन्दुकादिवटी का सेवन करावें। ५-७ दिनमें स्वयमेव अफीमकी इच्छा शमन हो जाती है और सदाके लिये अफीम छूट जाती है। अफीम छुड़ानेके लिये यह बिल्कुल निर्भर और उत्तम उपाय है। २०-२० वर्षके पुराने रोगी, जो रोज ३-४ माशे अफीम या अधिक खाते रहते थे, उनकी अफीम भी छुड़ा दी गयी है। व्यसन छूट जानेपर पचन क्रिया और वातनाड़ियां बलवान बनती हैं। फिर २ मासके भीतर चेहरे परसे श्यामता दूर होकर लाली आजाती है और मुँह तेजस्वी बन जाता है।

विषतिन्दुकादिवटीसे उग्र औषधि देनी हो तो एरण्ड तैलमें शुद्ध किये हुये कुचिलेका चूर्ण अफीमके समान वजनमें दिया जाता है; अथवा कुचिलेको घी में भून कर घी समान वजन में देते रहें।

(९) कुत्तेके विषपर—एरण्ड तैलमें शुद्ध किये हुये कुचिलेका चूर्ण २-२ रत्ती रोज १ वार (प्रारम्भमें १० दिन २ बार) दूधके साथ २ मास तक सेवन करते रहनेसे विष जल जाता है।

(१०) उदरशूल—एरण्ड तैलमें शोधित कुचिलेका चूर्ण २ रत्ती जलके साथ देनेपर उदरशूल, आफरा, अपचन, अपचन जन्य पतले दस्त, अरुचि और आमप्रकोप आदि दूर हो जाते हैं।

(११) स्नायुरोग—नारु शरीरके किसी भी भागमें निकला हो, बाहर हो तो उसपर कुचीलेका लेप करें। शरीरके भीतर हो तो उस स्थानपर लेप करनेसे नारू मर जाता है। यदि नारु टूट गया हो तो भी इसके लेपसे मर जाता है।

सूचना—नारु रोगमें सीप या शंख भस्म ४-४ रत्ती और १-१ रत्ती शहद कुचीलेको घीमें मिलाकर दिनमें २ बार ५-७ दिन तक चाट लेवें अथवा नौसादर ४-४ रत्ती मट्ठे के साथ देते रहें।

(१२) अपक्व विद्रधि—कोई फोड़ा जल्दी न पकता हो, कष्ट होता हो, तो उसपर कुचीले और समुद्रफलको घिसकर लेप करते रहनेसे बहुत जल्दी पक जाता है।

(१३) दृष्टिमान्द्य—तमाखू और गांजेके व्यसनियोंकी दृष्टि कमजोर हो हो जाती है। मस्तिष्कमें बहुत उष्णता बनी रहती है तमाखूके विषमें दृष्टिनाड़ी (Ghtic Nerue) विषपीड़ित रहती है। जिससे रोगीकी दृष्टि बहुत कमजोर हो जाती है। प्रायः रात्रिको नहीं देख सकता। ऐसे रोगीको शुद्ध कुचीलेका चूर्ण २-२ रत्ती और सोडाबाई कार्ब २-२ रत्ती मिलाकर दिनमें २ बार सेवन कराते रहनेसे तथा आंखोंमें पलाश अर्क डालते रहनेसे दृष्टिमान्द्य दूर हो जाता है।

सूचना—रोगी व्यसनको छोड़ देगा, तो स्थिर लाभ पहुँच सकेगा। अन्यथा फिर वैसी स्थिति हो जायगी।

(१४) निद्रामें पेशाव हो जाना—कितनेही बालक और बड़ी आयुवालों को वृक्क और मूत्राशय निर्बल होनेसे निद्रामें पेशाब हो जाता है, उनको रम्यवटीका सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ पहुँच जाता है।

वक्तव्य—यदि मूत्रावरोध होनेसे दिनमें पेशाव साफ न आता हो और रात्रिको हो जाता हो, तो कुचीलेवाली ओषधि न देवें उसपर पेशाव साफ लानेवाली चन्द्रप्रभावटी या और दवा देनी चाहिये।

(४१) कोधव।

सं० कृष्ण हेमकन्द। गु० खारेडु, तेलिया हेमकंद। काठि० काला कटकिया, थानीयुं। कच्छी—भटकी आल, जंगली मिरची, कारो पींजारो। बम्बई—हुवल। म० वेलिवी। सिं० कोधव। ता० कडगटि। ते० अदमोरी-ॐ। क० चेगाविचे, मरगचे। मला० कट्टगट्टी। लें० Cadaba Farinosa.

परिचय—यह बहुशाखी झाड़ीनुमा वेल है। गुजरात, काठियावाड़, कच्छ

और महाराष्ट्रमें बहुत होती है। इसकी शाखाएं २० से ४० फीट या इससे भी अधिक ऊंचाईतक चढ़ जाती हैं। तना १ से १॥ फीट व्यासका। पान सकड़े, लम्बे और लम्बगोल। शाखाओंके अन्तभागके पान पीलूके पान जैसे। पान ऊपरकी तरफ हरा या गहरा हरा, क्वचित् बैंजनी छायावाला। नीचेकी ओर फीके रंगका। कोमल पान प्रायः बैंजनी और दोनों ओर चिकने तथा सफेद रंगयुक्त। पुष्प शाखाओंके अन्तमें छोटे गुच्छोंमें। बास कड़वी—चरपरी। व्यास १-१॥ इञ्च। रंग हरा पीला या भूरा पीला। फली मूंगफलीके समान मोटी—उतनी ही लम्बी, हरे या भूरे काले रंग की, दो पार्श्वोंमें कुछ चिपटी। गूदा सिन्दूर सदृश रंगका। बीज काले, राईके दानेके समान, स्वाद कड़वा।

मूल भूरे काले रंगके, खूलतीसे अंगूठी जैसे मोटे और स्निग्ध। पुरानी बेलमें मूल कभी हाथकी कलाई जैसे मोटे। बाह्य त्वचा भूरी, काली, पतली। अन्तस्त्वचा मोटी, कुड़कीली, पीली भूरी या पीली सफेद। लकड़ी कठिन, आड़ी काटने पर सछिद्र और चक्राकार। तोड़नेपर तैल सदृश रसस्राव। बास पीसी हुई राईके समान। स्वाद कड़वा और तीक्ष्ण। इस कोधवसे कलईका मारण होता है, इस हेतुसे काठियावाड़के ग्रामीण लोग इसे "किमियाका झाड़" भी कहते हैं।

मात्रा—मूलका चूर्ण १ से १॥ माशे। क्वाथके लिये पान ६ माशेसे १ तोला तक।

गुणधर्म—पान सारक, कृमिघ्न और रजःशोधक। मूल—उत्तेजक, पित्तस्राववर्धक, कृमिघ्न, आर्त्तवजनक और उदरवातहर है। इसका असर यकृत् और गर्भाशयपर अधिक होता है।

उपयोग—गुजरात, काठियावाड़, कच्छ और महाराष्ट्रमें, यह स्त्रियों और बालकोंके लिये घरेलू ओषधि है। राजपूतानेमें इसका विशेष परिचय न होनेसे औषध स्वरूपका वर्णन कुछ विस्तारसे किया है।

(१) अनार्तव और गर्भाशय शूलपर—कोधवके मूल या पानोंका क्वाथ दिया जाता है। जिससे गर्भाशयकी शिथिलता दूर होकर शूल शमन हो जाता है तथा मासिकधर्म शुद्ध और नियमित हो जाता है।

(२) बालकोंके दस्त और वमनपर—इसके २॥ पान और कालीमिर्चके २॥ दाने पीस दूधके साथ पिलावें। ताजे पानके अभावमें सूखी फली या डांडीका उपयोग किया जाता है। इससे वमन बन्द हो जाती है। यह यकृतपर उत्तेजक असर दर्शाता है इसलिये दस्तका सफेद रंग मिटकर पीला हो जाता है।

(३) बालकोंके कफ प्रकोपपर—डण्ठल और पत्तोंको जलाकर दूधमें पिलावें।

(४) उदरके सूक्ष्म कृमिपर—मूलको दूधमें घिसकर बच्चोंको पिलावें। बड़ेको पानका क्वाथ करके पिलाया जाता है।

(५) सन्धिवात, मन्यास्तम्भपर—कोषधके क्वाथ और कल्कसे तैल सिद्धकर मालिश करनेसे सन्धिवात, मन्यास्तम्भ, कटिशूल और अन्य स्थानकी वात-पीड़ा दूर हो जाती है। साथ साथ १-१ मात्रा दिनमें २ बार शहदके साथ खिलाते रहना चाहिये।

(४२) कण्ट करंज।

सं० लताकरंज, कण्टफल, कुवेराक्ष, पूतीक, रजनीपुष्प, पूतिकरंज। हिं० कण्टकरंज, कठकरंज, लताकरंज। फलोंको करंजुवा. कंजा। बं० नाटा-करंज, काँटाकरंज। म० सागरगोटा, गज्ञा, गजधौटा, कांचकी। गु० कांकच, कांचका। मार० किणगच। क० गच्जिकेकायि। कों० गाजगा। मला० कलंचि। अं० Fevernut. Bonducnut. ले० (1) Caesalpinia Bonducella. (2) Caesalpinia Bonduc.

परिचय—कण्टकरंजकी २ जाति हैं। इनमेंसे भारतमें विशेषतः पहली जाति होती है। यह झाड़ी या चढ़नेवाली वेल है। ऊंचे वृक्षका आश्रय मिलनेपर ३० से ५० फीट ऊंचाई तक बेल चढ़ जाती है। सर्वाङ्ग कांटेदार है। कांटे छोटे, सी , तीक्ष्ण-कठोर और पीले। पान २ बार कटे हुये, १ फुट से अधिक लम्बे। दल आधसे १ इञ्च लम्बे। दलके मुख्य दण्डलोंपर कांटे होते हैं। फूल हलके पीले। फली कांटेदार। बीज एक या २ चिकने, भस्मी रंगके। फली शीतकालमें पकती है और फट जाती है। फिर बीज नीचे गिर जाते हैं। बीजोंमें तैल २५ प्रतिशत रहा है।

मात्रा—बीजोंकी गिरी ५ से १० रत्ती, दिनमें २ बार। मूल १० रत्ती। पान का रस २ से ४ तोले।

गुणधर्म—कण्टकरंजके पान रसमें चरपरे, उष्णवीर्य कफ और वातके नाशक हैं। बीज दीपन, पथ्य तथा शूल, गुल्म और व्यथाके नाशक हैं। इसके अतिरिक्त रसमें कृमिघ्न, विषघ्न, चर्मरोग नाशक, व्रणहर, शोथहर, ज्वरघ्न, रक्तस्रावरोधक और वृष-णवृद्धिमें हितकर ये सब गुण रहे हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार लताकरंज, उष्ण, रूक्ष, कटुपौष्टिक, नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक, ज्वरघ्न, किञ्चित् ग्राही, शोथघ्न, रक्तप्रशमन, गर्भाशय आकुंचक, वेद-नाशामक और कृमिघ्न है।

उपयोग—लताकरंज सर्वत्र मिलनेवाली दिव्य औषधि है। इसका ग्रामोंमें अति उपयोग होता रहता है। अग्निमान्द्य, प्लीहावृद्धि, उदरकृमि, वृषणवृद्धि और शोथरोगपर यह घरेलू और निर्भय औषधि है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि, लताकरंजकी शोथघ्न क्रिया निर्गुण्डीकी अपेक्षा कम दर्जेकी है। इनके पानोंका रस गलत्कुष्ठ और उपदंशकी द्वितीयावस्थामें दिया जाता है। उपदंशमें उत्पन्न रक्तविकारके धब्बे इससे नष्ट तो हो जाते हैं तथापि रोगका बढ़ना दूर नहीं होता। तीसरी अवस्थाकी उत्पत्ति हो जाती है।

इसके तैलसे व्रण भर जाते हैं। किन्तु व्रणके ऊपर नयी त्वचा बहुत मोटी आती है।

उदरमें वेदना होनेपर बीजकी आधी गिरी २-४ लौंगके साथ दी जाती है। रक्तमिश्रित प्रवाहिकापर बीज गांजेके साथ दिया जाता है। कुपचन रोगमें बीजोंका मिर्च मिश्रित चूर्ण मट्ठेके साथ दिया जाता है। बीजोंका चूर्ण वमनको भी रोक देता है। श्वासरोगपर बीजोंका उपयोग होता है। यकृद्‌विकारमें पानोंका स्वरस दिया जाता है।

(१) शीतज्वर—शीतज्वरपर लता करंज अति मूल्यवान औषधि है। पानोंका रस हींगके साथ या बीजोंका चूर्ण दिया जाता है। भूने हुये बीजोंकी गिरी और कालीमिर्च (या पीपल) को सममाग मिला कपड़छान चूर्णकर दिया जाता है। मात्रा ५ से १५ रत्ती, २-४ दिन जलके साथ।

पालीके ज्वरमें नागरवेलके २ पानोंमें भुने हुये करंजुवेकी १ गिरी, १ रुपया जितने आकारका आकका पान और ४ लौंग मिलाकर ६ घण्टे पहले २-२ घण्टेपर ३ बार खिला देनेसे और रोगीको दूध, जल या चायके अलावा कुछ भी न खिलानेसे पाली टल जाती है।

(२) सूतिकाज्वर—प्रसूताको बुखार रहनेपर इससे बहुत लाभ पहुंचता है। ज्वर कम होता है, गर्भाशयका संकोच होता है, उदरवेदना शमन होती है; मासिकधर्म साफ आता है' और घाव (क्षत ulcer) हुआ हो, तो वह भी जल्दी भर जाता है। प्रसूताको ज्वर न हो, तो भी इसके बीज दिये जाते हैं।

(३) ज्वरके पश्चात्‌की निर्बलता—लता करंजके बीजोंका चूर्ण शक्ति आनेके लिये दिया जाता है। यह प्रबल आमाशय पौष्टिक औषधि है। इसके बीजमें कड़वा द्रव्य क्विनाइनकी कोटिका है। इससे क्विनाइनके समान ही शीतज्वरका रोध होता है।

(४) आमावात—इसकी गिरीको कोल्हूमें दबाकर निकाला हुआ तैल आमवातमें मर्दनके लिये उपयोगी है। तेल त्वचामेंसे बाहर निकलता है; और त्वचागत कैशिकाओंका संकोच होता है। संधि स्थानोंके शोथपर तैलके अभावमें करंजके बीजोंका लेप भी किया जाता है।

(५) रक्तस्राव बन्द कराना और गाँठ बिखेरना—इन दोनों कार्योंके लिये फलोंका उपयोग अधिक होता है। फलोंका चूर्ण या लेप लगायो जाता है और खिलाया भी जाता है।

(६) वृषणशोथ—जीर्ण मलावरोध और पेचिश आदि कारणोंसे मलको

बाहर निकालनेमें बार बार बलपूर्वक प्रयत्न करते रहनेसे या चोट लग जानेसे कभी वृषणशोथ हो जाता है, उसमें वेदना होती है। उसपर करंजबीजको एरण्ड तैलमें मिलाकर मोट मोटा लेप लगाया जाता है एवं अण्डशोथ और अण्डमें जल संगृहीत होने पर बीजोंको जलमें पीसकर भी लेप किया जाता है। एवं एक एक माशा चूर्ण दिनमें २ या ३ बार खिलाया जाता है।

(७) घावपर रोपण करना—घावके लिये बीजोंकी गिरीको तैलमें उबाल पीसकर लगावें।

(८) कर्णस्राव—कानमें पूयस्राव होनेपर दिनमें २ बार फलोंका चूर्ण कानमें डालें।

(९) तारुण्य पिटिका—युवावस्थाके हेतुसे मुख मण्डलपर फुन्सियां होनेपर इसके चूर्णको मलते हैं।

(१०) आफरा, अपचन और उदरशूल—इन रोगोंपर लताकरंजके बीज रामबाण औषधि है। लताकरंजके बीजोंको सेककर गिरी निकाल लेवें, उसमें उतना ही कालानमक मिला जलके साथ खिला देवें। इससे तत्काल उदरशूल शमन हो जाता है।

(११) गुल्म—वायुका गोला उदरमें उत्पन्न होनेपर सेके हुए बीजकी गिरी और लौंग मिलाकर खिला देनेसे तुरन्त लाभ हो जाता है।

यदि प्रसूताको उदरशूल हुआ हो, तो करंजबीजकी १ गिरी, १ से २ रत्ती हींग, २ रत्ती नमक और थोड़ा घी मिलाकर दे देनेसे वायुशमन हो जाता है।

(१२) जीर्ण आमातिसार—दीर्घकालसे दस्तमें आम आती रहती हो, उदरमें वेदना होती हो और थोड़ा-थोड़ा दस्त होता रहता हो, तो सेके हुये करंजुवेकी गिरी, सेका हुआ जीरा और सौंफ, तीनों समभाग मिलाकर दिनमें ३-४ बार ४-४ माशे चूर्ण जल, मट्ठे या शहद्के साथ देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें आमाशय और आँत बलवान बन जाती है। फिर रोग दूर हो जाता है।

(१३) प्लीहावृद्धि—प्लीहा प्रायः विषमज्वरके हेतुसे बढ़ जाती है। फिर अपथ्य सेवन करनेपर ज्वर भी आ जाता है। किसी किसीको मंद मंद ज्वर बना रहता है। उसके लिये बीज निकाली हुई पिंडखजूर २ नगको छटांकभर जलमें रात्रिको भिगो देवें। सुबह उसे मसल, ४-६ रत्ती करंजुवेका चूर्ण मिलाकर पिला देवें। इस तरह सुबह पिण्डखजूर भिगोकर रात्रिको सेवन करावें। इस तरह १५ दिनतक पथ्य पालन सह करंजुवेके सेवनसे प्लीहावृद्धि दूर हो जाती है।

(१४) उदरकृमि—उदरमें छोटे छोटे कृमि हो जानेपर भुने हुये करंजुवेकी गरी १ माशा और पलासबीजका चूर्ण २ रत्ती मिलाकर जलके साथ या गुड़के साथ ३-४ दिनतक दिनमें २ बार सेवन करानेसे कृमि निकल जाते हैं।

(४३) कपीला ।

सं० कम्पिल, रक्ताङ्ग, रेची, रक्तचूर्णक । हिं कपीला, कबीला कमीला, रोरी, सिन्दूरी । कोल—गारासिंदूरी । संता० रोरा । अवध—रोहिनी । बं० कमिला, टुंगकेसर । म० कपिला । गु० कपीलो । ता० कपिला । ते० कुंकुम । मला० पुन्न । कॉं० डंडिहूकु । अं० Monkey-Facetree. ले० Mallotus Philippinensis.

परिचय—यह भारतके समशीतोष्ण प्रदेशमें होता है । हिमालयतलमें आसामतक । छोटा, सर्वदा हरा वृक्ष । ऊंचाई २५ से ३० फीट । पान ३ से ५ इञ्च लम्बे, विविध आकारके, ४ से ७ नसोंकी जोड़ीवाले । डण्ठल १ से २ इञ्च लम्बा । पुष्प मंजरीमें, छोटे वृन्तरहित या कुछ वृन्तमय । नरफूल गुच्छमें । मादा फूल एकाकी । डोडी ३ फांकवाली, मट्टर जितनी बड़ी और गुच्छोंमें, रेणुसे आच्छादित । पहले हरी, फिर लाल, चमकीली, रुएंदार । फलके भीतर ३ काले बीज कालीमिर्च सदृश । डोडीपर रेणु होती है, उसेही कपीला कहते हैं । यह जलमें मिश्रित नहीं होती । जलानेपर सरलतासे जल जाती है । बाजारमें कपीलेके भीतर ईटोंका चूर्ण मिला देते हैं अतः उसे जलमें डालकर अलग कर देना चाहिये । अंगुलियोंको गीलीकर कपीलेको कागजपर मलनेपर पीला दाग हो जाता है । बिहारमें फूल अक्तूबरसे नवम्बरतक तथा फल फरवरीसे मार्चतक आते हैं । वृक्षकी लकड़ी लाल, दृढ, चिकनी । एक घनफुटका वजन ४७ पौण्ड । इसे दीमक नहीं लगती । यह लकड़ी दियासलाई बनानेमें उपयोगी है ।

मात्रा—बालकको ५ रत्ती शहद या यवागूके साथ । बालकको इससे अधिक मात्रा एक समयमें नहीं देनी चाहिये । लाभ न हो, तो पुनः दूसरे दिन देवें । बड़े मनुष्यको ३ से ६ मासे ।

गुणधर्म—कपीला विरेचक, रसमें चरपरा, उष्णवीर्य और व्रणनाशक है । गुल्म, उदररोग, मलावरोध, आफरा, उदरकृमि, पित्तप्रकोप, कफप्रकोप और विषको नष्ट करता है ।

डाक्टर देसाईके मतानुसार कपीला उत्तम कृमिघ्न, चर्मरोग नाशक और व्रणरोपण है । कपीलेसे शौचशुद्धि होती है । इस हेतुसे विरेचन देनेकी आवश्यकता नहीं रहती । मात्रा बढ़नेपर नशा आता है । सामान्यतः यह सब प्रकारके उदरकृमिपर उत्तम औषध है, इससे कृमि मरकर गिर जाते हैं ।

डाक्टर खोरीने गोलकृमि और सूत जैसे कृमियोंको मारने (गिराने) में कपीलेको श्रेष्ठ माना है । इससे उबाक नहीं आती और विरेचन होता है । उदरपीड़ाको मिटाता है और यकृत्पित्तका स्राव कराता है । इसके अतिरिक्त दाद, छोटी छोटी गांठ, खुजली, फुन्सियां आदि चमड़ीके रोगोंपर इसका लेप लगाया जाता है अथवा मलहममें मिलाकर उपयोग किया जाता है ।

उपयोग—कपलेका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीनकालसे हो रहा है। चरक-संहितामें विरेचनोपग दशेमानिमें इसका उल्लेख किया है एवं अन्य रोगोंपर भी योजनाकी है। कपीला मलावरोध और उदरकृमिपर प्रयोजित होता है। बालकोंके लिये यह घरेलू औषधि है। कृमि पीड़ित रोगीके कृमि दूर हो जानेपर रक्तमें रहे हुए विषको नष्ट करने और क्षुधाको प्रदीप्त करनेके लिये थोड़े दिनोंतक कम मात्रामें यह शहदके साथ दिया जाता है।

(१) कृमिरोग—१ वर्षके भीतर बच्चेको माताके दूधमें २ से ४ रत्ती कपीला देवें। इससे उदरशुद्धि होती है और कृमि गिर जाते हैं। बड़े आदमीको ३ से ६ माशेतक गुड़ मिलाकर निवाये जलसे दिया जाता है।

(२) व्रण और अग्निदग्धव्रण—कपीलेको तैलमें (करंज तैलमें) मिलाकर लगावें। इससे जलन कम होती है; तथा व्रणका गीलापन कम होकर जल्दी भर जाता है। पामा और शिरपर होनेवाले फोड़े आदिपर भी यह लाभदायक है।

(४४) कसौंदी।

सं० कासमर्द, अरिमर्द, कासारि, काल, कनक। हिं० कसौंदी, कसौंदा, कासिन्दा, गजरसाग, अगौथ। बं० कसौंद, कालकासुंदा, चाकुंदा। म० कासविन्दा, चनेगी, रानटलिका, हिंकल, थोरला टाकला। गु० कासुंदरो। मार० कसुंदी। क० कासविंदा। ता० पेयाविरै। ते० कसिंद। मला० पोन्नावीरम्। कों० रानटाकली। अं० Negro-Coffee।

ले० (१) Cassia Occidentalis (कसौंदी)
(२) Cassia Sophera (वासकी कसुंदी).
(३) Cassia Purpurea (काली कसौंदी)

परिचय—यह भारतके सब प्रदेशोंमें होती है। पहली जातिकी ऊंचाई ३ से ६ फीट। पान सलाइपर आते हैं। मुख्यपान ६ इञ्च लम्बा। दल (छोटेपान) १ से ३ इञ्च (४॥ इञ्चतक) लम्बे। फूल पीले लगभग १ इञ्च व्यासके। पुंकेसर १०। फली ४ से ५ इञ्च लम्बी। बिहारमें फूल सप्टेम्बरसे नवेम्बरतक। फली दिसम्बर-जनवरीमें।

दूसरी जाति भारतके सब प्रदेशोंमें। ऊंचाई ४ से ७ फीट। पान सलाईपर। सलाईपरके पान पहली जातिसे छोटे, सकड़े और नोकदार। फूल पीले, पहली जातिके समान। इस जातिको बिहारमें वासकी कसुंदी कहते हैं। फूल अगस्तसे दिसम्बरतक। फली नवम्बर दिसम्बरमें। कभी कभी फूल-फल मार्च और अप्रेलमें भी।

पहली जाति और दूसरी जातिके पानोंकी रचनामें भेद है। पहली जातिकी ऊपर दल (पर्ण) ३ से ५ जोड़ी न्यूनाधिक लम्बगोल। दूसरी जातिके पर्ण ६ से

१२ जोड़ी और बिल्कुल लम्बगोल नहीं होते। कितनेक चिकित्सक इस दूसरी जातिको अधिक गुणदायी मानते हैं।

तीसरी जाति, यह दूसरी जातिकी उपजाति है। इसके पर्ण १ इञ्चसे बड़े नहीं होते। पान, फूल और फली, सब छोटे और बैंगनी रंगके।

मात्रा—पानोंका चूर्ण ४ से ६ माशे। मूलके क्वाथकी मात्रा ६ माशेसे १ तोला। बीज ३ से ४ माशे।

गुणधर्म—कासमर्द रसमें कड़वा, उष्णवीर्य, पाचन, कण्ठशोधन, लघु। मधुर, विपाकी और कफवातके नाशक। अजीर्ण, कास और पित्तप्रकोपको दूर करता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि कसौंदीके पानोंमें सनायमें रहा हुआ विरेचन द्रव्य है। अन्य अंगोंकी अपेक्षा बीजोंमें विरेचन द्रव्य अधिक है। बीजोंको तवेपर भून लेनेसे विरेचनगुण दूर होता है। फिर उसमें बूंदके समान रुचि उत्पन्न होती है।

कासमर्द कफघ्न, आक्षेपहर, संशन और किञ्चित् मूत्रल है। बीज ज्वरहर, कुष्ठघ्न। मूल मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरहर और बल्य। पञ्चांग रेचक।

उपयोग—कसौंदीका उपयोग चरक संहिता और सुश्रुत संहिताके समयसे हो रहा है। इसकी फलीमेंसे जो बीज निकलते हैं, उसको सेक चूर्ण कर विदेशी कॉफीके स्थानमें प्रयोजित करते हैं। इस पेयका स्वाद कॉफीके समान होता है। यह मानसिक उत्तेजना लाता है तथा ज्वरमें स्वेद लाने और कफको दूर करनेमें हितकर है। हिक्का और श्वासरोगमें इसके पानोंका यूष लाभदायक माना है। काली कसौंदीके पानको दूधमें पीसकर विसर्पपर और इसके मूलको जलमें घिसकर बिच्छूके दंशपर लगाते हैं। सर्पविषपर मूल और कालीमिर्चको घीमें मिलाकर पिलाते हैं।

इसके पानोंको दूधमें पीस फिर गरमकर पुल्टिस बनाकर आंखोंपर बांध देनेसे आंखोंकी वेदना शमन होती है और लाली टूटकर आंख स्वच्छ हो जाती है।

इसके ताजे फूलोंको साफकर ३ गुनी शक्कर मिला अमृत बानमें भरकर ढक्कन बन्द करें। ४० दिनतक रहनेसे गुलकन्द बन जाती है। इसमेंसे ६-६ माशेका सेवन करानेसे जीर्ण मलावरोध दूर होता है। उदररोगमें भी यह हितकर है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि सेके हुये बीज कॉफीके स्थानपर उपयोगमें आते हैं; किन्तु काफीका लाभ इससे नहीं मिलता। ज्वर न आनेके लिये मूलका क्वाथ रोज सुबह दिया जाता है। ज्वर भर जानेपर ताप उतारनेके लिये बीजोंका चूर्ण शराबके साथ दिया जाता है।

काली खांसीमें पानोंका रस शहदके साथ दिया जाता है। कफज्वरमेंभी पानोंका रस दिया जाता है। इससे आक्षेपके हेतुसे श्वासनलिकाके भीतर होनेवाला त्रास सत्वर शमन हो जाता है, बालककोभी यह औषध दे सकते हैं; किन्तु बालकको इससे वमन विरेचन होता है, यह लक्ष्यमें रखना चाहिये।

उदरमें शूलसह आफरा आनेपर पंचांगका क्वाथ देनेसे अपानवायु सरता है, मरोड़ा कम होता है और शौचशुद्धि होती है। यह स्त्रियोंके अपचन प्रधान अन्त्ररोगमें अच्छा लागू पड़ता है। मूलके सेवनसे आमाशयकी शक्ति बढ़ जाती है। बालकोंके धनुर्वात और भूतोन्मादमें पंचांगका क्वाथ दिया जाता है। इससे वेग और खिंचाव शमन हो जाते हैं।

पानोंको पीस व्रणशोथ, विसर्प और दाहयुक्त रोगपर लगाया जाता है। चर्मरोगमें मूलका क्वाथ देते हैं और उसका लेप करते हैं। इस रोगमें पान भी दिये जाते हैं।

(४९) कुप्पी।

सं० हरितमञ्जरी। बं० मुक्तेवर्षी, श्वेत वसन्त, मुक्टझुरी। म० खोकली, खाजोटी, कुप्पी। गु० दादरो, पींछीकांटो। क० चालमारी। ता० कुप्पैमेनि। ते० कुप्पिचेट्टु। को० कुंकमी फल। मला० कुप्पमेणि। ले० Acalypha Indica.

परिचय—यह छोटा क्षुप है। ऊंचाई १ से ३ फीट। उत्पत्ति स्थान भारतके उष्णप्रदेश, बिहारसे आसामतक, कोंकणसे त्रावणकोरतक, गुजरात और काठियावाड़। पान १ से २ इञ्च लम्बे, आध इञ्च चौड़े। डण्ठल अधिक लम्बा। फूल सूक्ष्म पीले हरे। कलगीमें नर मादा फूल अलग अलग। नर फूल ऊपर। मादा फूल नीचे। फल एरण्डी के समान, ३ खांचवाले। क्षुप प्रायः रुएंदार। इस क्षुपमेंसे एरण्डके समान अप्रिय वास आती है। मूल ३ से १० इञ्च गहरा। फल फूल शीतकालमें आते हैं।

कुप्पीकी एक छोटी रुएंदार जाति बिहार, महाराष्ट्र और गुजरातमें होती है। उसका लेटिन नाम Acalypha Ciliata है। इसकी ऊंचाई १ से २॥ फीट। इसमें फूल, फल जुलाई से दिसम्बरतक रहते हैं।

मात्रा—स्वरस १ से ४ ड्राम (५ आनीसे १। तोले) तक, सूखे पञ्चांगका चूर्ण ५ से १५ रत्ती।

गुणधर्म—कफघ्न, वामक, विरेचन, कृमिघ्न और चर्मरोगनाशक। बालकोंके डब्बारोग, कृमिरोग, क्षय और काली खांसीमें विशेष प्रयोजित होती है।

उपयोग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि यह दक्षिण की घरेलू औषध है। यह बालकोंको वमन करानेमें अति प्रशस्त है। पानोंके स्वरस १ ड्रामसे शीघ्र योग्य रीतिसे वान्ति होती है। इसकी क्रिया इपिकेक्युआना और सिनेगाके समान होती है; किन्तु इपिकेकके समान इससे थकावट नहीं आती; तथा इपिकेककी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ रीतिसे कफ शिथिल करती है। बालकोंके श्वासनलिकाके शोथमें यह विशेष उपयोगी

है। बालकोंके कफरोगमें इसकी ताजी शाखा और पानोंके साथ नीमके पानोंका रस देते हैं। मात्रा अधिक होनेपर वमन होती है; और शौचशुद्धि भी होती है; तथा दोनों ओरसे कफ गिर जाता है। श्वासनलिकाप्रदाह (खांसी), श्वास, फुफ्फुसप्रदाह (निमोनिया) और राजयक्ष्मापर यह औषधि दी जाती है। सूखे पानोंका क्वाथ सैंधानमकके साथ देनेपर शौचशुद्धि होकर श्वासोच्छ्वासका त्रास कम हो जाता है और दाह शोथमें भी लाभ पहुँचता है। विशेष श्वासावरोध या घबराहट होनेपर सूखे पानोंके क्वाथके साथ लहसुन दिया जाता है। कुप्पी, निम्ब, लहसुन और सैंधानमकका क्वाथ नये और पुराने कफ रोगमें लाभदायक है।

(१) मलावरोध—विरेचनार्थ कुप्पीके मूलको गरम जलमें पीस छानकर जल पिलाते हैं। यह औषधि बालकोंको भी दी जाती है। बालकोंके मलावरोधमें पानोंकी वर्ति बनाकर गुदामें चढ़ाते हैं। जिससे मलकी गाँठ गिर जाती है।

(२) व्रण—इसके पानोंकी पुल्टिस बांधते हैं।

(३) पामा, खुजली, दाद—इसके पानोंके स्वरसका मर्दन करते हैं। एवं चिऊंटी आदि छोटे जन्तुके काटनेपर वेदनासह दाह और शोथ हुआ हो तो पानोंकी पुल्टिश बांधी जाती है।

(४) आमवात—आमवातज वेदना होनेपर इसके स्वरसको एरण्ड तैलमें मिलाकर मालिश करते हैं। ताजे पान और चूनेको मिला वेदनायुक्त शोथपर लेप करते हैं। नीमकी निंबोईके तैल और कुप्पीके स्वरसको मिलाकर आमवात और समग्र चर्मरोगपर व्यवहृत करते हैं।

(५) कर्णशोथ—कानकी वेदनामें इसके रसको कानमें डालें।

(६) सन्धिशोथ—पानोंके स्वरसमें चूना मिलाकर लेप करें।

(७) शिरदर्द—पानोंके स्वरसका नस्य कराने (नाकमें २-४ बूँद डालने) से श्लेष्मा और रक्तका स्राव होकर शिरदर्द और शिरका भारीपन दूर होते हैं।

(८) नूतन उन्माद—पानोंका स्वरस १ औंस थोड़ी शक्करके साथ मिलाकर नाकमें बूँदे डालें। फिर मस्तिष्कपर शीतल जल छिड़कें।

(९) डब्बारोग—बालकोंके डब्बा रोगमें यह विरेचन करा रोगको तुरन्त दूर करती है।

(१०) बालकोंके जीर्णज्वर और शुष्क कास—पञ्चांगका स्वरस दिनमें २ बार कुछ दिनोंतक देते रहना चाहिये।

(४६) ककड़ी।

सं० कर्कटी, मूत्रला, त्रपुसी, वालुक, पीतपुष्पिका, मधुरफला। हिं० ककड़ी, तरककड़ी, जेठुई ककड़ी। बं० काँकड़ी, कांकुड़। म० गु० काकड़ी। मला० वेल्लरिक। के० सौते। कोन्मगो। अं० Cucumber.

ले० (1) Cucumis Sativus (खीरा ककड़ी)
(2) cucumis Utilissmus (जेठुई ककड़ी)

परिचय—ककड़ियोंमें अनेक जाति हैं। सबकी वेल होती है। वेलकी लम्बाई, पानोंके आकार और कद तथा फलोंके कंद आदिमें थोड़ा थोड़ा अन्तर है। उत्पत्ति भारतके अनेक प्रांतोंमें होती है। फलोंके पकनेका समय स्थान भेदसे अलग अलग है।

मात्रा—बीजोंकी गिरी १ तोला। फलोंका रस ५ तोला।

गुणधर्म—ककड़ी मधुर, शीतल, लघु, रुचिकर,वातकारक, कफ पित्तनाशक और मूत्रजनन है। मूत्रावरोध, अश्मरी, रक्तपित्त, पित्तप्रकोप, दाह, तृषा, आध्मान, भ्रम, सन्ताप और मूर्छा आदिको नष्ट करती है।

नव्य मतानुसार ककड़ी शीतल, पाचन और मूत्रल है। बीज शीतल, मूत्रल और बल्य है। अनन्नास और पपीताके समान ककड़ी प्रत्यक्ष पाचक है। पानोंकी राख श्लेष्मनिःसारक है।

उपयोग—ककड़ीका उपयोग प्रचीनकालसे सागरूपसे हो रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में पित्त, दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोगोंपर औषधिरूपमें कुछ ग्रंथोंमें उपयोग हुआ है।

(१) अपचन—डाक्टर देसाईने ककड़ी (कुकुमिस युटिलिसमस) के उपयोगमें लिखा है कि गेहूँ, ज्वार, मक्का, अरहर, मूँग, उड़द आदि मांसल गुरु अन्न खानेसे होनेवाले अपचनपर ककड़ी खिलायी जाती है। अपचन रोगमें मुख्य ३ प्रकार हैं।* पहले प्रकारमें मांस और भारी भोजनका पचन नहीं होता, दूसरेमें चावल पचन नहीं होता तथा तीसरे प्रकारमें घी तैल नहीं पचते। इनमेंसे पहले प्रकारके अपचनमें ककड़ी हितकारक है। भोजनके साथ या भोजनके पश्चात् दी जाती है। अपचनके हेतुसे वांति होती हो, तो ककड़ीके बीजोंकी गिरीको मट्ठेमें पीसकर दिया जाता है।

(२) नशा—ककड़ी और प्याजका रस देनेसे शराबका नशा दूर हो जाता है।

(३) मूत्रदाह—मूत्रमें दाह होनेपर ककड़ीका रस और नींबूके रसमें जीरा और मिश्री मिलाकर दिया जाता है।

(४) मूत्रकृच्छ्र—(अ)—बीजोंकी गिरी ४ भाग, दारुहल्दी १ भाग और मुलहठी १ भाग मिला चूर्णकर चावलोंकी यवागूके साथ मूत्रकृच्छ्र और नये मूत्राघात में दिया जाता है।

---

* पहले प्रकारमें आमाशयके पित्तकी उत्पत्ति कम होती है या नहीं होती। दूसरे प्रकारमें आमाशयके पित्तमें तीव्रता और अम्लताकी वृद्धि होती है। तीसरे प्रकार में यकृत् पित्तका स्राव कम होता है, जिससे लघु अन्त्रके भीतर पचन होनेवाले घृत तैलादिकापचन यथोचित नहीं होता।

(आ) जननेंद्रिय और मूत्रेन्द्रियके रोगमें बीजोंकी खीर (यवागू) देनेसे पेशाबकी जलन कम हो जाती है । मूत्रका परिमाण बढ़ जाता है; और पुष्टि आती है। विशेषतः ककड़ी, कोहला, खरबूजा और तरबूज इनचारोंके मगजकी खीर देनेका विशेष रिवाज है।

(५) श्वेतप्रदर—ककड़ीके बीज, कमल ककड़ी, जीरा और शक्कर मिलाकर दिया जाता है। रक्तप्रदर होनेपर उसमे कमलकी पंखड़ियाँ मिला दी जाती हैं।

(६) दाह—दाहमे ककड़ी उत्तम औषधि है। ककड़ीके छोटे छोटे टुकड़ेकर शक्कर मिलाकर खिलावें।

(४७) कपास।

सं० कार्पासी, सारणी, तुण्डिकेरिका। हिं० कपास, नरमा, वाड़ी, वेनोरे। वं० कार्पास, तूल। म० कापूस। वरा० पराठी। गु० कपास, वोण। सिं० कपु। रा० बन, वण। फा० कुतून। कं० हत्ति, अरल। ता० परुति। ते० पत्ति। मला० करुपरुत्ति। को० कापुसु। अं० Cotton plant ले० Gossypium Herbaceum.

परिचय—कपासमें एक वर्षायु और बहु वर्षायु अनेक जाति होती हैं। यह भारतके अनेक प्रान्तोंमें बोयी जाती है। ऊंचाई, पानके आकार और कद, सबमें अन्तर रहता है। पुष्प पीले, लाल, बैंजनी, सफेद और अनेक जातिके होते हैं। रूई विशेषतः सफेद होती है; किन्तु वर्तमानमें विविध रंगकी रूई भी होने लगी है एवं सफेद रूईमे तार भेदसे बहुत भेद हो जाता है। बीजोंमें भी अनेक प्रकार हैं। औषध रूपसे मूलकी छाल, फल, बीजोंकी गिरीका उपयोग होता है।

मात्रा—मूलकी छाल ६ माशेसे १ तोले तक।

गुणधर्म—कार्पासी लघु, किञ्चित् उष्ण, मधुर, वातहर तथा तृषा, दाह, श्रम भ्रम और मूर्च्छा की नाशक तथा बलवर्द्धक है। पान वातहर, रक्तवर्द्धक, मूत्रजनन तथा कर्णपीड़ा, कर्णनाद और कर्णपूय को नाश करने वाला है। बीज स्तन्यवर्द्धक, वृष्य, स्निग्ध, कफकर और गुरु है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार कपासके बीज (बिनौले) स्तन्यजनन, स्नेहन, मूत्र जनन, स्रंशन, श्लेष्मनिःसारक, बल्य और वातसंस्थापोषक। रूई उपशोषक (विकार शोषक) और संरक्षक। पुष्प उत्तेजक और मनको प्रसन्न करनेवाला। पान स्नेहन और मूत्रजनन। मूलकी छाल गर्भाशयको उत्तेजक, आर्तवजनक और स्नेहन। इससे गर्भाशयका उत्तम आकुंचन होकर रक्तस्राव बन्द होता है। मूलकी छालकी क्रिया डाक्टरी औषधि अर्गट के समान होती है।

कार्पासमूलत्वक् क्वाथ—मूलकी छाल १० तोलेको १। सेर जलमे मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करें। मात्रा १ से २ औंस। आध आध घण्टेपर ४-६ बार।

उपयोग—बोयी हुई एक वर्षायु कार्पासीकी अपेक्षा अनेक वर्षायु वृक्षकेछाल, रूई, बीज आदिमें गुण अधिक रहा है। कार्पासका उपयोग प्राचीन कालसे हो रहा है।

डाक्टर खोरीने लिखा है कि कपासके फूलोंका शर्बत चित्तभ्रम (Hypochondriasis) पर दिया जाता है। अग्निसे जलने और अन्य गरम वस्तुसे झुलस जानेपर फूलोंकी पुल्टिस बांधनेसे वेदना शमन होती है। कच्चे फलकी छाल ग्राही है। और कच्चे फलमें अफीम और जायफल भर, पुटपाक विधिसे पका फिर चूर्ण बनाकर पेचिशपर दिया जाता है।

मूलकी छालका क्वाथ मासिकधर्म साफ लाने और गर्भस्राव का आकुंचन करानेको दिया जाता है। गर्भाशय शिथिल होनेसे सरलतासे प्रसव न होता हो, तो यह क्वाथ देनेसे गर्भाशयका आकुंचन होकर जल्दी प्रसव हो जाता है। कष्टावर्त और नष्टावर्तमें यह क्वाथ अच्छा लाभ पहुँचाता है। पेशाबमें रक्त जाता है, तो उसे यह क्वाथ बन्द कराता है। बिनौलेकी गिरीकी चाय (फाण्ट) स्नेहन होनेसे अतिसार और पेचिशमें अन्त्रको स्निग्ध बनानेके लिये व्यवहृत होती है। यह गिरी स्निग्ध, सारक, वृष्य, कफहर और स्तन्यवर्द्धक है (अतःछोटे बच्चेकी माताको दूधमें मिला, खीर बना कर दी जाती है और निर्बलता दूर करनेके लिये भी उपयोगी है)।

पानोंका रस दूधको बढ़ानेके लिए दिया जाता है।

बिनौलेकी गिरी और सोंठको जलके साथ पीस वृषण शोथपर लेप किया जाता है। वात जन्य संधियोंकी (घूटने आदि अवयवोंकी) पीडापर निवाये तेलकी मालिशकर फिर इसका पान रख, ऊपर रूई रखकर पट्टी बांधनेसे शोथ और वेदनाका दमन होता है.।

जलप्रधानशोथ, वायुसे शून्य हुए अंग, पैरोंका शोथ, सन्निपात अथवा वातरक्तजन्य संधियोंका शोफ, बालकोंका श्वासनलिकाप्रदाह (खाँसी) और निमोनिया आदि रोगोंमें गीलापनको दूर करने और उष्णताका रक्षण करनेके लिये रूईको गरमकर बाँधा जाता है। इस तरह सेकके समान लाभ मिल जाता है।

(१) व्रणपाक—शोथ, गांठ अथवा फोड़ा पकने लगता है, तब अतिशूल निकलता है। ऐसी अवस्थामें अच्छी तरह पिंजे हुये कपासकी पुरी जैसी आकृति बनाकर थोड़े समयतक जलमें भिगो देवें। फिर उसे निकाल दोनों हथेलियोंके बीच दबा, निचोड़कर घीमें तल लेवें। इसे पकनेवाली सूजनपर लगानेसे जल्दी पाक हो जाता है और वेदना कम होजाती है। पुल्टिसकी अपेक्षा यह विशेष शांति देती है। इस तरह वातप्रकोपज शूलपर भी बाँधनेसे शूलका दमन होता है।

(२) दुष्टव्रण—फोड़ेके भीतर मांस सड़नेपर घाव जल्दी नहीं भरता, सामान्य मलहम काम नहीं कर सकता। उसपर रूईको बला काली राख बनाकर बार बार डालते रहनेपर घावका शोधन और रोपण सरलतासे हो जाता है।

सूचना—रूईको जलानेपर धुआं निकल जाय, तब बर्तन ढक देनेसे

राख काली हो जाती है। कभी कभी प्रारम्भमें शोधन करानेके लिये इस राखको शुद्ध एरण्ड तैलमें मिला मलहम बनाकर लगाया जाता है। घाव शुद्ध होनेपर राख छिड़की जाती है।

(३) पीड़ितार्त्तव—मासिक धर्ममें अति कष्ट होनेपर और रजःस्राव योग्य न होनेपर कपासके मूलकी छालका फाण्ट आध आध घण्टेपर पिलाते रहनेपर मासिक-धर्म बिना कष्ट साफ आ जाता है।

(४) स्तन्य बढ़ाना—छोटे बच्चेकी माताको दूध कम आता हो, तो १-१ तोले बिनौलेकी गिरीकी खीर बनाकर रोज दोपहरके भोजनके साथ देते रहनेपर दूध बढ़ जाता है।

(४८) कचरी।

सं० मृगाक्षी, मृगादनी, चित्रवल्ली, बहुफला, चित्रा। हिं० कचरी, गुराही, सेंधिया। बं० बनेगुमुक। म० शेंदणी। गु० कोठीबां, काचर्या। रा० सेंध, काचरी। क० वालुकमेके। फा० दस्तम्बूय। अं० Cucumber Small. ले० Cucumis Maculata.

परिचय—इसकी बेल खेतों और पहाड़ोंपर होती हैं। वनस्पति शास्त्रकी दृष्टिसे यह भी ककड़ी समूहकी जाति है। पान ६ इञ्च चौड़े, ४ इञ्च लम्बे। पानका डण्ठल ४५ इञ्च लम्बा। पुष्प पीला। तन्तुकी लम्बाई २ इञ्च तक। शाखापर कांटेदार रुएं होते हैं। फलकी सुगन्ध लगभग फूट जैसी। फल १ से २॥ इंच लम्बे। रंग गहरा हरा, कभी गुलाबी आभायुक्त। फलपर १० काली खड़ी धारियां। कच्ची अवस्थामें फल कोई कड़वा और कोई मीठा। पकनेपर खट्टा मीठा।

गुणधर्म—कच्चाफल कड़वा, पक जानेपर खट्टा और वातहर, दीपन, रुचिकर, पित्तकारक और पीनसनाशक है।

उपयोग—इसका उपयोग साग और अचार रूपसे अधिक होता है। पीनस (नाकमेंसे दुर्गन्धमय स्राव होना), उदरकृमि, आफरा, अग्निमान्द्य, मलावरोध, अर्श आदि रोगोंमें हितावह है।

(४९) कद्दू।

सं० डांगरी, डुंगरी, गंजदन्तफला। हिं० कद्दू, पीलापेठा, लालकुमरा। बं० बिलाती कुमड़ा। ओ० करवाडू। म० तांबड़ा भोपड़ा, डांगर। गु० शाकर कोळु, पतरकोळु। फा० बादरंग। क० बूदिकुंबल। मला० कुंबलम्। ता० कल्याण पूयिनि। अं० Red pumpkin.

ले० (१) Cucurbita Mexima (लाल कुमरा)

(२) Cucurbita Pepo (सफेद कद्दू)

परिचय—कद्दूकी अनेक जाति भारतमें बोयी जाती हैं। इसकी वेल ३०-४० फीट लम्बी होती है। फल ८ सेरसे ४० सेरतक वजनका हो जाता है। जाति भेदसे पानों की आकृतिमें थोड़ा थोड़ा अन्तर है। फूल पीले आते हैं। नरफूलका वृन्त ४ इञ्चका, मादा फूलका वृन्त १॥ इञ्चका।

गुणधर्म—शीतल, रुचिकर, मधुर, तृप्तिकर तथा शोप, जड़ता, मूत्रावरोध, दाह और रक्तविकारका नाशकरता है। अपक्व फल कम मधुर और पिच्छिल है। पका फल रुचिकर है। श्रम, भ्रान्तिको नष्ट करता है तथा बल, वीर्यका बढ़ाता है। अधिक शाक खानेपर वातको बढ़ाता है। बीजोंका गिरी कृमिघ्न है।

उपयोग—कद्दु का अधिक उपयोग साग रूपसे होता है। उरःक्षत, रक्त वमन और कफके साथ रक्त आनेपर बीजोंकी गिरीका हलवा या पाक बनाकर दिया जाता है।

(१) कद्दूदाना कृमि—ये कृमि चिपटे होते हैं। इन कृमियोंके बड़े हो जाने पर पाण्डुता, अरुचि, उवाक, अग्निमान्द्य, रक्तविकार, उदरमें भारीपन, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसपर बीजोंकी गिरीका तैल १।-१। तोला सुबहसे ३ बार २-२ घण्टेके अन्तरपर दूधके साथ देवें। फिर एरण्ड तैलका विरेचन देनेसे कृमि निकल जाते हैं। किन्तु जबतक कृमिका शिर मलमें न निकल जाय, तबतक ५-७ दिनतक रोज तैल देते रहना चाहिये। भोजन खिचड़ी या दाल भात या दही देवें।

कितनेक चिकित्सक तैलके स्थान पर १-२ छटांक गिरीको दूधमें पीस छान, थोड़ा शहद मिलाकर पिलाते हैं। फिर विरेचन देते हैं।

(२) शारीरिक निर्बलता—अधिक श्रम पहुँचनेसे आई हुई निर्बलता पर इसके बीजोंकी गिरीके आटेको घीमें भून, शक्कर मिलाकर लड्डू बनाकर कुछ दिनोंतक रोज सुबह खिलाना चाहिये।

(५०) कन्दूरी।

सं० बिम्बी, रक्तफला, तुण्डी, पीलुपर्णी। हिं० कन्दूरी, गुलकांक, कुंदरू। बं० तेलाकुचा। म० तोंडले। गु० घोलोडा, टींडोरा, घोलां। सिं० गोलारु। क० तोंडे। ते० दोंडतागे। ता० कोवै। कों० तुंडलें। मला० कोवतोंडि। ले० Cephalandra Indica.।

परिचय—इसकी वेल जंगलोंमें होती है और वर्षा ऋतुमें बागोंमें बोयी जाती हैं, जंगलकी वेलके फल कड़वे और बागकी वेलके मीठे होते हैं। पान ५-५ कोनवाले, २ से ४ इञ्च व्यासके। नरमादा फूलकी वेल समान होती है। फूल सफेद। नरफूलका वृन्त १ इञ्च लम्बा। मादा फूलका वृन्त ½ इञ्च लम्बा। मादा वेलका फूल फलके ऊपर बहुत समयतक रहता है। फल लम्बगोल, हरा, धारीवाला, पकनेपर लाल। जंगलकी वेलके मूलके टुकड़े बागोंमें बोनेपर धीरे धीरे मीठाबन जाता है।

मात्रा—विरेचनार्थ कड़वी कन्दूरीके मूलकी छाल १५ रत्ती।

गुणधर्म—मीठी कन्दूरी मधुर, शीतल, रुचिकर, ग्राही, पित्त, श्वास और कफकी नाशक है। रक्तविकार, ज्वर और कासको दूर करती है। अधिक खानेपर मलावरोध और आध्मात्र करती है।

कड़वी कन्दूरी वान्तिकर है। रक्तविकार, कफ और पान्डुकी नाशक है। मूल वामक, रेचक और शोथघ्न।

डाक्टर देसाईके मतानुसार कन्दूरीकी क्रिया जननेंद्रिय और मूत्रेन्द्रियपर होती है। यह स्नेहन, मूत्रसंग्रहण, व्रणरोपण और रक्त संग्राहक है।

उपयोग—इसके पानोंका चूर्ण ४ से ६ माशेतक मधुमेहमें अकेला या वङ्गेश्वर के साथ देनेसे बहुत लाभ होता है। इस रोगमें बिम्बीका साग हितकारक है।

मूत्रमें चिपचिपा सफेद पदार्थ जानेपर मूलका क्वाथ दिया जाता है।

सगर्भावस्थामें रक्तस्राव होनेपर इसके पञ्चाङ्गका रस मिश्री मिलाकर दिया जाता है। प्रदरपर मूलका चूर्ण दिया जाता है।

त्रासदायक व्रणपर पानोंका रस लगाया जाता है या पानोंकी पुल्टिस बाँधी जाती है। पुल्टिस बांधनेसे फोड़ेकी वेदनाका निवारण होता है और पककर फूट जाता है।

जिह्वाफट जानेपर फलको चबकर रसको कुछ समयतक मुँहमें रखनेसे जिह्वाको लाभ पहुँच जाता है।

(५१) कलौंजी।

सं० उपकुञ्ची, सुषवी, पृथ्वीका, स्थूलजीरक। हिं० कलौंजी, मंगरेला, स्थूलकालाजीरा। बं-चिलातीजीरा। म-कलौंजी जीरे। गु० कलौंजी जीरूं। क० करेजिरग। ता० करुशिरगम्। मला० करूचिरकम्। फा० स्यादाने। अ० हल्लुलसादोय। अं० Butter cup ले० Nigella Sativa.

परिचय—सुन्दर वर्षायु क्षुप। ऊंचाई १ से दो फीट। उत्पत्तिस्थान-पंजाब, बंगाल और बिहारादि अनेक देशोंमें। पान १ से २ इञ्चलम्बे। पुष्प एकाकी, लम्बे डण्ठल वाले, हल्के नीले। फली लगभग आध इञ्च लम्बी। फल फूल फरवरीसे एप्रिलतक बिहारमें। बीज तीक्ष्ण, जीराके सदृश्य सुगन्धवाले और उत्तेजक। इसमें दाहक विषाक्त तत्व हैं, जो अग्निपर भूननेमें उड़जाता है। इसका उपयोग गरम मसालेमें होता है।

इसके बीज अफगानिस्थान और अरब स्थानसे भी भारतमें आते हैं।

मात्रा—४ से ६ माशे या १ तोले तक।

गुणधर्म—कलौंजी चरपरी, कड़वी और उष्णवीर्य है। वात गुल्म,

आमविकार, कफ, आध्मान, शूल, कृमि और अजीर्णको नष्ट करता है। यह उत्तम दीपन है। गर्भाशयका शोधन करता है; और यह वृष्य है।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार कलौंजी कड़वी, चरपरी, सुगन्धित, उदरवातशामक, दीपन, ज्वहर, कृमिघ्न, रजःस्रावी और स्तन्यजनन है। इसके सेवनसे क्षुधा प्रदीप्त होती है; अन्न पचन होता है; और उदरमें वायुकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। इसके सेवनसे घी और तैलका पचन अधिक होता है। यह त्वचा, मूत्रपिण्ड और स्तन द्वारा बाहर निकलता है; अर्थात् इसके सेवनसे मूत्र, प्रस्वेद और स्तन्यकी वृद्धि होती है। गर्भाशयपर इसकी प्रत्यक्ष उत्तेजक क्रिया होती है। गर्भाशयका संकोचविकास बल पूर्वक होता है। जिससे मासिक धर्म साफ होता है। अत्यार्तव, कष्टार्तव, और नष्टार्तव दूर होते हैं। इसका गर्भाशयपर प्रभाव उतना सबल है कि क्वचित् इसके सेवनसे गर्भ पात हो जाता है। गर्भाशयमें शिशु मृत या जीवित रुक जानेपर इसका सेवन २ तोले तक करनेसे यह क्रिया प्रतीत होती है। इसके सेवनसे शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होती है; और नाड़ी सबल बनती है।

उपकुंचिका कल्पः—

(१) गरम मसाला—कलौंजी, धनिया, भूनाजीरा कालीमिर्च और नमक ५-५ तोले दालचीनी, तेजपात सोंठ और अमचूर २॥ २॥ तोले, हल्दी और भूनी हींग १ १ तोला इन सबको मिला कूटकर बारीक चूर्ण बनालेवें। इसमेंसे थोड़ा थोड़ा दाल शाकमें मिलाते रहनेसे दाल शाक स्वादिष्ट बनते हैं; तथा अरुचि, अपचन, अग्निमान्द्य आफरा, आमवृद्धि, उदरशूल, अधिक डकार और छोटे छोटे उदर कृमि दूर होते हैं।

(२) कलौंजीका अवलेह—भूना कलौंजी, भूना जीरा, कालीमिर्च और इमलीकागूदा समभाग लेवें। फिर उसके साथ काला नमक (स्वाद आवे उतना) खट्टे अनारका रस (भिगोकर एकरस हो उतना) और शहद या गुड़ मिलाकर अवलेह जैसा भोजनके साथ चटनी रूपसे सेवन करनेसे अरुचि और अग्निमान्द्य दूर होते हैं।

(३) उपकुञ्चिका मलहम—कलौंजी चूर्ण ५ तोले, बावची चूर्ण ५ तोले, गूगल ५ तोले, दारु हल्दीके मूलका चूर्ण ५ तोले, गन्धक २॥ तोले और नारियलका तैल १ सेर लेवें। इन सबको मिला तैल सिद्धकर लें या मोम मिलाकर मलहम बनालेवें। इसके प्रयोगसे विविध चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

उपयोग—मसालेमें कलौंजीका उपयोग दीर्घकालसे हो रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में इसका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं है। अन्य औषधिके साथ सहायक औषधि रूपसे कभी कभी किया है।

कलौंजीका उपयोग प्रसव होनेपर उत्तम होता है। इसके चूर्ण या क्वाथके ... गर्भाशय शुद्धहोकर संकुचित होता है; स्तन्यकी वृद्धि होती है; उदरमें वायुकी

उत्पत्ति नहीं होती। मूत्र साफ और अधिक आता है, और प्रसूताकी शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है।

मासिक धर्म साफ न होनेपर और मासिकधर्ममें कष्ट होनेपर कलौंजीका सेवन हितावह है। कलौंजीसे मासिक धर्म नियमित और विना कष्ट आने लगता है।

विषम ज्वरमें कलौंजीको भून १ तोले तक शहदमें मिलाकर चटाया जाता है। इसके सेवनसे एकाहिक और तृतीयक ज्वर भी रुक जाता है।

व्युची, दद्रु, पामा और शुष्ककण्डु आदि त्वचारोगोंपर इसका उदर सेवन और मालिश या लेप भी कराया जाता है। इसका नियम पूर्वक उपयोग करनेसे कुष्ठको भी यह दूरकर देता है।

कलौंजीको सिरकेमें पीस रात्रिको मुंहपर लेप करने और प्रातःकाल धो डालने से ५-६ दिनमें यौवनपिडिकाएं मिट जाती हैं। इसके लेपसे मुंह और अन्य स्थानपर हुए दाग नष्ट हो जाते हैं।

व्युची रोगपर इसका उपयोग बिल्वपत्र और हल्दीके साथ करनेपर लाभ हो जाता है। कर्नलचोपराने व्युची (Eczema) और रक्तके ददारे (Pityriasis) पर उपकुञ्चिका मलहमके प्रयोगका लिखा है।

अग्निमान्द्य और अपचन होनेपर चित्रकमूल या गरम मसालके साथ इसका उपयोग किया जाता है। विरेचन ओषधिके साथ इसे मिला देनेसे उदरमें मरोड़ा नहीं आता। उदरमें गोलकृमि हो गये हों, तो वे इसके सेवनसे दूर हो जाते हैं। हिक्का चलनेपर इसका सेवन ३-३ माशे १-१ घण्टेपर शहदके साथ तीन बार करानेसे हिक्का बन्द हो जाती है।

कफवृद्धि और संधिवातपर इसके सेवनसे लाभ होता है। वात प्रकोप या जन्तुके काटनेसे हाथपैरोंपर शोथ आया हो तो इसके लेपसे वेदना दूर होती है, और शोथ शमन हो जाता है।

कलौंजीको ऊनी वस्त्रोंके तहोंके भीतर छिड़क देनेसे वस्त्रोंका कीड़ेसे रक्षण होता है। कोई कोई इसमें कपूर भी साथ मिलाते हैं।

कलौंजीमें मूत्रल गुण होनेसे सर्वाङ्ग शोथ और जलोदरकी ओषधिके साथ इसका उपयोग किया जाता है।

कलौंजीको जला राखकर फिर तैलमें मिलाकर शिरके नये गंज स्थानपर मालिश कराते रहनेसे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, और फिर बाल आ जाते हैं।

बार बार डकार आती रहती हो, पचन शक्ति मंद हो तथा वात या कफकी प्रधानता हो, तो इसका सेवन करते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें बार बार डकार आना रुक जाता है।

कलौंजीको भून चूर्णकर पोटली बांध, फिर सूंघते रहनेसे (नासिकासे टपकने-वाला जल) बन्द हो जाता है।

कलौंजीको जलमें पीस छानकर बाल धोते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर बाल लम्बे और मुलायम हो जाते हैं, तथा बाल टूटना रुक जाता है।

आचार्य वृन्दने इसका उपयोग रक्तपित्त पर लिखा है। निःश्वास और डकार में रक्तकी वास आती हो, तो ३-३ माशे कलौंजी चूर्ण दूनी मिश्रीके साथ सेवन करानेसे रक्त पित्त शमन हो जाता है।

(५२) खरबूजा।

सं० षड्भुजा, मधुफला। हिं० खरबूजा, खर्बूजा। बं० खर्बुज। गु० तलिया, सकरटेटी। म० खरबूज तरटी। सिं० गिध्रो। फा० खरबूजह। कं० षड्भूजा सौते। ते० खरबूज। अं० Melon.

लै० Cucumis Melo

परिचय—वनस्पति शास्त्रकी दृष्टिसे यह भी ककड़ी समूह (कुकुमिस) की जाति है। यह बेल भारतके अनेक प्रान्तोंमें होती है। खरबूजेमें कितनीही उपजाति हैं। काबुलमें जो जाति होती है, वह भारतीयकी अपेक्षा विशेष स्वादु है।

गुणधर्म—मधुर, किञ्चित् अम्ल, वृष्य, रुचिकर, मूत्रल, मूत्रलसारक, स्निग्ध, पित्त और वात शामक। दाह, तृषा, श्रम, मूत्रकृच्छ्र, उन्माद और रक्तविकार आदिको दूर करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार खरबूजेके बीज शीतल, मूत्रल और बल्य है। फल शीतल, ग्राही, मूत्रल और कुष्ठघ्न हैं। मूल विरेचन और वामक है।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र होनेपर बीजोंको जलके साथ पीस छानकर जल पिलाया जाता है। पुराने व्यूची (Eczema) रोगसे पीड़ितोंके लिये खरबूजा अति हितकारक है।

(५३) खसखस।

सं० खस्तिल, खरखस, खाखस। हिं० खसखस, पोस्तदाने। बं० पोस्तदाना, खाखस। गु० म० खसखस। फा० तुख्मकोकनार। अ० हबुलकोकनार। अं० Poppy Seeds. लै० Opium Poppy (खसखस); Papaver Somniferum (क्षुपका नाम)।

परिचय—खसखसका क्षुप मूल दक्षिण यूरोप और एशिया माइनरका वासी है। वहांपर नैसर्गिक है। वहांसे भारतमें आया और अनेक प्रान्तोंमें बोया गया। इसकी डांडियोंपर चाकूसे काप करनेपर सफेद रस (दूध) बाहर निकलता है जो थोड़े ही समयमें गाढा होकर काला हो जाता है। उसे अफीम कहते हैं। इसका वर्णन पहले किया गया है।

खसखसके बीजकी २ जाति हैं। सफेद और काली। इनके अतिरिक्त अहि-फेनवर्गकी अन्य जातियोंसे खसखस निकलती है। वह लाल और भूरे रंगकी होती है।

खसखसमेंसे तैल निकलता है, वह जल्दी नहीं सूखता। उसका उपयोग चित्र-कलामें अधिक होता है। इसके अतिरिक्त खाने और जलानेमें भी लिया जाता है। इसकी खली गाय भैंसोंको दी जाती है।

गुणधर्म—मधुर, बल्य, वृष्य, श्लेष्महर, वातशामक।

उपयोग—खसखस उत्तम शक्तिवर्द्धक द्रव्य है। बालक, युवा, वृद्ध, सबके लिये हितकर है। १ तोले खसखसको दूधमें पीसकर फिर २० तोले दूध मिला छान-कर चूल्हेपर चढ़ावें। उसमें २-२॥ तोले मिश्री मिलाकर पकालेवें। फिर शीतल होनेपर खिलावें। इसी तरह खसखसकी थूली बनाकर भी खिलाई जाती है।

शुष्क कास, संग्रहणीमें बारबार दस्त होना और संग्रहणीजनित निर्बलतापर खसखस अति हितकारक है।

छोटे बालकोंको दांतोंकी पीड़ासे हरे-पीले दस्त होनेपर खसखसकी थूली खिलाई जाती है। इस थूलीसे बालकोंकी अशक्ति और कृपता दूर होती है। जिस स्थानपर वातशूल निकलता हो, या गांठ बढ़ गई हो, उन स्थानोंपर पोस्त की डोडियोंसे सेक करनेपर दर्द निवृत्त होजाता है। इन डोडियोंको जलमें उबाल पोटली बांधकर सेक करते रहना चाहिये। पोटली शीतल होनेपर बारबार उसे गरम जलमें डूबोकर सेक करते रहें।

सूखी डोडियोंका उपयोग नेत्रपीड़ामें भी होता है। नेत्रकी लालीको बिखेरने और नेत्रकी तीव्र वेदनाके शमनके लिये डोडियोंको जलमें उबाल, उसमें कपड़ा भिगो-कर नेत्रपर सेक किया जाता है।

इसके कोमल पत्र और कोमल शाखाओंका शाक बनाया जाता है; यह ग्राही असर पहुँचाता है।

(५४) खुरासानी अजवायन।

सं० यवानी, यावनी, मदकारिणी। बं० खुरासानी योयान। म० खुरासानी ओवा। फा० तुख्म बिनग। अ० बजरूल बन्ज। ता० ते० कुरा-सानी ओमन। क० कुरासीनु ओमन। मला० कोसानी ओमन। अं० Hen bene. ले० Hyoscyamus Nigar।

परिचय—यह क्षुप पश्चिम हिमालयमें काश्मीरसे गढ़वाल तक होता है। क्षुप खड़ा न्यूनाधिक रुएंदार, कष्टप्रद गंधयुक्त। तनेकी ऊँचाई १। से ३ फीट। पान ७ इञ्चतक लम्बे, २ इञ्च चौड़े। फूल हलका पीला-हरा, बैंजनी नसवाला। डोंडीका व्यास आध इञ्च। पुष्पाभ्यन्तर कोष आधार स्थानपर बैंजनी, ऊपर हलका हरा, बैंजनी नसयुक्त।

वक्तव्य—आयुर्वेदमें इसके बीजोंका और डाक्टरीमें पत्तोंका विशेष उपयोग होता है। डाक्टरीमें पानोंका अर्क, सत्व और गुटिका आदि प्रयोगमें लाते हैं। आयुर्वेदमें बीज (खुरासानी अजवायन) प्रयोगमें लाते हैं, वे विशेषतः ईरानसे आते हैं। ये हायोसाइमस मुटिकस (H. Muticus) के हैं।

रासायनिक द्रव्य—पानोंमेंसे ४ द्रव्य मिलते हैं। (१) हायोसायमीन; (२) एट्रोपीन; (३) हायोसीन; (४) विपाक्त तैल। बीजोंमेंसे हायोसायमीन अति कम मात्रामें और २६ प्रतिशत तैल निकलता है।

मात्रा—पानकी मात्रा १। से ३ रत्ती। बीजका चूर्ण २ से ६ रत्ती। प्रारम्भमें कम मात्रामें दें। अनुपान शराब।

सूचना—बीजोंको जलमें उबालनेपर हायोसाइमीन विशेषांकमें उड़ जाता है। अतः बीजोंका उपयोग हिम, फाण्ट और चूर्ण रूपसे करना चाहिये; या शराबमें अर्क निकाल लेना चाहिये।

गुणधर्म—खुरासानी अजवायन रूक्ष, ग्राही, मादक और चरपरा है। डाक्टर देसाईके मतानुसार खुरासानी अजवायन वेदनास्थापक, निद्राप्रद, आक्षेपहर, शामक और किञ्चित् मूलक। थोड़ी मात्रामे हृदयशामक और बल्य। बड़ी मात्रामें हृदयको उत्तेजक। शामक क्रिया मस्तिष्क, मूत्राशय, गर्भाशय (प्रजनन संस्था) और अन्त्रपर अधिक होती है। यह निश्चित निद्रा ला देता है। इससे घण्टों तक गाढ़ निद्रा आ जाती है। अफीममें भी निद्राप्रद और वेदनास्थापक गुण हैं; किन्तु जिनको अफीम न दे सकें, उनको यह दिया जाता है। अफीम मलावरोध करती है; कभी कभी नशा ला देती है और सब अवयवोंपर समान असर पहुँचाती है। खुरासानी अजवायन कब्ज नहीं करता, इसके विपरीत उदर शुद्धि कराता है; अन्त्रपर शामक असर पहुँचाता है, नशा नहीं लाता; मस्तिष्क और मूत्रेन्द्रियपर नियमित असर पहुँचाता है और मूल्यमें बहुत सस्ता है। मुख शोष न हो, इतनी कम मात्रामें खुरासानी अजवायन देनेपर प्रारम्भमें नाड़ीके भीतर मामूली उत्तेजना आती है, फिर १०-२० मिनटोंमें ही शामकता आने लगती है और १-२घण्टेके भीतर नाड़ीकी गतिका अति ह्रास हो जाता है। नाड़ी स्पन्दन५० या ४५ तक कम हो जाता है।

खुरासानी अजवायनमें हायोसिन द्रव्य है, जो मस्तिष्क और सुषुम्णापर किञ्चित उत्तेजना पहुँचाकर फिर अवसादकता और निद्रा ला देता है। ये शामक और निद्राप्रद गुण सूचीबूटीस्थ एट्रोपीनकी अपेक्षा उन्माद और निमोनियाके प्रलापको शमन करनेमें अधिक फलदायी है। दूसरा गुण अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया बढ़ाना, यह भी सूचीबूटीकी अपेक्षा प्रबल है और विरेचन ओषधिके साथ मिलानेपर उदर-वेदना (मरोड़ा) प्रायः निवृत्त हो जाती है। तीसरा गुण दूरवर्ती इडापिंगला नाड़ियों (Para-Sympathetic) के अन्त भागोंपर असर पहुँचाता है। यह असर

तथा नेत्रकी कनीनिका आंकुचित हो तो अफीम नहीं दे सकते, ऐसी अवस्थामें कपूरके साथ खुरासानी अजवायन देनेसे तत्काल उपकार दर्शाता है।

(२) निद्रानाश—मस्तिष्कावरण प्रदाह, वातशूल, वृक्कविकार आदि रोगोंमें निद्रा नहीं आती; वेदना बनी रहती है। उन अवस्थाओंमें वेदनास्थापन और निद्रा लानेके लिये खुरासानी अजवायन दी जाती है। वृक्कोंकी जीर्ण व्याधिमें अफीम नहीं दी जाती।

यदि भय, शोक, क्रोध आदिसे हृदयविकृति होकर या उत्तेजना बढ़कर निद्रा दूर हो गई हो तो उनको भी खुरासानी अजवायन देनेसे निद्रा आ जाती है। ऐसे प्रसंगोंमें मात्रा कुछ अधिक देनी चाहिये। किसी भी कारणसे मानसिक अस्वस्थता और निद्रानाश होनेपर यह उत्तम औषधि है।

(३) सूतिकाका उन्माद—प्रसूताको वात प्रकोप या उन्मादन हो गया हो, और निद्रा न आती हो, तो निद्रा लानेके लिये यह श्रेष्ठ औषधि है। यह देनेपर शान्त निद्रा आ जाती है। इस अवस्थामें अफीम नहीं दे सकते।

(४)जीर्ण उन्माद—पुराने उन्माद रोगीको कभी कभी उत्तेजना अधिक बढ जानेपर वह दौड़ भाग या नाचकूद, करने लगता है या किसीको मारने लगता है। ऐसी उच्छ्ंखल चेष्टा करनेपर खुरासानी अजवायन कुछ अधिक मात्रामें देना पड़ता है। जीर्ण बुद्धि भ्रंशमें भी कुछ अंशमें लाभ पहुंचता है।

(५)कामोन्माद—कामोत्तेजना असह्य होना, स्वप्नावस्थामें भी बार बार शुक्रस्राव होना, शुक्रस्तम्भन बिल्कुल न होना, तुरन्त वीर्यस्राव हो जाना आदि विकारोंमें शान्ति पहुँचाने और शुक्राशय आदिपर अवयवपर अवसादकता पहुँचानेका कार्य खुरासानी अजवायन अच्छा कर देता है। पाठा और गिलोय सत्व अथवा गिलोयके रसके साथ देना चाहिये।

शुष्क कास—श्वासनलिका या स्वरयन्त्रमें शुष्कता बढ़ जानेपर कास अत्यधिक बढ़ जाती है। १०-२० बार खांसी आकर बड़ी कठिनताके साथ थोड़ा झाग निकलता है, उसपर खुरासानी अजवायनको कत्था या सितोपलादि चूर्ण घी और शहदके साथ दिनोंमें २ बार देनेसे लाभ पहुँचता है। साथ साथ मुँहमें मुलहठीका टुकड़ा रखकर रस भी चूसते रहना चाहिये।

(७)राजयक्ष्मामें श्वासकृच्छ्रता—क्षय रोगमें कास अधिक हो और श्वासावरोध होता हो, तो खुरासानी अजवायन की वाष्पका नस्य करानेसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

(८)तमक श्वासका दौरा—तमक श्वासका आक्रमण होने या अति खांसी ने पर शामकता पहुँचानेके लिये खुरासानी अजवायन, कपूर और अन्य कफ

निःसारक (कालीमिर्च, पीपल, भारंगी, वासा आदि) औषधियोंके साथ देनेपर जल्दी लाभ पहुँच जाता है।

(९) मदात्यय—शराबके व्यसनीको दीर्घ कालतक अत्यधिक शराब पीते रहने से मदात्यय होकर बारंबार प्रलाप होता है, उसे खुरासानी अजवायन ५-५ रत्ती देनेपर प्रलाप नहीं होता और शान्त निद्रा आती रहती है।

(१०) हृत्स्पन्दनकी वृद्धि—उत्तेजना बढ़नेपर हृदय वेगकी वृद्धि होनेपर हृदय धड़धड़ करने लगता है। एवं जीर्ण हृदय पीड़ा, हृदयके कपाटकी जीर्ण विकृति, देहमें रक्तकी न्यूनता, अति शारीरिक निर्बलता, मानसिक आघात आदि कारणोंसे हृदयकी धड़धड़ बढ़ जाती है। उसपर खुरासानी अजवायन, सितोपलादि चूर्णके साथ दिया जाता है एवं मूल रोगको दूर करनेके लिए चिकित्सा भी करते रहना चाहिये।

(११) कण्ठमालज नेत्रप्रदाह—कण्ठमालमें कभी कभी उपद्रव रूपसे नेत्रप्रदाह होजाता है। फिर नेत्रमें लाली, वेदना और उग्रता रहना तथा सूर्यका ताप और अधिक प्रकाश सहन न होना, नेत्र बन्द करनेपर कुछ शान्ति होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर खुरासानी अजवायन लाभ पहुंचाता है। इसका स्थानिक और आभ्यन्तरिक प्रयोग करना चाहिये। रात्रिको सोनेके समय कपूरके साथ देते रहें और इसके सत्वका नेत्रमें अंजन लगाते रहें।

(१२) वातशूल—(पार्श्वशूल, वातरक्त, अस्थ्यावरणप्रदाह, अर्श और स्तन्यप्रकोप आदिसे वेदना)—इन वेदनाप्रदरोगोंमे वेदनाके निवारणार्थ खुरासानी अजवायनका चूर्ण या फाण्ट दिया जाता है एवं बाह्य स्थानिक प्रयोगभी किया जाता है।

(१३) दन्तशूल—खुरासानी अजवायनके चूर्णको दांतमें मिलाकर गढ्ढेमें भर देनेसे वेदना कम होजाती है। इस तरह खुरासानी अजवायनको अग्निपर डाल ऊपर चिलमसे ढक नली द्वारा धुआं दांतमें पहुंचानेपर लारके साथ कीड़े गिर जाते हैं और वेदना शमन हो जाती है।

(१४) गर्भाशयमें वेदना—खुरासानी अजवायनके चूर्णकी जामुन जैसी पोटली बांधकर योनिमार्गमें रखनेसे वेदना स्तम्भित हो जाती है। पोटलीको लम्बा डोरा बांध देना चाहिये। जिससे चाहिये तब खींचकर निकाल सकें।

(१५) बहुमूत्र—मूत्राशयकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह होनेपर बार बार थोड़ा थोड़ा पेशाब होता रहता है; कभी कभी बूंद बूंद पेशाब आता है, पेशाबमें कुछ जलन होती है। उसपर गिलोय सत्व, सोरा (या जवाखार) और पाठके चूर्णके साथ खुरासानी अजवायन दिया जाता है।

(१६) सूजाक—सूजाक रोगमें मूत्रप्रसेक नलिकामेंप्रदाह (पूयमयप्रदाह)

होता है। इस रोगमें खुरासानी अजवायन देनेसे मूत्राशय और मूत्रप्रवर्तक नलिका, दोनोंपर अवसादक क्रिया करता है। जिससे वेदना शमन होती है। शोथ या संकोचको दूरकर मूत्र साफ लानेमें सहायता प्रदान करता है।

(१७) कष्टार्त्तव—मासिकधर्मके समय कितनेक स्त्रियोंको भयंकर कष्ट होता है। रजःस्राव बहुत कम आता है। उसपर सोरा और खुरासानी अजवायन काली सारिवाके फाण्ट या गोखरूके क्वाथके साथ देनेसे कष्टका निवारण होता है और मासिकरजः साफ आ जाता है। यदि मासिकधर्म अधिक आता है, तो उसपर भी यह औषधि लाभ पहुंचाती है।

(१८) व्रणशोथ—स्तन, वृषण या अन्य किसी भागपर फोड़ा या गांठ होनेपर अति वेदना होती हो, तो खुरासानी अजवायनको सिर्का अथवा शराबमें पीसकर लेप करनेसे वेदनाका ह्रास हो जाता है। फूटे हुये व्रण और आमवातमें सन्धि शोथपरभी इस प्रयोगसे लाभ पहुंच जाता है। फूटे हुये व्रणके लेपमें थोडी अफीम भी मिला लेनी चाहिये,

(५९) खूबकलां।

ऊ० खूबकलां, खाकसीर। फा० खाकसी। अ० खूशां, हब्बह्। पं० जंगली सरसों। ले० Sisymbrium Irio.

परिचय—यह क्षुप उत्तर भारतमें राजपूतानेसे पंजाब तक होता है। तनेकी ऊंचाई १ से ३ फीट। पुष्प पीले। फली १॥ से ३ इञ्च लम्बी। यह भारतमें बहुत होती है, फिरभी यहां बीज संग्रह अधिक नहीं होता। इसलिये इसके बीज विशेषतः इरानमें भारतमें आते हैं। बीज कुछ लम्ब गोल, खस खस जितने बड़े। केसरियां रंगके स्वादमें लसदार, चरपरे और कसैले होते हैं। बीज पिंगल और भूरे होते हैं। भूरे बीज केसरियांकी अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं।

गुणधर्म—उत्तेजक, पाचन, कफनिःसारक, ज्वरघ्न और वेदनास्थापन है।

उपयोग—बीज मुद्दती बुखार (मोतीझरा आदि), संक्रामक ज्वर, (शीतल, रोमान्तिका आदि) में दोषका पाचन कराने, ज्वर विषको बाहर निकालने और कीटाणुओंके नाशके लिये दिये जाते हैं। स्वरभंग, जीर्णकास और पेचिशमें लाभदायक है। सगर्भा स्त्रियोंको भी निर्भयता पूर्वक दिया जाता है। बीजका उपयोग मुख्यरूपसे अति कम होता है। विशेषतः अन्य औषधियोंके साथ मिलाया जाता है।

(१) मोतीझरा—खूबकलां, गावजबां, बनफसा, तुलसीके पान, ब्राह्मी, गिलोय और कालीमिर्च इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर १॥ तोले लेवें। इसे ८ गुने जलमें उबालें। आधा जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवें। शीतल होनेपर [illegible]वें। इस तरह दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको देते रहें।

सूचना—मोतीझराके पहले सप्ताहमें मलावरोध रहता है। इसलिये सुबह अमलतासका गूदा १ तोला मिला छानकर पिला देना चाहिये।

(२) शीतला—खूबकलां, गिलोय, ब्राह्मी, धमासा, पित्तपापड़ा, चिरायता और कुटकी, इन ७ ओषधियोंको ६-६ माशे ले, ८ गुने जलमें मिलाकर क्वाथ करें। आधा जल शेष रहनेपर आधा सुबह पिलावें और आधा रात्रिको पिलावें। यह शीतला और खसरा (रोमान्तिका) के विषको बाहर निकालता है और दोषको पचाता है।

इनके अतिरिक्त फोड़ेको पकानेके लिये इसकी पुल्टिस बाँधी जाती है।

(५६) खखसा।

सं० आवर्तकी, तिन्दुकिनी, पीतपुष्पा, चर्मरङ्गा, रक्तपुष्पी। हिं० खखसा, तरवड़। बं० बर्वेर। म० तरवड, चांभारतरोटा, चांभार इमली। गु० आवल। कच्छ आवर। मार० आलूण। क० आवरिके। ता० आवरै। ते० तंगेडु। मला० आवीरम्। अं० Tanneris cassia।

ले० (१) Cassia Auriculate (खखसा छोटा क्षुप)
(२) Cassia Obovata (खखसा क्षुप)
(३) Cassia Montana (बड़ा खखसा)
(४) Cassia Marginata (लाल खखसा)

परिचय—पहली जातिकी ऊँचाई ३ से १० फीट। उत्पत्ति स्थान सी० पी०, बरार, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़ आदि प्रदेशोंमें। पान लगभग वृन्त रहित, ३ से ४ (या ६) इञ्च लम्बे, इमलीके समान सलाकापर। फूल कसौंदीके समान तेजस्वी, पीले, गुच्छरूप, सूखनेपर लाल। पुंकेसर १०। स्त्रीपुंकेसर १। फली चिपटी, पतली और १ से ५ इञ्च लम्बी। तने या शाखापर घाव होनेपर गोंद जमता है। फूल जनवरीसे जुलाई तक।

दूसरी जातिकी ऊंचाई १ से ४ फीट। उत्पत्ति स्थान—काठियावाड़, गुजरात, सिंध, कच्छ, बरार, महाराष्ट्र आदि। पानकी लम्बाई २ से ३ इञ्च (सनायके पानके सदृश)। फूल निस्तेज पीले। पुंकेसर सामान्यतः १० किन्तु असमान। फली १ से १॥ इञ्च लम्बी। क्षुपमेंसे कसौंदीके सदृश गन्ध आती है। इस जातिका प्राचीन नाम लेटिनमें केसिया सेना (C Senna) था। इसके पानोंका उपयोग सनायके स्थानमें करते हैं, किन्तु सनायके समान लाभ नहीं होता।

तीसरी जातिकी ऊँचाई १० से १५ फीट। उत्पत्ति-स्थान महाराष्ट्र, काठियावाड़, गुजरात, मालवा, मेवाड़ आदि। पानकी मुख्य सलाकाकी लम्बाई ४ से ६ इञ्च। पान १ से १॥ इञ्च लम्बे। फूल गुच्छरूप, शाखाके अन्तमें, पीले रंगके। फली ३ से ५ इञ्च लम्बी और चिपटी। मराठीमें इसे मोठी डोंगरी तखड कहते हैं।

चौथी जातिके छोटे वृक्ष होते हैं। उत्पत्ति स्थान-सिलोन और दक्षिण। बिहार, कच्छ, गुजरात, महाराष्ट्र आदिके बागोंमें भी किसी किसी स्थानपर होते हैं। पान ½ से १ फुट लम्बे। सलाकापर रहे छोटे पान १ से १॥ इञ्च लम्बे। १ सलाकापर लगभग २०-४० पान। पुष्प रक्ताभ (गुलाबीलाल), तुर्रे जैसी छोटी कलगीमें शाखाके अन्तमें। फूल बिहारमें नवम्बरसे दिसम्बरतक आते हैं। फली ८ से १० इञ्च लम्बी, मुड़ी हुई, प्राय: स्पंज जैसी।

पहली तीन जातिके पान छोटे बड़े होनेपर भी आकारमें लगभग समान होते हैं। फूल, फल भी मिलते जुलते हैं। तीनोंका गुणधर्म भी एक सा है। तीनोंका उपयोग आयुर्वेदमें होता है। चौथी जातिका उपयोग आयुर्वेदमें प्राय: नहीं होता। पहली तीनों जातियोंकी छालमें टेनिन रहा है। उसका उपयोग चमड़ेको लाल रङ्ग चढ़ानेमें होता है।

गुणधर्म—खखरा रसमें कड़वी, शीतवीर्य, चक्षुष्य और पित्तनाशक है। मुख-रोग, कुष्ठ, कण्डू, कृमि शोथ, शूल और व्रणका नाशक है। फूल प्रमेहनाशक और स्वर्णके समान वर्ण देनेवाला। फलकी केसर वान्ति, कृमि, सब प्रकारके प्रमेह और तृषाके नाशक, नेत्रके लिये हितकर, रुचिकर और दुर्जर है। बीज मधुमेह नाशक, विषहर, रक्तातिसार नाशक है। मूल गुरु, वात प्रकोपक, मधुर, श्वास, रक्तपित्त, तृषा और प्रमेहका नाशक तथा शुक्रक्षयमें हितकर है। पानोंका स्वेद चोट लगनेसे उत्पन्न व्यथा और वातज शोथको दूर करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार यह प्रबल ग्राही है। इससे सब शरीरको उत्तेजना मिलती है। छाल चमड़े रङ्गनेके उपयोगमें लेते हैं। मूल लोहमेंसे पौलाद बनानेमें व्यवहृत होता है। शाखाओंके दतौन होते हैं। छालको जलानेपर राख ४ प्रतिशत मिलती है।

उपयोग—आर्वतकी का उपयोग प्राय: प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। यद्यपि वाग्भट्टने कुष्ठपर आर्वतकी घृतकी योजनाकी है, तथापि वह आर्वतकी कदाच सनाय भी हो सकती है। रस ग्रन्थमें इसकी केसरका उपयोग मधुमेह नाशक औषधिमें मिलता है। वर्तमानमें गुजरात, काठियावाड़ और महाराष्ट्रके ग्रामोंमें इसका उपयोग अनेक रोगोंमें हो रहा है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, मधुमेहमें फूलोंकी चाय या पंचागका चूर्ण ३० रत्ती मात्रामें या केवल बीजोंका चूर्ण दिया जाता है। इससे साथ प्यास कम हो जाती है, और मूत्र परिमाण मर्यादित होता है। इसके साथ तगरमूल (Valeriana Wallichii) मिलानेसे विशेष लाभ होता है। पेशाब गदला (Chylous urine) होनेपर भी इससे लाभ हो जाता है। वीर्य स्राव होता हो, तो फूल दिया जाता है। मासिक धर्ममें रज:स्राव अधिक होता हो, तो पंचागके क्वाथसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

पुराने प्रवाहिकामें छालका क्वाथ दिया जाता है। दांतोंको दृढ़ बनानेके लिये छालके चूर्णके (एवं शाखाके कोयलेके) मंजनका उपयोग किया जाता है। जीर्णज्वरपर पानोंका फाण्ट दिया जाता है। खुजली, पामा, पैरोंके तलेका दाह आदि चर्मरोगोंमें पानोंका फाण्ट दिया जाता है। पुराना पूयमय नेत्ररोगमें बीजोंके चूर्णका अंजन किया जाता है। (देसाई)

उदरशूल होकर अतिसार या वमन होनेपर मूलकी छाल चबानेसे तुरन्त लाभ हो जाता है। अपचन, विसूचिका, दुर्गन्धयुक्तवमन, शूल, अतिसार आदिमें नमकके साथ पीसकर रस निगल जाय, तो विशेष लाभ पहुँचता है।

बैल या गायको आफरा आनेपर पानोंका क्वाथ पिलाते हैं और अतिसार होनेपर पानोंके साथ नमक मिला गोला बनाकर खिलाते हैं। यदि बैलको अधिक बोझ खींचनेपर अशक्ति आ गई हो, तो मूलकी छालको कूट थोड़ा नमक मिला १०-१० तोलेके लड्डू बनाकर ७ दिनतक १-१ खिलानेसे बैल स्वस्थ हो जाता है।

नेत्राभिष्यन्द रोगमें इसके पानोंके रसका बूंद डाला जाता है एवं पानोंको दूधमें पीस, पुल्टिस बनाकर नेत्रपर बाँधी जाती है। इससे नेत्रस्राव, खुजली, लाली आदि दूर होते हैं और गेहे हों, तो वे भी दूर हो जाते हैं।

चोट लगनेपर खखसेके पानोंको पीस, हल्दी और तैल मिला गरमकर पट्टी बांध देनेसे वेदना शमन हो जाती है और जमा हुआ रक्त बिखर जाता है।

पतले जल सदृश प्रदर और अत्यार्तव विकारमें इसके फूलोंकी वर्ति योनिमें धारण करनेसे लाभ पहुँचता है।

सगर्भावस्थामें वमन होनेपर १ तोला खखसाके फूलोंको दूधमें पीस छान शक्कर मिलाकर पिलानेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है।

(५७) गिलोय।

सं० गुडूची, अमृतवल्ली, चक्रलक्षणा, ज्वरनाशिनी, रसायनी। बं० गुलंचलता, गुरुच। गु० गलो। म० गुलवेल। कों० गरुडवेल। पं० गरुम। ओ० गुलोंचि। क० अमृतवल्ली। ता० शिन्दीकोडी। ते० तिप्पटेगे। मला० अमृता। अं० Heart-leaved, Moon-seed.

ले० (१) Tinospora Cordifolia.
(२) " Malbarica.
(३) " Crispa.

परिचय—गिलोयमें २ प्रकार हैं। वल्ली गुडूची और कन्द गुडूची। दोनोंके गुण अनेकांशमें समान हैं। अतः दोनोंका वर्णन साथमें दिया है। इसकी बेल भारतमें सर्वत्र होती है।

टिनोस्पोरा अर्थात् छोटे मुलायम और ऊन जैसे बालोंसे अच्छी तरह आच्छा-

दित। कोर्डिफोलिआका अर्थ है आधार स्थान-हृदयाकार पान। यह उत्तर भारतके उष्ण प्रदेशमें सर्वत्र है। दूसरी जाति मलबारिका है, वह देहरादून, बंगाल, आसाम, उडीसा, कोंकड़, और मद्रासके सब जिलोंमें होती है। पहली जातिके पुष्प बरारमें अगस्तसे अक्टोबर तक और फल अक्टोबरसे नवम्बर तक आते हैं। राजपूताना और पंजाबमें फूल ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें प्रतीत होते हैं। दूसरी जातिके पुष्प देहरादूनमें मार्चसे जूनतक और फल शीतकालमें आते हैं। इस दूसरी जातिके पान पहली जाति-की अपेक्षा अधिकतर लम्बे होते हैं। पहली जातिके पान ५ से १० सेण्टीमीटर लम्बे कभी १२ सेण्टीमीटर तक। दूसरी जातिके पान ७॥ से २३ सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं।

तीसरी जाति है क्रिस्पा अर्थात् ठीक करानेके पास सुन्दर तरंगदार। इस जातिके काण्ड भी सूक्ष्म पिटिकाओंसे आच्छादित होते हैं। पान अण्डाकारसे लम्बगोल, लम्बीनोक वाले और ७॥ से ९ सेण्टीमीटर लम्बे होते हैं। यह जाति सिलहट, आसाम, बर्मा, मलाया, सिलोन आदि प्रदेशोंके जंगलोंमें होती है।

गिलोयकी वेल नीम, बबूल, थूहर आदि वृक्ष, पहाड़की चटान, खेतोंकी मेड और मकानोंके पास वांस, डोरी आदिपर चढ जाती है। पुरानी होनेपर उसका तना बाहुके सदृश मोटा होजाता है। उसे फैलनेकी जितनी सुविधा मिले उतनी अधिक फैलती है।

गिलोयकी वेलके टुकड़ेको कहीं भी रख दें, उसमेंसे नये अंकुर निकल आते हैं। शाखाका टुकड़ा काटकर मकानोंमें एक ओर रख देनेपर दिनोंतक नहीं सूखता। इस हेतुसे आचार्योंने इसे अमृत वल्लरी संज्ञा दी है। उसको काटकर देखनेपर भीतर चक्राकार चिह्न प्रतीत होते हैं इसलिये चक्रलक्षणा। किसी स्थानसे काटकर बो देनेसे उग जाती है और वृक्षपर रहे हुए भागपर दूसरा लपटकर उसका पोषण करता है इस लिये छिन्नरुहा और छिन्नोद्भवा। कुण्डलकी तरह चलती है, इस लिये कुण्डली। ज्वर नाशक होनेसे ज्वरनाशिनी। वृद्धावस्था और निर्बलताको दूरकर जीवनीय शक्तिका संरक्षण करती है, इसलिये रसायनी और वयस्था। विविध रोगोंकी सफल ओषधि होनेसे भिषग्जिता और भिषग्प्रिया। सौम्य गुणवाली होनेसे सौम्या। वातरक्त नाशक होनेसे वातरक्तारि। पित्तशामक होनेसे पित्तघ्नी,। कंदसे उगती है इसलिये रोहिणी। शीतल गुण युक्त होनेसे मधुपर्णी। जीर्ण रोगोंको जितनेवाली होनेसे जीवन्तिका और जीवन्ती आदि संज्ञाएं दी है।

मात्रा— स्वरस ६ माशेसे २॥ तोले। कषाय २॥ तोले। चूर्ण ३ से ४ माशे। गिलोय सत्व ४ रत्तीसे १ माशा तक।

गुणधर्म—गिलोयका रस कडुवा और कसैला, विपाक मधुर, उष्णवीर्य, गुरु, ग्राही, बल्य, आयुवर्द्धक और बुद्धिप्रद है। त्रिदोष विकृति, कृमि, रक्तार्श, कुष्ठ,

कण्डू, विसर्प, ज्वर, तृषा, पाण्डु, वातरक्त, वमन और प्रमेहको दूर करती है। कफ-वातनाशक, मेद और पितकी शोषक; रक्त विकार हर और वातशामक है। इसका विपाक मधुर होनेसे यह बल्य और आयुष्प्रद गुणभी प्रदान करती है। यह उष्णवीर्य होनेपर भी पित्तका शमन करती है और दूसरे दोषोंको प्रकुपित नहीं होने देती।

मालाबार और बंगालके उष्णप्रदेशोंके गाढ जंगलोंमें पद्मगिलोय (टिनोस्पोरा मलबारिका) होती है। इस गिलोयके काण्डपर छोटे छोटे गोल और तीक्ष्णाग्र युक्त कंद होते हैं। यह कडवी, उष्ण, त्रिदोषहर, विषघ्न तथा भूत बाधा और वलीपलितकी नाशक है। इसमें विषघ्न, रसायन और रक्तशोधक गुण वल्ली गुडूचीसे अधिक है। यह जीर्ण आमवातमें विशेष लाभदायक है। गिलोयका प्रभाव रस, रक्त, मांस, मेद और वीर्यपर अधिक पहुँचता है। यह अपचन संस्थाके अवयव आमाशय, अन्त्र, यकृत् और मूत्र संस्थाके अवयव-वृक्क, मूत्राशय और मूत्र नलिकापर शामक, संगृहीत विषपर शोधक और कीटाणु नाशक असर पहुँचाती है। इस हेतुसे इसे सम शीतोष्ण कहा जाय, तो वह योग्य ही माना जायगा।

विपाक मधुर होनेसे शुक्रको बढ़ाती है। रसायन गुण होनेसे रस, रक्त आदि धातुओंमें रहे हुए विकारको दूर कर उनको पुष्ट बनाती है। रस धातु बलवान बनने पर रक्त आदि सब उत्तर धातुओंको पोषण उत्तम प्रकारसे मिल जाता है। परिणाममें सब अवयव और यन्त्र सबल और व्यवस्थित कार्य करनेवाले बन जाते हैं।

नव्य चिकित्सकोंके मतनुसार गिलोय कटु पौष्टिक, पित्तशामक, ग्राही, चर्मरोग नाशक, मूत्रल, ज्वरघ्न, नियत कालिक ज्वरनाशक, बल्य और रसायन है। कंद रक्त-विकार, जीर्ण चर्मरोग और आमवातको दूर करता है। ज्वरनाशक इसे माना है; किन्तु जीर्ण ज्वरमें अधिक सफल है। नूतन ज्वरमें शीघ्र लाभ नहीं पहुँचा सकती।*

गुडूचीसत्व—मधुर, पथ्य, लघु, दीपन, चक्षुष्य, शुक्रवर्द्धक, बुद्धिप्रद, रसायन,

*आयुर्वेदके मतानुसार ज्वरको पकाकर निकालना अच्छा माना है। यदि भीतर की रोग निरोधक शक्ति बलवान बनकर ज्वरको दूर करे, तो पुनः ज्वर या अन्य रोग नहीं आसकता, इस विचार से आचार्योंने ज्वरको पकाने के लिये लङ्घनका उपदेश किया है। नव्य चिकित्सक वर्ग ज्वरको जल्दी से जल्दी निकालना अच्छा मानते हैं। ज्वर निवारण के पश्चात् पौष्टिक औषधि देकर भीतरकी शक्तिको सबल बनाने का प्रयत्न करते है। परिणाम में कभी कभी ज्वर प्रकुपित होकर दीर्घकाल पर्यन्त कष्ट पहुँचाता है या किसी को क्षयकी सम्प्राप्ति करादेता है। अनेक व्यक्ति बारबार विविध रोगोंसे पीडित होते रहते हैं। औषधि जितनी उग्र दी जाती है उतनीही उग्रतासे प्रतिरोधक शक्ति विरोध करती है इस सत्य को नव्य चिकित्सकोंने अभी तक नहीं जाना इस हेतुसे भारत-वर्षमें बल्कि समग्र संसारमें रोगोंने उग्र रूप धारण किया है।

संशमन, पित्तशामक, ज्वरघ्न (जीर्ण ज्वर हर) और ग्राही है। दाह, जीर्ण ज्वर, त्रिदोष विकार, वातपित्तप्रकोप, अम्लपित्त, अतिसार, अर्श, पाण्डु, कामला पित्तप्रकोपज अरुचि, श्वास, कास, हिक्का, क्षय, रक्तस्राव, वीर्यकी उष्णता, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, प्रदर, मधुमेह, मस्तिष्ककी उष्णता और वातरक्त आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है। यह सौम्य होनेसे बालक, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता सबके लिये उपयोगी है।

सूचना—ओषधियोंके लिये एवं सत्व निकालनेके लिये मासके अन्तमें (वर्षाऋतु प्रारम्भ होनेके पहले) इकट्ठी कर लेनी चाहिये। उस समय उसमें सत्व, कड़वा द्रव्य और रंग आदि तत्वोंका पूरा संग्रह रहता है। उपयोग करनेके पहले बाह्यत्वचा निकाल देनी चाहिये।

औषधकल्पः—

(१) अमृतासत्व—(गुडूचीसार हिं० सतगिलोय गिलोयका सत्व। बं० गुलंचेर पालो। म० गुलवेल सत्व। गु० गलोनुं सत्व।

अति पतली या अत्यन्त मोटी पुरानी गिलोयको छोड़ अंगूठेके समान या उससे कुछ मोटी गिलोयके रस पूर्ण काण्डोंको लाकर पान और ऊपरकी पतली त्वचा दूर करें। फिर छोटे छोटे टुकड़ेकर पत्थरपर इतना कूटें कि, गिलोयके रेशे पृथक् होजायँ। उसे एक भगोनेमें भिगो देवें। जल अच्छी तरह भीगे उतना डालें। २-३ घण्टे बाद गिलोयको हाथसे मसलें, या रईसे मथन करें जिससे सत्व जलमें आजायगा। पश्चात् रेशेको मोटे कपड़ेमें डाल दबाकर उसमें रहे हुए जलको निकाल डालें। यदि रेशेमें सत्व रहगया हो, तो कपड़ेमें डालनेके पहले दूसरे नये जलमें मिलाकर पुनः खूब मसल लेवें। पश्चात् रेशेको निचोड़कर निकाल डालें और जलको छानलें। फिर उस जलको ३-४ घण्टे तक स्थिर रहने दें। ताकि सत्व नीचे बैठ जाय, पश्चात् जलको ऊपरसे सम्हालपूर्वक निकाल लें; यदि सायफनकी रीतिसे रबरकी नली द्वारा निकाल लें, तो सरलतासे निकल आवेगा, या बरतनको टेढ़ाकर सत्व न चला जांय, इस बातको सम्हालते हुए जल नितार लें अथवा कटोरीसे निकाल लें। शेष थोड़ा जल रहा हो, उसे रूईकी बत्ती द्वारा बूंद बूंद टपका लेनेसे पात्रमें सफेद रंगका सत्व मिल जाता है। उस सत्वमें रहे हुए गीलापनको दूर करनेके लिये सूर्यके तापमें सुखा लेवें। यह सत्व स्वादमें स्वल्प कड़वा होता है। यह जलमें सत्वर नहीं बैठता; एवं जलानेपर आटेके समान जलता है। मात्रा ४ से ८ रत्ती दिनमें २ या ३ बार। शहद, गुड़ या आंवलेके मुरब्बेके साथ।

सूचना—जो जल निकला हो, उसे उबालकर गाढ़ा कर लेने से उस का घन बन जाता है। सत्व न निकाला हो, तो घन उत्तम बनता है सत्व निकालनेके पश्चात् जलमें गुण कम होनेसे घनमें गुण कम आता है फिर भी वह उपयोगी है।

यदि गिलोय कच्ची ली होगी, तो सत्व बहुत कम निकलेगा या नहीं निकलेगा और रंगभी हरा आवेगा। बाहरसे खरीद किये हुए गुडूची सत्वमें मक्कीका आटा, चावलका आटा, मेदा, मेगनेशिया कार्ब, चाकमिट्टी या अन्य पदार्थ मिले हुए होते हैं। अतः हो सके तब तक सत्वको हाथसे ही निकालना चाहिये।

गुडूची कषाय—ताजी अंगूठे समान मोटी १० तोले गिलोयको पत्थरसे कूट १६ गुने जलमें मिला मन्दाग्निपर १ घण्टे तक बरतन बन्द करके उबालें। फिर कपड़ेसे छान मंदाग्निपर २० तोले जल रहे तबतक गरम करें। मात्रा २॥से ५ तोले, ६ माशे शहद मिलाकर दिनमें ३ वार देवें। यह कषाय उत्तम कटु पौष्टिक और रसायन है।

अमृताघन—१ पौण्ड गिलोयके छोटे छोटे टुकड़े काट पत्थरपर कूटें। फिर २॥ पौण्ड जलमें १२ घण्टे भिगो मसलकर छान लेवें। पुनः दूसरा जल २॥ पौण्ड मिला मसलकर छान लेवें। पश्चात् दोनों जलोंको मिलाकर स्वेदन यन्त्रपर रख गोली हो, वैसा गाढ़ा बना लेवें। मात्रा—३ से ६ रत्ती दिनमें ३ बार देवें।

अमृता स्वरस—ताजी गिलोय ४० तोलेको पत्थरपर कूटकर १ सेर जलमें मिला देवें। फिर ६ घण्टे बाद मसल कर दोहरे कपड़ेसे छान लेवें। उसमें १२ औंस (३० तोले) मद्यार्क (या देशी शराब) मिलाकर बोतलमें भर लेवें। मात्रा—२ से ४ ड्राम।

अमृता अर्क—कूटी हुई ताजी गिलोय १ पौण्डको ५ पौण्ड देशी शराबमें मिला बोतलोंमें भरकर ७ दिन रहने देवें। दिनमें ३-४ समय बोतलोंको चला देवें। फिर फिल्टर पेपरसे छान लेवें। ५ पौण्डमें जितनी शराब कम हुई हो, उतनी और मिला लेवें। मात्रा १ से २ ड्राम।

गुडूच्यादिफाण्ट—ताजी और मोटी कूटी हुई गिलोय ५ तोले और काली सारिवाका चूर्ण ५ तोलेको उबलते हुए ४० तोले जलमें मिलाकर ढक देवें। दो घण्टे बाद जलको छान लेवें। शेष चूर्णमें जल रहा हो, उसे भी निचोड़ लेवें। मात्रा—२॥ से ५ तोले दिनमें ३ वार। यह फाण्ट उत्तम रसायन और मूत्रल है। इन दोनों धर्मोंका परिणाम सत्वर दृष्टिगोचर होता है। मूत्रकृच्छ्र, सुजाकमें होनेवाला मूत्रदाह, फिरंगकी द्वितीयावस्था और जीर्ण आमवातमें यह अति उपयोगी है। ज्वरके पश्चात्की निर्बलतामें भी विशेष लाभदायक है।

उपयोग—गिलोयका उपयोग सब व्याधियोंपर होता है। इसके सत्व, स्वरस, कषाय, फाण्ट आदिका उपयोग पृथक् पृथक् औषधियोंके साथ सहायक या अनुपानरूपसे अधिक होता है। केवल गिलोयका स्वतन्त्र उपयोग बहुत कम होता है।

जिस तरह क्षुधातुर नीरोगी मनुष्यके लिये भोजन हितावह है, उस तरह रोगीके लिये गिलोय लाभदायक है। सामान्यतः यह किसी भी ऋतु और देशमें वातज, पित्तज,

कफज, सब प्रकृतिवालोंको, वातप्रकोप, पित्तप्रकोप और कफप्रकोपसे उत्पन्न रोगोंपर बालक, युवा, वृद्ध सगर्भा, प्रसूता आदि सबके लिये निर्भय ओषधि है। गिलोयमें संशमन गुण होनेसे बढ़े हुए दोषको दबाती है और घटे हुए दोषको बढ़ाती है, इस तरह प्रकृतिमें उत्पन्न अव्यवस्थाको दूर कर वात, पित्त, कफ, तीनों दोषोंको व्यवस्थित बनाती है; किन्तु इन तीनों दोषोंपर हुए परिणामको सूक्ष्मतासे देखा जाय, तो इसका प्रभाव जितना पित्तप्रकोपपर होता है, उससे कम वात और कफपर होता है।

आयुर्वेदके मतानुसार कोई भी व्याधि वात, पित्त, कफ, इन धातुओंमेंसे एक या अधिककी न्यूनाधिकता (प्रकोप) होनेपर होती है। इस सम्बन्धमें भगवान् आत्रेयन कहा है कि "विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते" अर्थात् वात आदि धातु और रस, रक्त आदि धातुओंकी विषमता होनेपर विकार और धातुओंका साम्य होनेपर प्रकृति (आरोग्य) कहलाते हैं। इस विषमताको दूरकर समता लानेका गुण गिलोयमें आश्चर्यकारक है। उसी हेतुसे आयुर्वेदने गिलोयका उपयोग सब व्याधियोंकी शमन चिकित्सामें किया है।

गिलोयका उपयोग सब प्रकारके ज्वरोंपर करनेका प्राचीन रिवाज है। गिलोयमें तिक्त रस होनेसे पित्त ज्वरपर, कटु रस होनेसे कफ ज्वरपर तथा मधुर विपाकी और बल्य होनेसे वात ज्वरपर लाभ पहुँचाती है। कड़वी ओषधियोंमें चिरायता, कुटकी कड़वी नाई, नीम, कूड़ेकी छाल आदि हैं; वे अतिकटु हैं। जिससे इनके तिक्तरसका अतियोग होनेपर धातुक्षय और वात प्रकोप उपस्थित होते हैं। अतः उन ओषधियोंके साथ गिलोय मिलनेपर उनके दोषका दमन होता है। नाजुक प्रकृतिवालोंके वातकफ-प्रधान ज्वरपर गिलोयका उपयोग हितावह माना जाता है। पित्त ज्वर होनेपर सबके लिये अति ज्वरोष्मा, दाह, वमन, प्रलाप, बेचैनी आदि शमनार्थ इसका व्यवहार होता है।

नूतन ज्वरकी अपेक्षा जीर्ण ज्वरपर गिलोय अधिकतर गुण दर्शाती है। जब धातुओंमें निर्बलता आती है, तब रक्त आदि धातुओंमें विष, कीटाणु आदिका संचार होकर अपनी आबादी बढ़ाते हैं। फिर इसी हेतुसे ज्वर (नूतन विषम और जीर्ण विषम) उपस्थित होते हैं। इसमें मन्द जीर्ण ज्वरके शमनार्थ निर्बल धातुओंको सबल बनानेका और दोषको दूर करनेका गुण गिलोयमें अद्भुत होनेसे जीर्ण ज्वरपर गिलोय सर्वोत्तम ओषधि ही मानी गई है। सब प्रकृतिवालोंको, सब ऋतुओंमें और सब स्थानोंपर इसका निर्भयरूपसे उपयोग हो सकता है। जीर्ण ज्वरपर गिलोयसे बनाये हुए घृत, अरिष्ट, फाण्ट या सत्वको प्रयोगमें लाते हैं। इसमेंसे घृतका प्रयोग वर्तमानमें कम हो गया है; किन्तु गुडूच्यादि घृतको व्यवहारमें लें, तो लाभ अधिक पहुँचता है।

जब धातुओंमें लीन विष और कीटाणुओंका नाश करनेकी आवश्यकता रहती है, तब गिलोयका सेवन करानेपर आमाशयस्थ और पक्वाशयस्थ आम, मल और

कीटाणु आदिका नाश होकर सब धातुओंका प्रसादन होता है। कोई इन्द्रिय निर्बल हो गई हो, तो उसे सबल भी बनाना पड़ता है। ये सब कार्य गिलोय सम्यक् प्रकारसे कर देती है। इसके रक्त प्रसादन गुणके हेतुसे यह फिरंगकी द्वितीयावस्था, जीर्ण आमवात, वातरक्त, दाद, व्युची, पामा आदि चर्मरोग (कुष्ठ), मसूरिका और कामलामें उपयोगमें ली जाती है। मसूरिकाके कोपसे मृत्यु मुखमे गिरनेवाले कितनेही रोगी गिलोयके सेवनसे बच गये हैं। यह स्निग्ध और मूत्रल होनेसे मूत्रत्यागमें कष्ट होना (Dysuria), बस्ति प्रदाह और मूत्रनलिका प्रदाहके हेतुसे होनेवाले मूत्रकृच्छ्र (बूंद बूंद मूत्रस्राव) आदिमें तत्काल लाभ पहुँचाती है।

डाक्टर देसाईके अनुसन्धान अनुसार गिलोयमें ज्वर हर धर्म बहुत कम अंशमें हैं। अतः नियतकालिक विषम ज्वरमें देनेसे शीत लगनेकी कमी होती है, परन्तु ज्वरका बल कम नहीं होता, न पाली टलती है। इसमें ज्वरहर धर्म कम होनेपर भी सौम्य विषम ज्वर और जीर्णज्वरोंपर इसका उत्तम उपयोग होता है। गिलोय, बनफशा, धमासा, पित्तपापड़ा और बचका क्वाथ पित्तज्वर पर हितकारक है। जीर्णज्वर और प्लीहावृद्धिमें अमृता सत्व श्रेष्ठ ओषधि है। विशेषतः लोह, मण्डूर अथवा वसन्त मालिनीके साथ देनेका रिवाज है।

गिलोयका मूत्रल धर्म स्पष्ट देखनेमें आता है। यह उत्तम मूत्रल और मूत्र विरजनीय है। उसका उपयोग जब मूत्रल रूपसे करना हो, तब उसे बड़ी मात्रामें देना चाहिये। बड़ी मात्रामें कोष्ठशुद्धि भी हो जाती है। गिलोयका उपयोग सब प्रकारके प्रमेह रोगोंपर करनेका प्राचीन रिवाज है। इस कार्यमें ताजा स्वरस या सत्व देना चाहिये। वस्तिप्रदाहमें सत्व अधिक गुणावह है। मूत्रेन्द्रियके प्रसेक प्रधान रोगोंमें मूत्रमें चिपचिपा पदार्थ जाना, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रमे जलनपर गिलोयके साथ पाठाका उपयोग लाभदायक है। नये सुजाक रोगपर स्वरस देनेसे मूत्रकी उष्णता, अम्लता और दाह कम होते हैं। मूत्रका परिमाण बढ़ता है, तथा वस्ति और नलिका धुपकर विकार कम हो जाता है।

गिलोय कटु पौष्टिक है। इससे क्षुधा प्रदीप्त होती है, अन्नका पचन होता है, निस्तेजता दूर होती है। रक्तमें लाली बढ़ती है और शक्तिकी वृद्धि होती है। गिलोयका यह कटु पौष्टिक धर्म उत्तम प्रकारका और अति उपयुक्त है। ज्वरके पश्चात्की या दूसरे किसी कारणसे आई हुई अशक्ततापर गिलोय और सारिवा फाण्ट अति हितकारक है।

गुडूचीके सेवनसे पित्तस्राव नियम पूर्वक होने लगता है; इसके सेवनसे यकृत्की पित्त वाहक नलिका और आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें उत्पन्न अभिष्यन्दका ह्रास होता है। जिससे पित्तप्रधान अपचन, मंद मंद उदरपीड़ा और कामलापर अच्छा लाभ पहुँचता है। अतिसार, जीर्ण प्रवाहिका और अम्ल पित्तपर गिलोयसत्व

अति हितावह है। इसके सेवनसे आमाशय और पचननलिका आदिमें रही हुई अम्लता कम हो जाती है। इन रोगोंपर विशेषतः त्रिफलाके साथ व्यवहृत होता है।

त्वग्रोगपर—गिलोय प्रधान औषध है। इससे चर्मदाह और कण्डू दूर होते हैं। त्वचापर रहे हुए दद्रु, उपकुष्ठके दाग, फोड़े, फुन्सी आदि नष्ट होते हैं। वातरक्तमें भी यह अधिक हितकारक है।

श्लीपद—रोगपर गिलोयका चूर्ण गोमूत्रके साथ भी दिया जाता है।

नाड़ीव्रण—पर गिलोय और हल्दीके कल्क और गिलोय स्वरससे सिद्ध किया हुआ तैल प्रयुक्त होता है, यह तैल जीर्ण नाड़ीव्रणको भी भर देता है।

आमवात—में ताजी गिलोयको केवल दूधके साथ पीस ठण्डाईके समान छानकर देनेसे लाभ हो जाता है। आमवातपर कितनेही ग्रन्थकारोंने गिलोय और सोंठ का क्वाथ दिया है, एवं गिलोयका क्वाथ एरण्ड तैल मिलाकर भी प्रयुक्त किया है।

वमन—गिलोयकी जड़में वामक गुण रहा है। अतः वमन करा विषको निकाल देनेमें यह उपयोगी है। कंदको दूधमें घिसकर पिलाना चाहिये। किसी ग्रन्थकार ने कन्दको दूधमें उबालकर सुखा लेनेका विधान भी किया है। इस तरह सुखा लेनेपर जल या रीठेके जलमें घिसकर पिला देना चाहिये।

विदग्धा जीर्ण और श्वास—कभी कभी पित्त प्रकोप होनेसे विदग्धा जीर्ण उत्पन्न होता है। फिर श्वासका दौरा भी होने लगता है। उस अजीर्ण या श्वासको दबानेके लिए गरम उपचार किया जाय, तो हानि पहुँचती है। उसपर गिलोय सत्वको वराटिका भस्म घी और कालीमिर्चके साथ देते रहनेसे पित्त प्रकोप सह विदग्धाजीर्ण और श्वासरूप उपद्रव, दोनों दूर हो जाते हैं।

रसायन चूर्ण—वैद्यजीवनकारने पित्तप्रकृति वालोंकी निर्बलता दूरकर शरीरको सुदृढ़ बनानेके लिये गिलोय सेवनका विधान किया है। गिलोय, बड़े गोखरु और आँवले, तीनों ओषधियोंको समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। इस चूर्णको रसायन चूर्ण कहा है। इस चूर्णको ४ से ६ माशे मिश्री और घीके साथ या दूधके साथ १-२ मासतक सेवन करना चाहिये। इससे पित्त शमन होता है और मूत्राशयदाह, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और वीर्यका निकलना आदि विकार दूर होकर शरीर सुदृढ बन जाता है। जिस रोगीको पेशाब पीला और कम होता हो, या पहले अन्य मूत्रसंस्था की व्याधि हुई हो, फिरंग या सूजाक का विष देहमें रहा हो, उसमें रसायन चूर्ण अति लाभ दायक है।

रक्तविकार—मूत्र जननके अतिरिक्त इसमें रक्तप्रसादक गुण भी रहा है, पित्त के विदग्धत्वको कम करनेके साथ अपने प्रभावसे यह रक्तप्रसादन कार्य भी करती है। रक्तप्रसादन कार्यके लिये सारिवा मिश्रित फाण्टका उपयोग विशेष हितावह होता है।

क्षय—गिलोयमें रसायनगुण होनेसे राजयक्ष्मामें भी लाभदायक है। इस रोग

पर गिलोय सत्वका उपयोग सुवर्णके साथ हितावह होता है। सुवर्णकी मात्रा $\frac{1}{32}$ से $\frac{1}{16}$ रत्ती गिलोयसत्व ४ रत्ती (कब्ज न हो या अतिसार हो, तो २ माशे तक) तथा सितोपलादि २ माशे मिला शहदके साथ देवें और ऊपर मिश्री मिला दूध पिलाते रहें, तो शुक्रकी वृद्धि होती है; कीटाणु नष्ट होते हैं और ज्वर बढ़ना रुक जाता है। फिर शनैः शनैः ज्वर घटता है; और शक्ति कायम रहती है।

निर्बलता—मुद्दतिज्वर और अति बढ़े हुये भयंकर ज्वरके दूर होनेपर देहमें निर्बलता आ जाती है, मांसक्षीण हो जाता है, पचनशक्ति मन्द होती है, तथा कार्य करनेका उत्साह नहीं होता। उसके लिये गिलोय सत्व सुवर्ण वसन्त या लघुवसन्तके साथ देनेसे थोड़े ही दिनोंमें शरीर सबल, पचन शक्ति सुदृढ़ और मुखमण्डल प्रफुल्लित बन जाता है।

चरक संहितामें गुडूचीके स्वरसका उपयोग रसायन रूपसे तथा विषमज्वर, कामला, वमन और वातरक्त आदि विविध व्याधियोंपर किया है। एवं स्तन्यकी शुद्धि के लिये अमृता, सप्तपर्ण त्वक् और सोंठका क्वाथ पिलानेका विधान किया है।

वाग्भटमें प्रमेहपर गुडूची रसको शहदके साथ; भावप्रकाशकारने जीर्ण ज्वरपर गिलोयके क्वाथको शहद पीपलके साथ, कामलापर गुडूची पत्रका कल्क मट्ठे के साथ, तथा बलवृद्धिके लिये गिलोयको गुड़, शहद घीके साथ; वंगसेनने हृदयशूलपर गुडूची के रस या चूर्णको कालीमिर्च और निवाये जलके साथ; तथा चक्रदत्तने श्लीपदपर गिलोय स्वरसको तैलके साथ देनेका विधान किया है। शोढलने हलीमक (कामला) में गुडूची रस दूधके साथ तथा कुष्ठमें गिलोय रस बड़ी मात्रामें (जितना सहन हो सके उतना) प्रयुक्त किया है।

कुष्ठ रोगीको चाहिये कि, गिलोय रस पचन हो जानेपर भात, मूंगका यूष और घीका सेवन करते रहें, तो गलत्कुष्ठ रोगी भी सुधर जाते हैं। कास—इसमें २ प्रकार हैं। सूखी और कफयुक्त। इनमेंसे सूखी खांसीपर शामक और कफकासमें उत्तेजक औषधि दी जाती है। सूखी खांसी वात या पित्तप्रकोप होनेपर होती है। ५-१० मिनट तक चलती रहती है। फिर थोड़ा झाग निकलता है। कभी-कभी वान्ति भी हो जाती है। यह रात्रिको सोनेके समय अधिक त्रास देती है। किसीको सोनेके समय सताती है। इस कासमें पित्तप्रकोप होनेपर गिलोयसत्व अति उपकारक है। गिलोयसत्व २ रत्ती और सितोपलादि चूर्ण १॥ माशा मिलाकर शहद या अनार शर्बतके साथ देवें। दिनमें इस तरह ४ समय देते रहनेसे पित्तप्रकोप शमन होकर कासका भी निवारण हो जाता है।

सूचना—प्रयोगमें गिलोय ताजी मिलाना विशेष लाभदायक है। अभावमें सूखी गिलोय समान वजनमें लेनी चाहिये।

(१) वातज्वर—अ० गिलोय; द्राक्षा, गंभारी, त्रायमाण और सारिवा

(सब मिलाकर २॥ २॥ तोले) का क्वाथकर दो हिस्सा करें। सुबह शाम ३-३ माशे गुड़ मिलाकर देवें अथवा अमृता अर्क देवें।

आ० गिलोय और शतावरी, दोनोंका स्वरस १-१ तोला और गुड़ ३ माशे मिलाकर देवें।

इ० गिलोय, नागरमोथा, हल्दी, घमासा और सोंठका क्वाथ (२॥ तोले चूर्णका) दो हिस्साकर सुबह रात्रिको पीपलका चूर्ण ३-३ रत्ती मिलाकर देनेसे वातज्वर दूर हो जाता है।

ई० गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता, इन ५ औषधियों को समभाग मिलाकर ४ तोले लेवें। फिर ६४ तोले जलमें उबालकर अष्टमांश क्वाथ करें। आठ तोला जल शेष रहनेपर उतार छान, दो हिस्सेकर सुबह और शाम आध आध तोला शहद मिला कर पिला देवें। इस क्वाथ को पंचभद्रक्वाथ कहते हैं। यह भीतर रहे हुए मलोंको पचनकर वातप्रधान और कफप्रधान ज्वरको दूर करता है।

(२) **पित्तज्वरपर**—गिलोय, कमल, लोद, सारिवा और नीलोफरका शीत-कषायकर शहद और शक्कर मिलाकर दिनमें २ बार देवें; अथवा अमृता स्वरस या गुडूच्यादि फाण्टका सेवन करावें।

डाक्टर देसाईने गिलोय, बनफशा, घमासा, पित्तपापड़ा और बचका क्वाथ विशेष उपकारक माना है।

(३) **कफज्वरपर**—गिलोय, सप्तपर्ण, नीमकी अन्तरछाल और सब्जा, इन ४ औषधियोंका क्वाथ कर, दिनमें २ बार शीतल होनेपर शहद मिलाकर देवें; अथवा अमृता अर्क या गुडूची कषायका सेवन करावें।

(४) **वातपित्तज्वरपर**—अमृता, चिरायता, कुटकी, मुनक्का, आंवला और कचूरका क्वाथ दिनमें २ बार गुड़ मिलाकर देवें। यदि अतिसार हो तो कुटकी न मिलावें।

(५) **वातकफज्वरपर**—गिलोय, चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, और सोंठका क्वाथ दिनमें २ बार देवें।

(६) **मधुरापर**—गिलोयका क्वाथ या गुडूचीकषाय शहद मिलाकर दिनमें २ या ३ बार पिलावें।

(७) **जीर्ण चातुर्थिक ज्वरपर**—गिलोय, नीमकी अन्तरछाल और आंव-लेका क्वाथ शहद मिलाकर देवें।

(८) **सूतिकाज्वरपर**—गिलोय, सोंठ, पियाबांसा, बीजकन्द, ऊंटकटारा, नागरमोथा और लघुपंचमूल (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटे गोखरु, कटेली और बड़ी कटेली), इन ११ औषधियोंका क्वाथ करें। दिनमें २ बार शहद मिलाकर पिलानेसे गर्भाशयस्थ विष और वायु निवृत होकर ज्वर दूर हो जाता है।

जीर्णज्वरपर—गिलोयके क्वाथमें चतुर्थांश शहद और पीपलका चूर्ण मिलाकर सेवन करावें; अथवा गिलोय सत्वका सेवन दूध या शहदके साथ दिनमें २ बार कराते रहनेपर थोड़ेही दिनोंमें ज्वर निवृत्त होकर शरीर सबल बन जाता है।

(१०) सर्वज्वरपर—अमृतादिक्वाथ अर्थात् गिलोय, धनिया, नीमकी अन्तरछाल, कमलकी नाल और रक्तचन्दन का क्वाथ दिनमें २ बार पिलावें।

(११) कालाआजार—यह एक प्रकारका मुद्दतीज्वर है। यह बंगालमें विशेष प्रतीत होता है। इसमें मुँहका पाण्डुवर्ण, दांत और ओष्ठोंका काला हो जाना शनैः शनैः उदरपर श्यामता बढ़ते जाना, यकृत्प्लीहाकी वृद्धि अति होना, हाथ, पैर और मुँहपर शोथ आना, अग्निमान्द्य, बलका ह्रास और २४ घण्टेमें २ बार ज्वर बढ़ना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस व्याधिपर क्विनाइन या अन्य तीव्र ओषधि नहीं दी जाती। इसपर गिलोयका स्वरस २-२ तोले शहद और मिश्रीके साथ दिनमें २ या ३ समय देते रहना चाहिये। अथवा गिलोय, बनफशा, आदिका क्वाथका देना विशेष लाभदायक है।

(१२) विषमज्वर—पित्तप्रकोपवाले और पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको जब विषमज्वरकी संप्राप्ति होती है, तब क्विनाइन देनेसे अनेकोंका पित्तप्रकोप, मस्तिष्कमें रक्तवृद्धि, निद्रानाश, चक्करआना, श्रवण शक्तिका ह्रास, मूत्रावरोध, हृत्स्पन्दनवृद्धि, घबराहट और ज्वरवृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसे क्विनाइनके विषप्रकोप के शमनार्थ गुडूचीसत्व ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार शहद या बनफशा शर्बतके साथ देने- से विषप्रकोपज सब लक्षण दूर होते हैं; और ज्वर भी शमन हो जाता है। यदि गुडूची स्वरस अथवा गुडूची सत्वके साथ प्रवालपिष्टी २ रत्ती और मुक्तापिष्टी १ रत्ती मिलाकर दी जाय, तो लाभ सत्वर होता है।

(१३) वान्ति—यदि सूर्यके तापमें फिरनेसे या पित्तप्रकोप होकर वान्ति होती हो, तो गिलोयके स्वरसमें ४-६ माशे मिश्री मिलाकर पिलानेसे बन्द हो जाती है और घबराहट भी दूर होती है। इस तरह क्वचित् कफ मिश्रित वमन होती है, उसमें भी गिलोयका स्वरस हितावह है।

(१४) अम्लपित्त—रोग अधिक न बढ़ा हो, नया हो, आमाशय रसमें कुछ अम्लता बढ़ी हो, संशोधनकी अवश्यकता न हो, अथवा बढ़े हुये रोगमें संशोधन कर लिया हो, तो केवल गिलोय सत्वको, आंधी झाडा (अपामार्ग) के क्वाथ या प्रवाल पिष्टी अथवा काम दूधा रसके साथ देनेसे तथा पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करनेसे कुछदिनोंमें अम्लपित्त दूर हो जाता है।

(१५) शिरदर्द—सूर्योदयसे शिरदर्दका प्रारम्भ होना और मध्याह्नकालतक शिरदर्द बढ़ते जाना, फिर शामको शमन हो जाना एवं आधे मस्तिष्कमें पीड़ा होना, यह विकार अनेक बार पित्तप्रकोप होनेपर होता है। उसपर केवल गिलोय सत्व ४ रत्ती

से १ माशातक अथवा मुक्तापिष्टी १ रत्ती मिलाकर मिश्री मिले दूध या रवड़ी या पेड़ाके साथ सूर्योदय के पहले ३-४ दिनतक (आधाशीशी) लेते रहनेसे शिरदर्द शमन हो जाता है। दर्दके दिनोंमें दोपहर और रात्रिको भी गिलोयसत्व ४ रत्ती शहद या शर्बत बनफ्शाके साथ सेवन कराते रहें, तो सत्वर लाभ होता है।

(१६) सब प्रमेह रोगोंपर—गिलोयका स्वरस आधसे १ तोला, पाषाणभेदका चूर्ण ३ माशे और शहद ६ माशे या दूध मिश्रीके साथ दिनमें दो या तीन बार देवें। अनुपान दूध देवें, तो दोपहरको दूध न देवें; अथवा गिलोय, आंवले और हल्दीका क्वाथ शहद मिलाकर देते रहनेसे भी प्रमेहमें लाभ हो जाता है।

(१७) वातरक्त और कुष्ठ—(अ) इन रोगोंपर गिलोयके साथ गूगल या नीमकी अन्त·छाल या हल्दी, आंवले और खैर छाल देनेका रिवाज है। जीर्ण रोगोंमें ओषध सेवन दीर्घकालतक करना चाहिये। आ० गिलोय, वासा और एरण्ड मूलका क्वाथ एरण्ड तैल मिलाकर देनेसे वातरक्तका विष दूर होकर रोगका निवारण हो जाता है। यह प्राचीन आचार्योंका प्रयोगभी अति लाभदायक है।

(१८) पाददाह—गिलोय और एरण्ड बीजकी गिरी दहीमें पीस पैरोंके तलोंपर लेप करनेसे उस स्थानकी जलन दूर होती है।

(१९) शोष—यदि पित्तप्रकोप अथवा शुक्रक्षयसे शोषरोग हुआ हो, तो गिलोय सत्व, प्रवालपिष्टी, छोटी इलायचीके दाने और वंशलोचनको मिला, शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे शोष रोग दूर होकर शरीर स्वस्थ बन जाता है।

(२०) पित्तज उन्माद—यदि इसमें रोगी अधिक प्रलाप करता हो, नेत्र लाल हों, निद्रा न आती हो, क्रोध अधिक करता हो, तो गिलोय और ब्राह्मी अथवा गिलोय और शंखावलीका फाण्ट बड़ी मात्रामें शक्कर मिलाकर दिनमें ३ समय पिलाते रहनेसे १५-२० दिनमें पित्तशमन और मस्तिष्क बलकी वृद्धि होकर उन्माद निवृत्त हो जाता है।

(२१) दृष्टिकी निर्बलता—(अ) गिलोय, हरड़, बहेड़ा और आंवलेका क्वाथकर शहद-पीपल मिलाकर प्रातः सायं सेवन कराते रहनेसे थोड़ेही दिनोंमें नेत्रदृष्टि सबल बन जाती है।

आ० पित्तप्रकोप जनित नेत्रकी दृष्टि मन्द होना, नेत्र लाल रहना और तिमिर आदि रोगोंपर गिलोयका स्वरस १ तोला शहद मिलाकर पिलावें या गिलोयसत्व ४ रत्ती और मुक्तापिष्टी १ रत्ती मिलाकर सेवन करावें; तथा गिलोय स्वरस १ तोला में शहद ३ माशे और सैंधानमक १ माशा मिलाकर दिनमें २ बार प्रातः सायं अंजन करते रहें, तो थोड़ेही दिनोंमें पित्तप्रकोप शमन होकर तथा विष निवृत होकर नेत्रशक्ति सबल बन जाती है। फिर दृष्टिमान्द्य, लाली, तिमिर, कण्डू, कुकूणक, मांसवृद्धि आदि रोग निवृत्त हो जाते हैं।

(२२) हिक्का—गिलोय और सोंठको कूट कपड़छान चूर्णकर नस्य कराने और इन दोनों ओषधियोंका फाण्ट दूध मिलाकर पिलानेसे आमाशय और अन्ननलिकामें विकृति होनेसे उत्पन्न हुई हिक्का बन्द हो जाती है।

(२३) पित्तप्रदर—स्त्रियोंको पित्तप्रधान प्रदर रोग होनेपर पतला गरम गरम स्राव होता है, उसपर गिलोय स्वरस शहद मिलाकर दिया जाता है एवं गिलोय सत्व, लोहभस्म या त्रिवंगभस्म और शहदके साथ भी देते हैं।

(२४) वातरोग—सब प्रकारके वातरोगोंपर गिलोय, एरण्डमूल, सोंठ, देवदारु, रास्ना और हरड़का क्वाथकर दिनमें दो बार देते रहनेसे कुछ दिनोंमें वातरोग (वातनाडियोंकी क्रिया विकृति) शान्त हो जाता है।

(५८) गोरख इमली।

सं० गोरक्षी, सर्पदण्डी, गोपाली, पञ्चपर्णिका। हिं० गोरख इमली। म० गोरख चिंच। गु० चोर आंबली, गोरख आंबली, कल्प वृक्ष, रूखडो। अं० Monkeys bread tree. ले० Adansoria Digitata.

परिचय—गोरख इमली, यह वनस्पति साम्राज्यके भीतर मोटे वृक्षोंकी गिनतीमें है। तनेकी ऊंचाई कम अर्थात् ३० से ७० फीट; किन्तु ऊंचाईकी दृष्टिसे तनेका घेरा अत्यधिक। व्यास २५-३० फीट लगभग। पान सेमलके पानके सदृश। पांच पांच पानोंका समूह। पुष्प एकाकी, लम्बे पुष्प दण्डपर, सफेद। बिहारमें पुष्प एप्रिलसे जूनतक और फल अगस्तसे अक्टूबर तक आते हैं। फल बड़ी बोतल या लौकी जैसे आकारका, ऊपर नीचे सकड़ा, बीचमें चौड़ा, ½ से १ फुट लम्बा, ३ से ६ इञ्च व्यासका। फलका गर्भ खट्टा कसैला और अनेक बीज युक्त।

हूकरने इस वृक्षकी २ जाति दर्शायी हैं। एक आफ्रिकन और दूसरी आस्ट्रेलियन। भारतमें आफ्रिकन जाति दृष्टि-गोचर होती है। इस वृक्षकी आयु ५००० वर्षसे भी अधिक। कभी कभी यह वृक्ष पुराना होनेपर तनेमें पोल होकर उसमें २५० गेलन तक जल भरा हुआ मिल जाता है।

मात्रा—फलोंका गर्भ २ से ४ माशे दही या मठेके साथ।

गुणधर्म—मधुर और कड़वी, शीतवीर्य, दाह और पित्त नाशक है तथा विस्फोट, वान्ति, अतिसार और ज्वरको नाश करती है।

नव्य मतानुसार छाल तृषाशामक, ज्वरघ्न। नियतकालिक ज्वरप्रतिरोधक और नाड़ी स्पन्दनको कम करानेवाली है। फलका गूदा ग्राही। डाक्टर देसाईके मतानुसार फलका गूदा स्नेहन, रुचिकर, हृद्य, शीतल और स्नेहन, रुचिकर, हृद्य, शीतल और संशमन है। पान स्नेहन और ग्राही। छाल स्नेहन, शीतल, दीपन और संग्राही। छालके सेवनसे नाड़ी स्पन्दन संख्या कम होती है। कोमल पानमें अधिक

चिपचिपा रस होता है, उसका लेप व्रण शोथपर करनेपर शोथकी पीड़ा और जलन कम होती हैं।

उपयोग—चरक सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें गोरख इमलीका नाम नहीं मिलता। वर्तमानमें उपयोग निम्नानुसार होता है।

(१) ज्वरजन्य तृषा—फलोंका गूदा जलमें मसल मिश्री मिलाकर पिलानेसे उष्णता और प्यास कम कराता है।

(२) अतिस्वेद—ज्वरमें अधिक प्रस्वेदको कम करानेके लिये पानोंका चूर्ण ५से १५ रत्ती देवें। क्षय ज्वरमें रात्रिका प्रस्वेद कम करानेके लिये यह हितावह है। इससे दाह भी कम होजाता है।

(३) विषम ज्वर—पित्तप्रकोपसह विषम ज्वरमें और पित्तप्रकृतिवालोंके विषम ज्वरमें खास हितावह है। छाल १ औंसको १६ औंस जलमें मिला चतुर्थांश क्वाथ कर, तीन हिस्साकर २-२ घण्टेपर पिलानेसे शीतज्वरमें अच्छा लाभ होता है। नाड़ी शिथिल होती है। दाह और उत्ताप कम होजाते हैं तथा क्षुधा प्रदीप्त होती है।

(४) श्वासरोग—फलका गूदा ३ माशे सूखे अंजीरके साथ दिया जाता है। इससे कभी कभी श्वास रोग बिल्कुल चला जाता है। जिस श्वासमें कफकी प्रधानता न हो, वायु प्रबल होनेसे कष्ट होता है, उसपर यह हितकारक है।

(५) प्रवाहिका और अतिसार—फलका गर्भ मट्ठेके साथ दिया जाता है।

(९९) चाकसू।

सं० अरण्यकुलत्थिका, चक्षुष्या, कुलाली। गु० चमेड, । चिमेड, म० चिनोड, विबल्या। बम्बई चिम्र, कानकुटो। सि० कच्छी-चौरा। ता० करुकानम। ते० चनुपाल, विटलु। ले० Cassia Absus

परिचय—इसके क्षुप पुराने जगतके समशीतोष्ण प्रदेशमें सर्वत्र होता है। ऊंचाई १ से २ फीट। वर्षाऋतुमें यह निकल आता है। पान पंवाड़के समान सींकपर। मुख्यपानोंका डण्ठल लम्बा। सींकके पर्णकी लम्बाई १ से २ इञ्च। पुष्प मंजरी पर मंजरी १ से २ इञ्च लम्बी। फूल हलके पीले या लालपीले, अति छोटे। पुंकेसर ४ या ५ फली १ से १॥ इञ्च लम्बी। बीज तेजस्वी, काले, चिपटे, कठोर चिकने, एक सिरे कुछ नुकीले। समग्र क्षुप चिपचिपा रुएँदार। फूल-फल अगस्त सप्टेम्बर में आते हैं। औषध रूपसे बीज और पानोंका उपयोग होता है।

गुणधर्म—चाकसू रसमें कड़वा और विपाक चरपरा है। अर्श, शूल, नेत्रपाक विबंध और व्रणका नाशक है। नव्यमतानुसार यह ग्राही और नेत्राभिष्यन्दनाशक है।

उपयोग—चाकसूका उपयोग आचार्य वाग्भटने नेत्ररोगपर किया है। गुजरात,

सौराष्ट्र और महाराष्ट्रमें नेत्ररोगोंके लिये यह निर्भय और उत्तम घरेलू औषधि मानी गई है।

(१) पूतियुक्त नेत्राभिष्यन्द—इसरोगमें आंखें अति लाल रहती हैं, रोगी प्रकाशमें देख नहीं सकता, पूय कोनेमें भरा रहता है। भीतर वेदना होती है, कभी-कभी इस वेदनाके हेतुसे निद्रा भी नहीं आती। इसरोगपर यह सर्वोत्तम औषधि है। इसके बीजोंको मट्ठेमें उबालकर, नरमकर लेते हैं। फिर दांतोंसे ऊपरके काले छिलके निकाल देते हैं। भीतरकी पीली गिरी लेते हैं। इस गिरीके साथ किञ्चित् सैंधानमक और मट्ठा मिलाकर कल्क बना लेते हैं। इसमें से आध आध रत्ती रात्रिको पलकके नीचे भरकर पट्टी बांध देते हैं। कल्क डालनेपर १०-१५ मिनट तक आंखोंमें गड़ता रहता है, किन्तु दूसरे दिन लाली हट जाती है और आंख स्वच्छ हो जाता है। कभी-कभी ३-४ रात्रिको कल्क डालना पड़ता है। यदि द्वितीयपटल (तारामण्डल iris) पर शोथ आया हो और उसके दृष्टिमणि (lens) के साथ चिपक जानेका भय रहता हो, ऐसी स्थितिमें भी इसका प्रयोग हो सकता है। इससे तारामण्डलका प्रदाह शमन होकर लाली दूर हो जाती है। यह शिशु, वृद्ध, युवा सबके लिये निर्भय औषधि है। किसी को भी हानि नहीं पहुँचाती। नेत्र ज्योति मन्द हो गई हो, वह भी सुधर जाती है। इस हेतुसे कितने हकीम नेत्रांजनमें भी इसे मिलाते हैं।

सूचना—आँखोंको गरम जलमें स्वच्छकपड़ा या रुई भिगोकर धोना चाहिए। ठण्डा कच्चा जल और शीतल वायुसे आंखोंका रक्षण करना चाहिये। कब्ज हो तो दूर करना चाहिये। अति शक्कर या अति गुड़ नहीं खाना चाहिए।

(२) योनिक्षत—बीजोंकी गिरीको मट्ठेमें पीसकर लेप करते रहनेसे घाव भर जाता है।

(६०) चन्द्रशूर।

सं० चन्द्रशूर, अशालिके, रक्तराजि, अहालिम। हिं० चन्द्रशूर, हालिम हालो। बं० हालिम, चाँनसुर। पं० हालिम। स० अहालीव। गु० अशेलिया। मार० असालू। सिं० अहेरो। फा० तुख्मे, इस्पन्द। अ० बजसूल जिर जिर। क० अल्लि बीज, कुरुतिगे। ता० अलिवेरई। ते० अदल वीतुगु। अं० Garden Cress. ले० Lepidium Sativum.

परिचय—यह वर्षायु क्षुप है। भारतके सब प्रान्तोंमें इसे बोते हैं। औषध रूपसे विशेषतः बीजोंका उपयोग होता है। बीज लाल लम्बगोल, सकड़े, सिरेपर किञ्चित् मुड़े हुए, भूरे या सफेद चिह्न युक्त। बीजोंमें तैल २७ प्रतिशत है। पानोंका शाक यूरोप में खाते हैं। उसमें अ, ब, क, जीवन सत्त्व हैं।

मात्रा—सारकरूपसे ३ से ४ माशे। रसायन और वाजीकरण रूपसे १ माशा।

गुणधर्म—उत्तेजक, वातहर, वातल गुल्मनाशक, मूत्रल, वान्तिहर, अनुलोमन, दुग्धवर्द्धक (स्तन्य पुष्टिकर) बल्य और वाजीकर। त्वचारोग, नेत्ररोग, वातरोग और चोटआदिकी व्यथाको दूर करता है। ये सब धर्म लघु मात्रामें हैं।

चन्द्रशूर कल्पः—

(१) चन्द्रशूर हिम—चन्द्रसूरके बीजोंको ८ गुने जलमें भिगो देवें। २-३ घण्टेमें अच्छीतरह भीग जानेपर मसलकर छान लेवें। मात्रा २॥ से ५ तोले। यह मलावरोधको दूर करता है, तथा पौष्टिक और वातहर है। विषप्रकोपमें पीसके उतनी मात्रामें शक्कर मिलाकर पिला देनी चाहिये।

(२) चन्द्रशूर क्षीर—पहले दूध गरम करें। दूध उबलनेपर ४ से ६ माशे चन्द्रशूर मिलाकर उबालें। चन्द्रसूर गलजानेपर चाहिये उतनी शक्कर मिलालेवें। शीतल होनेपर सेवन करें। यह प्रसूता स्त्रीको दो मास बाद देनेसे खूब दूध बढ़ाती है एवं कमरकी वेदना और निर्बलताको दूर करती है। पुरुषोंके लिये भी यह हितावह है। यह खीर कटिशूल और गृध्रसीको दूर करती है।

(३) चन्द्रशूर मोदक—चन्द्रशूर २० तोले, सूखी ८० तोले, उड़दका आटा २० तोले, घृत ८० तोले और शक्कर १२० तोले लेवें। पहले उड़दके आटेको, २ तोले दूधका मौण देवें। फिर चन्द्रशूर और उड़दके आटेको पृथक् पृथक् घृतमें भूनें। पश्चात् शक्करकी चासनी कर सब मिला देवें। इसमें बिहदाना, चिरौंजी, पिस्ता छोटी इलायची, जायफल, जावित्री, और पीपरामूल, इच्छानुसार मिलाकर लड्डू बांध लेवें या थालमें जमाकर चक्की बनालेवें। यह पाक शीतकालमें सेवन करने योग्य पौष्टिक है।

(४) चन्द्रशूर यवागू—गुड़ या शक्करको जल मिलाकर गरम करें। उसमें चन्द्रशूर डालकर यवागू बना लेवें। चन्द्रशूरसे जल १६ गुना लेवें। इस यवागूके सेवनसे गृध्रसी, कटिवात, संधिवात, आमवातादि विकार दूर होते हैं।

(५)चन्द्रशूर फाण्ट—चन्द्रशूर १ तोला और काली अनन्त मूल ६ माशेको मिला जौ कूट करें। २४ तोले उबलते हुए जलमें मिला, ढक्कन ढक २० मिनटतक ढक देवें। आवश्यक शक्कर मिलावें। फिर छानकर पिला देवें।

उपयोग—इसके बीजोंकी खीर बनाकर वात पीड़ितोंको खिलायी जाती है। चोट लगने पर इसकी पुल्टिस बांधी जाती है या बीज लेपमें मिलाया जाता है। उष्ण और अनुलोमन होनेसे आमाशयके अपचनजन्य हिक्का और वान्तिको दूर करता है। विरेचनके मिश्रणमें इसे मिला देनेसे अन्त्रको स्निग्ध बनाता है और वेदना नहीं होने देता। स्त्रियां इसकी राब (यवागू) बनाकर पुष्टिके लिये सेवन करती हैं।

(१) अन्तर प्रदाह पर—बीजोंको कुचल नींबूरस वा कांजीमें मिला कपड़ेपर लेपकर लगादेनेसे प्रादाहिक और आमवातज पीड़ाका दमन होता है।

(२) आमातिसार—चंद्रशूरका लुआब बनाकर आमातिसार और पेचिश-पर देनेसे अच्छा लाभ होता है।

(३) स्तन्य वृद्धिके लिए—चन्द्रशूरकी खीरका सेवन करानेसे स्त्रियोंके दूधकी वृद्धि होती है। कमरमें बल आ जाता है। कटिशूल और गृध्रसी दूर होते हैं। वातपीड़ित पुरुषोंके लिये भी यह हितकर है।

(४) धातु पुष्टिके लिए—शीतकालमें चन्द्रशूर मोदकका सेवन करावें। जिनको मलावरोध रहता है उनका मलावरोध भी दूर होता है। वातप्रधान रोग दूर होते हैं और सबल बनता है।

(५) मलावरोध—चन्द्रशूर हिम सुबह और रात्रिको देते रहें। एकाध वर्ष-तक पिलाते रहें।

(६) कटिवात और गृध्रसी—कमर अथवा चूतड़ोंमें वायुसे वेदना होती हो तो रोज सुबह चन्द्रशूर यवागूका सेवन कराया जाता है। जीर्ण आमवातमें भी यह हितकर है। आमवातके रोगीको गुड़ शक्कर अतिकम मिलाना चाहिये।

(७) नेत्रव्यथा—नेत्र पकने और शोथ आनेपर चंद्रशूरको दूधमें भिगो पुल्टिश कर नेत्रपर बांधी जाती है। इससे शोथ दूर होता है और वेदना शान्त होती है।

(८)चोट लगने पर—चन्द्रशूर, हल्दी, सज्जीखार और मैदा लकड़ीको जलके साथ पीस निवाया कर लेप करनेसे रक्त बिखर जाता है, शोथ दूर होता है और वेदना शमन हो जाती है। लेप लगानेपर वह स्थान जकड़ा गया हो ऐसा भास होता है; किन्तु उससे भय नहीं मानना चाहिये।

(९) कफप्रमेह—(मूत्रका गदलापन)—चन्द्रशूरके फाण्टका सेवन कराने-पर मूत्रशुद्धि होती है दस्त साफ आता है, पचन क्रिया सुधरती है और प्रमेहकी निवृत्ति होती है।

(१०) हिक्का—चन्द्रशूर १ तोलेको ४० तोले उबलते जलमें मिलावें। फिर १० मिनट उबालें। फिर थोड़ा गुड़ मिलाकर निवाया पिला देनेसे हिक्का शमन हो जाती है। श्वसन संस्थाको शीत लगनेसे महाप्राचीरा पेशी (Diappragm) जो उरोगुहा और उदरगुहाके बीच पड़ी है, उसकी विकृति होना या अपचन होनेपर आमाशय प्रदाह होकर हिक्का चलती हो, तो दूर होजाती है।

(११) दाहकविष—कांच या अन्य जहरी पदार्थ भीतर होनेवाले दाह और रक्तस्रावको दूर करनेके लिये चन्द्रशूर हिम पूरी मात्रामें पिला देनेसे लाभ हो जाता है। यह कण्ठ, अन्ननलिका, आमाशय और अन्त्रकी श्लैष्मिककलाका रक्षण

करता है। वित्र और कांचके परमाणु चन्द्रशूरमें आच्छादित होकर मलके साथ निकल जाते हैं। दाह शान्त होता है और पेशाव साफ आता है।

(६१) चव्य।

सं० चव्यक, चव्या, उपणा। हिं० चव्य, चव, चाभ। बं० चइगाछ। गु० म० चवक। क० चव्य। ले० Piper Chaba.

गजपिप्पलीके नाम—सं० गजपिप्पली, तैजसी। म० गजपिंपली। गु० गजपीपर। बं० गजपिपूल। ते० गजपिप्पलु। ता० अतिवितप्पली।

परिचय—चव्य बहुवर्षायु वृक्षाश्रित स्थूल लता है। इसमें अनेक जाति हैं। कई छोटी और कई बड़ी। पत्तोंकी आकृतिमें भी कुछ अन्तर होता है। बंगालमें ३-४ वर्षकी बेल होनेपर काण्ड बाहु जैसा मोटा हो जाता है। काण्ड और शाखापर ग्रन्थियां होती हैं। ग्रन्थियोंमेंसे एक एक पान नागरके बेलके पानके आकारका निकलता है। इसके मूल, काण्ड और शाखाओंको चव्य कहते हैं। रंग धूसर होता है।

फलको गजपिप्पली कहते हैं। फलकी लम्बाई १॥ इञ्च। स्वाद रुचिकर और चरपरा। ४-६ मास या १ वर्षकी पुरानी होनेपर इसका उपयोग करना चाहिये।

बाजारमें गजपीपल रूपसे जो वस्तु बिकती है, वह भिन्न जातिकी है। उसकी बेल होती है, वह बंगालमें मिदनापुर जिलेमें और हिमालयके प्रदेशमें बहुत होती है। उसके फल १ इञ्च चौड़े, ½ इञ्च मोटे और ४-६ इञ्च लम्बे आते हैं। उसका लेटिन नाम स्किण्डेप्सस आफिशिनेलिस (Scindapsus Officinalis) है।

बाजारकी गजपिप्पलीके नाम—क० डोडाहीप्पली, गजहीप्पली, म० हत्तीपिपली। देहरादून-पोरियाबेल। मला० अनत्तप्पली, अत्तितिप्पली। ता० अनैचि-प्पली। ते० एनुगतिप्पली। ओ० गिरधुणी, गाजोपिप्पोली। यह तीक्ष्ण, चरपरी, दीपन-पाचन, कीटाणुनाशक, लालास्राववर्द्धक और कामोत्तेजक है।

मात्रा—२ से ३ माशे। अनुपान-कालीमिर्च, पिप्पली और पिप्पली मूलके समान।

गुणधर्म—चव्य स्वाद और पाकमें चरपरा, उष्णवीर्य, कृमिनाशक और उत्तम दीपन है। यह कफप्रकोप और वातप्रकोपको दूर करता है। यह लघु, रुचिकर, कृमिप्रकोपनाशक तथा कास, श्वास और शूलको दूर करनेवाला है।

गजपीपल पाकमें चरपरी; वीर्यमें उष्ण; दीपन और रसमें चरपरी है। यह वात, कफ, कृमि, श्वास, कण्ठरोग और अतिसारको दूर करती है।

चव्य और गजपीपल दोनों रस और विपाकमें चरपरे तथा उष्णवीर्य हैं। चरपरे रस और उष्णवीर्यके हेतुसे अग्निप्रदीपक और पित्तवर्द्धक हैं। अग्नि और पित्तकी वृद्धि होनेसे अपचन, अग्निमान्द्य, उदरशूल, उदरकृमि, अतिसार, अर्श,

वातप्रकोप और कफप्रकोपपर लाभ पहुँचता है। इनमेंसे चव्यका असर अर्शरोगपर विशेष होता है। गजपीपलका गुण कृमि और श्वास संस्थाकी व्याधियां, स्वरभेद, श्वास, कास आदिपर अधिक होता है।

डॉ० खोरीके मतानुसार चव्य वातानुलोमक और उत्तेजक है। यह उदरशूल, आध्मान और वृक्क व्याधिमें प्रयोजित होता है।

उपयोग—चरक संहिताकारने दशेमानिके भीतर दीपनीयवर्ग, तृप्तिघ्नवर्ग, अर्शोघ्नवर्ग और शूलप्रशमन वर्गमें तथा कटुस्कंधमें चव्यका उल्लेख किया है। सुश्रुत संहिताकारने पिपल्यादि गणमें चव्य मिलाया है एवं प्राचीन आचार्योंने पंचकोल और षड्डूषणमें चव्यको स्थान दिया है तथापि इस औषधिका प्राचीन आचार्योंने स्वतन्त्र उपयोग बहुत कम किया है। स्वतन्त्र प्रयोग रूपसे चविकाका उपयोग चरक संहितामें केवल अर्शरोगपर किया है। चव्यको सीधु (ईखकी शराब) के साथ देनेसे अर्शकी निवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त अर्श रोगपर चविकासवका पाठ मिलता है। चित्रकके साथ चव्य अथवा गजपीपलका गौण उपयोग अनेक स्थानोंमें किया गया है। सुश्रुत संहितामें पानात्यय चिकित्सामें भी चव्यको मिलाया है।

आवश्यकतापर पीपलके अभावमें गजपीपल और पीपलामूलके अभावमें चव्यका उपयोग करना हो, तो हो सकता है।

गजपीपल चूर्ण अदरखके रस और शहदके साथ दिनमें २ समय २-४ मास तक देते रहनेसे या नागरबेलके पानमें खिलाते रहनेसे पाचनशक्ति सबल बनती है। नयी कफोत्पत्ति रुक जाती है; और श्वास प्रकोपका वेग शमन हो जाता है।

अतिसारपर गजपीपलका चूर्ण आमकी गुठलीकी गिरीके साथ दिया जाता है।

चव्यकी जड़के रसमें कालीमिर्च मिलाकर पिलानेसे वमन होकर विष निवृत्त होता है।

नया प्रतिश्याय होनेपर चव्य या गजपीपलका चूर्ण शहदके साथ देने या चाय में डालकर पिलानेसे सत्वर रोग शमन हो जाता है।

(६२) चूका।

सं० चुक्र, चुक्रवास्तुक, अम्लवास्तूक, हिलमोचिका। हिं० चूका, बड़ा-चूका, खटपालक, चूकापालक। बं० चूका पालङ्क। म० आंबट चूका। गु० चुको। पं० त्रिवृक्क। ता० शक्तकिरै। ते० शुकि कुरुकु। क० हुलिचकोत। अं० Bladder dock.

ले० Rumex Vesicarius।

चूकेके बीजको फारसीमें तुखम तुरशा और अरबीमें बजुल हम्पज कहते हैं।

परिचय—चूकेका साग भारतमें सर्वत्र अति प्रसिद्ध है। क्षुप बारहों मास होता है। ऊंचाई १ फुटतक। पान १ से ३ इञ्च लम्बे।

इस रुमेक्स श्रेणीकी अनेक वनस्पतियां खट्टी हैं। उनमेंसे चिंचाम्ल (टार्टरिक-एसिड) और चांगेर्याम्ल (ऑक्ज़लिक एसिड) मिलते हैं। कितनेक जातियोंमेंसे नाइट्रिक एसिड और मेलिक एसिड भी मिलते हैं। अनेकोंके पान भारतमें चूकाके नाम से परिचित हैं। कितनीक वनस्पतियोंके मूलमेंसे आटा और मेदा मिलता है।

गुणधर्म—चूका रसमें अम्ल, स्वादु, लघु, उष्णवीर्य, वातहर, गुल्मनाशक, रुचिकर, अग्निप्रदीपक, सारक, कुछ पथ्य और पित्तकारक है। आमाशयमें खट्टा, और कड़वा, पित्तसंग्रहीत हो जाता है, तो उसे वह दूर करता है। रक्तको शुद्ध करता है। आंतोंमें शुष्कता और उष्णता रहती हो, तो इसके सागसे शमन हो जाती है। डाक्टर देसाईके मतानुसार चूका शीतल, दीपन, शोथहर, वेदना स्थापक और सारक है।

नव्य शोध अनुसार इसके कोमल सागके भीतर क और च जीवन सत्य रहा है। इस हेतुसे रक्तपित्त रोग, रक्तकी निर्बलता, रक्तकी न्यूनता और पाण्डु रोगके लिये हितकारक है।

उपयोग—चुक्रिकाका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीन कालसे हो रहा है। चरक संहितामें राजयक्ष्मा रोगीके अतिसार और रक्तार्शपर तथा मदात्य रोगीको तृष्णा शमनार्थ चूका दिया है।

(१) कर्णशूल—चूकेके रसको निवायाकर कानमें डालनेसे वातजशूल शमन हो जाता है।

(२) उबाक—चूकेके रसमें सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे आमाशय रसकी अम्लता और उग्रताका शमन होकर उबाक शमन हो जाती है।

(३) आमातिसार—चूकेके भूने हुए बीजोंका चूर्ण दिनमें २-३ बार देनेसे आमका पचन होता है। फिर १-२ दिनमें आमातिसार दूर हो जाता है।

(६३) चौलाई।

सं० तण्डुलीयक, मेघनाद, पथ्यशाक, विषघ्न। हिं० चौलाई। बं० नटे, छुये नटे। म० तांदुळ्याची भाजी। गु० तांदल जो। क० किरु कुशाले। ता० मुळ्ळुक्कुरे। यका खिरुखिड़ा, सपेज मार्ज।

लै० Amarantus Polgamus.

परिचय—यह साग बारह मास होते हैं। यह नैसर्गिक उत्पन्न होता है, एवं इसे पावोंमें भी बोते हैं। यह भारतमें सर्वत्र होता है। क्षुप १-१॥ फुट ऊंचा। पान छोटे। इसका साग स्वादु और पथ्य कारक है।

गुणधर्म—सुश्रुत संहिता और चरक संहिताके मतानुसार चौलाई रस और विपाकमें मधुर, रक्तपित्त और मदको दूर करनेवाली, शीतवीर्य, रूक्ष और विषनाशक है। इसका साग रुचिकर और अग्निप्रदीपक है।

चौलाई मलमूत्र शुद्धिकर होनेसे रोगी और नीरोगी सबके लिए हितावह है। परन्तु इसमें तैल नहीं मिलाना चाहिये। केवल उबाल लेवें या घीका छौंक देवें। नव्य शोधानुसार चौलाईके भीतर जीवन सत्व अ, ब और क रहा है। इस हेतुसे रक्तपित्त शामक, रक्तवर्द्धक, रक्तशोधक, कीटाणुनाशक और पाचन, इन गुणोंकी प्राप्ति होती है।

उपयोग—चौलाईका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे होता है। चरक संहिता और सुश्रुत संहितामें सागके गुण वर्णन किये हैं एवं इसे अनेक रोगोंपर प्रयुक्त किया है। विष प्रकोप, कच्चे पारद या कच्ची धातुओंसे उत्पन्न रक्तविकार, चूहेके विष, नेत्ररोग, उदररोग, अतिसार, संग्रहणी, रक्तपित्त, प्रदर, अर्श, कब्ज, यकृद् विकार, प्लीहा वृद्धि और जीर्णज्वरमें चौलाईका साग हितावह माना गया है। जीर्णफिरंग, वातरक्त, त्वचा रोग, शीतपित्त, एवं प्रसूता, सगर्भा और छोटे बच्चेकी माताके लिए भी लाभदायक है। सुजाककी तीव्र वेदना वालेको साग देनेसे वेदना शमन होजाती है। यह शाक सब रोगोंपर पथ्य रूपसे दिया जाता है। केवल भस्म, रसायन आदि सेवन कालमें इस सागका उपयोग नहीं किया जाता अन्यथा रस, भस्मादि औषधका गुण न्यून हो जाता है, ऐसी आचार्योंकी मान्यता है। इसके मूलकी पुल्टिस बना नारुपर बांधनेसे नारु गल जाता है। मकड़ीके विषपर इसके पानोंका स्वरस लगानेसे विष दूर हो जाता है।

(१) रक्तपित्त—चौलाईके रस, कल्क, हिम, फाण्ट या क्वाथ शहद मिलाकर प्रातः सायं देते रहनेसे मुँह, नाक, गुदा आदिसे निकलने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

(२) रक्तप्रदर—चौलाई (या कांटेदार चौलाई) के मूलका चूर्ण शहदमें मिलाकर चटावें और ऊपर चावलका धोवन पिलावें। साथमें रसौंतकी गोलियां (४ रत्ती) निगलवा देवें, तो लाभ सत्वर होता है। इस प्रयोगसे प्रसूता और सगर्भाका रक्त स्राव भी बन्द हो जाता है।

(३)—चूहेका विष—चौलाईके मूलका चूर्ण ३-३ माशे दिनमें दो वार शहदके साथ देते रहनेसे थोड़े दिनोंमें विष नष्ट हो जाता है।

तीव्र प्रकोपपर चौलाईके मूल १ तोलेको जलमें घिस निवायाकर पिला देवें। फिर १५-१५ मिनटपर ३-४ वार पिलानेसे वमन होकर विष निकल जाता है। आचार्य शोढलने साँपके विषमें भी मूलको चावलके धोवनके साथ पिलानेका लिखा है।

(४) नेत्रपाक और नेत्रव्रण—चौलाईकी जड़को स्तन्य (दूध) में घिसकर नेत्रमें बूंद डालनेसे दाह, वेदना, लाली और व्रण दूर होते हैं।

(५) गांठ और विद्रधि—इसके पानकी पुल्टिस बांधनेसे व्रण पककर जल्दी फूट जाता है एवं शोथपर लेप करनेसे रक्त बिखर जाता है।

(६४) चौलमोगरा ।

सं० तुवरक, कुष्ठजित । हिं० चौलमोगरा, चौलमुगा । बं० चौलमुग्रा । बम्बई-चावलमोगरा । गु० चोलमोगरा । ले० Gynocardia Odorata.

परिचय—गायनोकार्डिया=पुष्पके भीतर योनिछत्र हृदयाकार । ओडोरेटा=सुगन्धित । मध्यम कदका सर्वदा हरा वृक्ष । छाल चिकनी, चमकीली, गेरु जैसे रंगकी, काटनेपर हलके रंगकी, शुष्क । पत्ते लगभग ६ से १० इञ्च लम्बे, लम्बगोल हृदय । पुष्प हलके पीले, सुगन्धित । फल नारंगी जितने बड़े, भस्मी रंगकी छालवाले । बीज अनेक, गुदेके भीतर रहे हुए, १-११ इञ्च लम्बे ।

फलका गुण मछलियोंको मारनेके लिए प्रयुक्त होता है । बीजोंमेंसे तैल निकलता है, उसे चौलमोगरा तैल (Chalmugratel-Gynocardia Oil) * बिना गरम किये तैल होता है । वह ६०° डिग्री उष्णतापर चर्बीके समान जम जाता है । वर्तमानमें बाजारमें मिलनेवाला तैल कुछ अंशमें गाढ़ा काला होता है । सामान्यतः इसके चर्बी जैसे श्वेताभ दानेदार मौलिक तत्वके साथ अन्य पदार्थका मिश्रण होता है । यह तैल महाकुष्ठ (गलत् कुष्ठ) की सर्वोत्तम औषधि मानी गई है ।

मात्रा—तैल ५ से १५ बूँद । शनैः शनैः ६० बूँदतक बढ़ा सकते हैं । घी या मक्खनके साथ भोजन कर लेनेपर तुरन्त देवें ।

गुणधर्म—फल उष्ण और स्निग्ध । कास, विद्रधि, त्वचारोग, छोटे अर्बुद, कुष्ठ, मधुमेह, सुजाक, ज्वर और अर्शमें हितावह है । तैल स्निग्ध, वेदनाहर, चर्मरोग नाशक, रक्तशोधक और व्रणरोपण । खाली पेट होनेपर तैल दिया जायगा तो जम्भाई आने लगती है और वमन विरेचन होते हैं । त्वचापर मर्दन करनेपर प्रबल दाह होता है । यह महाकुष्ठको दूर करता है । बाह्य उपयोगमें व्रणशोधन, व्रणरोपण, कण्डूघ्न और कीटाणु नाशक है ।

चौलमोगरा मलहम—चौलमोगरा तैलको ९ गुने वेसलीन या सादे मलहममें मिलाकर मलहम बना लेवें ।

उपयोग—चौलमोगरा तैल उत्तम कुष्ठघ्न औषध है । यह सब प्रकारके चर्मरोगोंमें दिया जाता है । इससे अवश्य ही गुण आता है । महाकुष्ठ रोगमें इसका

---

* चौल मोगराका तैल कड़वे कैथ (Hydnocarpus Wightiana) और उस जातिके अन्य वृक्षोंमें से भी निकलता है । हिडनोकार्पसकी सब जातियोंके वृक्ष मद्रास और दक्षिण महाराष्ट्रमें होते हैं । बम्बईके बाजारमें अधिकतर कड़वे कैथका और कलकत्ताके बाजारमें प्रायः चौलमोगराके बीजोंका तैल मिलता है । कड़वे कैथके बीजोंका तैल हलके पीले रंगका और चौलमोगरा तैल भूरे पीले (Brownish-Ye ॥) होता है । गुण दोनों का समान है ।

उदरसेवन और त्वचापर मर्दन कराया जाता है। रोग प्रकाशित होनेपर तुरन्त यह तैल देनेसे विशेष उपयोग हो जाता है। इस तैलके साथ गांजा देना विशेष लाभदायक है।

फिरंगकी द्वितीयावस्थामें यह उपयोगी है। मुख और हाथपर जीर्ण व्युचोरोग होनेपर उसे दूर करनेमें बहुत कष्ट होता है, किन्तु इस तैलके अन्तर्बाह्य उपयोगसे बहुत लाभ हो जाता है। व्यूचो, गंज (इन्द्र लुप्त) आदि रोगोंपर इसके मलहमका मर्दन कराया जाता है केवल शुद्ध तैलका मर्दन करानेपर त्वचा लाल हो जाती है; और बहुत त्रास होता है। अतः ९ गुने तिलतैलमें या अन्य तैलमें मिलाकर मालिश करनी चाहिये।

क्षय, गण्डमाला, क्षयकीटाणुओंसे उत्पन्न व्रण, क्षत, नाड़ीव्रण और अस्थिव्रण इन रोगोंपर इस तैलका अच्छा उपयोग होता है। इसका सेवन कराया जाता है; और बाहर इसके मल्हमका मर्दन कराया जाता है।

फुप्फुसरोग, विशेषतः जीर्ण श्वासनलिका प्रदाहमे चैालमोगरा तैल अति लाभदायक है। इसके सेवनसे कफ शनैः शनैः कम होता जाता है।

संधियोंके रोग, विशेषतः आमवातके हेतुसे संधि मुड़ जाने और अकड़ जानेपर इस तैलकी मालिश अति उपयोगी है।

महाकुष्ठका रोगी जिसके हाथ पैर सड़ गये हों और मुख विकृत और स्फीत हो गये हों, ऐसे रोगियोंको इस तैलका उदरसेवन कराया जाता है और बाहर मर्दन भी। इस रोगपर यह अच्छा लागू हो जाता है। रोज स्नान करके इस तैलकी मालिश करनी चाहिये। इस रोगीको शहरसे बाहर खुली वायुमें रखना चाहिये। मांसाहार छुड़ा देना चाहिये। शराबका व्यसन हो, तो हो सके उतना कम करा देना चाहिये। गांजेका धूम्रपान इस रोगमें लाभदायक है, ऐसा विशेषज्ञोंका अनुमान है।

(६५) जमालगोटा।

सं० दन्ती, जयपाल, निकुम्भ,। हिं० म० जमालगोटा। बं० जयपाल। गु० नेपालो। मला० ता० नेखेलम्। ते० नेपालम्। क० जयपाल। अं० Croton tree.

ले० Croton Tiglium

वक्तव्य—वर्तमानमें जो जयपाल मिलता है, उसे सच्चा माना जाय तो वह दन्तीबीज नहीं है। यहाँपर प्रचलित जमालगोटेका वर्णन किया है। प्राचीन दन्तीका लेटिन नाम बालियोस्पर्मम एक्सीलर (Baliospermum Axillare) है।

परिचय—यह सर्वदा हरा छोटा वृक्ष है। यह बंगाल और आसाममें अधिक होता है। पान २ से ४ इञ्च लम्बे, सुखनेपर पीताभ, पुष्प हरा पीला। नरफूलसे मादाफूल अधिक अण्डाकार। नरफूलमें १५ से २० पुंकेसर। डोडी (फल) ¾ से

१ इञ्च लम्बी, एरण्डीके समान इसके बीजोंमेंसे तैल निकलता है। उसे जयपाल तैल (Croton Oil) कहते हैं। इस तैलका उपयोग डाक्टरीमें अधिक होता है। आयुर्वेदमें मूल और शुद्ध बीजोंका उपयोग होता है।

शास्त्रीय जयपाल—झाड़ी या छोटी झाड़ी। उत्पत्तिस्थान हिमालय, काश्मीर, बिहार, कोकण, गुजरात, त्रावणकोरादि प्रदेशोंमें। ऊंचाई ३ से ६ फीट। ऊपरके पान २ से ३ इञ्च लम्बे, नीचेके पान ६ से १२ इञ्च लम्बे। उपपान २ रस ग्रन्थियों-वाले। मंजरी ½ इञ्च लम्बी। सब नरफूलकी या नीचे कुछ मादाफूलसह। डोडी ¾ से ½ इञ्च लम्बी, अण्डाकारसी, ३ विभाग मय। बीज ½ इञ्च लम्बे। बिहारमें फूल विशेषतः दिसम्बरसे मार्चतक। मूलको चबाने पर कण्ठमें दाह होता है और उबाक आती है।

बीजशोधन—बीजोंको १ घण्टा जलमें भिगो, छिल्के निकालकर कपड़ेकी पोटलीमें बांधे। फिर हांडीमें बीजोंकी गिरीसे १६ गुना दूध अथवा गोबरका रस भरें ऊपर पोटली को लटकावें (इसे दोला यन्त्र कहते हैं) इसे चूल्हेपर चढ़ाकर मंदाग्नि से ४ घण्टेतक पकावें पश्चात् पोटलीको निकाल स्वच्छ जलसे धो बीचमेंसे जिव्ही निकाल डालें। पश्चात् सुखा चूर्णकर ब्लोटिंग पेपरपर फैला देवें, जिससे अधिक तैलका शोषण हो जाय।

सूचना—छिल्के निकालने या बीजोंको तोड़कर जिव्ही निकालनेपर हाथोंपर तैल लग जाताहै। इसलिये इस दाहक तैलवाला हाथ आंखोंको या शरीरके किसी भागपर नहीं लगाना चाहिये अन्यथा अति जलन होती है। भूराहोनेपर तैल लगालेवें। कार्य हो जानेपर मिट्टी या साबुनसे हाथोंको धो लेना चाहिये।

मात्रा—मूल ४ से ८ रत्ती। शुद्ध जमालगोटा ½ से ½ रत्ती। तैल १ बूँद मक्खनमें।

गुणधर्म—जयपाल रस और विपाकमें चरपरा, उष्णवीर्य, दीपन, तीक्ष्ण, और उष्ण कृमिघ्न, विरेचन, पित्तकफनाशक और उदररोगहर है। मलावरोध, उदर-रोग, शिरोरोग, हनुस्तम्भन, संन्यास, ज्वर, उन्माद, एकांगवात, आमवात, शोथ और कासरोगमें हितावह है।

दंतीमें कटुरस, कटुविपाक तथा तीक्ष्ण और आशुकारी गुणहोनेसे यह वायुको प्रकुपित करता है। फिरभी उदरके मलविषसे वातनाड़ियां दूषित होनेसे हुआहो, तो मलादिको निकाल कर विषशमन कर देता है। इस हेतुसे वातशमन रूप फल प्रतीत होता है। इस हेतुसे धन्वन्तरि निघण्टुकारने वातघ्न कहा है। इसी तरह इसके गुण पित्तकोभी कुपित करते हैं, किन्तु विरेचन द्वारा पित्तको बाहर निकालदेता है। जिससे पित्तशमन रूप परिणाम प्रतीत होता है। गुणधर्म दृष्टिसे जयपाल कफघ्नहै। अतः

कफ और आमप्रधान रोगोंमें, उनको निकालने और उदरके शोधनार्थ जमालगोटा प्रधान औषधियोंका उपयोग करना चाहिये। इसके द्रव्यका प्रवेश लसीकावाहिनियों और रक्तवाहिनियों और फुफ्फुस कोषाणुओं आदि स्थानों में होता है। जिससे तनस्थ स्थानोंमें संग्रहीत दोषको बाहर फेंककर देहको शुद्ध बनाता है।

बीजोंकी अपेक्षा मूलमें विरेचनगुण अतिक्रम परिणाममें रहाहै। इसहेतुसे भावप्रकाशाचार्यने इसे दर कहा है। फिरभी इसे सारक नहीं कहसकेमें। इसकी क्रिया आंतोंमें सारक के समान सौम्य नहीं होती; किन्तु विरेचनके समान प्रदाहकारक होती है। अतः इससे अधिक विरेचन न होनेपरभी इसका उपयोग सारकगुणके लिये नहीं किया जाता।

जब शरीरमें मल, आमदोष, कफकृमि, कीटाणु विष और मृतपरमाणु आदि संग्रहीत होजानेसे; विशेषतः कफसंचय होनेसे अग्निमंद हो गई हो, तब इसके विरेचनका असर उदरगत पचनसंस्था—आमाशय, अन्त्र, यकृत् आदिपर तुरन्त होताहै। आमाशयमें संग्रहीत कफ-आम, यकृत्में संचितदूषित पित्त और अन्त्रादिमें संग्रहीत दोष ये सब निवृत्त होते हैं। फिर पचन क्रिया सबल बन जाती है। इसहेतुसे आचार्यों ने इसे दीपनकहा है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार जमालगोटा अति तीव्र रेचन है। बड़ी मात्रामें विष है। तीव्र विरेचन द्रव्योंमें जमालगोटे का नम्बर पहला है। इसके तैलका १ बूँद देनेपर ५-२५ दस्त ऊपर ऊपर लग जातेहैं; उदरमें बहुत मरोड़ा आता; है और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें थोड़ी बहुत सूजन आती है। रेचन वर्ग और आनुलोमिक (सारक) वर्ग बिल्कुल अलग अलग है। आनुलोमिक वर्गसे ऐसा शोथ कभी नहीं आता। जमालगोटासे उदरकृमि गिरजाते हैं; किन्तु इसका उपयोग कृमिघ्न रूपसे नहीं किया जाता।

मात्रा—तैल १ बूँद मक्खनके साथ, सुबहको। आवश्यकता पर किसी भी समय।

उपयोग—प्राचीन आचार्यों ने दन्तीमूल और जमालगोटेका उपयोग अनेक रोगोंमें उदरशोधनार्थ किया है। वर्तमानमें इच्छाभेदीरस, जलोदरारिरस, नाराचरस, ज्वरकेसरीवटी, अश्वकचुंकीरस आदि अनेक प्रयोगोंमें उदर शोधन और ज्वरादि रोगोंके निवारणार्थ जमालगोटे का उपयोग होता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं, कि जब रक्तके भीतरके जलको जल्दी कम कराना हो या हृदयोदरमें संग्रहीत जल (हृदयके आवरणमें संग्रहीत जलका दबाव) कम कराना हो, तब जमालगोटा दिया जाता है। मस्तिष्कगत शिरा टूटनेसे अर्धांगवात होता है, उस समय यदि जमालगोटा देकर रक्तगत जलको कम नहीं कराया जायगा तो, मस्तिष्कपर रक्तका दबाव अधिक हो जाता है। फिर रोगके दूर होनेकी आशा नष्ट हो

जाती है। रोगी बेसुद्ध होनेपर तेलकी १ बूँद मक्खनमें मिलाकर जिह्वापर घिसनी चाहिये।

वक्तव्य—हृदयोदरमें जमालगोटासे बहुतलाभ होता है, यह सत्य है; किन्तु कभी कभी जुलाब बन्द नहीं होता, यह लक्ष्यमें रखना चाहिये। इस औषधको अतियोगका भास होनेपर तुरन्त कत्थेको जलमें घिसकर पिलाना चाहिये या नींबूका रस देना चाहिये।

(१) अर्श—कफ प्रधान अर्श होनेपर मस्से मोटे, चिकने और सफेद होते हैं। इस प्रकारके मस्से होनेपर दहीकी मलाई मिलाकर जमालगोटेके पानोंका शाक खाना चाहिये एवं दन्तीमूलको मट्ठेमें घिसकर मस्सोंपर लेप करते रहना चाहिये।

देहके अन्यस्थानोंके मस्से—नाक, कान, त्वचा, आदिपर मस्से हो जानेपर दन्तीमूलको जलमें घिसकर लेप करते रहनेसे मस्से (मांसाङ्कुर) गलकर टूट जाते हैं।

(३) विद्रधिको फोड़नेके लिये—दन्तीमूलकी छालको चटनीकी तरह पीसकर पुल्टिस बनाकर बांधनेसे फोड़ा फूट जाता है।

(४) कामला—दन्तीमूलकी छाल १ तोलेको, २ तोले गुड़ और १० तोले जलमें मिलाकर पिलादेनेसे यकृत् पित्तका स्राव बढ़जाता है। जिससे पित्तनलिकामें उत्पन्न प्रतिबन्ध दूर होकर अन्त्रमें पित्तस्राव होने लगता है। फिर कामला दूर हो जाता है।

(५) मलावरोध—उदरमें मल अति संगृहीत हो जानेपर पचन क्रिया विकृत हो जाती है। अन्त्रमें कृमि उत्पन्न होते हैं, रक्तविकृत हो जाता है। वातनाड़ियां विष पीड़ित होती हैं। फिर विविध वातरोगोंकी संप्राप्ति होती है। किसी किसी को उदरशूल चलता रहता है। किसीको अपचन रहता है, किसी को बुखार आजाता है। ऐसी स्थितिमें जमालगोटाप्रधान विरेचन देनेसे सब विकार निवृत्त होकर उदरशुद्धि हो जाती है। फिर अपचन, अग्निमांद्य, दाह, उदरशूल, उदरकृमि, पाण्डु, उदररोग, आफरा, रक्तविकार, चर्मरोग, कुष्ठ, कण्डू, वातप्रकोप, कास, कफप्रकोप, श्वास और शोथादि सब दूर हो जाते हैं।

शोथ और जलोदरमें अन्य विरेचनकी अपेक्षा इसके तैलका अधिक उपयोग होता है। इन दोनों रोगोंमें जल सदृश पतले विरेचन होनेसे जल्दी लाभ होता है। यह कार्य थूहरके दूध और जयपालके तैलसे सिद्ध होता है। दोनों अति उग्र हैं। नाजुक देहवालोंको नहीं दिया जाता। फिर भी रोगावस्थामें प्रकृति भेदसे जिनके लिये, इनमेंसे जो अधिक उपयुक्त हो उसकी योजना करनी पड़ती है। जीर्ण, कठोर, मलसंग्रह, रक्तविकृति, यकृत्पित्तकी विकृति आदि होनेपर थूहरकी अपेक्षा इच्छाभेदी, नाराचरस [illegible] उपयोग अधिक सफल होता है। यदि अन्त्रमें दाह-शोथ हो, उदरपर दबानेपर

वेदना वृद्धि होती हो, तो ऐसे रोगियोंको जयपालकी अपेक्षा थूहर या निशोथ देना अच्छा माना जायगा।

सूचना अ०—आमाशयमें व्रण, कर्कस्फोट या अम्लपित्तसे उत्पन्न दाह और अन्त्रमें दाह-शोथ, होनेपर जयपाल नहीं देना चाहिये।

आ०—सुकुमार देहवाले, वालक और सगर्भाको जयपाल नही देना चाहिये।

इ०—जयपाल प्रधान जुलाव अनेक बार देना हो तो इस बातकी जांच करते रहना चाहिये कि, आमाशय या आंतमें अधिक उग्रता तो नहीं उत्पन्न हुई है? उदरपर दवानेसे वेदना तो नहीं होती? दवाक, वमन, अतिसार, उदरपीड़ा, मरोड़ा, मूत्रदाह, सूजन आदि लक्षण तो प्रतीत नही होते? ऐसा हो तो जयपाल प्रधान विरेचन न देवें। कुटकी, निशोथ, एरण्ड तैल, या अन्य विरेचन ओपधिका प्रयोग करना चाहिये।

(६६) जामुन।

सं० जम्बू, राजम्बू, महाजम्बु, नीलफला, श्यामला, काकवल्लभा। हिं० वड़ी जामुन, फरेन्द्र, राजजामुन। वं० कालाजाम। म० रायजाम्भूल, थोर-जाम्भूल। गु० जांवु, राय जांवु। क० दाडडे निरलु। ते० पेद्दनेरडि, नरेडुचेट्टू ता० नावल। अं० Iambul Tree ले० Eugenia Iambolana (बड़ी जामुन) Eugenia Rubicunda (छोटी जामुन)

परिचय—वड़ी जामुनके वृक्ष, पान और फल, सब वड़े और छोटी जामुनके छोटे होते हैं। इसकी अनेक उपजातियां हैं। जामुनको कभी फल इतने अधिक आजाते हैं कि, वायुका संचलन बन्द होनेपर फलोंके भारसे बड़ी बड़ी शाखाएं अकस्मात् टूट जाती हैं।

मात्रा—गुठलीकी गिरी ४ से २० रत्ती। पतोंका रस १। से २॥ तोले। छाल का क्वाथ आधसे एक औंस। सिरका १ से २ ड्राम जलमें मिलाकर लेवें।

गुणधर्म—जामुनके फल स्वादु, अम्ल, श्रमहर, रुचिकर, तृषाशामक, पाचक, कफ, वातजित, अधिक खानेपर वातुल। अतिसार, श्वास, कफप्रकोप, कास, उदरकृमि और मलावरोधको दूर करता है।

जामुनकी गुठली, पान और छालमें कसैला रस है। अतः ये मधुमेहमें हितावह है। पानोंका रस देना हो तो कोमल पानोंमेंसे पुटपाक कृतिसे निकालना चाहिये।

डाक्टर देसाईके मतानुसार इस वृक्षकी छाल, पान और फलोंका उपयोग होता है। फल और बीजोंकी गिरी पाचक और सामान्य स्तम्भक है। मधुमेहमें यकृत् की क्रिया बिगड़ती है, अतः उसे सुधारनेके लिये गिरीका सेवन कराया जाता है। इसका विशेष उपयोग शक्कर पचानेमें होता है।

फलोंका उत्तम आसव होता है, वह मधुमेह, अतिसार, संग्रहणी और प्रवाहिकापर दिया जाता है।

पानोंका रस उत्तम स्तम्भन है। इस हेतुसे रक्तमिश्रित प्रवाहिका और अत्यार्तव आदि रक्तस्रावयुक्त रोगोंमें दिया जाता हैं। इसके पानोंको कुचल लोह चूर्णके साथ मिला देनेसे उत्तम प्रकारका लोहक्षार बन जाता है। यह क्षार पान्डु और निर्बल स्त्रियोंके अतिसारपर लाभदायक होता है। (यह आयुर्वेद सिद्धान्तके कम अनुकूल है)

इसकी छाल स्तम्भन है। इस हेतुसे उसका क्वाथकर संग्रहणी और प्रवाहिका पर दी जाती है।

वनस्पति सृष्टिकारके मतानुसार छोटी जातिमें ग्राही गुण अधिक हैं।

लोह भस्मको जामुनके रसका ५-७ पुट देनेसे भस्म नीले रंगकी बन जाती है, यह मधुमेहके रोगीके लिये उपयोगी होती है।

वक्तव्य—(अ) जामुनके फलोंको चरक संहिताकारने वातजनन कहा है। अतः जामुनके फलोंका सेवन भोजन करनेके पश्चात् करना चाहिये।

(आ) जामुनमें खट्टा और कसैला रस होनेसे इसके साथ दूध नहीं लेना चाहिये।

जम्बूकल्पः—

(१) जम्बूफाण्ट—२॥ तोले अच्छे जामुनोंको २५ तोले उबलते हुए जलमें भिगो देवें। आध घण्टेबाद मसलकर छान लेवें। ३ हिस्साकर दिनमें ३ वार मधुमेहीको पिलाते रहें।

(२) जामुनका सिरका—जामुनके फलोंके रसको कपड़ेसे छानकर अमृतबानमें भर देवें। ३-४ दिनतक रोज सुबह छान लेवें। फिर सप्ताहमें २ वार छानें। पश्चात १ सप्ताहके बाद छानें। तत्पश्चात् १५ दिनपर छानें। इतनेसे सिरका तैयार हो जायगा। इसके पश्चात् १ मास बाद देख लेवें। सिरकेपर फफुन्दी आई हो तो छान लेवें। यह सिरका पुराना होनेपर अधिक गुणदायी होता है।

सूचना—छाननेके समय अमृतबान या दूसरा बरतन और कपड़ा आदि सूखा और साफ होना चाहिये, गीला न होना चाहिये। गीला होनेपर या पानीकी बूँद गिरनेपर विकृति होती है।

(३) जामुनका शर्बत—जामुनका रस १ सेर, शक्कर २॥ सेर मिलाकर शर्बत जैसी चासनी बनाकर छान लेवें। मात्रा—२॥ तोले जलके साथ। बालकोंके अपचन, रक्तवमन, वमन आदिपर उपकारक है।

(४) जामुनद्राव—कपड़ेसे छाने हुये जामुनके रसमें ६ ठवां हिस्सा सैंधात्मक मिलाकर बोतलमें भरकर १ सप्ताह रहने देवें। फिर चाहे तब उपयोगमें लेवें। मात्रा १ से २ ड्राम।

उपयोग—जामुनका उपयोग प्राचीनकालसे हो रहा है। वमन, अश्मरी प्रमेह, प्रदर, संग्रहणी, अतिसार आदिपर हो रहा है।

(१) अतिसार—जामुनमें पाचन और ग्राही गुण होनेसे यह अतिसारके लिये उत्तम औषधि है। जामुन द्राव १-१ ड्राम दिनमें ३ बार देनेसे अपचन, उदरशूल आफरा और अपचन जन्य अतिसार दूर हो जाते हैं।

यदि अतिसारमें बारबार दस्त होते हों, तो जामुनके कोमल पानोंका रस १-१ तोला ३-३ माशे शहद मिलाकर दिनमें ३ बार देनेसे अतिसार ३-४ दिनमें शमन हो जाता है। आमका पचन होजाता है, रक्त गिरता हो, तो वह भी दूर हो जाता है। इस तरह २-२ तोले छालका क्वाथ भी शहद मिलाकर दिया जाता है।

(२) रक्तप्रदर—श्वेत प्रदर नया हो, गरम गरम और जल जैसा स्राव होता हो, तो जामुनकी छालका क्वाथ दिनमें २ बार ५-७ दिन तक शहद मिलाकर देते रहनेसे प्रदर शमन हो जाता है।

अपचन और अपचनजन्य विसूचिका—अति भोजन करने या अपथ्य दूषित भोजन करनेपर अपचन या विसूचिका (कालेराके समान बारबार दस्त और वमन होना) हुआ हो, तो जामुनका सिरका १-१ ड्राम जलके साथ मिलाकर १-१ घण्टेपर २-३ बार देनेसे अपचन, विसूचिका, उदरशूल, आफरा, दूषित डकार आना आदि बन्द हो जाते हैं।

सूचना—कण्ठमें दाह हो, और खट्टे जलकी वमन होती हो, तो सिरका नहीं देना चाहिये।

सगर्भाका अतिसार—जामुन और आमकी छाल २-२ तोलेको १६ गुने जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें फिर उसका ३ हिस्साकर दिनमें ३ बार पिलावें। प्रत्येक बार धनिया-जीराका चूर्ण २-२ माशे साथमें देते रहें। ऐसा ३-४ दिन करनेपर अतिसार बन्द हो जाता है।

(५) वमन—खट्टी वमन होनेपर जामुनकी छालकी राख शहदके साथ देवें। रक्तवमन होनेपर जामुनका शर्बत देवें।

मधुमेह—जामुनका फाण्ट देते रहें अथवा जामुनकी गुठलीकी गिरीका चूर्ण १-१ माशा दिनमें २ बार शहद या जलके साथ देते रहनेसे पेशाबमें शक्कर जाती हो कम हो जाती है। शक्कर, आलू, चावल और अन्य मीठे पदार्थका सेवन छोड़ देना चाहिये। रोगी जौ, चनेकी रोटी, दाल, दूधका मक्खन, गोदुग्ध, पानशाक, फलशाक, फूलशाक आदिका सेवन कर सकता है।

(७)कामला और यकृद्व्याधि—कामला और यकृत्की सूजन, यकृद्वृद्धि और प्लीहोदरपर जामुनद्राव सुबह देवें। फिर एक दिन छोड़कर तीसरे दिन सुबह देवें। इस तरह देते रहनेसे यकृत्की क्रिया नियमित बन जाती है। तैल, मिर्च, दही, छाछ,

अधिक घी, गुड़ और शक्कर नहीं खाना चाहिये। दूध भातपर रह जाय तो जल्दी लाभ पहुँचता है।

(८) मसूढेका शोथ—छालके क्वाथ या फाण्टसे दिनमें २ बार कुल्ले करते रहनेसे शोथ दूर हो जाता है और हिलते हुए दांत दृढ़ हो जाते हैं।

(९) तारुण्य पिटिका—युवावस्थाके हेतुसे मुँहपर फुन्सियां हुई हों या गर्मीके दिनोंमें शरीरपर घामोडियां हुई हों, तो जामुनकी गुठलीको जलमें घिसकर लेप करें।

(६७) जायफल।

सं० जातीफल मालतीफल। हिं० वं० म० गु० पं० जायफल। फा० जोजवोया। तां० जातीकाय। ते० जजीकाय। क० जडके। मला० जातीके। अं० Nut tree (फल को Nutmeg) ले० Muristica Tragrans.

जावित्रीकेनाम—सं० जातीपत्री, जातिकोष, मालतीपत्रिका, हिं० मार० पं० जावित्री। वं० जावित्री। गु० जावंत्री। म० जायपत्री। ओ० जाइत्री, गोयोत्री। ता० मला जातिपत्री। ते० जापत्री। क० जातीपत्र। फा० बयबानज। अ० बिसबासए अं० Mace ले० Art of Lrismtica.

परिचय—जायफलके वृक्षोंकी ८५ जाति हैं। इनमेंसे भारतमें ३० जाति होती है। मलयद्वीपमें इनके वृक्ष ७०-८० फीट ऊंचाईके होते हैं। इनमें नरमादा पुष्पोंके वृक्ष अलग-अलग होते हैं। भारतमें बंगाल, नीलगिरी त्रावणकोर, मलबार, और सिंहलद्वीपमें इसे बोते हैं। भारतकी अपेक्षा सिंगापारे (चीन) के जायफल अच्छे हैं। चीनी जंगलोंमें वे स्वयमेव उगते है और वहां ये नैसर्गिक हो गये हैं।

जायफलका वृक्ष सर्वदा हरा रहता है। पान २ से ३॥ इञ्च लम्बे, लगभग अण्डाकार रंग हलका पीला पिंगल नीचेकी ओर नाडियां रक्तपिंगल (Red-brown) नर-पुष्पमें कलगी १ से २ इञ्चकी। फूल चौथाई इञ्च लम्बा। फल गोल या लगभग लम्बगोल १ से २ इञ्च लम्बा, २ से ४ विभागवाला। इनफलोंके भीतर जायफल (बीज) एक-एक होता है। बीजपर छाल (Pericarp) सफेद कोमल और सुगन्धवाली होती है। फल पकनेपर ऊपरकी छाल फट जाती है। फिर भीतर बीजपर लपटी हुई लालरंगकी सुगन्धयुक्त, जालीदार, कोमल अन्तर छाल (Aril) प्रतीत होती है। इसे जावित्री कहते हैं। यह जावित्री जायफलके ऊपर रहे हुए पतले कवच (Testa) के ऊपर रहती है। कवच तीसरास्तर है। उसे तोड़नेपर बाहर निकलता है।

औषधरूपसे जायफल बड़े, चिकने और भारी वजनके लेने चाहिये। जायफल से २ प्रकार का तैल निकलता है। स्थिर और उड्डुनशील। कोल्हूसे निकालनेपर २४ से ३६ प्रतिशत तैल निकलता है।

जायफल और जावित्रीमेंसे जैसा तैल निकलता है, वैसा तैल न्यूनाधिक परिमाण में और कुछ न्यूनस्वाद, सुगन्धयुक्त इस उपवर्गके अनेक वृक्षोंमेंसे निकलता है। उसे व्यापारी लोग इस तैलमें मिला देते हैं।

मात्रा—जायफल या जाविघीकी सामान्य मात्रा ५ से १० रत्ती। तैल आधसे ३ बूँद।

गुणधर्म—धन्वन्तरी निघण्टुकारके मतानुसार जातीफल कसैला, उष्ण, चरपरा, लघु, वृष्य और दीपन है तथा कण्ठस्थविकार, वातरोग, अतिसार और प्रमेहको दूर करता है।

भावप्रकाशकारने जायफलको रुचिकर, लघु, चरपरा, दीपन, ग्राही, स्वरसुधारक कफघ्न, और वातहर कहा है, तथा मुखकी विरसता, मल, दुर्गन्ध, कृष्णता, कृमि, कास, वमन, श्वास, शोष पीनस और हृद्रोगको दूर करता है।

जावित्री चरपरी, उष्ण, सुगन्धयुक्त और वर्णकारक है; कफ, मुखकी दुर्गन्ध और विषको दूर करती है; तथा देहको शान्ति देती है।

जायफलका तैल उत्तेजक बल्य और अग्निप्रदीपक है। जीर्ण अतिसार, आध्मान, आक्षेप, शूल, आमवात, दन्तवेष्ट (दांतोंमेंसे पूय आना) और व्रणरोग आदिको दूर करता है।

डा० देसाई के मतानुसार, जायफल सुगन्धित, दीपन, वातहर, वेदनास्थापक, आक्षेप निवारक, उत्तेजक, मादक, पौष्टिक और वाजीकर है। यह आमाशयके लिये उत्तेजक होनेसे आमाशयमें पाचक रस बढ़ाता है, जिससे क्षुधा प्रतीत होती है और अन्न पचन होता है। अन्त्रमें जानेपर वहाँसे वायु सरता है। बड़ी मात्रामें जायफल मादक है। इसका असर मस्तिष्कपर कपूरके समान होता है, अर्थात् चक्कर आना, प्रलाप और मूढ़ता उत्पन्न कराता है।

यूनानीमतके अनुसार जायफल, जावित्री, मूत्रल, स्तन्यवर्धक, उत्तेजक, निद्राप्रद, पाचन, पौष्टिक और कामोत्तेजक है। विसूचिका, अतिसार, यकृत्प्लीहाके विकार, शिरदर्द, पक्षवध और नेत्रव्यथामें व्यवहृत होते हैं।

जायफल और जावित्री वीर्यवर्धक और बल्य है। दुग्ध आदिमें डालनेसे स्वाद में वृद्धि होती है। इसहेतुसे कितनेक लोग नियमपूर्वक भोजनमें मिलाते रहते हैं। ये न्यूनमात्रा में तो बाधक नहीं हैं; किन्तु मात्रा बढ़ानेपर हानि पहुँचाने लगते हैं। बार बार अधिक मात्रा लेनेपर वीर्यमें उष्णता आकर वह पतला बन जाता है और अत्यधिक मात्राके व्यसनियोंको नपुंसकताकी प्राप्ति भी हो जाती है।

जावित्रीका गुण जायफलके समान माना गया है, आयुर्वेदकी दृष्टिसे जावित्रीमें विषघ्न गुण अधिक है। जावित्रीके तैलमें जायफलके समान वेदना स्थापन, उष्ण, उत्तेजक और वातहर गुण रहे हैं।

उपयोग—आयुर्वेदने जायफल और जावित्रीका उपयोग अतिसार, पेचिश, ग्रहणी, अर्श, विसूचिका, वातरोग, प्रमेह, वीर्यविकार, निर्बलता, निद्रानाश, दन्तशूल, प्रतिश्याय आदि अनेक रोगोंपर किये हैं। प्रसूता और बालकोंके रोगपर भी प्रयुक्त किये हैं।

जायफलको जलमें घिस नेत्रके चारों ओर लेप करनेसे दृष्टि बढ़ती है। व्यंग और नीलिका, इनरोगोंमें जायफलको जलमें घिस कर लेप करते रहनेसे कुछ दिन में दूर हो जाते हैं।

बालकों को माताका दूध छुड़ानेपर गौका दूध पचन न होताहो, तो दूध-पानी मिला उसमें जायफल डाल उबाल छानकर पिलाया जाता है। जिससे दूध सरलता-पूर्वक पच जाता है; और मल पीला दुर्गन्ध रहित और बंधा हुआ नियमित आने लगता है।

जायफलका तैल अन्य औषधियोंके अर्क मलहम, साबून, सुगन्धित तैल, मिठाई आदिमें मिलानेके लिये उपयोगी है। इसमें जायफलके समान, किन्तु अति तेजगुण है। तैलमें मादकता होनेसे जिनको रक्तदबाववृद्धि हो जाती हो, उनके लिये अधिक मात्रामें हानिकर है।

पुराने संधिवातसे जकड़ेहुए सांधे, मोच, पक्षवध और सांधाओंकी पुरानी सूजनपर जायफल या जावित्रीके तैलको सरसोंके तैलमें मिलाकर मर्दन करायाजाता है। तैलके मर्दनसे त्वचामें उष्णता और चेतना वृद्धि होती है। इसहेतु से प्रस्वेद अधिक आकर विकार दूर होजाता है।

उदरशूल और आध्मान होनेपर जायफलका तैल शक्कर या बताशे में खिला-देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। दंतशूलमें जायफलके तैलका पोहा दांत या डाढ़के कोतरमें रखनेसे कीटाणु नष्ट होकर पीड़ा शान्त होजाती है। तैलमें वेदना स्थापन गुणहोने से वह दर्दवाले भागको थोड़े समयके लिये शून्य बना देता है। जिससे वेदना निवारण हो जाती है।

फूटेहुए दुष्टव्रणोंके शोधनके लिये बनाये हुए मलहममें जायफल का तैल मिला देनेसे शोधन जल्दी होकर व्रणकारोपण होजाता है।

(१) उदरपीड़ा, अतिसार और विसूचिका—इन रोगोंमें जायफलको भूनकर देते हैं। भूननेपर मादकता और विष दोनों कम हो जाते हैं। उदरपीड़ापर ३ माशे एकही समय अतिसारमें १॥ १॥ माशे दिनमें ४ बार तथा विसूचिकामें १॥-१॥ माशे १-१ घण्टेपर देना चाहिये। अथवा जावित्रीका चूर्ण १-१ माशा मठेके साथ दिनमें ३ समय देनेसे अतिसार निवृत्त होजाता है।

विसूचिकामें हाथ पैरोंपर ऐंठन आनेपर एक जायफलको १० तोले सरसोंके

तैलमें मिलाकर गरम करें। अच्छी तरह गरम होनेपर तैलको नीचे उतार लें। निवाया रहनेपर मालिश करनेसे तुरन्त ऐंठन दूर हो जाती है।

(२) प्रतिश्याय और शिरदर्द—इन रोगोंमें जायफलको जलमें घिस निवाया कर नाक और कपालपर लेप करें। इस तरह शराबमें घिसकरके भी लेप किया जाता है।

(३) तृषा और वान्ति—अजीर्णमें बार बार प्यास लगती हो, और वमन रहती हो, तो जायफलके १ तोले चूर्णको २ सेर उबलते हुए जलमें मिलाकर ढक देवें। शीतल होनेपर उसमें थोड़ा थोड़ा जल पिलाते रहनेसे प्यास और वान्तिकी निवृत्ति हो जाती है।

(४) कटिपीड़ा—प्रसव होनेपर उत्पन्न होनेवाली कमरकी वेदनामें जायफलको शराबमें घिसकर लेप किया जाता है एवं नागरवेलके पानमें जायफल और कस्तूरी डालकर खिलाया भी जाता है।

(५) बालकोंका श्वास—बालकोंकी छातीमें कफभर जानेसे हांफा उत्पन्न होजाता है; उसके लिये जायफलको जलमें घिस निवायाकर फुफ्फुसोंपर लेप और थोड़ा सेक करना चाहिये।

(६) बालातिसार—बालकोंको दस्त पतले लगते रहते हों, तो जावित्रीका चूर्ण आधसे १ रत्ती शहदमें मिलाकर दिनमें ३ समय चटाते रहनेसे अतिसार दूर हो जाता है।

(७) बालप्रतिश्याय—बालकोंको जुकाम होनेपर गौके घीमें जायफल और सोंठको घिसकर चटावें।

(८) निद्रानाश—रात्रिको निद्रा न आतीहो, तो जायफल और जावित्रीके चूर्णको दूधमें डाल, उबाल शीतल होनेपर मिश्री मिलाकर पिलानेसे तथा जायफलको घीमें घिस नेत्रमें लेप करनेसे शान्त निद्रा आजाती है।

सूचना—(१) जायफल और जावित्रीका उपयोग ज्वर, प्रदाह (Inflammation) और मस्तिष्कमें रक्त दबाव वृद्धि होनेपर नहीं करना चाहिये।

(२) जायफल, जावित्री या तैल की अधिक मात्राके सेवनसे नशा आया हो, तो चन्दन और मिश्रीको मक्खनमें मिलाकर चटानेसे मद शमन होता है।

(९८) तरबूज।

सं० कालिन्दक, कालिंग, कालिन्द। हिं० तरबूज, कलिंगड़, हिनवाना, हिन्दोना। बं० तरमूज। म० कालिंगड। गु० तरबुच, कालींग। मा० मतिरा।

फा० हिन्द्वाना। क० कालेंगु, वच्चगायि। ते० तरबूजम। मला० वक्कक। कों० वचंगे। अं० Water melon. ले० Citrullus Vulglaris.

परिचय—इसकी वेल होती है। भारतके अन्य स्थानोंकी अपेक्षा राजपूतानेके तरबूज विशेष मधुर होतेहैं। वेल ३०-४० फीट लम्बी। इसमें कड़वे और मीठे, दोनों प्रकारके फल प्रतीत होते हैं। फूल पीले। फल गोल या लम्बगोल। कच्चे फलका गूदा सफेद। पक्के फलका लाल। फलका वजन १ सेरसे ३० सेर तक।

गुणधर्म—तरबूज शीतल, वल्य, मधुर, तृप्तिकारक, पित्तशामक, मूत्रल, गुरु, पौष्टिक, ग्राही और कफवर्द्धक। पान कड़वा और रक्तवर्द्धक।

उपयोग—इसका उपयोग दाह शमनके लिये बहुत अच्छा होता है। मूत्रमें जलन होती हो, तो फलके भीतर शक्करभर रात्रिको ओसमें रहने देवें। फिर दूसरे दिन फलका गूदा खिलानेपर मूत्रमें दाह दूर होताहै और मूत्र साफ आता है।

यदि सुपारी अधिक खानेपर नशा आया हो तो तरबूज खिलानेपर तुरन्त शान्ति हो जातीहै।

(६९) त्रायमाण।

सं० त्रायमाण, त्रायन्ती, गिरिजानुजा, वार्षिकी। हिं० बं० गु० म० त्रायमाण। वम्बई-गुलजलील। पं० असवर्ग, गाफिज। फा० भलिल, असफक। अ० जरिर।

ले० (१) Delphinium Zalil (इरानी)

(२) Delphinium Sariculae Folium (भारतीय)

परिचय—यह क्षुप इरानके पहाड़ों, अफगानिस्तान तथा पश्चिम पंजाबमें होता है। यह जमीनपर फैलताहै। तना १ से २ फीट लम्बा, '६-७' अंगुलसे अधिक ऊँचा नहीं होता। मूलसे सम्बन्धवाले पान २ से ६ इञ्च व्यासके, ५ से ९ विभागवाले। पुष्प हलके नीले, लगभग आध इञ्च लम्बे, अनेक शाखावाली मंजरीमें। पुष्प दल सुंदरपीले, नीली किनारीवाले। पुष्पकी भीतरकी पखड़ियां गहरे २ विभागवाली। फल ३ खण्ड युक्त। बाजारमें पंचांग मिलता है, उसका रंग किञ्चित् हरापीला। पुराना होनेपर रंग श्याम हो जाता है। औषधि नयी होनेपर वास शहदके समान आतीहै। पहले भारतमें त्रायमाणका उपयोग रेशम रंगनेमें होता था। उसके साथ अकलबेर (Canna Indica) और फिटकरी मिलाते थे।

वक्तव्य—त्रायमाणके नामसे दक्षिण यूरोपसे डेलफिनियम पेरिग्रिनिम (Delphinium Perigrinum) आती है। और इरानसे डेलफिनियम् झलिल आती है।

मात्रा—१॥ से ३ माशे। यूनानी हकीम १।-१। तोले तक दे देते हैं। उपयोग फाण्ट और क्वाथ रूपसे किया जाता है।

गुणधर्म—उष्णवीर्य, रसमें चरपरी-कसैली और कफ, पित्त, रक्त गुल्म, ज्वर, सूतिकाके शूल, क्षय, रक्तपित्त, भ्रम, व्याकुलता, वमन और विषकी नाशक है। छाल स्वादमें कड़वी। भावप्रकाशकारने इसे सारक, हृद्रोग और अर्शकी भी नाशक कहा है।

यूनानी मतानुसार त्रायमाण अतिगरम, पहले किञ्चित् मधुर फिर कड़वी। निर्बलस्थितिमें उत्तेजक और अग्निप्रदीपक है। यह मस्तिष्क पौष्टिक होनेसे उन्मादमें उपयोगी है। दंतशूल और अर्शकी वेदनामें लाभदायक है। इसे ग्राही और विरेचन औषधके साथ मिला सकते हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार यह शीतल, वेदनाशामक, ज्वरघ्न, क्षुधावर्धक, सारक, और मूत्रल है। यह स्वादमें कड़वी है। इसके खानेसे क्षुधा बढती है; पित्तस्राव होताहै। अन्न पचन होताहै; और उदर शुद्धि होती है। इसमें कुछ कोष्ठवात प्रशमन धर्म भी रहा है। इस हेतुसे उदरमें वायुसे उत्पन्न पीड़ा शान्त होती है। इसके सेवनसे मूत्रकी मात्रा बढ़ जाती है। इसके पंचांगकी राख शामक और कीटाणुनाशक है।

उपयोग—त्रायमाणका उपयोग चरकसंहितामें ज्वर, रक्तपित्त, अतिसारादि अनेक रोगोंपर मिलता है। यूनानीवालेभी इसे अनेकरोगोंपर प्रयुक्त करते हैं। यह अरुचि, अपचन और अग्निमान्द्यमें आमाशयपौष्टिक (दीपन पाचन) रूपसे दी जाती है। पीड़ाशामक गुण होनेसे अर्शरोगमें प्रयोजित होती है। मूत्रल गुण होनेसे यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि, प्लीहोदर, जलोदर और हृदयोदरमें व्यवहृत होती है।

मूत्रल और सारक गुणके हेतुसे यह जीर्णज्वर और पित्तज्वरमें उपयोगी है। पित्तज्वरपर इसका अधिक उपयोग होता है।

इसकी राख नींबूकेरस या धोये घीके साथ मिलाकर लगानेसे व्युची आदि चर्मरोग दूर होते हैं।

जलप्रधान शोथपर जवके आटे और इसके पंचांगके चूर्णको जलमें मिला सिजोकर बांध देनेसे शोथ उतर जाता है।

त्रायमाणके क्वाथ और त्रायमाणके कल्कसे गोघृत सिद्धकर रक्तपित्तके रोगीको सेवन करानेपर रक्तपित्त शमन होजाताहै। गोघृतसे कल्क चतुर्थांश और क्वाथ ४ गुणा लेना चाहिये।

चरक संहिताकारने ज्वर और विसर्परोगमें त्रायमाणको दूधके साथ विरेचनार्थ देनेका लिखा है। उर्ध्व रक्तपित्तमें शहद, मिश्री (अधिक मात्रामें) के साथ मिलाकर विरेचन रूपसे देनेका विधान किया है।

पैत्तिक गुल्मपर २ पल (८ तोले वर्त्तमानमें मात्रा १ तोलेतक) त्रायमाणका अष्टमांश क्वाथकर, उसके समान गरम दूध मिला, निवाया रहनेपर पिलादेवें। फिर

ऊपरमें और निवाया दूध पिलानेसे विरेचन लगकर दोष निकल जायगा; और पित्त-गुल्म शमन हो जायगा।

पित्तज अतिसारमें त्रायमाणका क्वाथ दूधके साथ देनेसे दुष्टपित्त और मल निकलकर पित्तज अतिसार शमन हो जाता है।

(७०) तारामीरा।

सं० उग्रगन्धा, भूतगंधा, ग्रहघ्न। पं० तारामीरा। फा० जाम्बेह, इहुकान। कच्छी जाम्बो। सिं० जाम्बेहो। मार० रायता। बं० श्वेत सरसों। अफ० मण्डाओ। अं० Rocket। ले० Eruca Sativa.

परिचय—यह सरसों और राईके समान उग्र, तेली बीज है। क्षुप सरसोंके समान होता है। पान सरसोंसे कुछ छोटे। फूल पीले। पानोंका शाक करते हैं। और फलर, मसाला लगाकर कच्चेभी खाते हैं। इसमें जीवन सत्त्व अ० क० हैं। सिंध, पंजाब और कच्छमें इसकी खेती होती है और इसके बीजोंमेंसे तैल निकालते हैं। तैल स्वच्छ, पीले रंगका ३०% प्रतिशत निकलता है। वास सुगन्ध और स्वाद सरसोंके तैल जैसा है; किन्तु यह अधिक उग्र है। इसका विशुद्ध तैल खानेपर जिह्वापर फाले होजाते हैं। अतः सरसों या तिलके तैलमें मिलाकर उपयोग किया जाता है।

पानोंका शाक श्वास, कास, रक्तपित्त (स्कर्वि) वालोंको अति हितकर है।

तैल वातरोगीकेलिये लाभदायक है। उपयोग विशेषतः शीतकालमें होता है। इसका विशेष उपयोग बत्ती जलाने और साबुन बनानेमें होता है। शरीरपर मर्दन करनेपर जलन करता है, किन्तु कीटाणुओंका नाश करता है। विविध प्रकारके मलहमोंमें तैल मिलाया जाता है।

इसकी खलीमें नत्र (नाईट्रोजन) अधिक है। इसलिये यह पशुओंका पौष्टिक आहार है एवं इसका खादमें भी उपयोग होता है।

गुणधर्म—तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निप्रदीपक, मेदोहर, कफहर, वातहर, कुष्ठघ्न और कृमिनाशक है।

उपयोग—इसका विशेष उपयोग वातरोगियोंको खिलाने और मर्दनकेलिये होता है। मर्दन करनेपर जुएँ और अन्यकृमि नष्ट होजाते हैं। दाद, कण्डू, पामा, विचर्चिका आदि चर्मरोगोंपर अति लाभदायक है। मलहमोंमें मिलानेसे कृमि-कीटाणु नष्ट होजाते हैं, शीघ्र घावकी शुद्धि होकर भर जाता है।

(७१) तेजपात।

सं० पत्र, तमालपत्र। गु० तमालपत्र। म० तमालपत्र, तेजपात, सांभार- । बं० तेजपत्र। आसाम-दो पत्ती। मार० पत्रज। ने० छोटा सिंकोली।

फा० सादरसु। ता० क० लवंगपत्री। ते० अकुपत्री। मला० लवंगपत्र। अं० Cassia Cinnamon। ले० Cinnamomum Tamala.

परिचय—ये वृक्ष हिमालयमें सिंधुके मूलसे भूटानतक और खसियाके पहाड़ोंपर होते हैं। ऊंचाई लगभग ३०-४० फीट। वृक्ष सर्वदा पल्लवयुक्त, हरा। छाल पतली, झुर्रियुक्त, काली भूरी, कुछ खुरदरी, दालचीनी जैसी सुगन्धवाली। पान ३ से १० इन्च लम्बे, ३ नसवाले। फूल चौथाई इञ्च लम्बा। फल आध इञ्च लम्बा, अण्डाकार।

वर्तमानमें तेजपातके पान मुख्य २ प्रकारके बाजारमें मिलते हैं। १. सिनेमोमम् तमाल, जिसका वर्णन ऊपर किया है। २ सिनेमोमम् ओबटुसीफोलियम (C. Obtusifolium) के। इसके पान ८ से १२ इन्च लम्बे और ३ नसवाले होते हैं। ये दोनों एक ही वर्गके वृक्ष हैं। इनके अतिरिक्त इस वर्गके ३-४ जातिके पान तेजपातके नामसे मिलते हैं; किन्तु वे कम गुणवाले हैं।

मात्रा—१ से ४ माशेतक।

गुणधर्म—मधुर, किञ्चित् तीक्ष्ण, उष्ण, पिच्छिल और लघु है। कफ, वात, अर्श, उवाक, अरुचि और पीनसमें हितकारक है। यूनानी मतानुसार यह मस्तिष्कपोषक, यकृत् प्लीहाको हितकारक और मूत्रवर्द्धक है।

नव्य मतानुसार तेजपातमें स्वेदल, मूत्रल, मलशुद्धिकर, स्तन्यवर्द्धक और कफघ्न गुण अवस्थित हैं।

उपयोग—तेजपात विशेषतः आमप्रकोप और कफप्रधान रोगोंमें प्रयोजित होता है। अपचन, उदरवात, उदरशूल, बार बार दस्त लगना आदि पचनेन्द्रियके विकार पर सब प्रकारके कफरोगोंमें तथा गर्भाशयकी शिथिलता दूर होनेसे गर्भ धारणके लिये दिया जाता है एवं इससे गर्भस्राव और गर्भपात न होनेमें सहायता मिल जाती है।

तेजपात उत्तेजक और वातहर होनेसे बालकोंके वातज, कफज और आमप्रकोपज, सब प्रकारके रोगोंमें निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त होता है।

इसका फाण्ट पिलानेसे पसीना आता है और मूत्रवृद्धि होती है। जिससे ज्वरकी पूर्वावस्थामें फाण्ट बनाकर पिलानेसे आम और विष दूर होकर ज्वरकी प्राप्ति रुक जाती है एवं मन्दज्वर आनेपर तेजपात और लताकरंजके भुने हुए बीजका चूर्ण देनेसे ज्वर शमन होजाता है।

तेजपातकी छाल और पीपलका चूर्णकर शहद मिलाकर सेवन करानेसे दुष्ट कफकी उत्पत्ति रुक जाती है। प्रतिश्याय दूर होता है और पाचन क्रिया सुधरती है। एवं श्वासप्रकोपपर तेजपातकी छाल और पीपलके चूर्णको अदरखके रस और शहदके साथ सेवन करानेसे श्वासरोगमें लाभ पहुँचता है।

प्रसवावस्थामें गर्भाशयमेंसे सब विकार बाहर न आया हो, गर्भाशयकी शिथिलताके हेतुसे भीतर रुक गया हो, तो त्रिजात (दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायचीके दाने) का चूर्ण या क्वाथ दिया जाता है।

सुजाकपर भी इसकी छालका सेवन कराया जाता है, और सांपोंके दर्दपर इसका लेप लगाया जाताहै। भूतकालमें छालका उपयोग कपीलाके रंगमें सहायता पहुँचानेके लिये होता था।

(७२) थूहर।

त्रिधाराथूहर—सं० वज्री, वज्रकण्टक, त्रिधारक। हिं० त्रिधाराथूहर, तीनधारा सेहुंड। वं० तेकांटा, वाजवरन, सिज। ओ० डोकानसिज। म० तीनधांरी निवडुंग। गु० त्रणधारियो थूहर। उर्दू झकुम। क० चद्रकल्लि। ता० चतुर कल्लि, तिरकल्लि। ते० वोम्भजेमुडु। मला० चतुरकल्लि। कों० होडिनिवोलं। अं० Triangular Sponge· ले० Euphorbia Antiquorum,.

खुरासानी थूहर—सं० स्नुक, वज्रद्रुमा, वहुक्षीरा। हिं० खुरासानी थूहर, डंडाथूहर, कोंपल सेहुंड। वं० लंका सिज। म० निवल, थोर, शेर, चिकाड़ा। गु० डांडलियो थोर, खरसाणी थोर। फा० झकुनिया। अ० अजफर झुकम। क० मोडुगली। ते० कल्लि चेमुडु। मला० तिरु कल्लि। को० वढि तिवळी। ले० Euphorbia Tirucalli

घोटाथूहर—सं० स्नुही। हिं० घोटाथूहर, सेहुंड, कांटाथूहर पत्तोंकी सेहुड। वं० मनसा सिज, पात सिज। म० वई निवडुंग। गु० भुंगरा थोर। पं० गंगिचू। क० एलेकल्लि। ता० इलैकल्लि। मला० इलकल्लि। ते० आकु जेमुडु। को० पाना निवलि। गुजरात और महाराष्ट्रमें इसे चौधारा थूहर भी कहते हैं। Euphorbia Nerifolia

कटथूहर—सं० वज्रवृक्ष, वज्री, सेहुण्ड, सुधा, समंतदुग्धा। हिं० कटथूहर, सिज। म० काटे निंवडुंग। गु० कांटालो थोर। ले० Euph orbia Nioula

परिचय—थूहरकी अनेक जाति, उपजाति भारतीय हैं। इनके अतिरिक्त कितनीक विदेशसे यहां आयी है। इन थूहरोंमेंसे यूफोर्बिया वर्गकी जो मुख्य जाति हैं, वे यहां दर्शायी हैं।

त्रिधाराथूहर—यह भारतके उष्ण प्रदेशमें होता है। प्रायः खेतोंकी वाड़के लिये लगायाजाता है। यह काँटेदार वृक्ष है। ऊंचाई १२ से २५ फीट, शाखा ३ से ५ युक्त। कांटे छोटे। अन्त भाग ३ से ६ सँधियुक्त। कलगो सामान्यतः छोटी।

फल आध इञ्च व्यासके। विहारमें फूल और फल दिसम्बर और जनवरीमें पान अगस्त, सितम्बर में।

खुरासानीथूहर—यह बंगाल और दक्षिणमें अधिक तथा पंजाब, ओरिसा राजपूताना आदिमें कम होता है। यह कांटे रहित जाति है। वृक्ष छोटा। ऊंचाई १२ से २० फीट। तना ६ से १० इञ्च व्यासका, हरा, नलीके समान गोल, ऊपरमें सघन शाखा युक्त। शाखा डण्डीके सदृश, चिकनी। पान १/४ से १/२ इञ्चका, कोमल शाखापर, फूल सूक्ष्म पीताभ, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें, कोमल शाखाके अन्तमें। फल १/४ इञ्चका गहरा भूरा। इसके सर्वाङ्गमेंसे दूध निकलता है। दूध कुछ समय रहनेपर पीला हो जाता है। यह जाति जगन्नाथपुरीमें नैसर्गिक होगई है।

घोटा थूहर—यह दक्षिणके पहाड़ी प्रदेशोंमें अधिक होता है। पंजाब, बंगाल विहार आदि देशोंमें खेतोंकी बाड़के लिये बोते हैं। यह झाड़ी या छोटा वृक्ष है। ऊंचाई १५ से २० फीट। शाखा ३/४ इञ्च व्यासकी, नलिकाकार या ५ धारी और तीक्ष्ण कांटेकी जोड़ी युक्त; कांटे गांठोंमेंसे निकलते हैं। कांटे १/२ इंचतक लम्बे। गांठोंपर ५ या न्यूनाधिक खड़ी पंक्ति होती है। पान ६ से १२ इंच लम्बे, मांसल, शाखाके अन्तमें फूल पीताभ कलगीमें। फल १/२ इंच चौड़ा। विहारमें फूल फरवरीसे एप्रिल तक। फल एप्रिलमें।

कटथूहर—यह उत्तम पश्चिम हिमालयके शुष्क पहाड़ोंपर तथा गुजरात, दक्षिण और सिन्धमें अधिक और पंजाब, राजपूताना आदिमें कम होता है। बड़ी झाड़ी या वृक्ष। ऊंचाई २० से ३० फीट। तना सीधा। घेरा ३-४ फीट। कांच फानुसके सदृश शाखाएं मुड़ती हुई ऊपर चढ़ती है। कभी-कभी झाड़ी ३० से १०० फीट घेरेकी। कांटे गांठोंमेंसे नहीं निकलते। पान दो कांटोंके बीचमेंसे निकलता है। पुष्पधारक सल्लकापर ३ फूल, बीचमें नर फूल, ऊपर नीचे द्विजातीय फूल। फूल पीला। पुष्पमें तन्तुशीर्ष बैंजनी और पराग पीली। फल ३ खण्डवाला। १/४ इञ्च चौड़ा।

उक्तजातियोंके अतिरिक्त बनस्पति शास्त्रकी दृष्टिसे अनेक जातिके थूहर हैं। यथा E Trigona. E. Ligula·ia. E. Royleana. E. Cattimand Co. E. Cerifera. E. Resinif·ra Etc. E. Royleana जाति में ५-७ धारी होती हैं। स्थूल दृष्टिसे चौधारा, पंचधारा आदि जाति पृथक मानी जाती है; किन्तु इनका अन्तर्भाव उक्त त्रिधारादिमें हो जाता है। इसयुफोर्बिया समूहके अतिरिक्त अन्य जाति समूहोंमेंभी थूहर हैं वे प्रायः विदेशी हैं।

मात्रा—त्रिधारा थूहरकी शाखाके टुकड़ेको गरम राखमें दवा, नरम होनेपर निकालकर १-२ माशे रस निचोड़ लेवें। सोहागे का फूला और शहद मिलाकर बालकों को दिया जाता है। खुरासानीथूहरका दूध १ से २ रत्ती शहदके साथ। छोटा थूहर मूलका चूर्ण २ से ४ रत्ती, रस २ से ५ बूँद, दूध १/२ से १ बूँद

गुणधर्म—विरेचन, तीक्ष्ण, दीपन, चरपरा और गुरु। शूल, अष्ठीला ग्रन्थि, आध्मान (आफरा), कफ, गुल्म, उदररोग, वातरोग, उन्माद, मोह, कुष्ठ, अर्श, शोथ, मेद, पथरी, पाण्डु, व्रणशोथ, ज्वर, प्लीहावृद्धि, विष, दूषी विष, इन सबको दूर करनेमें सहायक है।

थूहरका दूध उष्णवीर्य, स्निग्ध, चरपरा, हल्का तथा गुल्म, कुष्ठ, उदरादि रोगों और अन्य जीर्ण रोगियोंके विरेचनार्थ उपयोगी है।

त्रिधाराथूहर—इसका दूध सौम्य है। सामान्य गुणधर्म विरेचन, रक्त प्रसादन, ज्वरघ्न और कफहर है। यह बालकोंके कफ प्रकोपमें व्यवहृत होता है।

खोरासानी थूहर—इसका दूध विरेचन, विपाक्त और दाहक है। इसके सेवनसे वमन विरेचन होता है। त्वचापर फाला हो जाता है।

घोटा थूहर—इसका दूध तीव्र विरेचन है। वमन और विरेचन कराता है। शाखाका रस भी विरेचन है। मूलका रस उत्तेजक है। दूध अति विरेचन होनेसे दूधमें काल मिर्च, लौंग या चनेकी दाल भिगोकर फिर सुखा देते हैं या गोलियां बना लेते हैं उनको उपयोगमें लेते हैं। पान रुचिकर, चरपरे और अग्निप्रदीपक है। कुष्ठ, अष्ठीला, आध्मान, वातशूल, शोथ और उदररोगमें दिया जाता है। पानोंका रस मूत्रल है।

कटथूहर—विपाक्त, विरेचन, विदाही, वान्तिकर, शोथहर और कफघ्न। सामान्यतः गुण घोटाथूहरके समान।

कितनेक चिकित्सक बड़े मोटे थूहर या कट थूहरके तनेमें खड्डा करते हैं और लौंग या कालीमिर्च पतले कपड़ेकी थैलीमें भर गढ़ेमें रखकर ऊपरसे बन्द कर लेते हैं। २ सप्ताहके पश्चात् जब लौंग नरम होजायँ, तब निकालकर छायेमें सुखाते हैं। उसके सेवनसे उदरशुद्धि होती है।

सुधाकल्पः—

(१) सुधातैल—खुरासानी, घोटा अथवा कटथूहरकी शाखाके टुकड़े करके कूटें। फिर २ सेर लेवें। तिलका तैल १६ सेर और मट्ठा या दहीका जल ६४ सेर मिलाकर मंदाग्निपर पकावें। जब केवल दूध शेष रहे, तब कड़ाहीको उतारकर, जल्दी दूसरे बर्त्तनमें तैल निकाल लेवें। इस तैलकी मालिशसे जुड़े हुए साँधे छूटे होते हैं। खुजली दूर होती है। जहरी जन्तुके काटनेसे आया हुआ शोथ दूर होता है।

(२) सुधोक्षार—थूहरोंकी शाखाओंको जलाकर सफेद राख करें। उसे ४-८ गुने जलमें डाल देवें। पानी ऊपर नितर जाय, तब सम्हालपूर्वक निकाल लेवें। इस जलको गरम करनेसे नीचे क्षार बन जाता है। मात्रा २ से ४ रत्ती, कफको निकालनेके लिये घीके साथ। यह क्षार मस्सेपर लगानेसे मस्से गिर जाते हैं।

उपयोग—थूहरको संस्कृतमें सुधा भी कहते हैं। सुधा अर्थात् अमृत।

थूहर ग्रामोंके लिये अमृत सदृश दिव्य औषधि है। इसका उपयोग प्राचीन कालसे अनेक रोगोंमें वमन विरेचन रूपसे होरहा है।

प्लीहावृद्धि—त्रिधारा थूहरका दूध ५ बूंद शक्करके साथ मिलाकर ३-४ दिनतक सुबह सेवन करावें। इससे विरेचन होकर उदर शुद्धि होती है, क्षुधाप्रदीप्त होती है, ज्वर शमन होता है तथा प्लीहाका ह्रास होता है। यदि यकृद् वृद्धि हुई हो, तो उसपरभी यह औषधि उपकारक है।

सूचना—भोजनमें खिचड़ी या दहीभात देना चाहिये। यदि यकृद् वृद्धि हो तो भोजनमें घी, शक्कर अति कम देना चाहिये या बिलकुल नहीं देना चाहिये।

(२) उदररोग—चावलोंको त्रिधारा थूहरके दूधमें भिगोदेवें। फिर सुखा उसकी यवागू (कांजी) बनाकर ७ दिन तक सुबह सेवन करावें। इससे जल सदृश पतले दस्त होते हैं। जिससे रक्तमेंसे बहुत जल कम हो जाता है। फिर उदर्य्याकला और शोथका जल रक्तमें आकर्षित होजानेसे जलोदर और शोथ दूर होजाता है। इस तरह उदर शुद्धि होजानेसे प्लीहोदर, यकृद्दाल्युदर और कफोदर भी दूर होजाते हैं।

वक्तव्य—थूहरका दूध पहले दिन कम देना चाहिये। फिर शक्ति अनुसार मात्रा बढ़ानी चाहिये। सामान्यतः त्रिधारा थूहर दूध पहले दिन १ तोला लेसकते हैं। यह दूध सूखकर उबल जानेपर कितनेक सत्वका रूपान्तर होजाता है। यह बलवान शरीर वालोंके लिये प्रयोग किया जाता है।

(३) गांठ और शोथ—त्रिधारे थूहरके दूधका लेप करनेसे सूजन दूर होती है और गांठ बिखर जाती है।

(४) बालकके कफ प्रकोप और डब्बा—त्रिधारे थूहरकी शाखाको गरम राखमें दबा फिर रस निचोड़कर पिलानेसे एक वमन और एक विरेचन होकर बालक स्वस्थ होजाता है। यह औषधि बड़े मनुष्योंके लिये भी हितकारक है।

(५) सांधे जुड़ जाना—छोटा थूहर (चौधारे थूहर) की शाखाके टुकड़ेकर जलमें डालकर उबालें। पीड़ित मनुष्यके शरीरपर तैल लगाकर खाटके ऊपर १ २ बोरा बिछाकर सुलावें या बैठावें। शिरको खुला रक्खें। शेष भाग कम्बलसे ढक देवें फिर थूहरके जलके घड़ेको खाटके नीचे रखकर बफारा देवें। इससे पसीना आकर सांधे खुले होजाते हैं और रक्तमें रहा हुआ विष जल जाता है। स्वेदन करानेके पश्चात् गोबरीकी राख शरीरपर लगा लेवें।

सूचना—ठण्डा वायु और ठण्डा जल न लगने देवें। भोजनमें दूध भात या घी भात अथवा हलका भोजन देवें।

(६) कफप्रकोप—चौधारे थूहरकी शाखा रस २-४ बूंद मक्खन या शहदमें

मिलाकर देनेसे संग्रहीत कफ सरलतासे गिरने लगता है। जीर्ण श्वास रोगीके लिये मात्रा अधिक देनी चाहिये। रोगी निर्बल हो, तो पानोंका रस देना चाहिये। पानोंके रसके साथ अडूसेके पानोंका रस और सोहागेका फूला मिला लेनेपर लाभ अधिक होता है। सामान्य प्रकोप होनेपर थूहर शाखाओंको जला काली राख कर वह भी शहदके साथ दी जाती है।।

(७) काली खाँसी—त्रिधारा थूहरका दूध १-२ बूंद मक्खनमें मिलाकर चटा देनेसे कफ निकलकर गला साफ होजाता है।

(८) मूत्रदाह—मूत्रप्रसेक नलिकामें सूजन आनेपर पेशाबमें रुकावट होती है, मूत्र बूंद बूँद गिरता है अथवा जलन होती है। सुजाक हुआ हो तो पेशाबमें पीप भी आता है, उसपर बेसनमें दूध मिला गोली करके दी जाती है। इस दूधके हेतुसे मल-मूत्र, दोनोंकी शुद्धि होती है और मूत्रदाह दूर होता है।

(९) मलावरोध—थूहरके दूधके २ बूंद गुड़में मिलाकर देनेसे उदरशुद्धि होती है और भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है।

(१०) कामला—थूहरका दूध २ बूंद गुड़में मिलाकर सुबह देनेसे कामला शमन होजाता है। भोजनमें दूध भात। आवश्यकता अनुसार दूध २-३ दिन तक देना चाहिये।

(११) दुष्टव्रण—फोड़ेमेंसे अति दुर्गन्ध आती हो, उसमें कृमि हो गये हों, तो थूहरको पीस चटनी बना, निवाया करके बांधनेसे कृमि मर जाते हैं और व्रण शुद्ध होजाता है।

(१२) मस्से—शरीरके किसी भी भागमें मस्से हुए हों, उसके ऊपर सम्हाल पूर्वक दूध लगानेसे वह गिर जाते हैं। और स्थापनपर दूध लगनेसे त्वचा लाल हो-जाती है और कभी फाला हो जाता है।

(१३) कर्णशूल—थूहरकी शाखाको गरम करके निचोड़ें। फिर रसकी २-४ बूंद कानमें डालनेसे वेदना शांत होजाती है।

सूचना—कानको ठण्डी वायु और ठण्डा जल न लगने देवें।

(१४) आमवात—थूहरके कोमल पानोंको कतर कर या साग बनाकर खिलानेसे पुराने रोगमें उत्पन्न वेदना और संधिस्थानोंका शोथ दूर होजाता है।

सूचना—रोगीको गुड़ शक्कर नहीं देना चाहिये या अति कम कर देना चाहिये।

(१५) नारू—थूहरके मूलको पीस पुल्टिस बनाकर बांध देनेसे बाहर आया हुआ नारू जल्दी निकल आता है और वेदना दूर होजाती है। यह पुल्टिस सूजन, घाव और दाहपर भी लगायी जाती है।

(१६) उदरपीड़ा—खुरासानी या घोटा या कटथूहरके पानको कतर, नमकमें मिलाकर खिलानेसे उदर पीड़ा दूर होती है। उदरपर उसकी पुल्टिस रोटी सदृश

करके बांधी भी जाती है। रोटी बांधनेसे उदर नरम होजाता है। मलावरोध दूर होता है और वेदना शमन होजाती है।

(१७) विषप्रयोग—थूहरका दूध तीव्र विरेचन और वमन हो उतना देनेसे सब विष बाहर निकल जाता है।

(१८) पामा—अंगुलियोंके मूलपर या चूतड़पर पीले पूय वाले फाले होनेपर उनमें खूब खुजली चलती है। बालकको यह रोग होनेपर बार बार कुचल डालते हैं जिससे कष्ट बढ़ जाता है। उसके लिये खोरासानी थूहरकी शाखाओंको जलाकर काले कोयले करें। (धुआँ निकल जानेपर बरतन ढक देनेसे काले कोयले होजाते हैं।) उसमें तैल या धोया हुआ घी मिलाकर लगानेसे पामा दूर होजाती है।

(१९) व्युची—कितनेक व्युची वर्षोंतक दुःख देते रहते हैं। उसमें भयंकर खुजली चलती है। खुजानेपर उसमेंसे रक्त निकल आता है। उसके कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये पहले थूहरका दूध लगा लिया जाता है। जिससे वह पक जाता है। फिर उसपर कपूर, कत्था और धोया घी मिलाकर बनाया हुआ मलहम या और कोई मलहम लगानेसे वह मिट जाता है

खुरासानी थूहरकी लकड़ीके कोयलेका उपयोग बारूद बनानेमें होता है। इसके दूधमें पारदको ७ दिन खरल करनेसे पारदकी चंचलता कम होजाती है।

(७३) दारू हल्दी।

सं० दारु हरिद्रा, कालेयक, पीत चन्दन, दारुनिशा, दार्वी। हिं० दारु हल्दी, चित्र चोत्रा। बं० दारुहरिद्रा। गु० दारु हलदर। म० दारूहळद। पं० चित्र, सिम्लू। फा० दारु चोब। काश्मीर, केम्लु। ता० मला० मर मंजलें। ते० मनुपा सिपु। क० मरदारी सिन। ले० Berberis Arisata.

दारु हल्दीके फलोंको कश्मल और जीरिष्य कहते हैं। दारु हल्दी से रसौंत बनती है।

रसौंतके नाम सं० रसौंजन। गु० रसवन्ती। ब० रसवन्त। म० रसौंत फा० हुजुज हिन्दी। ले० रसांजनमु। क० रसांजन, ले० Extract Berberis.

परिचय—यह झाड़ी कांटेदार और सामान्यतः ८ फीट ऊंची होती है। ७-८ साल का पुराना गुल्म होने पर उंचाई कुछ अधिक। दारु हल्दी की अनेक उपजातियां है। हुकरने १२ लिखी हैं। लकड़ी पीली और कठोर। फूल भी पीले। काँटे बहुत। फूलोंके गुच्छे खड़े। फल अधिक, मांसल नहीं। शाखाकी छाल धूसर, चिकनी और तेजस्वी, फूल मय मासमें आते हैं। मूलमेंसे अनेक शाखा फूटती हैं। सब जमीनकी ओर झुकी रहती है, ताजी लकड़ी सुवास युक्त। स्वाद कड़ुवा, कसैला।

इसके सत्व दारुहरिद्रक (Berberine) का डाक्टरीमें उपयोग होता है। यह रक्त शोधक होनेसे चर्मरोगों पर सफल औषधि है।

रसाञ्जन विधि—दारु हल्दीके मूल और शाखाओंके छोटे छोटे टुकड़ेको मोटा मोटा कूटकर १६ गुणे जलमें उबालकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर क्वाथको छानकर मन्दाग्निपर गुड़के समान घन कर लेवें। इसे पानोंके दोनें बनाकर उनमें घन भर देते हैं। जिससे शीतल होनेपर रसौंत जमकर दृढ़ हो जाती है। यद्यपि शास्त्रकारोंने उस क्वाथके साथ समान दूध (अजादुग्ध) मिलानेका विधान किया है। तथापि वर्त्तमानमें रसौंत बनानेवाले दूध नहीं मिलाते। यदि दूध मिलाकर तैयार करते हैं, तो वह रसौंत दीर्घ कालतक अच्छी नहीं रहती। उसमें सूक्ष्मकीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं।

वर्त्तमानमें बाजारसे खरीदकी हुई रसौंतमें धूल, मिट्टी, आदिका मेल होता है। अतः उसे शुद्ध करके उपयोगमें लेना चाहिए। शुद्ध करनेके लिए रसौंतको कूट ४-८ गुने गरम जलमें मिलावें। फिर जलमें बिलकुल मिल जानेपर कपड़ेसे छान लेवें। यदि बिना छने हुए गादमें रसौंतका अंश हो, तो और गरम जल मिला-छान लेवें। पश्चात् सब छने हुए जलको १५-२० मिनट स्थिर रहने देवें धूलिका जो भाग तले में बैठ गया है उसे हटा देवें। तदनन्तर जलको कड़ाही या भगौनेमें भर ऊपर पतला कपड़ा बांधकर सूर्यके तापमें रख देवें, ४-६ दिनमें पुनः घन बन जानेपर रसांजन विशुद्ध बन जाता है, यह नेत्रमें डालने और खिलानेके उपयोगमें आता है। अच्छी रसौंत काले रंगकी, अफीमके समान नरम होती है, जल मिलाने पर रंग पीला बन जाता है, शुद्ध होनेपर सब जलमें मिल जाती है।

मात्रा—दारु हल्दीके मूलकी छाल १० से १५ रत्ती, सुगन्धित द्रव्योंके साथ। रसौंत ४ से ८ रत्ती तक। अर्क आध से १ ड्राम तक दिनमें दो या तीन बार। क्वाथ दोदो औंस चार-चार घण्टे पर।

गुणधर्म—दारुहल्दी कड़वी, चरपरी और उष्ण है। यह व्रण, प्रमेह, कण्डू, विसर्प, चर्मरोग, विष विकार, कर्णरोग और नेत्र रोगको दूर करता है। इसमें रुक्ष और मुख विकार नाशक गुण भी रहे हैं। रसाञ्जन शीतल, कड़वा, वर्ण कारक तथा रक्त विकार, पित्तप्रकोप, कफ वृद्धि, हिक्का, श्वास, मुखरोग; और विषप्रकोपका नाशक है। यह रसमें उष्ण, चक्षुष्य, कडुवा और चरपरा है, तथा विष, छर्दि हिक्काके नाशक और हृदयको हित कारक है।

रसाञ्जन अभिष्यन्द कुकूणक (रोहे) नेत्रमेंसे पूयस्राव, नेत्र दाह और नेत्र शूल आदि रोगोंमें बालक और बड़े, सबको अंजन करनेमें निर्भय और उत्तम लाभप्रद है। रसाञ्जन बालकों के लिए अति हितावह औषधि है। इसके कड़वे और चरपरे रस रसके हेतुसे दूध का सम्यक पचन होता है शौच शुद्धि होती रहती है, उदर कृमि नष्ट होते हैं; नये कृमिकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है; और स्वास्थ्य बना रहता है।

दारु हल्दी के फल—(जरिष्क) शीतल, ग्राही, तृषाशामक, रक्तशोधक,

दीपन, पाचन, पित्तशामक, दाहशामक और कफकर है। सगर्भाकी वमन, अतिसार, नाड़ी व्रण और त्वचा रोगोंको दूर करता है। इन फलोंमेंसे शर्वत, सिरका और सिर्कंजबीन (सरकेमेंसे बनाया हुआ शर्वत) बनाते हैं।

इसका सिरका पितज्वर, अरुचि, कामला, तृषा, शीत लगनेसे हुए अतिसार, मोतीझरा और अन्य जहरी ज्वर तथा रक्तपित्त (स्कर्वी) में दिया जाता है।

शर्बत या प्रवाही घन पुराना कब्ज, कण्ठ शोथ और स्वर भंगपर लाभ दायक है। इसका स्वरस भोजनके शाक-दाल आदिमें स्वादके लिए डाला जाता है।

डॉक्टर देसाई के मत अनुसार दारु हल्दी, कड़वी, उष्ण, कटु पौष्टिक, सौम्य, ग्राही, नियत कालिक ज्वर प्रतिबन्धक (Anti Periodic) स्वेदजनक ज्वरहर, श्लेष्मघ्न और त्वग्दोषर है।

रसौत शोथघ्न, श्लेष्महर, नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक, स्वेदल, ज्वरघ्न, और सारक है। जिरिष्क शीतल, ग्राही, अम्ल और रुचिकर है।

दारु हल्दी मात्रामें कटु पौष्टिक है, दीपन और सौम्य ग्राही है, इसका यह कटु पौष्टिक गुण कलंब जड़ (Iateorsisa Palnata) और करू नीलकंठ Gent ana kurrod के समान है। बड़ी मात्रामें यह सबल स्वेद-जनक, ज्वरघ्न तथा सौम्य सारक गुण दर्शाती है। यदि मात्रा अत्यधिक दी जाय तो उदर में मरोड़ा आकर जुलाब होने लगता है। बड़ी मात्रामें यह नियत कालिक ज्वर प्रतिबन्धक है, यह धर्म सिंकोना के ज्वरघ्न द्रव्यके समान है; किन्तु यह धर्म क्विनाईन की अपेक्षा कम दर्जेका है; तथापि क्विनाइन और सिंकोनासे रोगोको जैसा त्रास होता है, वैसा इससे नहीं होता। एवं प्लीहा वृद्धि का संकोच करनेका कार्य भी इससे क्विनाइनके समान होता है।

इससे शोथ का बल कम हो जाता है, एवं श्लेष्मा, पूय आदिका भी ह्रास होता है। सुरमासे शोथप्रधान ज्वरकी प्रथमावस्थामें जैसा लाभ होता है, वैसा ही इससे होता है।

दारू हल्दीका सत्व दारू हरिद्रिक मूत्र पिण्डोंमेंसे मूत्रके साथ और त्वचामेंसे प्रस्वेदके साथ बाहर निकलता है। बाहर निकलने पर त्वचा की विनिमय क्रिया सुधर जाती है। रुका हुआ मूत्र और प्रस्वेद, जो रक्तमें विष वृद्धि करते रहते हैं, वे दूर हो जाने से ज्वर, शोथ, रक्त विकार और चर्म रोग दूर हो जाते हैं।

दारू हरिद्रा कल्पः—

—(१) दार्वी अर्क—दारु हल्दी का चूर्ण १० भाग और शराब ९० भाग (६०%) दोनों को मिलाकर बोतल में भर एक सप्ताह तक रहने देवें। दिनमें ३-४ या अधिक बार बोतल को हिला देवें फिर उसे छान लेवें। शराब १०० भागमें जितनी कम हो, उतनी शराब दारू हल्दीमें मिलाकर छान लेवें। इस तरह २ औंस दारु

हल्दीके चूर्ण से १ पिण्ट (२० औंस) अर्क तैयार होता है। इस अर्कको डॉक्टरीमें टिञ्चुरा बर्बे रिडिस (Tinct. Berberidis) संज्ञा दी है। यह अर्क कटु पौष्टिक (आमाशय पौष्टिक) रुप से २ से १ ड्राम तक और शीत ज्वर की पाली को रोकनेके लिए ६ ड्राम शीत लगने के २-३ घन्टे पहले दिया जाता है।

(२) दार्व्यादि क्वाथ—दारू हल्दीके जौ कूट चूर्ण १५ तोलेको १२० तोले जलमें मिला बन्द पात्रमें भर मन्दाग्नि पर उबालें। जल लग-भग ५० तोले शेष रहने पर उतार छानकर बोतलों में भर लेवें।

(३) अग्नि सारादिवटी—रसौंत १२ तोले और कपूर १ तोला मिला मूलीके स्वरस में ६ घण्टे खरल कर २-२ रत्ती गोलियां बना लेवें। इन गोलियों को दाल चीनी के चूर्णमें डालते जाँय; और तश्तरी को बार-बार हिलाते जांय। जिससे गोलिया परस्पर चिपक न जांय। मात्रा २ से ४ गोली, दिनमें ३ बार जल के साथ निगलवा देवें। इस वटीके सेवनसे अर्शका रक्त स्राव बन्द हो जाता है। एवं नाड़ी व्रण, सगर्भाको वमन और ज्वर दूर होते हैं।

उपयोग—दारु हल्दी, मूल्यवान औषधि है। इसका उपयोग ज्वरमें अति विशेष परिमाण में होता है, दारु हल्दी की अपेक्षा रसौंत का व्यवहार करना, यह विशेष श्रेयस्कर है। अर्क या क्वाथ देनेसे भी चलता है, तथापि रसौंतसे जैसा लाभ पहुँचता है, वैसा अर्क और क्वाथ से नहीं मिलता।

तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें ३-४ दिनतक लगातार दिनमें ३ बार रसौंतका सेवन करानेसे ज्वर रुक जाता है। रसांजन देनेसे प्रस्वेद आकर त्वचा मुलायम और गीली बन जाती है। अन्त्रमें रहा हुआ दोष दूर हो जाता है। क्षुधा लगती है और पाचनशक्ति प्रबल बनती है, रसौंतमें कीटाणुनाशक गुण होनेसे व्रणके भीतरके जन्तुओंका नाश करनेके और व्रणका शोधन करनेके लिये लेप और मलहमोंमें मिलाई जाती है। एवं रक्त संग्राहक और पित्तरोधक गुण होनेसे रक्तार्श, रक्तप्रदर, प्रवाहिका, कामला, उदरकृमि आदि पर खिलाई जाती है। अनुपान रूपसे जल या मक्खन दिया जाता है।

शारीरिक स्राव और मलकी अधिकता होनेपर दारू हल्दी देनेका अति रिवाज है। इससे श्लेष्मा, पूय आदि कम हो जाते हैं। तथा त्वचा और त्वचाके निम्नस्थ रसग्रन्थियोंकी चयापचय क्रिया सुधरती है। जिससे फिरंग, गण्डमाला, अपची, नाड़ी-व्रण, भगंदर व्रण और विसर्प रोगमें रसौंतका सेवन कराने और बाह्य उपचारमें मिला देनेमें अच्छा लाभ पहुँच जाता है। एवं इसके सेवनसे त्वचा रोगमें भी कण्डु कम होती है।

शोथपर रसौंतका लेप किया जाता है। ग्रन्थि शोथ (Boil) होनेपर रसौंत

और कपूरको मक्खनमें मिलाकर मोटा-मोटा लेप किया जाता है एवं व्रण फूट गया हो, तो रसौंतके लेपसे जल्दी घावभर जाता है।

कितनेक चिकित्सक प्लीहावृद्धिपर अनेक रोगियोंको रसांजन कासीसके साथ देते हैं। परिणाममें अच्छा लाभ पहुँचता है। इसके सेवनसे शिरदर्द और कोष्ठबद्धता भी नहीं होती।

(१) विषमज्वर—रसौंतकी २-२ रत्तीकी ४ गोलियाँ जलके साथ दिनमें ३ बार निगलवा देनेसे आमाशयमें उष्णताका भास होताहै। क्षुधा लगती है। अन्न पचन होता है। शौच शुद्धि होती है; और त्वचा एक समान आर्द्र रहती है। विषम-ज्वरके सब प्रकारोंमें रसौंत लाभदायक है एवं प्लीहावृद्धि हुई हो, तो प्लीहा भी कम हो जातीहै। यद्यपि रसौंतमें क्विनाइनकी अपेक्षा विषमज्वरको रोकनेकी शक्ति कम है, तथापि क्विनाईन सेवन करनेपर शिरदर्द, बधिरता, निद्रानाश और मलावरोध आदि विकार जिस तरह उपस्थित होते हैं, उस तरह दारू हल्दी या रसौंत सेवनसे नहीं होते। यह गुण क्विनाईनकी अपेक्षा विशेष है।

(१) सूचना—चातुर्थिकज्वरकी चिकित्सामें रसौंत देनेके पहले पंचसकार, एरण्ड तैल, ज्वरकेसरी या अन्य विरेचन औषधि देकर उदर शुद्धिकर लेनी चाहिए। एवं प्रातःकाल खालीपेट रसौंत १ से २ माशे तक देनी चाहिए। फिर रोगीको खूब कपड़े ओढाकर लेटा देना चाहिए। कुछ समयके बाद रोगीको अति तृषा लगती है; और बेचैनी होती है, फिरभी जल नहीं पिलाना चाहिए। लग भग १ घण्टा बाद रोगीको प्रस्वेद आने लगता है; तथा रोगीको अशक्तता आ जातीहै। पश्चात् अंगको पोंछकर चाय, दूध, मोसंबीका रस पिलाना चाहिए। थोड़े समयमें बहुधा रोगीको निद्रा आ जाती है। फिर उठनेपर प्रकृति स्वस्थ हो जाती है; और बुखारकी पाली टल जाती है।

(२) रसौंतमें एक दोषभी है, वह यह है कि, जिस रोगीको भूतकाल में पेचिश रक्तस्राव सह, हुआ हो उनको आमातिसार प्रवाहिका हो जानेकी भीति रहती है। अतः प्रवाहिका जिनको बार बार सताता हो, उनको रसौंत मिश्रित औषधि न दी जाय, तो अच्छा।

(२) सविरामज्वर—दार्वी अर्क सविरामज्वरोंमें (Intermittent fevers) में अन्त्र प्रसेकका शोधन करने और विषको निकाल देनेके लिए डाक्टरीमें प्रयोजित होता है। अन्त्र शोधन होने और विष का निवारण हो जानेसे ज्वर सरलतासे दूर हो जाता है।

दार्वी अर्क सेवन करानेपर अनेकोंको जँभाई आती रहती है; परन्तु ज्वर नहीं आता। तथा यकृत्प्लीहाकी वृद्धि कम होती है।

सामान्यज्वरमें यदि पित्तकी प्रधानता हो अर्थात् बार बार उबासी आना, वमन, अतिसार, शिरदर्द, अति थकावट, प्रस्वेद आना, बेचैनी और प्यास अधिक लगना आदि लक्षण हों, तो दारूहल्दी का क्वाथ देना चाहिए। यदि कब्ज हो तो दारूहल्दीके साथमें चिरायता (या चिरायता और कुटकी) मिला देना चाहिए।

(३) ज्वर जनित निर्बलता—ज्वरके पश्चात् आनेवाली अशक्तामें दारू-हल्दी अति लाभदायक है। शीतज्वरके विषसे या आमाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अपचन (अजीर्ण रोग) में आमाशय या अन्त्रका प्रसेक होनेपर दारूहल्दीका क्वाथ देनेसे प्रसेकावस्था दूर होती है। आमाशय और अन्त्रकी शक्ति बढ़ जाती है। इस व्याधिपर दारुहल्दीकी मात्रा कम देनी चाहिए। और साथमें सौंफ, सोया, लौंग, दाल चीनी, अथवा नीलगिरी या अन्य औषधिके तैलमेंसे किसी सुगन्धित तैलको मिला देना चाहिए।

(४) सगर्भा की वमन—अन्न जल सेवन करनेपर थोड़ेही समयमें वान्ति होकर निकल जाती हो, तो दार्वी अर्क या रसौंत का सेवन करानेपर वमन निवृत्त हो जाती है।

(५) अत्यार्तव—प्रदर और गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अत्यार्तवमें उपयुक्त औषधके साथ अनुपान रूपसे दारूहल्दी का क्वाथ देनेसे रोग का निवारण होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है। दारूहल्दीमें मूत्रल गुण होनेसे बस्ति शोथमें आँवलाके साथ दी जाती है।

(६) रक्तार्श—२-२ रत्ती रसौंतकी २-२ गोली जलके साथ निगलवा देवें और ऊपर मक्खन-मिश्री खिलावें; तथा ३-४ माशे रसौंत को १० तोले जलमें मिला उससे मस्से धोने या उसपर रसौंतके जल का फोहा बाँध देनेसे रक्तस्राव, अर्शशोथ, और अर्श की वेदना, ये सब दूर हो जाते हैं। पहले कही हुई अग्नि सारादि वटीभी अर्शपर हितकारक है।

सूचना—अतिसार या यकृत् प्रदाह होनेपर रसौंत का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(७) नेत्र शोथ—रसौंतका लेप नेत्रके ऊपर किया जाता है; नेत्रपाक होने-पर रसौंत, अफीम और फिटकरीके फूलेको घिसकर अञ्जन किया जाता और नेत्रपर भी लेप किया जाता है।

सूचना—रोग बढ़ रहा हो, ऐसी अवस्थामें अफीमका उपयोग न करना ही अच्छा माना जायगा। नेत्र पाक होनेपर शीतल जल नेत्रको नहीं लगाना चाहिए, तथा शीतल वायुका सेवन भी नहीं करना चाहिए। नेत्रों-को गरम जलमें कपड़े या रूई भिगोकर धो लेना चाहिए।

(८) कर्णपाक—रसौंतका चूर्ण डाला जाता है। जिससे पूय दूर होकर

रोग निवृत्त हो जाता है। कान पकनेपर कानोंको शीतलवायु और शीतल जल न लगे, यह सम्हालना चाहिए एवं मीठा अधिक नहीं खाना चाहिए।

(९) मुखपाक—रसौंत को जल मिलाकर या दारूहल्दीके क्वाथसे दिनमें ३ बार कुल्ले करानेसे जल्दी आराम हो जाता है।

(१०) भगंदर और दुष्ट नाड़ीव्रण—जिनमेंसे दीर्घ कालसे पूयस्राव होता रहता हो, उनके लिये थूहर और आकके दूधको मिला उसमें दारूहल्दीकी छाल का कपड़ छान चूर्ण (या रसांजन) मिलाकर बत्ती बनावें। फिर उस बत्तीको छिद्रमें भर देवें पश्चात् ऊपर रसौंतका लेप लगाकर पट्टी बाँधते रहनेसे पूय सह सड़ा मांस निकल जाता है, तथा कीड़े मर जाते हैं। फिर थोड़े ही दिनोंमें भगंदर और नाड़ी व्रण भर जाते हैं।

(११) गर्भाशय की शिथिलता—गर्भाशय की शिथिलता, योनिप्रदाह और गुदभ्रंश रोगमें रसौंतके जलकी पिचकारी लगाई जाती है,। जिससे गर्भाशय दृढ़ हो जाता है; योनिके भीतर की दुर्गन्ध दूर होती है; तथा काँच निकलना बन्द हो जाता है।

(१२) तृषा—दारूहल्दीके फलोंका सिरका या शर्बत पित्त ज्वरमें तृषा शमनार्थ दिया जाता है।

(१३) कामला—रक्तमें गये हुए पित्तको जलाने और पित्त स्रावको व्यवस्थित करनेके लिये दारु हरिद्रा का सिरका देवें या दारूहल्दीके स्वरस या क्वाथमें हल्दी डालकर पिलावें।

(१४) पिष्ट मेह—पेशाबमें आटेके समान पदार्थ आनेपर हल्दी और दारू हल्दीका क्वाथ देनेका सुश्रुत संहिताकारने विधान किया है। प्रातःसायं दिनमें दो बार पथ्य सह सेवन करानेसे थोड़ दिनोंमें लाभ हो जाता है। भोजन लघु और पथ्य लेना चाहिये; और प्रातः सायं शुद्ध वायुमें घूमना चाहिए अथवा दारू हल्दीका ४-४ मासे चूर्ण दिनमें २ बार मिला चाटकर ऊपर आँवलेका रस आध आध तोला (या हिम) प्रातः सायं पीते रहनेसे भी प्रमेह दूर हो जाता है।

(७४) दालचीनी।

सं० त्वच, चोच, मुखशोध्यं, गुड़त्वक्। हिं० दालचीनी, दारचीनी। बं० दारुचीनी, गुड्त्वक्। आं० दालचीनी। गु० तज। म० कलमी, दालचीनी। पं० दारचीनी, किर्फा। फा० सलीखा दार्चिना। ता० मला० लवंगपत्ते। ते० लवंगपत्ता। क० लवंगपत्तो। अं० Cinnamon bark.। ले० Cinnamomum।

ले० Cinnamomum Zeylaricum (वृक्षका नाम)

परिचय—इस जातिके वृक्ष चीन, जापान, सिंहलद्वीप, ब्रह्मदेश और मद्रास इलाकेमें हैं। दालचीनीकी सब मिलकर १३० जाति हूकरने लिखी हैं। इन सबमें चीनमें होनेवाली दालचीनी श्रेष्ठ है। सिंगापुरसे आनेवाली दालचीनी (शाखाकी पतली छाल) अधिक तेज, पतली और अधिक सुगन्धवाली होती है। इसके पान भी सुगन्धवाले हैं। इसके अपक्व फलोंको अंग्रेजीमें केसिया बड्स (Cassia buds) कहते हैं। इसमें छालके समान, किन्तु अधिक चरपरा स्वाद है। ये फल काले, गोल और कालीमिर्चसे कुछ बड़े होते हैं। यूनानीवाले उसे ही काली नागकेशर कहते हैं। इस दालचीनीके अतिरिक्त हिमालयके तेजपातकी छाल आयी है उसे पहाड़ी तज कहते हैं, वह कनिष्ठ कोटिकी दालचीनी है।

छाल और फलोंमेंसे तैल निकलता है। ८० पौण्ड दालचीनीमेंसे २॥ प्रतिशत उड्डयन तैल और ५॥ प्रतिशत स्थिर तैल मिलता है। पुष्पोंमेंसे अर्क और इत्र निकालते हैं।

दालचीनीका तैल नया होनेपर पीताभ रहता है। पुराना होनेपर रक्ताभ-पिंगल हो जाता है। यह जलमें डूब जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व १०·३० तक होता है।

मात्रा—दालचीनी चूर्ण ४ से १० रत्ती। तैल १ से ३ बूँद।

गुणधर्म—धन्वन्तरि निघण्टुकारके मतानुसार दालचीनी लघु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा कफ, वात और विषकी नाशक है। यह कण्ठ और मुखके विकारोंको दूर करती है। मस्तिष्क पीड़ाको शान्त करती है, एवं मूत्राशयका शोधन करती है। राजनिघण्टुकारने कफकास नाशक, नये आमकी शामक, कण्ठ शुद्धिकर और लघु कहा है।

नव्यमतानुसार दालचीनी अति उपयोगी, सुगन्धवाली ओषधि है। यह उष्ण, सुगन्धयुक्त, दीपन, पाचन, वातहर, स्तम्भन, गर्भाशयको उत्तेजक और किञ्चित्-आकुंचक, शोणितस्थापन, रक्तमें श्वेताणुवर्द्धक और शारीरिक उत्तेजक है। यह हृदयकी निर्बलता और अतिसारकी नाशक है। उबाक और वमनको दूर करती है।

दालचीनीका तैल वेदनास्थापक, व्रणशोधक और व्रणरोपण है।

त्वक् कल्प—

(१) त्वक्पानीय—दालचीनीको १० गुन जलमें मिला नलिकायन्त्र द्वारा अर्क खेंच लेवें। मात्रा १ से २ औंस। इसे डाक्टरीमें एक्वा सिनेमोमी (Aqua Cinnamomi) संज्ञा दी है।

नलिकायन्त्रमें अर्क निकालनेके अतिरिक्त तैलसे भी त्वक् पानीय तैयार किया जाता है। दालचीनीका तैल १९ बूंद, मेगनेशिया कार्बोनेट ५६ ग्रेन और वाष्पजल ६० औंस लेवें। पहले तैलको मेगनेशियाके साथ खरलमें मिला लेवें। फिर शनैः शनैः जल मिला चलाकर त्वक् पानीय बना लेवें। उसे छान कर उपयोगमें लेवें। मात्रा १ से २ औंस।

(२) त्वचादिचूर्ण—(Pulo Cinnamomi Co.) दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने और सोंठ, समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण बना लेवें। मात्रा ५ से ३० रत्ती। अग्निमांद्य, आम प्रकोप और कीटाणुका नाशक, और मधुरामें हितावह।

(३) त्रिजात—आयुर्वेदमें दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायचीके दाने, इन तीनोंको मिलाया है। इस मिश्रणको त्रिजात कहते हैं। इसके चूर्णसे मंजन और क्वाथसे कुल्ले करनेसे दांतकी पीड़ा शमन होती है; जिह्वाकी शून्यता निवृत्त होती है। मुखका बेस्वादुपन दूर होता है; तथा जिह्वा और कण्ठमें लगा हुआ मल साफ हो जाता है।

नित्य दाँतोंको साफ करनेके लिए मञ्जन बनाते हैं; उसमें त्रिजात मिला देनेसे दांतोंको कीटाणुओंसे हानि नहीं पहुँचती। भोजनके पहले त्रिजातका चूर्ण ३-३ माशे शहदके साथ सेवन करते रहनेसे अरुचि और अग्निमान्द्य दूर होकर क्षुधा प्रदीप्त होती है। आम जल जाते हैं एवं उबाक, वमन और अपचनकी भी निवृत्ति होती है।

(४) कासमर्दन वटी—दालचीनी, मुलहठी, सौंफ, बीज निकाली हुई मुनक्का और मिश्री, ये सब १-१ तोला तथा जलमें भिगोकर छिल्टा निकाली हुई बादामकी गिरी ५ तोले मिला जलके साथ बारीक पीस १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। फिर १-१ गोली मुंहमें रखकर रस चूसते रहनेसे शुष्क कास, जिसमें २-५ मिनट तक वेग पूर्वक कास चलती है फिर थोड़ा झाग निकलता है, वह सत्वर निवृत्ति होती है। एक दिनमें २० गोलीतक मुँहमें रख सकते हैं।

(५) त्वक्कषाय—दालचीनीका चूर्ण ३॥ माशे और छोटी हरड़का चूर्ण १ तोला लेकर जल १० तोलेमें १० मिनटतक उबालें। फिर छान निवाया रहनेपर पिला देवें। इससे शौचशुद्धि होती है। उदरमें वायु भरा हो वह दूर होजाता है। कीटाणु नष्ट होते हैं। अन्नपर रुचि होती है और मानसिक प्रसन्नता होती है।

(६) त्वचादि क्वाथ—दालचीनीका चूर्ण ३॥ माशे, कत्था ११। माशे, उबलता हुआ जल १० औंस लेवें। सबको मिलाकर २ घण्टे उबालें। चतुर्थांश शेष रहनेपर छान लेवें। मात्रा २ से ३ ड्राम, दिनमें ३ बार। इनके अतिरिक्त आयुर्वेदिक चातुर्जात आदि चूर्ण, गुटिका, पाक आसव आदि अनेक प्रयोगमें प्राचीन भूतकालसे दालचीनीका उपयोग हो रहा है।

उपयोग—दालचीनी उत्तम दीपन औषधि है। इसके सेवनसे आमाशयकी श्लैष्मिक कलाको उत्तेजना मिलाकर आमाशयिक रस बढ़ जाता है। जिससे अन्नका पचन होता है। यह उष्ण होनेसे उदरमें वायुकी उत्पत्ति नहीं होती; और संचित वायु निकल जाती है। इस धर्मके हेतुसे आमाशयके विकारोंपर इसका उपयोग अधिक हितावह है।

दालचीनीमें ग्राही गुण होनेसे अन्त्रके विकारोंपर उपयोगी है। अतिसार,

पुराना पेचिस और ग्रहणीरोगमें अन्य औषधिके साथ इसे मिला देनेसे वायुका संग्रह नहीं होता एवं दस्त कम लगते हैं।

आफरा और अन्त्राक्षेप आदि रोगोंमें यह विलक्षण फलप्रद है। जीर्ण अतिसार रोगमें यह ग्राही रूपसे लाभ पहुँचाती है। चाकमिट्टी और अफीमके साथ दालचीनी दी जाती है।

दालचीनीसे रक्तमें श्वेताणु वृद्धि होती है, यह गुण कितनेक रोगोंमें अति हितावह है। दालचीनीमें सिनेमिक एसिड अवस्थित होनेसे कफकास, कण्ठरोग, यक्ष्मा और राजयक्ष्माके कीटाणुओंसे उत्पन्न विकारोंमें दालचीनी और दालचीनीके तैलका परिणाम कीटाणुओंपर सत्वर होता है। रक्तपित्तमें भी दालचीनीसे लाभ पहुंचता है। इस हेतुसे दालचीनी मिला हुआ सितोपलादि चूर्ण प्रयोजित होता है। दालचीनीका क्वाथ देनेसे रक्तस्राव बन्द होता है।

गर्भाशयपर दालचीनीका असर उत्तेजक होता है। फिर गर्भाशयका संकोच होता है। इस हेतुसे प्रसवकालमें प्रसवपीड़ा बढ़नेपर और रजःस्रावमें गर्भाशयकी मांसपेशियोंकी शिथिलता दूर करानेके लिये दालचीनीका उपयोग किया जाता है। अत्यार्तवमें अशोकके साथ और प्रसवकालमें पीपलामूल और भांगके साथ दालचीनी दी जाती है। सूतिकाको प्रारम्भमें कुछ दिनोंतक वातप्रकोप न होने और कीटाणुओंसे संरक्षणके लिये दालचीनी और पीपलामूलका चूर्ण दिया जाता है।

गर्भाशयकी मांसपेशियां क्षीण हो जानेपर प्रसवकालमें विलम्ब होनेपर इसका अर्क ४-४ घण्टेके अन्तरपर देते रहनेसे गर्भाशय संकुचित होकर लाभ पहुँच जाता है। एवं मासिक धर्ममें अधिक रजःस्राव होनेपर दालचीनीका तैल देनेसे विशेष फल दर्शाता है।

दांतोंमें क्षत (कृमिदन्तक) होनेपर, गह्वरके भीतर दालचीनीके तैलका फोहा रखनेसे वेदना निवृत्त होती है; और दन्तगह्वरकी शुद्धि होती है।

ज्वरमें रोगियोंकी चेतनाशक्ति बढ़ानेके लिये कपूरके समान दालचीनीका व्यवहार किया जाता है परन्तु इस कार्यके लिये दालचीनी कपूरकी अपेक्षा अतिन्यून गुण दर्शाती है।

(१) शूलसह नूतन आमातिसार—दालचीनी १॥ माशे, बेलगिरी ३ माशे और राल १॥ माशेको मिला गुड़ मिले दहीके साथ देनेसे सत्वर लाभ हो जाता है; अथवा उदरमें दूषित मल संग्रहीत न हो, तो दस्त बन्द करनेके लिये दालचीनी और सफेद कत्थेका चूर्ण ३-३ रत्ती मिलाकर दस्त लगनेपर शहदके साथ बार बार देते रहनेसे अतिसार बन्द हो जाता है।

(२) वमन—आमाशयिक पित्त प्रकुपित होनेपर उबाक और वमन होने लगती है। इस पर इसके फाण्ट या अर्क देनेसे विकार शान्त हो जाता है; अथवा

दालचीनी और लौंगका क्वाथ देनेसे या दालचीनीके चूर्णको थोड़े शहदमें मिलाकर चटानेसे भी लाभ हो जाता है।

(३) क्षयक्षत—राजयक्ष्माके कीटाणुओंसे उत्पन्न व्रणपर दालचीनीके तैलका फोहा बांधने या दालचीनी तैलयुक्त पुल्टिस बांधनेसे वह शुद्ध हो जाता है।

(४) नूतन प्रतिश्याय—नया जुकाम, जिसमें बारबार नाकसे जल टपकता रहता है, कुछ ज्वर (हरारत) भी रहता है; बारबार छींके आती रहती है; नाक लाल हो जाता है; उसपर चाय पिलाते हैं। उस चायमें त्वगादि चूर्ण १॥-१॥ माशे डालकर पिलानेसे विशेष लाभ पहुँचता है।

(५) शीतप्रकोपज शिरदर्द—शीत लगनेसे शिरदर्द होनेपर दालचीनी को जलमें घिस निवायाकर कपालपर लेप करने या दालचीनीके तैलका लेप करनेसे शिरदर्द दूर हो जाता है; किन्तु तैल नेत्रमें न चला जाय, यह सम्हालना चाहिये; अन्यथा नेत्रमें कुछ जलन हो जाती है।

(६) आनाह—उदरमें मल संग्रहीत होने और अधोवायुकी रुकावट होनेपर रात्रिको त्वक्‌कषाय देनेसे सुबह शौचशुद्धि होती है, अग्निप्रदीप्त होती है, उदरका भारीपन दूर होता है और मानसिक प्रसन्नता होती है।

(७) अतिसार—अपचन होकर बार बार कुछ पतले दस्त होते हों, तो त्वचादि क्वाथ पिलाना चाहिये। २-२ ड्राम दिनमें ३ बार देते रहनेसे २-३ दिनमें स्वास्थ्य सुधर जाता है।

(७९) दूधी।

सं० दुग्धफेनी, पयस्विनी, लूतारी, व्रणकेतु, नागार्जुनी। हिं० बड़ी दूधी लाल दूधी, दूधी। बं० बरकेरू। म० मोठी दूधी, नायटी। काठि० रातो ठाकर ढुमरो, मोटी दूधेली। गु० नागला दूधेली। पं० दोधक। क० चरसु। ते० विदरी। ता० अमूपच्छै अरिसि। अं० Snake week. ले० Euphorbia Pilulifera.

परिचय—वर्षायु खड़े या झुके हुए रुएंदार रक्त क्षुप। यह भारतके सब उष्ण प्रदेशोंमें होता है। ऊंचाई १ से २ फीट। पान ॥। से १। इन्च लम्बे। पानकी वास उग्र, स्वाद लेसदार, कसैला। पुष्प गुच्छ छोटे छोटे, रंग प्रायः गुलाबी। इस दूधी में से रस सफेद दूध जैसा निकलता है। क्षुपमें छोटी छोटी रस ग्रन्थियां भी होती है।

वक्तव्य—इस दूधीमें एक छोटी जाति है। प्रान्तभेदसे छोटी दूधी, दुधेली और निगाचूनी कहते हैं। जिसका लेटिन नाम युफार्बिया थाइमिफॉलिया (Euphorbia Thymifolia) है। वह वर्षाऋतुमें निकल आता है। यह क्षुप प्रायः जमीनपर फैलता है। क्षुप पीला हरा या बैंजनी छायावाला होता है।

दूधीके और एक प्रकारके छोटे क्षुप होते हैं। जिसे हजारदाना, दूधी, दूधमागरा आदि नाम दिये हैं। लेटिन नाम युफार्बिया हाइपेरी सिफॉलिया (Euphorbia Hypericifolia) है। ऊँचाई ½ से १ फुट। पानकी लम्बाई ½ से १ इञ्च। वास उग्र। स्वाद, किञ्चित् अम्ल, कषाय। ४-४ रस ग्रन्थियां। उपकोषके तलेमेंसे निकलती है। इस जातिमें ३ उपजाति भी हूकरने दर्शायी है।

उक्त दोनों जाति भी दूध जैसे रसवाली हैं। दोनोंके गुण धर्म लगभग बड़ी दूधीके समान किन्तु कुछ कम हैं।

मात्रा—स्वरस १० से २० बूँद। सूखा चूर्ण २ से ५ रत्ती।

गुणधर्म—राजनिघण्टुकारके मतमें बड़ी दूधी चरपरी, कड़वी, शीतवीर्य, विषनाशक, व्रणहर, रुचिकर और रसायन है। भाव प्रकाशके मतमें उष्ण, गुरु, रुक्ष वातवर्द्धक, गर्भधारक, मधुर, कड़वी, चरपरी और मलमूत्र शोधन है। निघण्टुरत्नाकरके मतमें धातुवर्द्धक, हृदयपौष्टिक, उष्ण, पारदबन्धक, ग्राही तथा प्रमेह, कफ, कुष्ठ और कृमिकी नाश है। उक्त गुणोंमेंसे उष्ण, हृदयपौष्टिकादि, निघण्टुरत्नाकर कथित गुण अनुभवमें आते हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार इसकी क्रिया हृदयमें जानेवाली विशेष वातवाहिनियों और उन वातवाहिनियोंका कुछ भाग, जो फुफ्फुसोंमें जाता है, उसपर होती है। इसके अतिरिक्त श्वासोच्छ्वासकेन्द्र और हृदयकेन्द्रपर भी प्रत्यक्ष होती है। इन सबको दूधीके सेवनसे बधिरता आ जाती है अर्थात् इनकी ज्ञान ग्राहकशक्ति कम होती है। बड़ी मात्रामें देनेपर बधिरता उतनी बढ़ जाती है कि श्वासोच्छ्वासक्रिया और हृदय बन्द हो जाते हैं।

दूधीका रस उदरमें जानेपर आमाशयके भीतर कुछ अंशमें दाह होता है, जिससे जम्भाई आती है। दूधीमेंसे द्रव्य यकृत्द्वारा पित्तके साथ बाहर निकलता है, शरीरके भीतर संगृहीत होकर नहीं रहता। दूधीसे आमाशयको त्रास न हो, इस हेतुसे भोजनके पश्चात् अधिक जलके साथ देना चाहिये एवं विषप्रकोप न होनेके लिये मात्रा भी थोड़ी देनी चाहिये।

नागार्जुनी कल्पः—

(१) नागार्जुनी क्वाथ—ताजी दूधी २॥ तोले या सूखी दूधी १। तोलेको ४० औंस जलमें मिला अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर छान २ औंस शराब मिलाकर किञ्चित् गरम करें। मात्रा—प्रत्येक वार ५ तोले, दिनमें ४ बार। यह क्वाथ ४८ घण्टेतक टिकता है।

(२) नागार्जुनी अर्क—सूखी दूधी १ भागको उत्तम देशी शराब ७ भागमें एक सप्ताह बोतलमें बन्द रखें। दिनमें ४-६ समय बोतलको चलाते रहें। फिर

५ भागमें कम हो उतनी शराब मिला लेलें। मात्रा १० से ३० बूंद। ४-६ औंस जलके साथ भोजनके बाद देवें।

उपयोग—नागार्जुनीका उपयोग चरक संहिताकारने अर्श और खालित्य (टाल पड़ने) पर किया है। अन्य ग्रन्थोंमें विशेष प्रयोग नहीं मिलता। ग्रामवासियों-में इसका विशेष उपयोग होता रहता है।

(१)—दाद—पहले गोबरीके टुकड़ेसे घिसकर बड़ी दूधीके रसका लेप करते रहनेसे दाद दूर होजाती है।

(२)विस्फोटक—छोटे छोटे जहरी फोड़े होनेपर एरण्ड तैल और बड़ी दूधीका रस मिलाकर दिनमें २ बार लेप करते रहनेसे विष शमन होकर फोड़े मिट जाते हैं।

(३) दंतकृमि—बड़ी दूधीके मूलको चबाकर रसको मुँहमें २-४ मिनट रखनेपर कृमि मरकर वेदना शमन होजाती है।

(४) रक्तार्श—बड़ी दूधीके पानोंका रस १-१ ड्राम मक्खन-मिश्रीके साथ ४-६ दिनतक रोज सुबह देते रहनेसे रक्तस्राव और दाहसहित बवासीर दूर हो जाते हैं।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि, बड़ी दूधी उत्तम औषधि है। श्वासरोगमें यह उत्तम सिद्ध हुई है। श्वासनलिका संकोच विकासकी विकृतिके हेतुसे (आक्षेपसे) उत्पन्न श्वासमें दूधी उत्तम लाभदायक है। श्वासनलिका प्रदाह (पुरानी खांसी), फुफ्फुसका फूल जाना, वर्षाऋतुमें होनेवाला श्वासका दौरा, चावल काटनेके समय उत्पन्न श्वास और प्रतिश्यायसे नाकमेंसे जल गिरना, इन सबपर बड़ी दूधीसे बहुत लाभ होता है। संक्षेपमें किसी भी कारणसे उत्पन्न श्वास और दौरेपर दूधी दी जाती है। इससे श्वासोच्छ्वासमें कष्ट और श्वासकी घबराहट, दोनों दूर होते हैं। यह वृद्धोंको भी दे सकते हैं। इससे कफ गिरनेमें विशेष सहायता मिलती है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसलिये दौरा कम होनेपर कफको गिरानेवाली औषधि (कटेली आदि) देनी चाहिये।

रक्तमिश्रित प्रवाहिका और उदरशूलमें दूधीका रस दिया जाता है। दादपर इसके रसकी मालिश की जाती है। इससे त्वचापर उत्पन्न मस्से नष्ट होते हैं। वमन रोकनेके लिये इसके मूलका उपयोग किया जाता है।

(७९) देवदाली।

सं०, जीमूतक, देवदाली, कण्ठफला, लोमशपत्रिका। हिं० देवदाली, बिंदाल, बंदाल, घघरवेल, सनैया। बं० घोपालता, पीतघोषा, देवताड़ा। म० देवडांगरी। गु० कुकडवेल। क० देवदाळी। मला० देवताड़ी। मार० बिंदाल। ले० Luffa Echinata.

परिचय—यह बेल भारतके अनेक प्रांतोंमें होती है। लम्बाई १५ से २०

फीट। वर्षा ऋतुमें खेतोंकी बाडपर होजाती है। नर-मादा फूलकी बेल अलग अलग होती है। पान कड़वी तोरईके सदृश, किन्तु छोटे ५ कोनवाले। पानके पाससे तन्तु निकलते हैं। नर फूलकी सलाका ४ से ७ इञ्च लम्बी। प्रत्येक सलाकापर ६ से १२ पुष्प। मादा फूल सलाका रहित। पत्र कोणमेंसे २-३ फूल निकलते हैं। फल १ से १॥ इञ्च लम्बा, कांटेदार, रङ्ग हरा, सूखनेपर भूरा। फूल दिवालीके लगभग आते हैं। फल शीतलामें पकते हैं।

मात्रा—फलके मध्यभागका चूर्ण १ से २ रत्ती १ औंस शीतल जलमें मसल-कर देवें। पानके स्वरसकी मात्रा ६ माशे।

गुणधर्म—देवदालीका फल कड़वा, उष्णवीर्य, विपाकमें चरपरा, वांत और कफनाशक तथा ज्वर, श्वास, हिक्का, उदरविकार, कामला, कृमि, श्लेष्म, शूल, गुल्म, अर्श, मूषकविष आदिको दूर करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार देवदाली कड़वी, दीपन, मूत्रल, विरेचन, शिरोवि-रेचन, व्रणशोधन और व्रण रोपण है। मात्रा बढ़ानेपर वमन और विरेचन कराती है। फिर रोगीकी अवस्था विसूचिकाके समान भासती है। स्त्री सगर्भा होनेपर गर्भपात हो-जाता है। देवदाली और जंगली तोरईकी क्रिया समान होती है। बीजोंमें तैल होता है, उसमें कड़वापन नहीं होता। देवदालीमें मुख्य द्रव्य इन्द्रायणके मुख्य द्रव्यके समान है।

देवदाली कल्पः—

(१) देवदालीअर्क—देवदाली पञ्चाङ्गका मोटा चूर्ण १० तोले लेकर २० गुने शराब ६० °/॰ में भिगो देवें। रोज ३-४ बार चला देवें। सप्ताह होनेपर छान लेवें। मात्रा १० से २० बूंद। यह २० बूंद देनेपर विरेचन कराता है। मात्रा बढ़ानेपर वमन और प्रबल विरेचन कराता है। यकृत् प्लीहावृद्धिपर यह अति लाभदायक है।

(२) देवदाली हिम—देवदालीके २ फलोंका चूर्णकर रात्रिको ५० तोले जलमें भिगो देवें। सुबह छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस दिनमें ३ बार।

(३) देवदाली फाण्ट—देवदालीके २ फलोंको उबलते हुये ५० तोले जलमें डालकर ढक देवें। आध घण्टे बाद छान लेवें। उपयोग हिमके समान। इसके अति-रिक्त यह दुष्ट विपाक्त घाव धोनेमें महोपकारक है। शिरदर्दमें इस फाण्टका नस्य कराया जाता है।

(४) देवदाली क्वाथ—देवदाली पञ्चाग ताजा १ तोला लेकर उसे १ सेर जलमें उबालें। आधाजल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस, दिनमें ३ बार। उपयोग—यह आमाशयपौष्टिक और उत्तम मूत्रल औषधि है। अप-चन, अग्निमान्द्य और मलावरोधपर लाभदायक है।

(५) संशोधन वटी—देवदालीके पके सूखे ३ फल लेवें। भीतरसे जाली

और बीजोंको निकाल डालें। शेष कांटेदार त्वचाका चूर्ण करें। फिर लगभग पौन तोला मुनक्का लेकर धोडालें और भीतरसे बीज निकाल डालें। फिर उसे चटनीकी तरह पीसे, उसमें देवदालीका चूर्ण मिलाकर १४ गोलियां बना लेवें। ४-४ रत्तीकी गोलियां बन जाय, उतनी मुनक्का मिलानी चाहिये। मात्रा १-१ गोली कच्चे या गरम करके ठण्डे किये हुए गोदुग्धके साथ, प्रातः और रात्रिको। वस्ति लेनेके लिए ४ गोली जलमें मिला लेवें। उपयोग—जीर्णज्वर, मन्दज्वर, शिरदर्द और कामलाको दूर करनेमें यह बड़ी लाभदायक है। आमाशय और अन्त्रगत मलोंका शोधनकर रोगोंको दूर करती है। पहले दिन वमनविरेचन होता है, फिर नहीं होता। इसके उपयोगका विशेष वर्णन रस तन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह द्वितीय खण्डमें किया है।

उपयोग—देवदालीका उपयोग चरक और सुश्रुत संहितामें अनेक स्थानोंपर किया है। ज्वर, कामला, चूहेका विष आदिपर प्रयोजित हुई है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि यह उत्तम किन्तु अति प्रबल औषधि है। इसका उतार घी भात है। कामलामें फलकी चासनी मट्ठेके साथ देते हैं और पञ्चाङ्गके क्वाथसे स्नान कराते हैं। इस रोगपर एक रत्ती चासनीके चूर्णका नस्य करानेपर नाकमेंसे बहुत पीला जल गिरकर पित्त प्रकोप दूर हो जाता है।

यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि और यकृद्वृद्धिजन्य जलोदर पर कड़वी तोरईके समान यह हितावह है। अर्शरोगमें वेदना और शोथ कम होनेके लिये पञ्चाङ्गके क्वाथसे स्नान कराते हैं या कपड़ेको भिगोकर देहको पोंछते हैं। जिससे दुर्गन्ध कम होकर ज्वर कम हो जाता है। २१ दिवस के बिगड़े हुये मधुरा ज्वरमें इससे विशेष लाभ होता है। इससे भ्रम भी कम हो जाता है।

(१) पित्तप्रधान ज्वर—देवदालीके फाण्ट या हिमका सेवन दिनमें ३ बार करानेसे पित्तज्वर शमन हो जाता है। यदि उसके साथ वात या कफ विकार हो तो वह भी दूर हो जाता है।

(२) कामला—देवदालीके पञ्चांगको रात्रिमें भिगो देवें। सुबह छानकर पिला देवें अथवा फलके चूर्णका नस्य करानेपर पीला पानी नाकसे टपककर कामला दूर हो जाता है। उतार घी-भात।

(३) जलोदर—यकृद्दाली होकर जलोदर हो गया हो तो देवदालीका जुलाब देनेपर पतला जल जैसा जुलाब लगकर तथा यकृत्पर उत्तेजक असर पहुँच कर जलोदरमें लाभ पहुँच जाता है। इससे प्लीहावृद्धि भी कम हो जाती है।

(४) यकृत्प्लीहावृद्धि—देवदाली अर्क दिनमें २ या ३ बार देते रहें। अतिसार होनेपर औषधिको कुछ दिनके लिये बन्द करें। पुनः थोड़ी मात्रामें चालू करें। बालकोंको भी कम मात्रामें यह दी जाती है।

(५) शोथ—हृदयकी शिथिलतासे शोथ आनेपर पहले हाथ पैरोंपर शोथ

आता है। फिर ऊपर चढ़ता है। ऐसा शोथ होनेपर देवदाली अर्क दिनमें ३ बार देते रहनेसे विरेचन और मूत्रलगुण प्राप्त होकर शोथ दूर हो जाता है।

सूचना—वृक्कविकार होनेसे पहले मुँहपर सूजन आई हो, ऐसे रोगीको यह दवा नहीं देनी चाहिये।

(६) फोड़ा फुन्सी—देवदालीके मूलको सिर्केमें पीसकर लेप करें।

(७) जहरी जन्तुओंका विष—मूलको जलमें घिसकर लेप करें।

(८) पागल कुत्तेका विष—पञ्चाङ्गका क्वाथ १ सप्ताहतक सुबह शाम पिलाते रहें।

(९) चूहेका विष—मूलको घिसकर दंश स्थानपर लेप करें और पानोंका स्वरस पिलावें।

(७७) धतूरा।

सं० धतूर, धूर्त, उन्मत्त, कनक। बं० ओ० धुतुरा। म० धोतरा। गु० धंतुरो। फा० जोजमाशिल, तातूरा। अ० जोजमाशिल। ता० ऊमात्ताइ। ते० ऊमेथा। क० उमात्ता। मला० उम्माम। अं० Thorn Apple Trumpet

ले० (१ अ) Datura Stramonium (काला धतूरा)
(१ आ) „ Tatula („ „)
„ Fastuosa (द्विगुण धतूरा)
„ Alba (सफेद धतूरा)
„ Metal (धूसराभ हरित धतूरा)

काला धतूरा (दातुरा स्ट्रेमोनियम) तना हरा या बैंजनी ऊंचाई २ से ४ फीट, पुष्पाभ्यन्तरकोष ३ से ६ इंच लम्बा, सफेद, ५ विभागवाले। पान ७ इंच लम्बे। बीज लगभग काले। इसे आचार्योंने राज धतूरा संज्ञा दी है।

काला धतूरा उपजाति (धतूरा टटुला) तना सामान्यतः बैंजनी आभायुक्त। पुष्प बड़ा नीलाभ या बैंजनी।

दोहरा धतूरा (दतुरा फास्टुओसा) इसे भी काला धतूरा कहते हैं। ऊंचाई ३ से ५ फीट। पुष्प दोहरे और तीहरे। तना ऊर्ध्व भागमें बैंजनी पान ८ इंचतक लम्बे। बीज हलके भूरे रंगके। यह अधिकतर बागोंमें होता है।

सफेद धत्तूरा (दत्तुरा आल्बा) पुष्प सफेद या पाण्डुवर्णके। बीज सफेद भूरे।

धूसरहरा धतूरा—(दतुरा मेटल) ऊंचाई ३ से ४ फीट। तना धूसराभ हरा (Greyish green) गहरे रुएंदार। पुष्प श्वेताभ बैंजनी या सफेद, नीचेका हिस्सा हरी आभावाला, १० दांतेवाला। बीज हलका भूरा।

परिचय—धत्तूरा भारतवर्षके प्रत्येक जिलेमें होता है। आचार्योंने इसके नील, लोहित, पीत, कृष्ण पुष्प भेद से ५ जाति दर्शायी हैं। सामान्य जनतामें

सफेद और काले, दो ही भेद हैं। पुष्पकी रचना भेदसे हूकरने १० जातिका उल्लेख किया है। इनमेंसे ५ जातिका परिचय कराया है।

उक्त सब जातियोंमेंसे राजधत्तूर (दतुरा स्ट्रैमोनियम) में गुण अधिक हैं। इसके अभावमें अन्य जातिके पान, मूल, बीज आदिका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—पानोंका स्वरस १० बूंद। बीजका चूर्ण आधसे १ रत्ती। पानका चूर्ण आधसे १॥ रत्ती, धूम्रपानके लिये ५ से १५ रत्ती।

गुणधर्म—धत्तूरेकी गणना आचार्योंने उपविषमें की है। धत्तूरा कसैला, मधुर, कड़वा, उष्ण, गुरु, मादक, वर्णको सुधारनेवाला, अग्निवर्द्धक और वातुल है। ज्वर, कुष्ठ, जूं, लीख, व्रण, श्लेष्म, कण्डू और विषविकारको नष्ट करता है। आचार्योंने वातुलगुण दर्शाया है, वह अधिक मात्रामें सेवन करनेपर उन्माद आदि रूपसे प्रकाशित होता है। लघु मात्रामें यह वातजित है।

धतूरा रसमें कसैला और कड़वा है। इसके रससे उबाक आती है, वीर्यकटु उष्ण। विपाकका कार्य अग्निवर्द्धक, वान्तिकर, कफनाशक। प्रभाव मादक।

डाक्टर देसाईके मतानुसार धत्तूरा वेदनास्थापन, आक्षेपहर, कासहर, श्वासहर नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक और शोथहर है। मात्रा बढ़नेपर घातक विष है। यह कतिपय मनुष्योंको उन्मादकारक कतिपय व्यक्तियोंपर वाजीकर असर भी पहुँचाता है। उसकी क्रिया सूचीबूटी जैसी है। श्वासनलिकापर सूचीकी अपेक्षा अधिक शामकता पहुँचाता है। इस हेतुसे हृदयक्रिया अनियमित हो जाती है।

डाक्टर खोरी लिखते हैं कि, धतूराकी क्रिया इडापिंगला नाड़ियों, के जो उदर प्रदेशमें फैली हैं, उनपर होती है, संज्ञावाही और संचालन नाड़ियोंपर नहीं होती। पूर्ण मात्रामें हृदयकी गतिको अनियमित और प्रबल प्रलाप उत्पन्न कराता है। सूची बूटीके सदृश धत्तूरा भी कनीनिकाको प्रसारित करता है। आक्षेपशामक रूपसे यह यकृत्में शूल स्वरयन्त्रमें विकृति होकर कास, बालकोंका नृत्यवात, वाणीकी विकृति आदिपर व्यवहृत होता है। पीड़ितार्तव, वातशूल अर्दितका आक्षेप (Tic douloureux) और गृध्रसीवातमें आक्षेप और वेदना शमनार्थ धत्तूरा दिया जाता है। स्त्रियोंका कामोन्माद (Nymphomania) और आत्महत्याकी इच्छावाली प्रसूताका उन्माद, इन दोनों विकारोंपर यह सफल औषधि है।

तमकश्वासका दौरा होनेपर इसके पानोंके चूर्णका धूम्रपान कराया जाता है। पित्ती (शीतपित्त) त्वचारोग और जुएं आदि कृमि हो जानेपर इसका लेप किया जाता है। गले हुये दांतोंकी पोलमें इसका चूर्ण भरा जाता है, एवं दन्तशूलपर भी यह लगाया जाता है।

धत्तूरा शोधन—आयुर्वेदमें धत्तूरेके बीजोंका उपयोग शुद्ध करके किया है। शोधन करनेपर उग्रता कम हो जाती है और मानवशरीरके लिए अधिक साम्य बन जाता

है। इसके लिये धतूरेके बीजोंको मट्ठेमें ३ दिनतक भिगो देवें। रोज मट्ठा बदल लेवें। चौथे दिन जलमें धोकर कपड़ेपर फैला देवें। ऊपरसे कुछ शुष्क बननेपर धान कूटनेके समान कुछ कूट लेवें जिससे बीज पृथक हो जाय। फिर सूपसे फटक लेनेपर शुद्ध बीज मिल जाते हैं।

धत्तूर कल्पः—

(१) धत्तूरादि धूम्र—धत्तूरेके पानका चूर्ण २ तोले, सौंफका चूर्ण १ तोला सोरा ७ तोले मिलाकर चूर्ण करें। आवश्यकतापर बीड़ी बनाकर पिलानेसे श्वासके दौरेका वेग शान्त हो जाता है और तुरन्त कफ सरलतासे बाहर निकलने लगता है, और थोड़े ही समयमें छाती हलकी हो जाती है।

तमाखूके व्यसनीके लिये धतूरा, अजवायन और धमासा समभाग मिलाकर उसमेंसे भी ४-६ रत्ती तमाखूके साथ मिलाकर धूम्रपान करा सकते हैं।

(२) धत्तूर अर्क—राज धत्तूरके पानोंका चूर्ण १० तोलेको शराब (४५°/०) ५० तोलेमें मिलाकर बोतलमें बन्द रखें। दिनमें २-४ बार चला लेवें। एक सप्ताहके पश्चात् पर्कोलेशन यन्त्र द्वारा अर्क टपका लेवें। फिर शराब कम हुआ हो उतना और मिला लेवें।

राजधत्तूरके पानोंके स्थानपर सफेद धत्तूराके बीज १२॥ तोले और शराब (७०°/०) ५० तोले मिलाकर उक्त रीतिसे, अर्क बना लिया जाता है।

(३) कनक वटी—धत्तूराका डोडा जो पक गया हो, उसे लाकर ऊपर ऊपरसे ४ फाँक करें। उसके बीचमें लोहेकी कीलसे कुचलें। फिर उस डोडेके समान वजनमें लौंग लेवें। उन लवंगोंमेंसे जितने उसमें समा जायें, उतने भरकर धतूरेके पान लपेट सूतसे बांध देवें। ऊपर मिट्टीका लेप कर बाटीकी तरह सेक लेवें। मिट्टी लाल हो जानेपर डोडेको निकाल, ऊपर जो लौंग पहले भरनेके समय बच गये हों, वे भी मिला लेवें। ३ घण्टे धतूरेके पानोंके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। मात्रा—१ से २ गोली, दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको जलके साथ लेवें। पुरानी खांसी, जीर्ण ज्वर, कफसह श्वासरोग और निद्रानाशपर लाभदायक है।

(४) उन्मत्तवटी—धत्तूरेके शुद्ध बीज और कालीमिर्च समभाग मिला कूटकर बारीक चूर्ण करें। उसे जलके साथ खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। मात्रा १ से २ गोली सुबह और रात्रिको २-२ तोले मक्खनके साथ देवें। अथवा दहीके घोलके साथ देवें। भोजनमें मिर्च आदि उत्तेजक पदार्थ न देवें। १ सप्ताह सेवन करानेपर नया उन्मादरोग शमन हो जाता है।

(५) धत्तूर तैल—धत्तूरेका स्वरस ४० तोले, धत्तूरेके रसमें चटनीकी तरह पीसी हुई हल्दी २॥ तोले और तिल तैल १० तोले लेवें। इनको उबालकर तैल करें। तैल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। यह कानके नाड़ी व्रणपर हितावह है।

उपयोग—धत्तूरेका उपयोग खानेकी अपेक्षा पीनेमें अधिक होता है। धत्तूरा मिश्रित बीड़ी, सिगरेट पीनेके साथ तुरन्त श्वासके दौरेका बल घटने लगता है। और चिपचिपा कफ निकलकर छातीका खिंचाव दूर हो जाता है। श्वासके अतिरिक्त उन्माद, वेदना, शीतज्वर और शोथपर प्रयुक्त होता है। कितनेक चिकित्सक शुक्र-स्तम्भनके लिये उपयोगमें लेते हैं और ग्रामोंमें पागल कुत्तेके विषको शान्त करनेके लियेभी धत्तूरा व्यवहृत होता है।

(१) श्वासका दौरा—धत्तूरादि धूम्रका सेवन करावें, फिर धत्तूर अर्क या कनकवटी कुछ दिनोंतक देते रहनेसे श्वासयन्त्र, श्वासरोगसे मुक्त हो जाता है।

(२) शीतकाज्वर—बुखार आनेके ३ घण्टे पहले धत्तूरेके बीज १ रत्ती मट्ठे या दहीके साथ ले लेनेसे पाली टल जाती है; अथवा धत्तूराका पान २ इञ्च चोकोर नागरवेलके पानमें रखकर खिला देनेसेभी लाभ हो जाता है। जब तक पालीका समय न चला जाय, तबतक भोजन नहीं करना चाहिये। हो सके तो उसदिन चायपर रह जाना चाहिये।

(३) व्रणशोथ—किसी स्थानमें गांठ हो जानेपर तीव्र वेदना होती हो, तो उसपर धत्तूरेके पानोंकी पुल्टिस बांधनेसे वेदना शमन हो जाती है।

(४) उन्माद—नया उन्माद रोग जो मासिक आघात, शराब, गांजा, सूर्यके तापमें भ्रमण आदिसे हुआ हो, या प्रसूतावस्थामें हुआ हो, जिसमें निद्रा न आती हो, उसपर उन्मत्तवटीका सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें मन स्वस्थ हो जाता है और मस्तिष्क शान्त बन जाता है।

(५) शोथ—धूत्तूरेके पानोंपर शिलाजीतका लेपकर सूजनपर चिपका देवें या केवल धूत्तूरेके मूलको गोमूत्रमें पीसकर लेपकर देवें। इस लेपसे वेदना शान्त हो जाती है और सूजन दूर हो जाती है।

यह लेप वृषण, पार्श्वशूल, हड्डियोंपर चोट लगनेसे आई हुई सूजन, या सुजाकके हेतुसे संधिशोथ, घुटनेकी सूजन, उदरशोथ, स्तनशोथ, आंख आनेसे होनेवाली वेदना, मस्सेकी सूजन इन सबपर धत्तूरेकी पुल्टिस या लेप लगानेपर तुरन्त लाभ हो जाता है।

सूचना—यदि शिलाजीत मिलाकर लेप लगाना हो, तो सूजनवाले स्थानसे बालोंको पहले निकाल देना चाहिये।

(६) योनिशूल—धत्तूरेके पानोंको घी मिलाकर पीस १ रत्ती सैंधानमक मिला कपड़ेमें जामून जैसी वर्ति बनाकर योनिमार्गमें रखवानेसे वेदना शान्त हो जाती है।

(७) पामा—हाथोंकी अंगुलियोंपर पूयमय पीले फोड़े हों, जिसमे बहुत खुजली चलती है। उसपर धत्तूरेकी काली राखको घीमें मिलाकर लगानेसे खुजली शमन होती है और पामा दूर हो जाती है।

वक्तव्य—धत्तूरेके पंचांगको जलानेपर धुएँ निकल जानेपर किसी वर्त्तनसे ढक देनेपर काली राख हो जाती है, उसे उपयोगमें लेवें सफेद राखको नहीं।

(न) अलर्क विष—(अ) मद्रास इलाकेमें यह पागल कुत्तेकी लोकप्रिय औषधि मानी गई है। इसके सम्बन्धमें डा० नादकर्णी लिखते हैं कि, पागलकुत्ता काटनेपर देहके भीतर विषका संग्रह होने लगता है। फिर लगभग ४० दिनके पश्चात् रोगी पागल बनकर कुत्तेके सदृश चेष्टा करने लगता है। इस तरह पूर्ण विष संग्रह हो जाने पर तो कोई भी औषधि लाभ नहीं पहुंचा सकती। विषकी संचयावस्थामें अर्थात् काटनेके १० से २० दिनके भीतर हो सके उतना जल्दी धत्तूराका आश्रय लिया जाय तो रोग शमन हो जाता है। इसके लिये रोगीको प्रातःकाल १। तोला लकड़ीके कोयले के चूर्णको जलमें घोलकर पिला देवें फिर आध घण्टे बाद काले धत्तूरेके पानोंका रस १ औंस (२॥ तोले) पिला देवें। वमन होकर रस न निकल जाय, इसलिये ताड़का रस या खजूरी का रस या गुड़का शर्बत या अन्य मधुर पेय पिला देवें और रोगीको खुले स्थान में बांध देवें, जहां सूर्यका ताप पूरा पूरा मिल सके। इस तरह ४-५ घण्टेतक धूपमें रखा जाता है। फिर शामतक अलर्कविष प्रकुपित होकर क्रमशः उन्माद चेष्टा बढ़ती जाती है। उस समय रोगीके शिरपर शीतल जलकी धारा करातें रहें या २५-५० घड़े जल डालें। जलके हेतुसे उन्माद बढ़ जाता है, किन्तु अधिक जलसिंचन होनेपर उत्तेजना शमन होकर क्रमशः अवसादकता आने लगती है। फिर जब रोगी होशमें आनेसे जल न डालनेके लिये क्रोधपूर्वक विरोध करता है तब जल सिंचन बन्द करें और थोड़ी विश्रान्ति देकर मिश्री मिला निवाया दूध या हलका भोजन देवें। पुनः दूसरे दिन यही प्रयोग करें। यदि उन्मादजनित चेष्टा पागल कुत्तेके समान हो तो कुछ दिनतक प्रयोग करना पड़ता है अन्यथा नहीं।

मस्तिष्कके मध्यभागमेंसे बाल निकलवाकर त्वचाके भीतरसे अस्त्रद्वारा थोड़ा रक्त निकले, उतना घाव करें। उसपर धत्तूरेके पानोंका रस या पानोंकी चटनी घिसें और उपर्युक्तविधि अनुसार रस पिलावें, तो रोगीको आराम हो जाता है।

आ० सुश्रुत संहिताके कल्प स्थानमें पागल कुत्तेके विषपर धत्तूरेके प्रयोग करने का विधान किया है। शरपुंखाका मूल १ तोला और धत्तूराका मूल (अथवा पान) ६ माशे लेवें। उनको सुबह २० तोले चावलोंके आटाके साथ मिला, चावलोंके जलमें घोलकर रख देवें। शामको उसे घीसे चुपड़े हुये धत्तूरेके पानोंपर फैलाकर वाष्पपर पकावें। भगोनेमें जल भरें। ऊपर चालनी ढकें। धत्तूरेके पानोंपर रखे हुए अपूपोंको रखें। ऊपर ढक्कन ढक देवें। १०-२० मिनटमें पुये फूलकर पक जाते हैं, अथवा चावलोंके आटेके घोलको धत्तूरेके पानोंमें लपेट सूतसे बांधकर घीमें पुये निकाल लेवें। २० तोले आटेमेंसे ५-६ पुये बनावें। इन दोमेंसे कोई भी प्रकारके पुए शामको

न।——— पहुँचता है। इसके सेवनसे खांसी
खिलावें। फिर रोगीको जलरहित [illegible] यह जीर्ण कफ प्रधान रोगोंमें
पचन होनेपर रोगी कुत्तेके सदृश चेष्टा करने [illegible]। यह बालक और
जाता है। पश्चात् सुबह स्नान करा गरम दूध भातका भोजन [illegible]
भोजन करावें। यह प्रयोग ३ से ५ दिनतक आधी मात्रामें रोज शामको करना चाहिये। कुत्तेके सदृश चेष्टा बन्द होनेपर औषध बन्द करें।

सूचना—आटेमें कुछ सैंधानमक और हल्दी या गुड़ मिला लेना चाहियें। जिससे सरलतामे रोगी खा सके।

यह प्रयोग कुत्ता काटनेके १० दिन बाद और २० दिनके भीतर करनेपर सच्चा लाभ मिल सकेगा।

(९) कर्णपाक—कर्णपाक होनेके पश्चात् दिनोंतक कष्ट पहुँचता रहता और वेदना होती रहती है। उसपर धत्तूर तैलकी २-२ बूंद दिनमें २ बार डालते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें कर्णका नाड़ीव्रण शमन हो जाता है।

(१०) आमवातज संधिशोथ—आमवातके हेतुसे शरीरके किसी भी भागमें वेदना होती है और सूजन आजाती है। उसपर धत्तूरेके पानोंकास्वरस २ तोले, पुनर्नवामूलका चूर्ण १ तोला और अफीम १ माशा मिला, गरमकर लेप करदेने से वेदना और सूजन शमन हो जाते हैं।

(११) नेत्रव्यथा—आंख आनेपर रात्रिको अधिक वेदना होती है। आंख के भीतर रेतके समान दाने गड़ते रहते हैं, शूल चलता है और निद्रा नहीं आती, उस समय नेत्रपर धत्तूरेके पानोंकी पुल्टिस बांधनेसे या घी लगा हुआ धत्तूराका पान बांधनेसे वेदना शमन हो जाती है।

सूचना—क्षतपर धत्तूरेको पुल्टिस बांधने या रस मसलनेपर रस का शोषण रक्तमें हो जाता है, जो अधिक होनेपर नशा ला देता है।

जिस रोगीके वृक्क सदोष होनेसे नेत्रके चारों ओर शोथ आया हो अथवा जिनको हृदयकी कोई व्याधि हो, उनको धत्तूरेका धूम्रपान नहीं कराना चाहिये। उनको धत्तूरा प्रधान औषधि देनी हो, सो अति कम मात्रामें और सम्हालपूर्वक देवें।

(७८) धाय।

सं० धातकी, ताम्रपुष्पी, वहुपुष्पीका, मद्यवासिनी। हिं० धाई, धुव, धाय, धाओला। बं० धाईफूल। ओ० जातिको। गु० धावड़ी। मं० धायटी। फुल सृट्टि। धावस। क० धातकी, धायि। ते० धातकी।

ले० Woodfordia Floribunda.।

परिचय—यह भारतके अनेक प्रान्तोंमें होता है। बंगालके कतिपय भागमें नहीं है। वृक्षकी ऊंचाई ५ से १२ फीट। वृक्ष झुके हुए। पान २ से ४ इञ्च लम्बे।

वक्तव्य—धत्तूरेके पंचांगको जला[illegible] चमकीले लालरंगके गुच्छोंमें। वर्त्तनसे ढक देनेपर काली [illegible] हैं। इस वृक्षमेंसे गोंद मिलता है। उसे [illegible] फूलोंमेंसे कषायाम्ल (Tannin) २०॥ प्रतिशत और लालरंगक द्रव्य मिलता है।

मात्रा—फूलकी मात्रा १ से २ माशे।

गुणधर्म—धायका फूल, चरपरा, उष्ण, मादक, विषघ्न, अतिसार नाशक, गर्भस्थापक, कृमिघ्न और तृषाशामक है।

उपयोग—धायके फूलोंका उपयोग भारतमें प्राचीनकालसे होता है। चरक संहितामें मूत्र विरजनीय, संधानीय और पुरीष संग्रहणीय दशेमानियोंके भीतर धाय लिया है। आसव योनि ओषधियोंके भीतर इसके फूलकी गणनाकी है। धायके फूल प्रायः ९० प्रतिशत आसवोंमें मिलाया गया है।

इसका उपयोग किसी स्थानपर प्राचीन आचार्यों'ने स्वतन्त्र रूपसे नहीं किया। इसके ग्राहीगुणका उपयोग अन्य अतिसार संग्रहणी आदिकी ओषधिके साथ सहायक रूपसे किया है। आसवोंके भीतर धायके फूल मिलानेसे आसव खट्टा नहीं होता और आसवोत्पत्तिमें सहायता मिल जाती है।

(१) रक्तप्रदर—धायके फूलका चूर्ण ६-६ माशे, शक्कर ६-६ माशे मिलाकर सुबह शाम दूधके साथ देनेसे ७ दिनमें रक्तप्रदर शमन हो जाता है। प्रदर तीव्र वेगवाला हो तो मात्रा १-१ तोलेतक दे सकते हैं। मासिक धर्म समयके पहले आ जाता होगा, तो वह भी नियमित बन जाता है।

(२) सगर्भाका अतिसार—गर्भिणीको थोड़ा थोड़ा दस्त होता रहता हो, तो धाय फूलका चूर्ण, शक्कर और शहदके साथ देवें। ऊपर चावलोंका धोवन पिलाते रहें। यदि रक्तातिसार हो तो धाय फूल १ तोला, खस ६ माशे मिला क्वाथकर शहद और शक्कर मिलाकर पिलानेसे ३ दिनमें लाभ हो जाता है। प्रसूताके लिए भी यह उपाय हितावह है।

(७९) नागकेशर।

सं० सुरपुन्नाग, सुरपर्णिका, नागपुष्प, नागकेशर। हिं० सुरपुन्नाग, नागकेशर। बं० नागेसर। म० सोरंगी, गोड़ी उण्डा। कों० रानउण्डी। गु० सोरंगी ता० सिरुनगप्पु। ते० नागकेसरमुलु। क० नागकेसर। मला० नागप्पु।

ले०(१) Ochrocarpus Longifolius (दक्षिणका [illegible]
(२) Calophyllum Inopyllum (बर्मा, [illegible] जाते हैं, अथवा चाव-
(३) Mesua Ferrea (बङ्गालका नाग [illegible] घीमें पुये निकाल लेवें। [illegible] कोई भी प्रकारके पुए शामको

पहुँचता है। इसके सेवनसे खाशकी

परिचय—उक्त तीनों प्रकारके नागकेशर ... यह जीर्ण कफ प्रधान रोगोंमें (Guttiferea) वर्गके हैं। लाल नागकेशर (आक्रोकार्पस ... यह बालक और ऊँचाईका वृक्ष। नर-मादा फूलके झाड़ अलग अलग। लकड़ी लोह सदृश काली, अति कठोर। एक घन फूटका वजन ६० से ८० पौण्ड। पानकी लम्बाई ६ से ८ इञ्च, चौड़ाई २ से २॥ इञ्च। फूल पौन इञ्च व्यासके सुगन्धित, पीले लाल। कली स्वादमें मधुर। इसकी कलियोंको सुखाते हैं। उसे लाल नागकेशर कहते हैं। वृक्ष ५-६ वर्षका होनेपर पुष्प लगते हैं। पुष्प माघ, फाल्गुनमें खिलते हैं। इस वृक्षको पक्व कलियोंका उपयोग भूतकालमें रेशम और पतले वस्त्रोंपर पीला रङ्ग चढानेके लिये होता था। लकड़ी काली, लाल, कठोर, नौका बनानेमें उपयोगी।

बर्मा, सिलोनके नागकेशरका सर्वदा हरावृक्ष मध्यम ऊंचाइका होता है। छाल घूसर चिकनी। पान ४ से ८ इञ्च लम्बे, ३ से ४ इञ्च चौड़े। पुष्प पौन इञ्च व्यासके सफेद। कुछ मंजरी ४ से ६ इञ्च लम्बो। फल पकनेपर लाल। बीजोंमेंसे ६० प्रतिशत तैल निकलता है। तैल साबुन बनानेमें और व्रणोंके मलहमोंके काममें लिया जाता है। लकड़ी काली लाल, अति मजबूत।

बंगालके नागकेशरका वृक्ष मध्य ऊँचाईका। तना सीधा। छाल राख जैसे रङ्गकी। वृक्ष बारहमास हरा। पान ३ से ६ इञ्च लम्बे, १॥ से २॥ इञ्च चौड़े। फूल पौन इञ्चसे ३ इञ्च व्यासके। पंखड़िया सफेद। केशर स्वर्ण सदृश। बीज पिंगल रङ्गके। बीजोंमेंसे तैल ३९ से ४८ % मिलता है। बीजोंका तैल साबुन बनानेमें आता है।

मात्रा—(५ से १५ रत्ती)

गुणधर्म—नागकेशर मधुर, शीतल (मतान्तरमें कषाय, उष्ण), पित्तशामक, कफहर, विषघ्न, विसर्पनाशक और वान्तिहर।

उपयोग—आयुर्वेदमें नागकेशरका उपयोग प्राचीन कालसे हो रहा है। चरकसंहितामें रक्तार्शपर नागकेशर मक्खन और शक्करके साथ लेनेका विधान किया है। सुश्रुतसंहितामे हिक्कापर नागकेशरका चूर्ण शहद और मिश्रीसे लेनेका लिखा है और ऊपर महुए या ईखका रस पीनेका विधान किया है। इस तरह रक्तप्रदर और रक्तातिसारपर नागकेशरको उपयोग होता है पैरोंका दाह होनेपर इसके तैलका मदन कराया जाता है; अथवा नागकेशरको मक्खनमें मिलाकर मालिश करायी जाती है।

डाक्टर मुहदीन शरीफ लिखते हैं कि, इसके तेलको मैंने पीया; उसमें विषाक्त तत्त्व नहीं है। यह उत्तम औषध है। जननेंद्रिय, मूत्राशय और वृक्क स्थानकी श्लैष्मिक

ले० Woodford असर होता है।

परिचय—यह भी... मूत्रप्रसेक प्रदाह (Gleet) पर लाभदायक नहीं है। वृक्षकी ऊंचाई ५ से १२ वातरक्तमें भी लाभदायक है। शाखाओं-

वक्तव्य—धत्तूरेके पंचांगको हं, उसे जलमें भिगोनेपर कुछ समयके पश्चात् तैल नसे ढक देनेपर कान्ये नेत्रव्रणपर लगानेमें हितावह है।

(८०) नागफणी थूहर।

सं० कंथारी, कंथार, कुम्भारी। म० फणी निवडुंग। गु० दर्खणी-थोर, काँटालो थोर, हाथला थोर। बं० फणिमनसा। को० कांट्यानिवली। क० मुलुगल्ली। तै० नागजमुडु। ता० नागनालो। अं० Prickly-pear. ले० Cpuntia Dillenii.

परिचय—यह जाति अमेरिकासे भारतमें आई है अब भारतमें नैसर्गिक बन गई है। इसे बाड़ लगानेके लिये बोते हैं। इसमें तीक्ष्ण कांटे होते हैं। वर्तमानमें मारक विष छिड़ककर अनेक प्रांतोंमेंसे इसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया गया है। इसकी झाड़ी अधिक ऊंची नहीं होती; किन्तु चारों ओर इसका विस्तार बहुत फैल जाता है। बड़े कांटे सीधे, तीक्ष्ण, नोकदार, ½ से १ इञ्च लम्बे, दृढ़, सफेद आभावाले। बड़े कांटोंके इर्दगिर्द छोटे छोटे कांटे होते हैं। फूल लाल आभावाले पीले। मादा फूलके नीचे लाल, तेजस्वी, रसमय फल आता है। औषध रूपसे मूल, पान और फलोंके रसका उदर सेवन कराया जाता है; तथा पानके कांटे निकालकर बाह्योपचारमें लिया जाता है।

मात्रा—इसकी मात्रा १० बूंद थोड़ी शक्करके साथ।

गुणधर्म—दीपन, रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्ण, कडुवा और भेदक। रक्तदोष, कफ, वात, ग्रन्थि, स्नायु और शोथको दूर करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार फलोंका रस दाहशामक, कफहर और आक्षेप निवारक है। इससे पित्तस्राव अधिक होता है। फलोंके सेवनसे पेशाब लाल हो जाता है। पञ्चाङ्गका क्षार आनुलोमिक (सारक) और मूत्रल है। मूल रक्तशोधक है। पञ्चाङ्गके स्वरसकी क्रिया हृदयपर होती है। यह क्रिया सामान्यतः डिजिटेलिसके समान होती है। स्वरस रेचक है।

कंथारी शर्बत—पक्व फलोंका स्वरस १ पौण्ड तथा स्वच्छ दानेदार शक्कर २॥ पौण्ड मिलाकर मंदाग्निपर चढ़ावें। शक्कर गल जानेपर ढक्कन ढक १२ घण्टेतक रहने देवें। फिर ऊपरसे मलाई निकाल डालें; और नीचेका शर्बत पात्रको चलाये बिना सम्हालकर निकाल लेवें। मात्रा—२ से ४ ड्राम दिनमें ४ बार।

उपयोग—इसका उपयोग प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। यह अति दिव्य औषधि है। श्वास, काली खांसी, हृदयरोग, नारू, शोथ आदिपर अपना प्रभाव तुरन्त दर्शाता है।

(१) श्वास और काली खांसी...किंवा—शर्बत अथवा भुनेहुए फलोंका स्वरस

देनेपर श्वास और काली खांसीमें तुरन्त लाभ पहुँचता है। इसके सेवनसे खांसीकी घबराहट कम होती है; और कफ मर्यादामें आजाता है। यह जीर्ण कफ प्रधान रोगोंमें कफकी उत्पत्ति कम कराता है, जिससे खांसनेका त्रास कम होता है। यह बालक और सगर्भा स्त्रियोंके लिये भी निर्भय औषधि है।

(२) हृदयोदर—पञ्चाङ्गका राख हृदयोदर रोगमें दी जाती है। इससे विरेचन लगता है, हृदयकी क्रिया सुधरती है; पेशाब साफ आता है और हृदयोदर शमन हो जाता है।

(३) हृदयकी धड़कन—पञ्चाङ्गके रससे अन्य रोगमें उपद्रव या लक्षण रूपसे बढ़ा हुआ हृदयका स्पन्दन कम होता है। यदि स्पन्दनवृद्धि हृदयके विकारसे ही हुई हो, तो इस औषधिसे लाभ नहीं होता।

(४) जीर्ण आमवात और संधिशोथ—नागफणी थूहरके मूलका क्वाथ दिया जाता है; और सांधोंकी सूजनपर इसके पानको बीचमेंसे खड़े चीर दोनों तलको अलग करें। फिर एकको थोड़ा गरमकर गर्भवाले तलपर हलदी और सेंधानमक डालकर बाँध देवें। इससे दुखः दूर हो जाता है और सूजन उतर जाती है।

(५) नारु—इसके संधि स्थानको पीस गरम करें। फिर पुल्टिस बनाकर नारु जनित विद्रधिपर बांधनेसे लाभ हो जाता है।

(६) गांठ, व्रणशोथ, विपाक्तशोथ—शरीरके किसी भी भागमें गाँठ होना, फोड़ा, होना, प्लेग आदि रोगसें गाँठ उत्पन्न होना आदिपर गरम किया हुआ नागफणी थूहरका पान या पानोंकी पुल्टिस बांधनेसे विष और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। कच्चा शोथ फैल जाता है और पकना आरम्भ हुआ हो ऐसा शोथ जल्दी पक जाता है।

(७) नेत्रपीड़ा—पानोंके गूदाको गरम करें फिर हल्दी मिलाकर पुल्टिस बनाकर आंखपर बांधकर आराम करनेसे नेत्रमें होनेवाली पीड़ा और लाली दूर हो जाती है।

(८१) नागरवेल।

सं० ताम्बूलवल्ली, नागवल्ली, सप्तलता, पर्णवल्ली। हिं० नागरवेल, ताम्बूली। बं० पानगाछ। म० नागवेल, पानवेल। गु० नागरवेल। ओ० नागोवोली, ताम्बूलो। फा० वर्ग तम्बाले। क० अम्बाड़ीवेले, नागवल्ली। ते० मला० नागवोल्ली। ता० निरवल्ली, ताम्बूलम्। अं० Betal Pepper ले० Piper Betle

परिचय—भारतवर्षके अनेक प्रान्तोंमें नागवल्ली, बोनेको रिवाज है। इस बेलको लकड़ी या बासका मंडप बांधकर उसपर चढ़ाते हैं। देश भेदसे पानके आकार, वर्ण, स्वादु, सुगन्ध और गुणधर्ममें कुछ अन्तर हो जाता है। पान खानेका रिवाज

प्राचीन कालसे है। इस हेतुसे चरक संहिता और सुश्रुत संहिता आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें पानका उल्लेख किया है। धन्वन्तरि निघुण्टुकारने तो कत्था-चूना लगे हुए पानके नाम पृथक् दिये हैं।

सामान्यतः बेल १५-२० फीट लम्बी और बहुवर्षायु है। पान कच्चेकी अपेक्षा पक्के विशेष गुणदायक हैं। इसमें छोटे छोटे चपटे फल लगते हैं। उसे पान पिप्पली कहते हैं। औषधि रूपसे पान, फल और मूलका उपयोग होता है। फल पिप्पलीके प्रतिनिधिरूपसे और मूल कुलञ्जनके प्रतिनिधि रूपसे व्यवहृत होते हैं।

गुणधर्म—पानमें प्रधान रस चरपरा है, और अनुरस कड़वा, मधुर, लवण और कसैला मिश्रित है। विपाक कटु और वीर्य उष्ण है। चरपरा रस, कटु विपाक और उष्णवीर्यके हेतुसे यह पित्तको बढ़ाता है, और कफ, वातको घटाता है। इसमें एक प्रकारका सुगन्ध अवस्थित है।

पक्का पान अधिक स्वादु, रस युक्त, रुचिकर, सुगन्धित, हृद्य, अग्निप्रदीपक, कामोत्तेजक, बलवर्द्धक, सारक और मुख शुद्धिकर है। इसमें कच्चेकी अपेक्षा तीक्ष्णता कम हो जाती। रंगमें पीताभ बन जाता है। अपक्व और अर्धपक्व पान त्रिदोष कारक, दाह जनक, अरुचिकर, रक्तको दूषित करनेवाला, सारक और वान्तिकर है। कुछ दिन जलसे सिञ्चत करनेपर रुचिकर, वर्णकारक और त्रिदोषघ्न है।

पानपर लगाया हुआ चूना वात-कफहर और कत्था कफ पित्तहर है। इस हेतुसे तीनोंका मिश्रण होनेपर तीनों दोष दूर होते हैं, और मन प्रफुल्लित होता है। ताम्बूल मुखको स्वच्छ, सुगन्धित, तेजस्वी और सुन्दर बनाता है। प्रातःकाल पान खानेपर सुपारी अधिक, दोपहरको कत्था अधिक और रात्रिको चूना कुछ अधिक लगाना चाहिये।

डॉक्टर देसाईके मत अनुसार पान उत्तम दीपन-पाचन, श्लेष्मघ्न, शोथहर, वेदनाशामक और व्रणरोपक है। पानोंका स्वरस प्रबल पूतिहर, यह कार्बोलिक एसिडकी अपेक्षा पांच गुना अधिक बलवान और कीटाणु नाशक है।

डा० खोरीके मतानुसार नागरवेलके पान उत्तेजक, उदर वातहर और कीटाणु नाशक है। यह आध्मान, मुख दौर्गन्ध्य, अपचन और उदर शूलपर प्रयोजित होता है पानोंका स्वरस भी कीटाणु नाशक है और प्रसेक मय व्याधियां, कण्ठरोहिणी तथा कण्ठ और श्वासनलिकाके प्रदाह पर व्यवहृत होता है।

प्राचीन कालसे ही ताम्बूलको कत्था, चूना लगानेका और सुपारी मिलानेका रिवाज है। कितनेक मनुष्य सौंफ, छोटी इलायची, पिपरमेण्टके फूल-आदि भी मिलाते हैं। सुगन्धित और उड्डयन शील तैलवाली वस्तु मिलानेसे [illegible] दि जाता है। नागरबेलके पानमें उड्डयन शील ताम्बूल तैल [illegible] आदिपर अपना प्रभाव [illegible] द्रव्य (Phenol) रहे हैं, इनके हेतुसे नागरबेल [illegible] कोई भी [illegible] शामको

धातुएं और आमाशय, अन्त्र, फुफ्फुस, त्वचा, वात वाहिनियां और मस्तिष्क आदि स्थानोंपर उत्तेजक, संशोधक और कीटाणु नाशक होता है।

भोजन कर लेनेपर पान खानेसे मुँहमें रहे हुए, कफ, मल, कीटाणु और आहार के अणु आदि सब लाला रसके साथ मिल रूपान्तरित होकर आमाशयमें चले जाते हैं। फिर मुख विशुद्ध और सुगन्धित बन जाता है। साथ साथ सुगन्धका असर रसके साथ गंधवाही नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क केन्द्रमें पहुँचता है। जिससे मानसिक प्रसन्नताकी भी प्राप्ति होती है।

स्वरस आमाशयमें पहुँचनेपर आमाशय रसका स्राव अधिक कराता है; और आमाशयकी मंथन क्रियाको बढ़ा देता है। जिससे पचन क्रिया सत्वर होती है। फिर आहार लघु अन्त्रमें जानेपर यकृत्पित्तका स्राव भी बढ़ जाता है। पानके स्वरसमें रहा हुआ उडनशील तैल यकृत्को भी उत्तेजित कर पित्तस्रावमें वृद्धि कराता है। पित्तस्राव बढ़ानेसे अन्त्रस्थ कीटाणु और कृमियोंका नाश होता है। आहार और आम का सम्यक् पचन होता है। संगृहीत वायु बाहर निकल जाती है, और पुरःसरण क्रिया बढ़ती है; जिससे यौन शुद्धि नियमित होती है।

पानोंका असर फुफ्फुस यन्त्रपर विशेष होता है। इस हेतुसे कण्ठ, स्वर यन्त्र, श्वासनलिका, वायुकोष आदिपर उत्तेजना आकर कफ सत्वर बाहर निकल जाता है; एवं इन स्थानोंमें प्रदाह हुआ हो, तो वह भी दूर हो जाता है।

पानोंमें कीटाणुनाशक गुण होनेसे अन्तर और बाह्य (स्थानिक) प्रयोग रूपसे भी व्यवहृत होता है। स्वरसका पान करनेपर भीतर और पान बांधनेपर स्थानिक क्रिया करता है। *बाहर बांधनेके लिए पक्के पानका ही उपयोग करना चाहिये।* कच्चे पानमें जन्तु नाशक सत्व फिनोल स्वल्प परिमाणमें रहता है।

ताम्बूलके कितनेक व्यसनी दिनमें ५०-१०० पान खा जाते हैं इनमेंसे अधिकांश तमाखू मिलाते हैं। तमाखू मिलानेपर मुंहमें उत्पन्न होनेवाला लाला स्राव, जो पचन क्रियामें अति हितकारक है, उसे थूक देना पड़ता है। बार बार पान खाकर थूकते रहनेसे लाला ग्रन्थियों पर व्यर्थ बोझा बढ़ता है। अधिक चूनेसे दांतोंकी जड़ शिथिल होती है और तमाखुके विषसे आमाशय आदि अवयव और रक्त विकारी बनते हैं।

सूचना—(१) ताम्बूल, क्षयरोग, रक्तपित्त तीव्र चक्षुरोग, विषप्रकोप, मूर्च्छा, मदात्त और शोष रोग (राजयक्ष्मा) में और रुक्ष मनुष्यको अपथ्य है। वाग्भट। सुषेण देवने लिखा है कि, नेत्ररोग, रक्तपित्त, क्षत, वातरोग, विषप्रकोप, शोष, मदात्यय, मोह, मूर्च्छा और श्वास रोग इनसे पीड़ितोंको ताम्बूल नहीं देना चाहिये।

(२) दुर्बल ज्वर रोगी और मुख शोष वालेको भी पान हितकर

दिनोंमें दूर

क्षुधा मन्द होगई हो,

(३) ताम्बूलका सेवन अति नहीं करना चाहिये एवं विरेचन लेने और क्षुधा लगनेपर पान नहीं, खाना चाहिये। पानके अति सेवनसे देह, नेत्रदृष्टि, केश, दांत, अग्नि, श्रवणशक्ति, वर्ण और बलका क्षय होता है। एवं ताम्बूल विशेष चबानेसे शोष, पित्तप्रकोप, वात प्रकोप और रक्त प्रकोप होते हैं। (भाव प्रकाश)

पानका अधिक सेवन करनेपर नव्य मतके अनुसार रक्तमें एक प्रकारका विष प्रवेश करता है, जो पाचन क्रियाको हानि पहुँचाता है। साथमें लगे हुए चूनेकी अधिकता होनेपर दाँतोंको हानि पहुँचती है। कत्थेसे फुफ्फुस में शुष्कता और अन्त्रमें विषोत्पत्ति होती है, सुपारी बढ़ जानेपर उसमें रहे हुए विष अरिकन (Arecaine) के प्रकोपसे सारे शरीरपर खुजली उत्पन्न होती है। अतः पान और उसमें मिलानेके कत्था, चूना, सुपारी आदि सब मर्यादित चाहियें।

(४) पान खानेसे मुख शुद्धि और प्रसन्नता आदिकी प्राप्ति होती है, किन्तु अधिक सेवन करनेपर दाँतोंको हानि होती है। लाला उत्पादक ग्रन्थियाँ अत्यधिक उत्तेजित होती हैं। थूकका पचन करनेका बल मंद हो जाता है, और आमाशयकी रस ग्रन्थियाँ प्रकुपित होती हैं। फिर पान खाने वाले पानोंके व्यसनी बन जाते हैं कितनेक व्यक्ति पानमें तमाखू डालकर चबाते हैं। फिर मुँहमें उत्पन्न लाला रसको थूककर निकाल डालते हैं। उनको अधिक हानि पहुँचती है, और वे पानके पक्के गुलाम बन जाते हैं।

(५) पान खानेवालोंको चाहिये कि, रात्रिको सोनेके पहले मुँहको अच्छी तरह साफ कर लेवें अन्यथा दांतोंको हानि पहुँचती है। दांतोंकी संधि धीरे धीरे खुलती जाती है। एवं दांत निबल बनकर जल्दी गिर जाते है।

ब्रह्मचर्यको जिनको पालन करना हो, वे नागरवेलके पानसे दूर रहें कारण, प्याज लहसुन, कस्तूरी, कपूर, नागरवेलके पान, ये सब कामोत्तेजक हैं। अतः ये सब मानसिक उन्नति चाहनेवालोंको और शरीर सत्वके रक्षण की चाहनावालोंके लिए हानिकार माने गये हैं।

(७) सगर्भा स्त्री और छोटे बालकोंको स्वादके लिये पान नहीं देना चाहिये।

डण्ठल, बीचकी नस और पार्श्वशिराओंमें कफ नाशकके साथ उबाकको उपस्थित करना और अधिक सेवन होनेपर वमन कराना, यह दोष रहा है। इस हेतुसे इन भागोंको निकाल देना चाहिये एवं अत्यधि[illegible]

५ यदि डण्ठल आदि भी खाते रहें तो उन भाग[illegible]

कांशमें रहे हुए फिनेहिल आदि विपका रक्तमें प्रवेश होजाता है जो अग्नि-मान्द्य, मूर्च्छा आदि विविधि उपद्रव उत्पन्न करते हैं।

उपयोग—नागरवेलके पानका उपयोग प्राचीन कालसे होरहा है। फिर भी चरक संहिता और सुश्रुत संहितामें औषध प्रयोग रूपसे पानका व्यवहार नहीं किया। चरक संहिताके दशेमानि या सुश्रुत संहिताके द्रव्य संग्रहणीय अध्यायोंमें ताम्बूलका उल्लेख नहीं किया। चरकमें केवल सूत्रस्थानके भीतर मात्राशितीय अध्यायमें मुँहमें धारण करने योग्य जायफल कस्तूरी, इलायची, सुपारी आदिके साथ ताम्बूलका उल्लेख किया है। एवं सुश्रुतने अन्नपान विधि अध्यायमें ताम्बूलके गुण दर्शाये हैं।

पान इस देशकी घरेलू ओषधि है। इसका उपयोग अनेक प्रकारसे होता रहता है। बालकोंको कब्ज अथवा आफरा आजानेपर पानके डण्ठलको एरण्ड तैलमें भिगोकर गुदनलिकामें प्रवेश कराया जाता है (यह सपोजिटरीके समान तत्काल लाभ पहुँचाता है) शिरदर्दको शमन करनेके लिये नागरवेलके पानको दोनों ओरके शंख प्रदेशों (Temples) पर बांधा जाता है। ग्रन्थियोंमें शोथ आकर वेदना होनेपर उत्तेजना देने और स्तन्यस्रावका ह्रास करानेके लिये पान रखकर पट्टी बांध दी जाती है। दुर्गन्धयुक्त पूयमय व्रणोंपर पानका ड्रेसिंग (आच्छादन) करनेपर शोधन क्रिया सत्वर होती है।

बंगसेनने श्लीपदपर ७ पानोंके कल्कको थोड़ा सैंधानमक मिलाकर निवाये जलके साथ सेवन करनेका विधान किया है।

नेत्रपाक (अभिष्यंद रोग) होनेपर नागरवेल (अथवा सुहिंजनो, कनेर, शिरीष, या दन्ती, इनमेंसे कोई भी एक) के पानका रस निकाल शहदके साथ मिश्रितकर नेत्रमें डालनेसे नया विकार सत्वर दूर होजाता है। शोढ़ल (डाक्टर वसुने भी इस प्रयोगका अनुभव किया है।

नागरवेलके पान उष्ण होनेसे पतले कफको सत्वर सुखाता है; और कीटाणुओंको नाशकर दाह-शोथको निवृत्त करता है। इस हेतुसे प्रतिश्याय होनेपर ४ पानोंको कूट स्वरस निकाल निवाश कर पिला देनेसे जुकाम दूर होजाता है। यदि नासास्राव दिनभर चालू रहा हो, तो प्रातः मध्याह्न और सायंकाल दिनमें ३ बार २-२ तोले रसपान कराना चाहिये। प्रतिश्याय चाहे जितना प्रबल हो, वह नागरवेलके पानके सेवनसे दूर होजाता है।

मुँहसे अति दुर्गन्ध आती हो, दो पानपर कत्था चूना लगा,. उसमें शीतल मिर्च २ रत्ती, जावित्री १ रत्ती, इलायचीके दाने १ रत्ती और चौथाई रत्ती कपूर डालकर धीरे धीरे चबावें। इस तरह दिनमें ३-४ समय चबानेसे मुँहकी दुर्गन्ध थोड़े ही दिनोंमें दूर होजाती है।

क्षुधा मन्द होगई हो, भोजन करलेनेपर आमाशयमें अन्न बहुत समय पड़ा

रहता हो, आम और कफ बढ़ गया हो, शारीरिक शक्ति निर्बल होगयी हो, जिह्वा मलसे आच्छादित रहती हो, कार्य करनेका उत्साह नष्ट होगया हो; तो नागरबेलके पानके सेवनसे क्षुधा प्रदीप्त होती है। इस कार्यके लिये दो दो नागरबेलके पानमें १-१ रत्ती सैंधानमक मिलाकर दिनमें ३-४ समय सेवन करना चाहिये।

पानका सेवन बद्धकोष्ठके रोगीको लाभदायक है। कारण, पानसे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया बढ़ जाती है; फिर आहार और मलकी गतिमें वृद्धि होकर शौच शुद्धि होती रहती है।

कण्ठमें कफ जनित अवरोध होता हो, तो पानोंके रस २-२ तोले में ४-४ रत्ती कालीमिर्चका चूर्ण और ६-६ माशे शहद मिलाकर प्रातः सायं देते रहनेसे कफ बाहर निकल जाता है; कण्ठमार्ग खुला हो जाता है; आवाज सुधर जाती है; और नूतन कफोत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है। अथवा दो चार पानोंके भीतर ५-५ नग कालीमिर्च डालकर खाने से भी कफका निवारण होकर कण्ठ शुद्धि होजाती है अथवा नागरबेल के फलों (पान पिप्पली) का चूर्ण शहदके साथ देनेसे भी कफ निकलकर कास दूर हो जाती है।

पानों की शिराओंमें कफघ्न और वामन गुण रहा है अतः नागरबेलके पानों की शिराओंको कूट २ तोले रस निकाल उसमें ६ माशे मिश्री मिलाकर प्रातः सायं सेवन करते रहने से कफ पतला होकर सरलता से बाहर निकल जाता है। जीर्ण कास, जिसमें कफ सफेद या पीला और गाढ़ा होजाता है; तथा फुफ्फुस और श्वास प्रणालिकाएं सब कफसे भरे रहते हैं, ऐसी अवस्थामें पानोंकी शिराओं का स्वरस अतिलाभदायक है।

श्वासरोगसे पीड़ितोंके लिये नागरबेल अति हितकर ओषधि है। नागरबेलके ५ पान, १० नग कालीमिर्च और २ नग छोटी इलायची लेवें। सबको धीरे धीरे चबाकर रस पीते रहें। पानोंपर कत्था चूना लगाना हों, तो लगा लेवें। पानोंका रस आमाशयमें जानेपर श्वासका त्रास कम होता जाता है।

पानमें रस-विपाक कटु, वीर्य उष्ण तथा बल्य और वात कफनाशक गुण होनेसे वातप्रकोप और कफप्रकोपसे पीड़ितोंको तथा बार बार वात या कफ रोग हो जाय, ऐसी प्रकृतिवालोंको पानका सेवन नित्य शास्त्रविधि अनुसार करते रहना हितकारक है। अधिक निर्बलता आ जानेपर कफ वृद्धि होनेकी भीति रहती है। ऐसी अवस्था में प्रतिदिन ३-४ समय पान खाते रहना चाहिये। जिससे कफधातु और वातधातु मर्यादामें रहें, और पित्त धातुकी वृद्धि होकर पचन क्रिया सबल हो जाय। पचन क्रिया बलवान बननेपर शारीरिक बलकी भी वृद्धि होती है।

नागरबेलके पानमें एक सुगन्धित द्रव्य है, जो मस्तिष्क केन्द्रमें पहुँचकर मनको प्रफुल्लित बनाता है, और कामोत्तेजना कराता है। पानपर चूना-कत्था लगा उसे

जायपत्री, कस्तूरी, कपूर, सुपारी और इलायची डालकर भोजनके बाद दिनमें दो या तीन समय खानेसे कामोत्तेजना होती है। बलवान शरीर और दृढ़वीर्यवालेको कामोत्तेजना होनेमें बाधा नहीं है। निर्बल वीर्य और कमजोर देहवालोंके लिये लाभके बदले हानि ही पहुँचती है। कामोत्तेजक विचार लाना या उस हेतुसे पान या अन्य ओषधि सेवन करना यह निर्बलोंके लिये परिणाममें हानिकर ही है।

कभी कभी प्रसूता स्त्रीको स्तन्यवेगकी अति वृद्धि होकर स्तनपर शोथ आ जाता है; और उसमें तीव्र वेदना होती है। उसपर नागरबेलका पान बांधनेसे दूध फैल जाता है और शोथ उतर जाता है। इस तरह देहके किसी भी भागमें शोथ आनेपर या व्रण शोथ होनेपर पान या पानकी पुल्टिस बांध देनेसे शोथ शमन हो जाता है; और पीड़ा दूर हो जाती है।

बालकको कोष्ठबद्धता हो गई हो, तो पानके डण्ठलको एरण्ड तैलमें भिगो या उसपर थोड़ा साबुन लगाकर गुदामें प्रवेश करानेसे शौच शुद्धि हो जाती है; तथा अफारा, उदरशूल और बेचैनी दूर होती है।

छोटे बालकोंके ज्वर, प्रतिश्याय और कासपर यह सहायक ओषधि है। मुख्य औषधिके साथ पानके रसका २-४ बूंद मिला देनेसे बहुत जल्दी लाभ पहुँचता है। बालकोंकी छातीमें कफ भर गया हो, तो नागरबेलके पानपर एरण्ड तैल लगाकर छाती पर बांध देनेसे कफ पतला होकर निकल जाता है।

बालकोंके अपचन और अफारामें पानके रसमें थोड़ा शहद मिलाकर चटा देनेसे अपान वायु निकलकर तुरन्त लाभ हो जाता है एवं बालकोंकी काली खांसीमें भी कीटाणु नाशके लिये पानका रस दिया जाता है।

नागरबेलकी जड़के छोटे छोटे टुकड़ेको मुंहमें रखकर रस चूसते रहनेसे स्वर शुद्ध बनता है। इस हेतुसे गवैया लोग इसकी जड़का उपयोग करते रहते हैं।

नागरबेलके पानोंके स्वरसमें दूनी शक्कर मिला शर्बत बनाकर सेवन करनेसे हृदय बलवान बनता है। निर्बलताके हेतुसे हृदय वेग बार बार बढ़ जाता है; तब निर्बलताको दूर करने, पाचनशक्ति बढ़ाने और हृदयको बलवान बनानेका कार्य यह शर्बत कर देता है।

पानमें विषघ्न गुण हैं अतः मधुमक्षिका, ततैया, चिऊंटी आदि जंतुके काट जानेपर उस स्थानपर नागरबेलके पानोंका रस मसलनेसे वेदना और विष प्रकोप दूर होजाते हैं।

शीतल वायु या शीतल जलके आघातसे कानमें शूल चलने लगता है; शूलके हेतुसे रोगीको निद्रा भी नहीं आती। उसपर नागरबेलके पानके रसको निवायाकर डालने और कानके बाहर जलकी थैली या कपड़ेसे सेक करनेपर शूल शमन होजाता

है। इस तरह कर्णपाक होकर पूयस्राव होता रहता हो, उसमें भी पानका रस दिनमें दो बार डालते रहनेसे रोग ३-४ दिनमें मिट जाता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि पान-कफ प्रधान रोगोंपर अति उपयोगी है। विशेषतः श्वास फुफ्फुसोंके भीतर प्रणालिका प्रदाह, स्वरयन्त्रके द्वार का प्रदाह, इन रोगोंपर पानोंका रस पिलाया जाता है, एवं पानोंको बाहर बांधा जाता है। इससे श्वास का प्रतिबंध कम होता है और जुकामका बल भी घटता है।

पानको गरमकर सूजी हुइ गांठोंपर बांधनेसे सूजन और वेदना कम होकर गांठ बैठ जाती है। व्रणपर पान बांधनेसे व्रणको सुधारता है; और व्रणभर जाता है। ५-६ पान गरमकर स्तनपर बांधनेसे दूध फैल जाता है और शोथ कम होजाता है।

कुचीलेके विषपर काली नागरबेलके मूल या पानके डण्ठलोंका रस १० तोले पिला देवें। वमन न हो, तो फिर १ घण्टा बाद दूसरीबार देवें। रक्तमें इसका असर रह जाता है। इस हेतुसे दो या तीन दिनतक रोज सुबह स्वरस पिलाना चाहिये।

दूषित पारा खानेसे फूट निकला हो, तो नागरबेल, भांगरा, तुलसी, इन तीनोंका स्वरस और बकरीका दूध मिलाकर सारे शरीरपर ४-६ घण्टे तक मालिश करावें। फिर शीतलजलसे स्नान करें। इस तरह ३ दिन तक करनेसे विष विकार शमन होजाता है।

(८२) नींबू।

सं० जम्बीर, दन्तशठ, निम्बुक, लिम्पाक। हिं० नींबू, कागजी नींबू। बं० कागजी लेबु, लिम्बुक। मं० लिंबु। गु० लींबु। क० लिंबे। ता० एलुमिच्चै। ते० निम्मपण्डु। मला० चेरुनारकम्। को० निंबुवो। अं० Lemon. ले० Citrus Medica var Acida (मेडिकाकी उपजाति एसिडा)

परिचय—नींबूके वृक्ष छोटे होते हैं। उत्पत्ति भारतके सब प्रान्तोंमें। वनस्पति शास्त्रने इसे बीजौराकी उपजाति माना है। औषधरूपसे विशेषतः फलका उपयोग होता है। कच्चे नींबूकी अपेक्षा पीले पक्के नींबू अधिक गुणदायी होते हैं।

गुणधर्म—कागजी नींबूके फल खट्टे, उष्णवीर्य, लघु, वातशामक, पित्तवर्द्धक, पथ्य, पाचन, रुचिकर, नेत्रोंको हितकर, बलकारक और अग्निप्रदीपक है। उदरकृमि, वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, विषप्रकोप, वमन, अग्निमान्द्य, वातविकार, मलावरोध, विषूचिका, कण्ठरोग, कास और कफको दूर करता है। इसमें कीटाणु नाश करनेका और सड़ा को दूर करनेका उत्तम गुण रहा है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार नींबूकारस दीपन, पाचन, हृद्य, तृषा निग्रहण, उत्तम रक्त पित्तशामक, शोणितस्थापन (रक्तपौष्टिक), नियत कालिक ज्वर प्रतिबन्धक, हर और मूत्रजनन है। छाल दीपन होकर कोष्ठवात प्रशामक है।

नींबूकी छालमेंसे उड्डयनशील तैल निकलता है, उसका उपयोग डाक्टरीमें आमाशय पौष्टिक रूपसे एवं बेस्वादु ओषधियोंको स्वादु बनानेके लिये करते हैं। आफरा, अपचन, दुर्गन्धवाले डकार आना, उदरमें वेदना, वमन, थोड़े थोड़े दस्त लगना आदिपर शक्करके साथ १ से ३ बूंद मिलाकर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त डाक्टरीमें अर्क और शर्बत बनाते हैं। उनका उपयोग रक्तपित्तपर करते हैं।

नव्य अनुसंन्धान अनुसार नींबूके रसमें जीवन सत्त्व क विशेष परिमाणमें रहा है। इस हेतुसे रक्तपित्त (Scurvy) रोगमें इसका अच्छा उपयोग होता है। परन्तु रक्तपित्त होनेवालोंको सोडा या इतर क्षारका सेवन नहीं करना चाहिये। इसके फलोंकी छालमेंसे उड्डयनशील तैल मिलता है, जो रंगमें हल्का पीला या हरा-पीला होता है। यह अपचन और उदरशूलपर व्यवहृत होता है।

जम्बीरकल्प:—

(१) नींबूका शर्बत—नींबूका रस १ सेर और शक्कर २॥ सेर मिला चासनी करके शर्बत बना लेवें। शर्बत तैयार होनेपर गरम गरमको छान लेवें। शीतल होनेपर बोतलमें भरें। यह शर्बत गर्मीके दिनोंकी व्याकुलता, अपचन (जिसमें आमाशयसे दुर्गन्धवाली डकार आती हों), उबाक, वमन, अरुचि, तृषा और रक्तविकारको दूर करता है। मात्रा १। से २॥ तोले जलके साथ।

(२) स्वादिष्ट शर्बत—नींबूका रस १ सेर, अदरखका रस ४० तोले, सैंधा नमक २ तोले, कालानमक २ तोले, हींग ६ माशे और मिश्री १ सेर लेवें। सबको पीतलकी कलई की हुई कड़ाहीमें मिलाकर उबालें। ३ उफाण आनेपर नीचे उतारकर तुरन्त छान लेवें। ठण्डा होनेपर ऊपरके भागको अलग नितार लेवें। पेंदेके कचरेवाले भागका उपयोग पहले जल्दी कर लेवें। मात्रा ६ माशेसे २ तोलेतक आधी रत्ती कपूर और २-४ तोले जल मिलाकर पिलादेवें। इस शर्बतके सेवनसे अपचन, अपचनजन्य अतिसार, विसूचिका (हैजा), पेचिश, उदरकृमि, अरुचि, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरशूल और वमन आदिरोग दूर होकर क्षुधाकी उत्पत्ति होती है।

उपयोग—नींबूका उपयोग भोजन और औषध रूपसे अति प्राचीन कालसे भारतमें हो रहा है। चरकसंहितामें भी इसका उपयोग हुआ है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, नींबूके एक टुकड़ेको एक सेर जलमें मिला चतुर्थांश क्वाथकर पात्रको रातभर खुला रख देवें। फिर सुबह शीतज्वरके रोगीको पिलाया जाता है।

प्लीहावृद्धिमें नींबूकी चटनी सैंधानमकके साथ दी जाती है। नींबूके रस सेवनसे ज्वर और शोथ रोगीके मुखकी शुष्कता कम होती है एवं जवाखार मिलाकर देनेसे प्रस्वेद आता है। पेशाबका जलन कम होता है। और मूत्रकी वृद्धि होती है।

नये आमवात, रक्तपित्त और वातरक्तमें नींबूका रस अति उपयोगी है।

आमवातमें १-१ औंस रस ४-४ घण्टेपर दिया जाता है। रक्तपित्तमें तो यह औषधि सर्वोत्कृष्ट मानी गई है। इससे रक्तपित्त नहीं होता।

पित्तप्रकोपसे नेत्र पीड़ा होनेपर, पित्त योग्य मात्रामें शरीरसे बाहर न निकलनेसे होनेवाली वमन तथा अतिसार और प्रवाहिकामें नींबूको गरमकर रस निचोड़ सैंधानमक और मिश्री मिलाकर दिया जाता है।

नाकमेंसे रक्तस्राव होनेपर रसका नस्य करानेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। मच्छरोंके दंशसे होनेवाले ददोरेमें खुजली चलती है; उसपर नींबूका रस लगाया जाता है।

(१) अम्लपित्त—अम्लपित्तका रोग नया हो, आमाशयमें क्षत, विद्रधि या कर्कस्फोट न हो, तो दोपहरको भोजनके २०-२० मिनट पहले १ पके पीले नींबूको २० तोले जलमें निचोड़ ४ माशे शक्कर मिलाकर पिलाते रहनेसे आमाशयमेंसे निकलनेवाले पित्तका स्राव कम होता है। इस तरह एकाध मासतक नींबूका रस देनेसे अम्लपित्त शमन हो जाता है।

सूचना—यदि भूलकर भोजनके बाद नींबूका रस पिलाया जायगा, तो आमाशयका रस अधिक खट्टा हो जायगा।

(२) अपचन—अधिक घृतमय पदार्थ खानेसे अपचन हुआ हो, तो नींबूका अचार खिलावें या स्वादिष्ट शर्बत पिलावें।

आमाशय रसकी कमीसे अपचन रोग जीर्ण हो गया हो, तो अदरखके टुकड़े पर नींबूका रस निचोड़ सैंधानमक मिला भोजनके साथ खिलाना चाहिये। इससे अग्नि प्रदीप्त होती है। आमाशयका रस न अधिक होकर आम रसका पचन होता तथा उदरवात और मलावरोध दूर होते हैं।

(३) कर्णशूल—नींबूके २० तोले रसमें ५ तोले सरसों या तिल्लीके तैलको पका लेवें। केवल तेल रहनेपर छानकर बोतलमें भर लेवें। उसमेंसे २-२ बूंद डालते रहनेसे पूयवृद्धिसे होनेवाली वेदना दूर हो जाती है एवं कानमें खुजली चलती हो, कानमें बार बार पूय हो जाता हो, किसी रोगके पश्चात् सुननेकी शक्ति मन्द हो गई हो, उन सबपर यह तैल हितकर है।

(४) रक्तपित्त—(Scurvy) पर पके ताजे नींबूका रस २॥-२॥ तोले, शक्कर १।-१। तोला और जल २०-२० तोले मिलाकर सुबह और शामको पिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें रक्तपित्त दूर हो जाता है। इस रोगमें मसूढ़े शिथिल हो जाते हैं, दांतोंसे रक्त निकलना, पाण्डुता और निर्बलतादि लक्षण प्रतीत होते हैं, ये सब १५-२० दिनोंमें दूर हो जाते हैं। साथ साथ नींबूका ताजा रस और जल समभाग मिलाकर कुल्ले कराते रहने से मसूढ़ोंको भी जल्दी लाभ पहुँच जाता है। ये कुल्ले

एरण्ड तैलके सेवनसे मुँहके बेस्वादुपन और जमालगोटा प्रधान जुलावकी उग्रतामें भी उपयोगी होता है।

(५) गर्मीके दिनोंमें व्याकुलता—अधिक धूपमें घूमनेपर बेचैनी होनेपर नींबूके रसको शीतल जलमें मिलाकर पिलाते रहनेसे शान्ति मिल जाती है।

(६) अपचन जनित अतिसार—अपचन होकर थोड़े थोड़े दस्त होते हों, तो स्वादिष्ट शर्बत अथवा नींबूके रसमें प्याजका रस और थोड़ा ठंडा जल मिलाकर पिलावें। यदि दस्त और वमन हो रही हो, तो स्वादिष्ट शर्बतमें कपूर मिलाकर १-१ घण्टेपर ३-४ या अधिक बार पिलाना चाहिये।

(७) वमन—नींबूको चीर उसपर शक्कर डालकर चुसा देनेसे आमाशयमें दूषित अन्नविकारसे उत्पन्न वमन शमन हो जाती है। यदि तृषा अधिक लगती हो या उदरमें पीड़ा होती हो तो वह भी दूर हो जाती है।

बार बार वान्ति होती रहती हो तो नींबूके फलोंके छपरोंको जला राखकर उसमें से १॥-१॥ माशे राख शहदके साथ दिनमें ३ बार चटानेसे तुरन्त लाभ हो जाता है।

(८) हिक्का—नींबूकी राख १॥-१॥ माशे शहदमें मिलाकर १-१ घण्टेपर चटाते रहनेसे हिचकी बन्द हो जाती है।

(९) जीर्ण मलावरोध—वर्तमानमें अज्ञानी माता पिता छोटे बच्चोंको दाँत आनेके पहले अन्न और घी खिलाते रहते हैं। जिससे नवयुवकोंमेंसे अधिकांशको कब्ज सताता है। अतिरिक्त गरम गरम चाय, काफी, बीड़ी, सिगरेटादि व्यसन दृढ़ होनेपर कब्ज कराते हैं इन रोगियोंको नींबूका रस १ तोला, जल १० तोले और शक्कर १ तोला मिला एकाध मासतक रोज रात्रिको पिलाते रहनेसे नियमित शौचशुद्धि होने लगती है।

सूचना—मुंहमें छाले रहते हों, रोज रात्रिको २-४ बार पेशाब करनेके लिये उठना पड़ता हो, छातीमें जलन रहती हो या संधि संधिमें वेदना होती हो, अथवा पहले उपदंश या सुजाकका रोग हो गया हो, तो यह प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(१०) मेदोवृद्धि—पके ताजे नींबूका रस २॥ तोले और शहद २॥ तोलेको २० तोले निवाये जलमे मिलाकर भोजन कर लेनेपर तुरन्त पिलाते रहनेसे १-२ मासमें मेदोत्पत्ति बन्द हो जाती है और बढ़ा हुआ मेदा कम हो जाता है।

(११) खुजली—सारे शरीरमें सूखी खुजली चलती हो तो सरसों या तिलीके तेलमें समान नींबूका रस मिला मालिश करा निवाये जलसे स्नान कराते रहने से और कपड़ोंको रोज गरमजल और साबुनसे धुलवाते रहनेपर खुजली चली जाती है।

सूचना—कब्ज रहती हो, तो उसे दूर करने के लिये सनाई पत्ति रात्रिको देनी चाहिये। रोग अधिक पुराना हो तो शुद्ध आंवलासार गन्धक

१॥-१॥ माशे समान शक्कर मिलाकर रोज सुबह और रात्रि को दूधके साथ देते रहना चाहिये।

(१२) चमड़ीपर धब्बा—शरीरके किसी भागमें पूय, कृमि, कीटाणु आदि के स्पर्शसे धब्बा होकर चारों ओर फैलता है और उसमें खुजली चलती रहती है। नींबूका रस मसलते रहने या नीबूके छालको नीबूके रसमें पीस पुल्टिस बना गरमकर बांधते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें रोग दूर हो जाता है।

(१३) दारुणक—शिरपर कीटाणु होनेसे छोटी छोटी फुन्सियां हो जाती है, खुजली चलती रहती है और चमड़ी कठोर हो जाती है, उसे दारुणक कहते हैं। उस पर नींबूके रस और सरसोंके तेलको सममाग मिलाकर लगाते रहने और दहीसे मलकर धोते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें दारुणक मिट जाता है।

(१४) बालकोंको मूत्रावरोध—नींबूके बीजोंको कूट मोटा चूर्णकर नाभिमें भरें, फिर ऊपर शीतल जलकी धारा डाले तो तुरन्त पेशाब साफ आ जाता है।

(१५) त्वचा की शुष्कता—चमड़ी कठोर और रूखी रहती हो, तो शरीर पर तैलकी मालिश कराते रहें और जलमें नींबूका रस मिलाकर स्नान कराते रहें, तो थोड़े ही दिनोंमें चमड़ी मुलायम हो जाती है।

वक्तव्य—यदि कीटाणु और विष प्रकोपसे शुष्कता आई हो, तो मूल विषको दूर करनेवाली दवा खिलानी चाहिये। कब्ज रहता है तो उदरको शुद्ध करना चाहिये। बीड़ी गांजादिका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये। पित्तकी उष्णतासे ऐसा होता हो तो भोजनके २०-३० मिनट पहले नींबूका रस जलमें निचोड़कर पिलाते रहना चाहिये।

(१६) अभिष्यन्द आंख आनेपर अति लाल हो गई हो और अति वेदना होती हो तो नींबूको चीर उसपर अफीम और फिटकरीके फूलेका चूर्ण डालकर आंखपर बांधनेसे जल्दी जल्दी वेदना शान्त होती है और लाली कम हो जाती है।

(८२) नीलगिरी।

सं० तैल वृक्ष, माणिक्य निर्यास, सुगन्धपत्र। हिं० गु० म० नीलगिरी। ता० कारुपुरमरम। ते० तलनोप्पी। अं० Blue gum (नीलगिरी गोंद)

ले० Eucalyptus Globulus (गोंद नीला)

Eucalyptus Citrio-dora (गोंदमें नींबूके सदृश सुगन्धवाली वृक्ष)

परिचय—नीलगिरी समूहमें लगभग ३०० जाति हैं। इनमेंसे ग्लो ब्युलस और सिट्रियोडोरा, ये दो जातियां भारतके अनेक प्रान्तोंमें बोई गयी है। पंजाबमें लगभग १०० जातिके वृक्षोंमेंसे उत्तम १६ जातियोंको लगानेका प्रयत्न किया गया था जो १९२४ ई० तक अच्छी तरह लग गयी थीं। लगभग २५ जातियोंमेंसे गोंद और तैल

मिलता है। इनके वृक्षोंकी ऊँचाई अत्यधिक होती है। आस्ट्रेलियामें कोई कोई वृक्ष ४८० फीट ऊँचाईके हैं। छोटी जातिके वृक्षोंकी ऊँचाई भी ६०-८० फीट हो जाती है। तना बहुत ऊँचाई तक सीधा रहता है। पानोंसे नीलगिरी तेलकी सुगन्ध आती रहती है।

मात्रा—तैल ३ से १० बूंद, शक्करके साथ। गोंद २ से ५ रत्ती।

गुणधर्म—इसका तैल प्रबल पूतिहर और दुर्गन्धनाशक है। नये तैलकी अपेक्षा पुराना तैल विशेष पूतिहर क्रिया करता है। क्योंकि, उसमें ओजोन शुद्ध वायुतत्त्व अधिक मात्रामें मिल जाता है। इसको त्वचापर मर्दन करनेपर अन्य उड्डयन शील तैलोंकी अपेक्षा कम दाहक है; किन्तु यदि उसकी बाष्प रोक दी जाय तो यह त्वचाको लाल बना देता है और अधिक होनेपर फुन्सियोंकी उत्पत्ति भी करा देता है। यह छोटे कीड़ेके लिए घातक है।

छोटी मात्रामें उदर सेवन करनेकर मुँहमें लालास्राव और आमाशयमें आमाशय रसका स्राव बढ़ा देता है। इस हेतुसे यह आमाशय पौष्टिक (दीपन पाचन) माना जाता है। बड़ी मात्रामें सेवन करनेपर आमाशय और अन्त्रमे उग्रता लाता है। जिससे उदर शूल, वमन और विरेचन होते हैं।

नीलगिरी तैल क्विनाइनके सदृश श्वेत रक्ताणुओंको रक्तवाहिनीकी दीवारमेंसे बाहर निकलने और उनकी संचलन गतिमें प्रबन्ध करता है एवं स्फीत प्लीहाका आकुंचन कराता है। तैलके भीतर कुछ ज्वरघ्न और नियत कालिक ज्वर प्रतिबंधक द्रव्य भी रहा है।

नीलगिरी तैल न्यून मात्रामें सेवन करनेपर आमाशयकी प्रतिफलित क्रिया रूपसे हृदयको उत्तेजित करता है और रक्त दबावको बढ़ा देता है। बड़ी मात्रामें सेवन करनेपर हृदयको निर्बल बनाता है तथा रक्तदबाव और शारीरिक उत्तापका ह्रास कराता है। इसका कम मात्रामें सेवन करनेपर श्वसन क्रिया उत्तेजित होती है और मात्रा बढ़ जानेपर श्वसन क्रिया शिथिल हो जाती है। अत्यधिक मात्रा होनेपर श्वसन क्रिया का वध होकर मृत्यु हो जाती है।

नीलगिरी तैल बड़ी मात्रामें सेवन करनेपर मस्तिष्क, सुषुम्णा शीर्ष और सुषुम्णा काण्डपर अवसादक प्रभाव उत्पन्न करता है। परिणाममें प्रतिफलित पक्षवध क्रिया होती है।

नीलगिरी तैलका सेवन करनेके पश्चात् यह देहके विविध अवयवोंकी क्रिया द्वारा बाहर निकलता है। वृक्क, त्वचा, श्वसन यन्त्र, प्रजननयन्त्र, मूत्रयन्त्र, इन सब मार्गोंसे बाहर निकलनेके समय श्लैष्मिक कलाको उत्तेजित करता है। ताकि मूत्रल, स्वेदल, कफ निःसारक गुणकी प्राप्ति होती है; प्रजनन-मूत्र संस्थामें दुर्गन्धहर क्रियाभी

होती है। यह तार्पिन तेलके सदृश वृक्क रक्तावेग (रक्त संग्रहसे लाल) करता है; मूत्रपर भी उसकी प्रतिक्रिया होती है, एवं उसमें एक प्रकारकी वासभी आती है।

नीलगिरीकल्पः—

(१) **नीलगिरी तैलका मलहम**—सरसोंका तैल या वेसलीन ८ औंस, मोम २ औंस और नीलगिरी तैल २ औंस लेवें। पहले तैल (या वेसलीन) और मोमको मिलाकर गरम करें। अच्छी तरह गल जानेपर कड़ाहीको नीचे उतारें। उष्णता सामान्य रहनेपर नीलगिरी तैल मिलाकर खुले मुँहकी बोतलोंमें भर लेवें।

उपयोग—यह मलहम मर्दन करनेमें विशेष उपयोगी है। शिरदर्द, जन्तुओं का विष, संधिशोथ, आमवातिक शोथ, वायुसे उत्पन्न पीड़ा, कमरकी वेदना, उष्णजल आदिसे झुलस जाना आदिपर यह लाभदायक है।

(२) **नीलगिरी पानोंका फाण्ट**—पानोंको कुचल १६ गुने उबलते हुए जलमें डालकर आध घण्टा ढक देवें। फिर छानकर उपयोग करें। मात्रा १ से २ औंस। यह कफघ्न, दुर्गन्धनाशक, पूतिहर और मूत्रल है। इसके सेवनसे ज्वरमें स्वेद आता है शिरदर्द और हाथ पैरका टूटना बन्द हो जाता है एवं सारे शरीरमें तेजी आजाती है।

उपयोग—इस तैलका उपयोग उदर सेवन और बाहर लगानेमें दोनों प्रकारसे होता है। इसमें पूतिहर (Antiseptic) गुण महत्त्वका है, फिरभी स्थानिक उग्रता उत्पन्न करानेके लिये चाहिये उतने परिणाममें मर्यादा तोड़कर इसका उपयोग नहीं किया जाता है। इसे घाव और क्षतके मलहमोंमें मिलाया है। अस्त्र चिकित्साके पश्चात् ड्रेसिंग करनेके लिये गोज, लिण्ट और ऊनके साथ इसका उपयोग होता है। जीर्ण संधिवातकी सूजनपर और पीठमें सुषुम्णा काण्ड (मेरुदण्ड) पर इसे ४ गुने सरसोंके तैलमें मिलाकर मालिश करायी जाती है। फुफ्फुसकोथ (फुफ्फुसमें सड़ा), क्षय चिरकारी और कफ पूर्ण श्वासनलिकाप्रदाह (खांसी) में २० औंस जलमें ६० बूंद नील गिरी तैल मिला, पात्रको अंगीठीपर चढ़ाकर उसकी वाष्प सुंघायी जाती है। जिन रोगीके देहपर पिटिकाएं निकल आयी हो, जो कालीखांसी अथवा कण्ठ रोहिणी से पीड़ित हों, उनको नीलगिरी तैल मिले हुए जलसे नफारा देनेपर लाभ पहुँच जाता है।

इसका उदर सेवन करानेपर दुर्गन्ध दूर होती है और प्रतिश्यायके आक्रमणका दमन होता है (नीलगिरी तैल सुंघाने पर प्रतिश्यायमें लाभ पहुँच जाता है) इस तरह इन्फ्लुएन्ज (वात श्लैष्मिक ज्वर) और आमाशय प्रसेकको भी यह दूर कर देता है। ऐसी अवस्थामें यह ५ से १० बूँद तक शक्करके साथ दिया जाता है। अपचन जन्य ज्वरमें देनेपर इससे लाभ पहुँच जाता है। अपचन और अग्निमांद्यके रोगीको यह बारम्बार दिया जाता है।

नाजुक प्रकृतिके मनुष्यों को इसका गोंद खिलानेपर अतिसार और प्रवाहिकामें लाभ पहुँचता है।

(८३) नीलोफर।

सं० कुमुद, कह्लार, अम्बुज, शशिकान्त, इन्दुकमल, नीलोत्पल। हिं० कुमुद, कुई, नीलोफर। काश्मीर-त्रिम्पोश, कुमुद, नीलोफर। फा० नीलोफर। बं० श्वेतको, हेलाफूल, नालिफूल। ओ० सुन्दिकौन। म० उत्पल, पोयणी। गु० पोयणु, उपलिया। क० नेइदिलु। ता० अल्लिनांमरई, अम्बल। ते० कह्लारमु, एर्रांकुलवा। अं० Lotus--lily, Water Rose.

ले० Nymphaea Alba (श्वेत कुमुद)
Nymphaea Lotus (गुलाबी या रक्तकुमुद)
Nymphaea Stellata (नील कुमुद)
Nymphaea Pygmaea (लघु श्वेत कुमुद)

परिचय—कुमुद जलमें होती है। पुष्प भेदसे इसकी मुख्य ४ जाति हैं। पुष्प जलपर तैरते हैं और रात्रिको खुलते हैं। पुटपत्र ४। दलपत्र (पखड़ियां) १०से ३० तक। फल नरम स्पंज सदृश (Spongy) मज्जावाले। फल जलमें पकता है। बीज सूक्ष्म गर्भमें रहे हुये। उत्पत्तिस्थान उष्ण और समशीतोष्ण कटिबन्ध।

श्वेतकुमुदिनीके पान—५ से १०इञ्च व्यासके। पुष्प सफेद, पंखड़िया लगभग १०। यह जाति काश्मीर में होती है।

रक्त कुमुदिनी—फूल सफेद-गुलाबी या लाल। पान ६ से १२ इञ्च चौड़े। फूल २ से १० इञ्च चौड़े। इसकी एक उपजाति (N. Lotus pubescens) होती है, उसमें फूल छोटे आते हैं।

नीलकुमुदिनी—फूल १ से १० इञ्च व्यासके, नीले, सफेद, गुलाबी, या बैंजनी, मन्द सुगन्धयुक्त। दलपत्र १० से ३० तक। इसकी पुष्प भेदसे ३ उपजाति हैं।

लघुकुमुदिनी—अति छोटी जाति। फूल सफेद, १॥-२ इञ्च व्यासके। पंखड़ियां लगभग १०। पान १ से २ इञ्च लम्बे।

इसके कन्दको शालूक कहते हैं। जलके नीचे कीचड़में दबा रहता है। ऊपरसे काला और भीतरसे सफेद और मृदु होता है। सूखे फूलोंको निलोफर कहते हैं।

गुणधर्म—कुमुदिनी शीतल, कड़वी, रक्तरोगोंकी नाशक और पित्त शामक है। उष्णता, कफ, कास, तृषा, श्रम और वमनको शान्त करती है। कुमुद शीतल, रसमें मधुर, विपाकमें कड़वा और कफघ्न है। रक्तदोष, दाह, श्रम और पित्तको शमन करता है। कन्द (शालूक) मधुर, पित्तनाशक, गुरु, मांसवर्द्धक, रक्तप्रदर हर, गर्भस्थापक और तृप्तिकर। बीज वातुल, रक्तपित्तहर और अतिसार नाशक है।

बीजोंको रेतमें डाल भूनकर मखानेके समान लावा बना लेते हैं, उसे लोग स्वादसे खाते हैं। बीजोंको दूधमें डाल मिश्री मिला कांजी बनाकर सेवन कराया जाता है। यह शीतल, पौष्टिक, रक्तपित्तनाशक, प्रदर, शामक और गर्भाशय विकृतिमें हित-कारक है।

उपयोग—कुमुद-कुमुदिनीके गुण और उपयोग सामान्यतः कमलके समान हैं। ये कमलकी अपेक्षा कम गुणवाले हैं। नीलोफर मूल कुछ चरपरे हैं। उसमें टेनिन और रंजक द्रव्य होनेसे चमार लोग चमड़े रंगनेके लिए काममें लेते हैं। यूरोपमें इस-मेंसे 'बीर' नामक शराब बनाया जाता है।

आवाज बैठजाना—कण्ठकी आवाज सदोष होने, कण्ठमें रही हुई ग्रन्थियां (Tonsils) बढ़ जाने और कण्ठके अन्य विकारोंपर इसका स्वरस पिलानेसे लाभ हो जाता है।

अनेक देशोंमें कुमुदके मूलोंको उबालकर भोजन रूपसे उपयोगमें लेते हैं। इसको पीस छान अरारूट (Arrow-Root गु० तवखीर) भी बनाते हैं।

अतिसार और रक्तस्राव—मूल, शीतल, मूत्रल, ग्राही और रक्तनिरोधक है। इस हेतुसे अतिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, अत्यार्त्तव, मूत्रमें रक्तजाना, नासिकासे रक्तस्राव होना, देहके भीतर किसी भी भागमेंसे रक्तस्राव होना आदि विकारोंपर स्राव बन्द करानेमें यह प्रयोजित होता है। मूलका चूर्ण पेचिशपर मट्ठे के साथ दिया जाता है।

वीर्य स्राव—वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, प्रदर और अतिसारमें कुमुदके पुष्पका स्व-रस, फाण्ट या हिम बना कर दिया जाता है। इसमें स्वेदल और कामशामक गुण भी रहा है; अतः विशेष मात्रामें सेवन करानेपर सामयिक नपुंसकताकी प्राप्ति होती है।

पित्त प्रकोपज हृदयकी धड़कन—हृदयके स्पन्दन बढ़ जानेपर पुष्पोंका स्वरस या फाण्ट दिया जाता है। अति तृषा, पित्तप्रकोपज शुष्क कास, वमन, चक्कर आना, मूत्रदाह, रक्तदबाववृद्धि, लू लगनेसे व्याकुलता आदि सब विकारोंपर इनका फाण्ट या शर्बत हितावह है।

चर्म विकार—विसर्प, चर्मदाह और गरम जल आदिसे जले हुए भागपर पुष्पोंका स्वरस लगानेसे वेदना शमन हो जाती है एवं कुमुदपत्रसे भी विसर्प और चर्मदाहकी निवृत्ति हो जाती है।

रक्त स्राव—अर्शमेंसे रक्तस्राव या अन्त्रमेंसे रक्तस्राव होनेपर कुमुदके केसरको मक्खन, मिश्री और शहद मिलाकर सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

सूचना—जिनको वात विकार हो, उनको कमल या कुमुदका अधिक दिनोंतक या अधिक मात्रामें सेवन या आहार रूपसे सेवन नहीं कराना चाहिये।

(८४) पर्णबीज ।

सं० पर्णबीज, हेमसागर, अम्लपर्णी । हिं० घावपता, पर्णबीज । बि० पत्थर चूरा । बं० कोपपाता, हिमसागर । फा० जख्मे हैयात । गु० घामारी, अहिरावण, महिरावण, अरन-मरन, खाट खटुम्बो । म० पानफुटी, घायमारी मध्यप्रदेश आम्बूटी । ता० रुनाकलि । ते० समाजमुदु । क० काडुसले । मला० इलेमेरुना । अं० Lifeplant. Bryophyllium Calycinum.

परिचय—बहुवर्षायु क्षुप । मूल अफ्रिकावासी । वर्तमानमें दक्षिण हिन्दके पर्वतोंपर नैसर्गिक । अनेक प्रदेशोंमें गमलों और जमीनमें बोया जाता है । यह पानोंसे क्षुप होजाता है । इस हेतुसे इसे पर्णबीज संज्ञा दी है । तना २ से ४ फीट ऊंचा, लाल, पीला । पान मांसल, स्वादमें खट्टे (काठियावाड़में इसके पकवड़े बनाते हैं और चटनी में मिलाते हैं) पुष्प नीचे झुके हुये, नली आकारके बैंगनी हरा । बीज छोटे, लम्बगोल, चिकने, खड़ी पंक्तिवाले ।

गुणधर्म—अम्ल, शीतल, रक्तस्रावरोधक, भग्नसंधानकारक, ग्राही, विषहर, व्रणरोपण ।

वक्तव्य—इस ओषधिमें मेलिकाम्ल (Malic Acid) है । अतः स्वरसको थोड़ा घी मिलाकर लेना चाहिये ।

पर्णबीज कल्पः—

(१) पर्णबीज तैल—पर्णबीज कल्क ४० तोले, स्वरस १६० तोले और तिल तैल ४० तोले मिलाकर मंदाग्निपर तैलको सिद्ध करें । यह तैल गहरे घावोंके लिये और पके हुये घावोंके लिये उपकारक है ।

(२) पर्णबीज मलहम—पर्णबीजतैल ४० तोले, राल २० तोले, मोम १० तोले और नीलाथोथा ६ माशे लेवें । तैल, मोम और रालको मिलाकर गरम करें । फिर तुरन्त छानकर नीलेथोथेका चूर्ण डालें । पश्चात् अच्छी तरह हिलाकर मिला लेवें ।

उपयोग—यह दिव्य ओषधि है । इसके रसकी क्रिया बारीक बारीक धमनियों पर होती है । उनका आकुंचन होकर तुरन्त रक्तस्राव बन्द हो जाता है । चाहे वह भीतरके यन्त्रोंमें हो या बाह्य त्वचामें हो । अन्तर बाह्य सब प्रकारके स्रावोंको यह बन्द करता है ।

(१) रक्तातिसार—आमरक्त मिश्रित अतिसार और प्रवाहिकामें इसके पानोंका रस ६ माशेसे १ तोला, जीरा ३ माशे और घी ६ माशेसे १ तोला मिलाकर देनेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द हो जाता है और अन्नको उत्तेजना मिल जाती है कितनेक चिकित्सक मिश्री मिलाकर पिलाते हैं । उससे भी लाभ हो जाता है ।

(२) नासारक्तस्राव—पानोंका रस ४-४ बूँद नाकमे डालने और थोड़ा कालाजीरा और घी मिलाकर पिला देनेसे नकसीरपर तत्काल लाभ हो जाता है।

(३) अवयवका कुचलजाना—यदि अंगुली आदि अवयव कुचल गया हो, तो उसपर पानोंका कल्क रखकर पट्टी बांध देनेसे घाव जल्दी अच्छा हो जाता है।

(४) आगन्तुक घाव—चोट लगना, मूढमार, गांठ और व्रणपर इसके पानको गरमकर बाँध देनेसे शोथ, लाली और वेदना कम हो जाते हैं और घाव अच्छा हो जाता है अन्य चिकित्साकी अपेक्षा घावपर इसके पान बांधना यह सत्वर और अधिक गुणदायक है। नये घावके लिये इसके समान अन्य कोई औषध नहीं है। इससे घावका रोपण जल्दी होताहै एवं उसका चिह्न भी सहसा दृष्टिगोचर नहीं होता।

सूचना—घावमें मिट्टी, धूल आदि प्रवेशित हो गये हों, तो पहले उसे कीटाणुनाशक जलसे (त्रिफलाके क्वाथ, पारदजल, कार्बोलिक जल या अन्यसे) धोकर साफ कर लेना चाहिये।

यदि घाव गहरा हो तो पहले स्वरस लगाकर स्राव बन्द करें। ऊपर पर्णबीज तैलका फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। दूसरे दिन खोल पहलेवाले फोहेको निकाल, नया रख पट्टी बाँध देवें। इस तरह करनेसे २-४ दिनमें घाव भर जाता है।

जिन घावोंमें पूय हो गया हो, उन घावोंको त्रिफलाके क्वाथसे धो; पोंछ सुखाकर तैल या मलहमका फाया रखकर पट्टी बांधते रहनेसे वे भी भर जाते हैं।

इसके पानोंको पकनेवाले व्रणकी सूजनपर सीधा बांधनेसे व्रण पक जाता है और उलटा बांधनेसे व्रण फूटकर घाव भर जाता है।

(२)

बंगाल, महाराष्ट्र, काठियावाड़में हेमसागरकी दूसरी जाति भी होती है। जिसे हिं० हेमसागर; हैजेके पत्ते। घावपत्ता संज्ञा दी है। लेटिन नाम केलञ्चो लेसिनिएट्य (Kalanchoe Laciniata) दिया है। इसके डंडेका रंग भस्म जैसा और ऊँचाई ३-३॥ फीट होती है। फूल खड़े होते हैं। पान मांसल मुख्य जातिके समान। मूलका स्वाद सोंठके समान चरपरा।

गुणधर्म—तालामूल शोथ, कर्णमूलिक शोथ (Mumps) गांठ और अपक्क विद्रधिनाशक। पान रक्तशोधक, ग्राही, व्रणशोधक, व्रणरोपण। यह पूयस्रावयुक्त विद्रधि, गांठ, शोथ, अश्मरी, पित्तातिसार और जन्तुओंका विष आदिपर व्यवहृत होता है।

उपयोग—इसके पानोंका उपयोग पहली जातिके हेमसागरके समान होता है। ताजे घावपर गुण कम दर्शाता है। जीर्ण व्रण विद्रधिपर यह विशेष हितावह है। यह व्रणका शोधन, रोपण दोनों काम कर देता है। डॉ० एन्सली लिखते हैं कि पुराना

पूयस्रावयुक्त विद्रधिपर मैंने भी इसका उपयोग किया है। यह शोधन और दाहको शान्तकर जल्दी घावको भर देता है।

(८५) परवल

सं० पटोल, राजीफल, पाण्डुफल, अमृतफल। हि० परवल, पल्वल, परोरा,। बं० पटोल। पं० ग्वालककड़ी। गु० परवल। ता० पेप्पुदल। ते० चेट्टुपोटल। क० पटोल। मला० पक्षेलम। ले० (1) Trichosanthes Dioica. (2) Tricho santhes Nervifolia.

परिचय—इसकी बेल बंगाल, आसाम, पंजाब आदि अनेक प्रदेशोंमें होती है। इसके फल मीठे और कड़वे, दो प्रकारके हैं। मीठे फल कच्चे होनेपर साग होता है। कड़वी जातिका उपयोग औषध रूपसे होता है। लेटिनके दो नाम पुष्पकी रचना भेदसे दिया है पान ३ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौड़े, खण्ड रहित। पहली जातिके पुष्पोंमें पहले नर पुष्पवृन्तकी जोड़ी होती है, फिर आनेवाले पुष्प २ इञ्च लम्बे, किन्तु कलगी में कभी नहीं। दूसरी जातिके फिर आनेवाले फूल (लगभग १२) कलगीमें आते हैं। पहली जातिके पुष्पोंके बाह्य कोषका कप (प्याली) १॥ इञ्चका और सकड़ा होता है। दूसरी जातिमें बाह्यकोष कप १॥ इञ्चका होता है। फल २ से ३॥ इञ्च लम्बे।

उक्त दो जातिके अतिरिक्त एक जंगलोंमें होनेवाली जाति (वनपटोल) जंगली परवल, जंगली चिचोड़ा (ले० T. Cucumerina) होती है, उसमें भी मीठी और कड़वी जाति होती हैं। कड़वी जातिके सर्वाङ्ग अति कड़वे होते हैं। उसमेंसे दूरसे ही दुर्गन्ध आती है। यह नैसर्गिक है। मीठे फलमें भी करेले जितना कडुवापन रहता है। पान २ से ४ इञ्च लम्बे, ५ खण्ड युक्त। पुष्प सफेद, पुष्प बाह्यदलकी प्याली १ इञ्च। १ नरफूल पहले आता है। फिर कलगी होती है। क्वचित् मादाफूल भी पहले देखनेमें आता है। फल १ से ३ इञ्च लम्बा।

मात्रा—कड़वे फलोंका चूर्ण गर्म १ से २ रत्ती सुगन्धित द्रव्यों (इलायची, दालचीनी, लौंग आदिके साथ।

गुणधर्म—कड़वा पटोल चरपरा, कडवा और उष्ण है। रक्तपित्त, वायु, कफ, कास, कण्डू, कुष्ठ (चर्मरोग) रक्तविकार, ज्वर और दाहका शमन करता है। मधुर पटोलपत्र पित्तहर,। बेल कफनाशक। फल स्वादु, रुचिकर, त्रिदोषशामक। मूल विरेचन।

तीसरी जंगली जातिमें विरेचन, अनुलोमन, पाचन, शोधन और रसायन गुण अधिक माना है। गुजरातमें इसका उपयोग अधिकतर होता है।

कंदमय मूल तीव्रविरेचन। इसकी क्रिया काँटेदार इंद्रायणके समान। कुष्ठ,

जलोदर, ज्वर, उदर व्याधि आदिपर हितावह। कड़वे हरे फलोंका गूदा भेदन है; किन्तु उससे हानिकर परिणाम नहीं होता। तन्तु और पानोंका डण्ठल कटुपौष्टिक, ज्वरहर और आनुलोमिक। पान कटुपौष्टिक, दीपन, पाचन और बल्य। मात्रा अधिक देनेपर वमन विरेचन कराता है। बीज कृमिघ्न, ज्वरघ्न और अग्निप्रदीपक। बीजका छिल्टा जहरी है। बीजोंको अन्य कृमिघ्न ओषधिके साथ मिलाकर प्रयुक्त करते हैं।

उपयोग—पित्तप्रधान रोगोंमें परवल विरेचनके लिये दिया जाता है। पित्त-ज्वर, जीर्णज्वर, कामला, शोथ और उदररोगमें इससे विरेचन होकर पचन क्रिया सुधरती है।

कड़वे परवल, वच और चिरायतेके क्वाथका सब प्रकारके ज्वरोंपर उपयोग होता है। पित्त ज्वरमें इसके पान और धनिये का क्वाथ दिया जाता है ज्वरमें पानों के रसका मर्दन कराया जाता है। ज्वरके साथ मलावरोध होनेपर इस औषधकी योजना की जाती है।

त्वचा रोगमें इसका उदर सेवन कराया जाता है एवं पानोंके स्वरसकी मालिश कराई जाती है। परवलके साथ गिलोयका उपयोग अति हितकारक है। इन्द्रलुप्तरोग (शिरके बाल झड़ जाना) पानोंके रसके मर्दनसे सुधर जाता है।

फलोंका क्वाथ यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, कामला और अन्य उदर व्याधिमें दिया जाता है। कच्चे फलोंका स्वरस शीतल और सारक होनेसे पारदप्रधान शोधन औषधियोंको इसके स्वरसकी भावनाएँ दी जाती है। फिर वह औषधि कुष्ठ वातरक्त, विचर्चिका आदिपर अच्छा काम देती है।

इसमें शामक और रेचक गुण होनेसे यह विषको उतार देता है।

(१) तीव्रज्वर—ज्वररोग जब ५-६ दिनतक अधिक त्रास देता है, तब तीसरी जातिके पञ्चागके क्वाथसे स्वेदन कराते हैं एवं पञ्चांग ३ माशे और धनिया ३ माशेको रात्रिके समय जलमें भिगो सुबह छानकर पिलाते हैं। पुनः सुबह भिगोकर शामको पिलाते हैं। इस तरह २-४ दिन करनेपर अति कष्टप्रदज्वर दूर हो जाता है।

कितनेक चिकित्सक सारे शरीरपर पानोंका स्वरस लगाते हैं; और यकृत्पर मालिश कराते हैं।

(२) कफज्वर—डण्ठलसह पान ६ माशे और सोंठ ६ माशे का क्वाथ कर दो विभाग करें। सुबह शाम थोड़ा थोड़ा शहद मिलाकर देनेसे कफ सरलतासे गिरने लगता है; आमका पचन होता है; मल दूर हो जाता है और ज्वर शमन हो जाता है।

(८६) पाठा।

सं० पाठा, राजपाठा, अम्बष्ठा। हिं० पाठा, पाढ। गु० कालीपाट। म० पाहल, मोठी तानीचो वेल। ते० पाठनिगे। बं० पाठा। आ० पाठा।

ले०(1) Cissampelos Pareira (पाठा मुख्य)
(2)Stefania Hernandifolia (बंगाली पाठा)
(3) Cyclea Peltata (आसामी पाठा)

परिचय—भारतमें होनेवाली पाठाकी तीन जातियों के लेटिन नाम भिन्न भिन्न हैं। ये तीनों अमृतवर्ग (Menispermaceae) की वनस्पति है। मुख्य पाठा चढ़नेवाली झाडी। शाखाएं रेखाचिह्नित, रुए'दार या लगभग चिकनी। पान-ढाल सदृश गोलाकार या वृक्काकार १॥ से ४ इञ्च व्यासके, लम्बाई से चौड़ाई कुछ अधिक। पांन मसलनेपर चिपचिपे लगते हैं। वास सोयाके समान। स्वाद रुचिकर और काली सारिवाके समान। स्वाद जिह्वापरसे बहुत समयतक नहीं जाता। पुष्प स्त्री पुलिङ्ग अलग अलग वल्लीपर। नर फूलों के गुच्छ। मादा फूलकी लम्बी मंजरी। पुष्प छोटे पीताभ देहरादूनमें मई से अगस्ततक, बरारमें जून से अक्टूबरतक। फल छोटे, गोल और रुए'दार पहले पीले हरे, पकनेपर पीलूके फल सदृश लाल। बीज मुड़े हुए और सूक्ष्म। फल नवम्बरसे जनवरी तक। यह वृक्ष पर चढ़नेपर काण्ड और शाखाएं वृक्षको शाखाको लिपट जाते हैं और जमीनपर फैलती है, तब सीधी फैलती है। यह विशेषतः वर्षाऋतुमें उत्पन्न होती है। यह भारतके उष्ण और समशीतोष्ण सब प्रदेशोंमें होती है। इन्डियन इसे मुख्य माना है।

बंगाली पाठाकी वेलकेपान ढाल सदृश, ३ से ६ इञ्च व्यासके। नेपालसे चिता-गोंग तक अधिक होती है। आसामी पाठाकी वेलकेपान ढाल सदृश ३ से ६ इञ्च लम्बे और २ से ४ इञ्च चौड़े। विशेषतः आसाम और खासिया के पहाड़पर होती है।

मात्रा—१५ से ३० रत्ती।

गुणधर्म—रसमें कड़वा, गुरु, उष्ण वीर्य, त्रिदोष शामक, भग्नसंधान कारक, और वृष्य। अतिसार, शूल, कफविकार, पित्तप्रकोप, दाह, विष, कुष्ठ, कण्डू, छर्दि हृद्रोग और ज्वरको दूर करता है। पाठा (सिसाम्पेलोज परेराके स्थानपर प्रतिनिधि रूपसे बंगाली पाठा लिया जाता है। उसमें भी गुण समान है।

मूल स्वादमें कड़वा और उत्तम आमाशय पौष्टिक है। सामान्यतः यह अन्त्र रोगोंकी अन्तिमावस्थामें सुगन्धित औषधियोंके साथ मिलाकर प्रयुक्त होता है। यह आमाशयमें, वेदना, अजीर्ण, अतिसार, जलोदर कफप्रकोप और गर्भाशय विकारपर उपयोगी है। मूलमें मूत्रल रजोनिःसारक और ज्वरघ्न गुण भी रहे हैं।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार पाठा कड़वा, लघु, आमाशयपौष्टिक, ग्राही, मूत्रल, शोथहर और ज्वरहर है। इनमें आमाशयपौष्टिक गुण मृदु है। लघु मात्रामें देनेपर क्षुधाको प्रदीप्त करता है; भोजनको पचाता है और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाका बल देता है। मात्रा अधिक होनेपर दस्त साफ लाता है।

डा० देसाईके मतानुसार पाठा और बंगालीपाठा बस्ती और मूत्रेन्द्रियकी श्लै-

ष्मिक कलापर ग्राही, शामक और वल्य क्रिया करता है। जिससे अन्तस्त्वचाका का संशोधन होता है। पाठा वृक्कों द्वारा बाहर निकलता है। इस हेतुसे वृक्कपर उत्तेजक और मूत्रजनन क्रिया दर्शाता है। पाठा और बंगाली पाठा (आकनादी) में शोथहर, वेदनाशामक और मूत्रजनन धर्म उत्कृष्ट होनेसे, दोनों मूत्र संस्थाके रोगों पर अच्छा लाभ पहुँचाते हैं। आशुकारिया चिरकारी बस्ति प्रदाह और उसके साथ उत्पन्न हुए बस्तिप्रसेक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र और सान्द्रमेह (पेशाबमें चिपचिपा, सफेद पदार्थ जाना, पेशाब बार बार थोड़ा थोड़ा होते रहना और पेडुमें दर्द बना रहना) पर पाठमूलका चूर्ण या कषाय पूरी मात्रामें देना चाहिये। जिससे शौचशुद्धि भी होती रहे।

पाठा कल्पः—

(१) पाठा कषाय—पाठाके चूर्ण २॥ औंसको २४ औंस जलमें मिलाकर १५ मिनट उबालकर ढक देवें। फिर छान लेवें। यदि २० औंस जलसे कम हो गया हो तो उतना गरम जल पाठाके चूर्णमें मिला फिर उसे छानकर पूरा कर लेवें। मात्रा १ से २ औंस तक।

(२) पाठातरलसार—पाठाके चूर्णको दूने गरमजलमें मिलाकर २४ घण्टे रहने दें। फिर पर्कोलेशन यन्त्रद्वारा टपका लेवें। फिर पुनः पुनः जलमिला गरमकर १० गुना जल न हो या चूर्ण असार न हो, तबतक टपकाते रहें। फिर स्वेदन यन्त्रपर तस्तरीमें रख घन बना लेवें। लगभग $\frac{1}{8}$ घन बनता है। उसमें ३ गुना मद्यार्क मिलाकर तरल सार तैयार करलेवें। मात्रा $\frac{1}{2}$ से २ ड्राम।

उपयोग—पाठाका उपयोग भारतमें संहिताकालसे हो रहा है। अथर्व वेद (२-५-२७-४ में) पाठाका उल्लेख किया है। चरक संहिता और सुश्रुतसंहितामें अनेक रोगोंमें पाठा मिलाया है। चरक संहिताके भीतर तिक्तस्कन्धमें वमनोपग और स्तन्य-शोधक औषधियोंमें पाठा लिया है। सुश्रुत संहितामें आरग्वधादि, पिप्पल्यादि, बृहत्यादि, और पटोल आदि गणोंमें पाठाका उल्लेख किया है।

पाठाकाचूर्ण मट्ठेके साथ दिनमें २ समय देते रहनेसे पाचन शक्ति सबल बनती है; अन्नका पचन अच्छी तरह होता है, तथा अतिसार और अर्शरोग निवृत्त होते हैं। इस तरह अर्शरोगमें वायुको अनुलोम करानेके लिए पाठाके ताजे पानोंका शाक भी खिलाया जाता है।

मूत्ररोगमें चूर्ण या कषायके साथ गिलोय और मुलहठी देना विशेष हितकारक है। सान्द्रमेहमें सुवर्णमाक्षिकभस्म देकर ऊपर पाठा कषाय पिलाते रहें। मूत्र मार्गका दाह और जीर्ण सुजाक रोगमें यवक्षार और खुरासानी अजवायन मिला देनेसे जल्दी लाभ पहुँचाताहै।

(१) विषमज्वर—पाठामूल और लहसुनको मिला दूधके साथ ३ दिनतक प्रातःकाल पिलाते रहनेसे शीत और कम्पपूर्व विषमज्वर दूर हो जाता है। अथवा पाठा-

अथवा पाठामूलके क्वाथमें कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर प्रातः सायं देते रहनेसे शीत-ज्वरकी निवृत्ति होतीहै। पाठा, नेत्रवाला, और खस, इन तीनोंका क्वाथ बनाकर पिलाते रहनेसे ज्वरका दोष पचन होता है। अरुचि, तृषा, अपचन, और मुँहका बेस्वादुपन, ये सब लक्षण दूर होते हैं; तथा ज्वर निवृत्त होता है।

(२) प्लीहावृद्धि—पाठाके मूल और पुनर्नवाके चूर्ण अथवा पाठा और गिलोयके चूर्णका सेवन चावलोंके धोवन (या शहद) के साथ करानेसे बढ़ी हुई प्लीहाका ह्रास होता है।

(३) अतिसार—आमाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अपचन और उदर पीड़ा तथा अन्त्रकी शिथिलतासे उत्पन्न अतिसार (बार बार थोड़ा दस्त होना) आमातिसार, रक्तातिसार, तथा ज्वरातिसार, सबपर पाठा अल्प मात्रामें दिनमें ३-४ बार देते रहने से सत्वर लाभ पहुँचाता है। अन्त्रके विकारोंपर पाठा मूल सुगन्धिपदार्थ-सौंफ, दालचीनी, जायफल आदिके साथ देना चहिये। आमाशयमें उत्पन्न होनेवाली वेदना, अपचन, अतिसार और अश्मरी रोगपर पाठाके मूलका उपयोग लाभदायक है।

(४) अर्शरोग—पाठाके साथ धमासा, वेलगिरी, अजवायन या सोंठ, इन चार में से जो अनुकूल हो उसे मिला देवें या वायु और मलके अनुलोम के लिये अजवायन, सोंठ, पाठा, अनारदानों का रस, गुड़ और नमक को मट्ठे में मिलाकर पिलाते रहने से बवासीर दूर हो जाते हैं।

(५) पेशावमें क्षार जाना—पाठा और अगरका क्वाथ बनाकर पिलाते रहने से थोड़ेही दिनोंमें मूत्रशुद्धि होजाती है।

(६) अन्तर्विद्रधि—पाठाके मूलको शहदके साथ देकर ऊपर चावलोंका धोवन पिलावें; इस तरह प्रातः सायं कुछदिनों तक प्रयुक्त करनेपर अति बढ़े हुए अन्तर्विद्रधिका भी शमन हो जाती है, ऐसा आचार्य चक्रदत्तने लिखा है। यह प्रयोग अन्तर्विद्रधिकी अपक्वावस्थामें और पच्यमान अवस्थाके प्रारम्भ तक हितकर है। विद्रधिका पाक हो जानेपर तो शस्त्र चिकित्सा का ही आश्रय लेना पड़ता है।

(७) कष्टार्तव—मासिकधर्ममें रजःस्रावके साथ रक्तकी गांठें गिरती हों तो पाठामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल और पुनर्नवाके चूर्णको जलके साथ देते रहने से मासिक धर्मकी शुद्धि हो जाती है।

(८) प्रसववेदना—प्रसवकालमें वेदना होती हो, सन्तान का जन्म निर्बलता के हेतुसे न होता हो, तो पाठामूलको योनिमें धारणकरें या जलमें घिस निवायाकर नाभि, वस्ति और योनिमार्गमें लेपकरने से सरलता से प्रसव हो जाता है।

(९) गर्भाशयका कमल बाहर आना—प्रसवकालमें सम्हाल न रहनेसे कमल योनि मार्ग से बाहर निकल आया हो, और रोग नया हो, तो उसे पाठाके क्वाथसे धोते रहने तथा माजूफल और फिटकरी की पोटलीको धारण करते रहनेसे

थोड़े ही दिनोंमें कमलका निकलना बन्द हो जाता है। शारीरिक परिश्रम अधिक पहुँचे, ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए। वरना कमलकी दृढ़ता नहीं होती।

(१०) बालातिसार—पाठा छोटे बालकोंको उदरपीड़ा, आमातिसार, प्रवाहिका वमनातिसार, अपचन और अर्श रोगोंपर घिस कर देते हैं। पाठाके मूलके साथ अतीस और छोटे करंजके बीजको भी घिसकर देनेका रिवाज है।

इनके अतिरिक्त संग्रहणीपर पाठादिचूर्ण, पित्त कफ ज्वरपर पाठा सप्तक, पीनसपर पाठादितैल, प्रदरादि विविध रोगोंपर अम्बष्ठादिगणकी औषधियों का क्वाथ आदि विविध प्रयोगोंमें आचार्योंने पाठा मिलाया है।

(८७) पालक।

सं० पालक्यं, क्षुरपत्रिका, स्निग्धपत्रा, ग्राम वल्लभा। हिं० पालकशाक, पालकी, पालाकी। बं० पालं शाक। म० पालख। गु० टांको, पालख। फा० अस्फानाज। क० पालक्य, मुकुन्द नगिड़। अं० Spinage Spinach.
ले० Spinasia Cleracea

परिचय—पालक वर्त्तमानमें शाकके लिये यूरोप, आफ्रिका और एशियाके अनेक प्रदेशोंमें बोया जाता है। भारतमें पुराने समयसे बोया जाता है। क्षुप एक बालिश्तसे एक फुटतक ऊंचा। डंडी पोकल और कोनयुक्त। पान मोटे मांसल, हरे और सामान्यत: त्रिकोणाकार। पानोंका डण्ठल लम्बा। पुष्प बहुत छोटे, वृन्तरहित और गुच्छोंमें। पानों और बीजोंका औषध रूपसे उपयोग होता है। पानोंमें जीवन सत्व अ, ब, क (A. B. C.) हैं।*

---

*नव्यशोधसे अन्न, शाकादि भोज्य पदार्थोंमें भिन्न भिन्न जातिके जीवन सत्व (Vitamins) रहे हैं। इस जीवन सत्वको अ, ब, क, ड, आदि संज्ञा दी है।

जीवनसत्व अ—कीटाणुसंक्रमणसे रक्षा करता है, यह अनेक कोमल शाक भाजी, मक्खन, तैल आदिमें होता है।

जीवनसत्व ब—इसके दो प्रकार हैं। इनसे रक्तकी वृद्धि होती है। इसके अभावसे बेरी बेरी (Beriberi) रोगकी संप्राप्ति होती है। इस रोगमें वातनाड़ियोंकी विकृति, पाण्डुता, निर्बलता, सर्वाङ्ग शोथ, नीचेके भागमें आक्षेप आना, पक्षाघात आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यह ताजे शाकभाजी, दूध, मटरादिमें मिलते हैं। इनका सेवन करनेपर ब सत्वकी प्राप्ति होती है और बेरी बेरीसे रक्षा होती है।

जीवनसत्व क—यह सत्व टमाटर, नींबू, संतरा, मोसम्बी और ताजे सागोंमें से मिलता है। इसके अभावसे रक्तपित्त (Scurvy) रोगकी प्राप्ति होती है। यदि इन सागोंको पकानेके समय सोडा या क्षार मिलाया जाय, तो क सत्वका नाश हो जाता है।

गुणधर्म—पालक किञ्चित चरपरा, मधुर, शीतवीर्य, रक्तपित्तनाशक, ग्राही, उत्तम संतर्पण और कफघ्न है। मद, श्वास, पित्त, रक्त और कफका नाशक है।

डॉक्टर देसाईके मतानुसार शीतल, स्नेहन, रोचन, मूत्रल, शोथहर और दाह शामक है। इसके गुणधर्म सामान्यतः सोराके समान है। इसका साग रुचिकर है, और जल्दी पचन होता है।

बीज सारक, शीतल, यकृत्‌के रोग, कामला और पित्तप्रकोपको दूर करता है। कफ रोग और श्वास विकृतिमें हितावह है। इसमेंसे चर्बिके समान गाढा तैल निकलता है, वह कृमि और मूत्ररोगोंपर लाभदायक है।

उपयोग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, पालकके पञ्चाङ्गका क्वाथ (या पान और बीजका क्वाथ) विविध प्रकारके प्रादाहिक ज्वरोंमें दिया जाता है। उदा० कण्ठप्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह, श्वास नलिकाप्रदाह आदि। कण्ठके प्रदाहमें पानोंके रसके कुल्ले कराये जाते हैं। अन्त्ररोगमें पालकका साग हितकारक है। कारण इसमें अन्य सागके समान अन्त्रको कष्ट देनेवाले पदार्थ नहीं है।

अश्मरी और सिकतारोगपर पानोंका स्वरस या क्वाथ दिया जाता है। जिससे मूत्र वृद्धि होकर सिकता के कण निकल जाते हैं।

पानोंको पीस या बीजोंको उकाल उसकी पुल्टिस बनाकर पकनेवाले विद्रधि या गांठपर बांधी जाती है। जिससे ज्वर कम हो जाता है, और विद्रधिका पाक सत्वर होता है।

(८८) पिप्पली।

सं० पिप्पली, मागधी, चपला, कणा, कृष्णा, उष्णा। हिं० पिप्पली, पीपल पोपर, पीपरि। बं० पिपूल। म० पिपली। गु० लींडी पीपर। पं० मर्घा। मला० ता० पिप्पली। ते० पिप्पलू। क० पिप्पली। फा० फिल फिल दराजू। अ० दार फिल फिल। अं० Long pepper. ले० Piper Longum.

जीवनसत्व ड—इस सत्वद्वारा देहमें खट (चूना- Caloium) और स्फुर (Phosphorus) के लवण (Salts) का संग्रह होता है। इसका अभाव होनेपर अस्थिशोथ (Csteo-malacia) जिसमें हड्डियां गल जाती हैं और अस्थिमार्दव (Rickets), जिसमें हड्डियां नरम हो जाती हैं, इन रोगोंकी प्राप्ति हो जाती है। ड सत्व मक्खन, अण्डे, सूर्यप्रकाश, नीले किरणादिसे प्राप्त होते हैं।

जीवनसत्व इ—इस सत्वसे पुरुषत्व और स्त्रीत्वकी प्राप्ति होती है। गर्भधारण होता है और गर्भपोषणमें सहायाता मिल जाती है। यह धान्यके अंकुर, अण्डे, मांस और दूधसे मिलता है।

सं० पिप्पलीमूल, ग्रन्थिक, कटुमूल। हिं० पिप्पलामूल, पीपलामूल, पीपरामूल। बं० पिपूलमूल। म० पिपली मूळ। गु० पीपरामूलना गंठोड़ा। फा० फिल फिल मोय। अ० असलुल फिल फिल।

परिचय—यह बहुवर्षायु वेल है। इसकी खेती बंगाल और मालाबारमें अधिक होती है, पान नागर बेलके पानके समान, अन्तर इतना ही है कि पिप्पलीके पानमें डण्ठलके पास खड्डा होता है। आसाम, बंगाल और कोकण के पहाड़ और जंगलोंमें पिप्पली होती है, उसे पहाड़ी पिप्पली कहते हैं। मूल काष्ठ मय। मूल, गांठ और शाखाओंको सुखाते हैं, इन तीनोंको पिप्पलीमूल कहनेका रिवाज हो गया है। पिपली मूल जितना मोटा और वजनदार हो, उतना ही अधिक गुण दायक माना जाता है। पिप्पलीकी अपेक्षा पिप्पलीमूल सौम्य है।

ताजी पिप्पलीका रंग हरा होता है। (सूखनेपर काली भासती है) बम्बईके बाजारमें ४ जातिकी पिप्पली मिलती हैं। १ नवसारी (गुजराती) २ बंगाली, ३ जंगबारी (स्वाहिली-अफ्रिकाकी) ४ पहाड़ी। इन सबमें नवसारीका मूल्य अधिक रहता है पहाड़ी पिप्पलीमें गुण बहुत कम है।

बंगाली पिपली छोटी और पतली, नवसारीकी इससे कुछ बड़ी, जंगबारी अति छोटी चूहेकी मेंगनी जितनी बड़ी। इन पिप्पलियोंके साथ कभी कभी नागरवेलकी पिप्पली भी पंसारी दे देते हैं। नागरवेलकी पिप्पली छोटी और कम गुणवाली होती है। उसे पान पिप्पली कहते हैं। नवसारीकी पिप्पलीका चूर्ण सुन्दर हरे रंगका होता है। पहाड़ी पिप्पली कम चरपरी होती है और उसका चूर्ण भी भूरा-सा होता है। अफ्रिकन एक लम्बी जाति भी आती है। उसमें भी गुण बहुत कम है। सिंगापुरसे पिप्पली आती है, वह अत्यधिक चरपरी होती है।

वक्तव्य—पिप्पली दाहक होनेसे आचार्योंने एक वर्षकी पुरानी उपयोगमें लानेका विधान किया है। यदि आशुकारी रोगमें तीव्र उत्तेजनाकी आवश्यकता हो, तो नयी पिप्पली लेनी चाहिये।

मात्रा—पिप्पली चूर्ण ४ से २० रत्ती। पिप्पलीमूल चूर्ण १ से ३ माशे; शहद या गुड़के साथ।

गुणधर्म—पिप्पली रसमें चरपरी, विपाकमें मधुर, स्निग्ध, उष्णवीर्य विपाक मधुर होनेसे गीलीको (मतान्तरमें शीतवीर्य), त्रिदोषनाशक, रसायन, ज्वरहर, वृष्य, तृषाशामक, उदररोगहर, आमपाचक और अग्निप्रदीपक है। वातप्रकोप, श्वास, कास, कफप्रकोप और क्षयको दूर करती है। कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहा, उदरशूल, इन सब रोगों तथा विरेचन कार्यमें हितकारक है।

ताजी पिप्पली कफवर्द्धक, स्निग्ध, शीतल, मधुर, गुरु और पित्तशामक है।

सूखनेपर पित्तप्रकोपक होजाती हैं। चरकसंहिता और सुश्रुत संहितामेंभी आर्द्रा पिप्पलीको श्लेष्मा और शुष्काको कफवातघ्नी लिखा है।

पिप्पलीका रस चरपरा और विपाक मधुर है। वीर्य विपाकानुसार शीतल (धन्वन्तरि निघुण्टु और कैयदेवमें शीत तथा भावप्रकाशमें अनुष्ण) किन्तु मतान्तरमें उष्ण है। इसमें स्निग्ध गुणभी रहा है। रसमें उष्ण होनेसे यह पित्तको बढ़ाती है। उष्णवीर्यके हेतुसे श्लेष्मको पतला करती है। तथा उसका ह्रास कराती है, उष्णवीर्य और स्निग्ध गुण होनेसे वातशामक गुणभी दर्शाती है। ये गुण सूखी पिप्पलीका है। ताजी गीली पिप्पलीमें कफ धातुके ह्रासका गुण नहीं है; श्लेष्मल (कफ धातुको बढ़ानेका) गुण होनेसे दूषित श्लेष्मका शमन नहीं कर सकती। आचार्योंने पिप्पलीको त्रिदोषशामक कही है। तीनों दोषोंको शमन करनेका हेतु आचार्य कैयदेवने लिखा है कि, पिप्पलीमें तीक्ष्ण और उष्ण गुण होनेसे श्लेष्महर और अग्निदीपक गुणदर्शाती है। शीतवीर्य और मधुर विपाकके हेतुसे (स्निग्ध गुण होनेसे) वातका अनुलोमन कराती है। इन गुणोंके हेतुसे इसे दिव्य रसायन ओषधि मानी है। सामान्यतः पिप्पली चरपरी होनेसे पित्तको बढ़ाती है, इसी हेतुसे अग्निवर्द्धक गुण प्रतीत होता है; फिर भी अम्लपित्त और रक्तपित्त रोगमे प्रकुपित पित्तको मर्यादित बनानेका कार्यभी कर देती है। इस हेतुसे आचार्योंने पित्त नाशक कहा, वह योग्य ही है।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार पिप्पली और पिप्पलीमूल, दोनों वातहर, उत्तेजक, रक्तशोधक और सारक है। श्वास यन्त्रकी विविध व्याधियां, अजीर्ण जीर्ण कासरोग, प्लीहावृद्धि, वातरक्त, कटिवात आदि रोगोंमें पिप्पली रक्तशोधक और बल्यगुण दर्शाकर लाभ पहुँचाती है। उत्तेजक मर्दन रूपसे यह प्रयुक्त होती है। एवं यह बेहोशी और मूर्च्छाको दूर करनेके लिये नस्य रूपसे उपयोगमें ली जाती है।

पाइपरिन, जो इसका प्रधान सत्व है, वह श्वेत रंगका दानेदार है। पुराना होनेपर पीला हो जाता है। यह जलमें नहीं मिलता। आल्कोहॉल और इथरमें मिल जाता है। यह स्वाद-रहित है; किन्तु शराबमें मिलानेपर चरपरा स्वाद आता है। वातसंस्थाकी निर्बलता (Neurosis) और प्लीहावृद्धि (प्लीहासे रक्त संग्रह) होनेपर नीलगिरी तैलके साथ मिलाकर उपयोगमें लिया जाता है। यह उत्कृष्ट ज्वरघ्न है। यह स्राव कराने वाले किसीभी यन्त्रकी क्रियामे परिवर्धन, ह्रास या दमन नहीं करता। मात्रा १ से ५ ग्रेन।

डाक्टर देसाईके मतानुसार पिप्पली उष्ण, वातहर, श्वासहर, दीपन, नियत कालिक ज्वर प्रतिबन्धक और गर्भाशय आकुंचक है। जिस तरह काली मिर्चकी क्रिया पचनेन्द्रियपर विशेष होती है, उस तरह पिप्पलीकी क्रिया फुफ्फुस और गर्भाशयपर विशेष होती है। इसके सेवनसे शीत प्रधान और कफ प्रधान रोगी सुधरते हैं।

श्वसनक सन्निपात (निमोनिया) में कफवृद्धि बढ़ जाती है, तब कफको सरलतासे बाहर निकालने वाली ओषधि दी जाती है। पिप्पली और लहशुन का क्वाथ कर दूध मिलाकर दिया जाता है। जिससे फुफ्फुस और हृदय सबल बनते हैं; और सरलतासे कफ निकलने लगता है। आशुकारी अवस्था की अपेक्षा चिरकारी और जीर्णावस्थामें यह अधिक लाभ पहुँचाती है।

लोह, अभ्रक, मल्ल, ताल और पारद कल्पमें जब उत्तेजक असर पहुँचाना हो, तब उनके साथ पिप्पली मिला देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इसी तरह 'अनेक क्वाथोंके साथ इसका चूर्ण प्रक्षेप रूपसे मिलाया जाता है।

पिप्पली मूल मस्तिष्कगत निर्बलता, उन्माद, वातप्रकोप, सूतिकारोग, मासिकधर्म साफ न होना, निद्रानाश, कास, श्वास आदिपर प्राचीन भूतकालसे घरेलू औषध रूपसे व्यवहृत होता रहता है।

पिप्पली कल्पः—

(१) पिप्पलीक्वाथ—पिप्पली १॥ तोलेको २४ तोले जलमें मिला बरतन को ढक मन्दाग्निपर क्वाथ करें। आधा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। इसमें से ।२ हिस्सा कर ३ बार प्रातः दोपहर और सायंकालको ६-६ माशे शहद मिलाकर सेवन करानेसे जीर्ण ज्वर प्लीहावृद्धि कफवृद्धि और वातप्रकोप निवृत्त होते हैं।

(२) पिप्पल्यादि चूर्ण—पिप्पली, अतीस, काकडासिंगी और नागरमोथा, चारोंको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। यह बालकोंके ज्वर, अतिसार, पेचिश, वमन, जुकाम और कासपर अति निर्भय, सौम्य और हितकारक औषध है। इसे बालचतुर्थी भी कहते हैं। मात्रा—१ से २ रत्ती। शहद या माताके दूधके साथ।

(३) कृष्णादि चूर्ण—पिप्पली, पद्माख, लाख और छोटी कटेलीके पक्के फल, सबको समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। कफ कास, जिसमें कफ पीले दुर्गन्धयुक्त हो गये हों और ज्वर कुछ-कुछ रहता हो, उसपर तथा उरःक्षत सह कफ कास जिसमें कफके साथ रक्त जाता हो, उसपर यह अति उत्तम ओषधि है। मात्रा—२ से ४ माशे घी और शहदके साथ।

(४) ६४ प्रहरी पिप्पली—पिप्पली अच्छी पक्की और नयी लेकर उसमेंसे डण्ठलोंको निकाल डालें। फिर कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। पश्चात् खरलमें डाल ६४ प्रहर (८ अहोरात्र) तक निरन्तर खरल करानेसे ६४ प्रहरी पीपल तैयार होजाती है। कितनेही धनिक बत्तेके नीचे सुवर्णका पतरा लगवाकर खरल कराते हैं। जिससे सुवर्ण भी घिसकर कुछ अंशमें मिल जाता है। मात्रा—२ से ६ रत्ती, शहदके साथ। यह सत्वर उत्तेजना देती है। दीपन, पाचन और कफघ्न गुण अधिक दर्शाती है। भस्म रसायन आदि ओषधियोंके साथ अनुपान रूपसे यह मिलायी जाती है. एवं

जीर्ण ज्वरमें क्षुधा बढ़ानेके लिये अति हितकारक है। श्वास, कास और वातप्रकोप पर प्रयुक्त होती है।

सूचना—इस कार्यके लिये नयी पिप्पली ली जाती है। पीपल पुरानी होनेपर तीक्ष्णता कम होती है।

(५) पाचक पिप्पली—पिप्पलीको नींबूके रस और सैंधानमकके साथ मिलाकर ३ (या ७) दिन भिगा देवें। फिर निकालकर सुखा लेवें। इसमेंसे २-४ पिप्पली खानेसे अपचन दूर होता है। मुँहमें रुचि आती है, और भोजनका पचन अच्छी तरह होता है।

(६) क्षार पिप्पली—पिप्पलियोंको पलाशके क्षारके जलमें भिगोदें। क्षारके जलका प्रवेश हो जानेपर सुखा दें। फिर दूसरी बार, तीसरीवार, इस तरह ७ बार भावना देकर सुखा लेवें। इनको घीमें थोड़ा भून लेवें। घी-शहद या शहदमें मिलाकर प्रकृति भेदसे सुबह, भोजनके पहले या भोजन कर लेनेपर सेवन करावें यह प्रयोग, कास, क्षय, शोष, श्वास, हिक्का, कण्ठरोग, अर्श, ग्रहणीरोग, पाण्डु, विषमज्वर, स्वरभेद, पीनस, शोफ, गुल्म और सम्पूर्ण वात कफज रोगसे पीडितोंके लिये लाभप्रद है।

(७) वर्द्धमान पिप्पली—पिप्पली (कल्क करके) क्रम वृद्धिसे दश दिन तक १०-१० (वर्तमानमें २ से २० तक)—रोज बढ़ावें एवं दूधभी बढाते जायँ और पिप्पलीका पचन हो जानेपर दूध भातका भोजन करें। १० दिनतक बढ़ावें; फिर उसी क्रमसे घटावें। इस तरह १९ दिनमें १००० पीपल होजाती है। दूध पहले दिन एक छटाँक, दूसरे दिन दो छटाँक, इस तरह क्रमसे शक्ति अनुसार बढ़ावें और फिर विपरीत क्रमसे घटावें। बलवान मनुष्यको पीसकर, मध्यम बलवानोंको क्वाथकर और निर्बलोंको शीत कषाय बनाकर पीपलका सेवन करना चाहिये। १० पीपलका प्रयोग श्रेष्ठ, ६ का मध्यम और ३ का कनिष्ठ है। ये प्रयोग मांसवर्द्धक, स्वर सुधारक, आयुष्प्रद, प्लीहा और उदर रोगनाशक तथा युवावस्थाका स्थापक और मध्य है। वर्धमान पिप्पली प्रयोगका सेवन करने और भोजनमें केवल दूधभात लेनेसे वातरक्त, विषम ज्वर, अरुचि, पाण्डु, प्लीहोदर, अर्श, कास, श्वास, शोफ, शोष, अग्निमान्द्य, हृद्रोग और उदररोग आदि नष्ट होते हैं। सुश्रुत संहिता।

भगवान् आत्रेयने वर्द्धमान पिप्पलीके अतिरिक्त कहा है कि, रसायन सेवनकी इच्छा वालोंको चाहिये कि ५-७, ८ या १० पिप्पली (वर्त्तमानमें २ पिप्पलीका) चूर्ण कल्क, क्वाथ या फाण्टकर रोज सुबह घी शहद मिलाकर १ वर्ष तक नियमित सेवन करें, तो भी योग्य लाभ मिलता है।

सूचना — रसायन रूपसे सेवन करने वालोंको भोजनमें दूध, भात और घी लेना चाहिये अथवा तेज नमक, तेज मिर्चे और आवे खटाई

आदि पदार्थोंका बिल्कुल त्याग करना चाहिये। प्यासके समय भी दूध ही पीना चाहिये।

(८) पिप्पली पाक— नयी पिप्पलीके ८ तोले कपड़ छान चूर्णको गोदुग्ध २ सेरमें मिला उसका मावा बनावें। फिर मावाको १० तोले घी में मिलाकर भूनें। पश्चात् आधसेर शक्करकी चाशनी कर मावा मिला कर थालमें जमा देवें। इसमेंसे २-२ तोले पाक खानेसे पचन क्रिया बढ़ती है और शक्ति आती है।

इनके अतिरिक्त पिप्पली और पिप्पलीमूलका उपयोग प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थकारोंने सैकड़ों प्रयोगोंमें कियाहै।

उपयोग—पिप्पली और पिप्पलीमूलका उपयोग अति प्राचीन कालसे भारतमें घरेलू औषधि रूपसे होरहा है। यह बालक, युवा, वृद्ध सगर्भा, प्रसूता, सबके लिये निर्भय और उत्तम औषधि है। प्राचीन संहिता ग्रन्थोंमें ज्वर, अग्निमान्द्य, श्वास, कास आदि अनेक रोगोंके प्रयोगोंमें पिप्पली और पिप्पलीमूल मिलाया है।

पिप्पलीमें दीपन-पाचन और अरुचि नाशक गुण उत्तम प्रकारका रहा है; अतः तृप्तिघ्न कषाय और दीपनीय कषायमें चरक संहिताकारने इसे स्थान दिया है। आमाशयस्थ कफ दुष्टि अधिक होनेपर या वात प्रकुपित होनेपर इसका उपयोग किया जाता है। पिप्पली चरपरी और उष्ण होनेसे आमाशयिक रस (पाचक पित्त) का स्राव अधिक कराती है। इस हेतुसे जब अन्न पचन योग्य न होना, उदरमें भारी पन रहना, आफरा आजाना, मुँहमीठा और चिपचिपा बना रहना, भोजनपर अरुचि होना और थोड़ा भोजन करने परभी दीर्घकालतक आमाशयमें पड़ा रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, तब पिप्पलीका सेवन अति लाभदायक माना जाता है।

अग्निमान्द्य होनेसे या अधिक भोजनकर लेनेपर अपचन होकर दूषित डकार आना, बार-बार थोड़ी-थोड़ी दस्त होना, मल सफेद होना, या दुर्गन्ध वाला होना, उदरमें वायु भरजाना आदि लक्षण होनेपर पाठाके साथ पिप्पली या त्रिकुटका सेवन कराया जाता है।

जब आमाशयमें आम दूषित आहार पड़ा रहने अथवा कफ वृद्धि होनेपर वमन कराया जाता है तब वान्तिकारक औषधिके साथ इसे मिला देनेसे आमाशयमेंसे चिपके हुए आम और कफको खोलकर बाहर निकालनेमें वह सहायक बन जाती है। इस हेतुसे वाग्भटाचार्यने वामक गणके भीतर पीपलकी योजनाकी है। पिप्पलीमें उदरस्य शूल प्रशमन गुण विशेष प्रकारका रहा है; अतः भगवान् आत्रेयने शूलप्रशमन कषायमें इसे मिलाया है। यह अपने दीपन पाचन गुणद्वारा विकारको पचनकर, सारक गुणद्वारा मलकी आगे गति कराती है, तथा स्निग्धोष्ण गुणद्वारा वातका संशमनकर शूलको निवृत्त करती है। उदर शूलपर विशेषतः इसके साथ हरड़, क्षार या हींगकी

योजना की जाती है। शिवाक्षार पाचनमें पिप्पली छोटी, हरड़, हींग और क्षार (सज्जीखार या सोडा बाई कार्ब), ये चारों मिश्रित हुए हैं।

पिप्पली दीपन—पाचन और शूल प्रशमन गुण होनेसे वात गुल्मपर भी लाभदायक है। इस कार्यके लिये सामान्यतः हिंग्वष्टक और वैश्वानरचूर्ण व्यवहृत होते हैं। हिंग्वष्टकका पाठ हींगमें और वैश्वानर चूर्णका पाठ हरड़में दिया जायगा।

पिप्पली दीपन—पाचन गुणके हेतुसे बहुधा आम प्रकोपसे उत्पन्न ज्वर तथा कफप्रधान नूतन ज्वरमें सहायक ओषधिरूपसे प्रयोजित होती है। इसमें उत्तम आम पाचन गुण होनेसे यह आमका पाचन और प्रस्वेदकी वृद्धिकरा ज्वरका निवारण कराती है। कफ प्रधानज्वरमें वामक ओषधिके साथ इसे मिला देनेसे कफ सरलतासे निकल जाता है; तथा ज्वरहर मुख्य ओषधिके साथ पिप्पली मिला देनेसेभी कफ शिथिल होकर सरलतासे गिर जाता है, कण्ठमे निकलने वाली आवाज साफ होती है और शेष विकार पचन होकर ज्वर दूर होता है। आम और कफप्रधान ज्वरके परिपक्व होजानेपर मंदाग्निवालेको भोजन रूपमे जो पेया दी जाती है, उसमें पिप्पली और सोंठ मिलानेका भगवान् आत्रेयने लिखा है। यह पेया क्षुधाको शान्त करती है; तथा विकारको जलानेमें सहायक भी होती है। यदि ज्वरके साथ कास, श्वास, हिक्का और मलावरोध हों, तो पिप्पली और आंवला मिली हुई यवागू दी जाती है। यदि उदर शोधनार्थ निरूह बस्ति दी जाती है, तो उसमें भी पिप्पली मिलायी जाती है। संक्षेपमें आमप्रकोप और कफप्रधान ज्वरोंमे यह अमृतके समान उपकारक है।

जीर्णज्वरमें पित्तवृद्धि और पित्तह्रास, ऐसे दो विभाग प्रतीत होते हैं। इनमेंसे पित्तका ह्रास होनेपर बहुधा अग्निमान्द्य, अरुचि, कफवृद्धि, निद्रावृद्धि, देहमें भारीपन अनेकोंका प्लीहावृद्धि, निस्तेजता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकारमें पिप्पली अति लाभ पहुँचाती है। शहद पिप्पली या वर्धमान पिप्पलीका प्रयोग किया जाता है। जीर्णज्वरमें ६४ प्रहरी पिप्पली विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। यदि यकृत् और प्लीहामें वृद्धि हुई हो या शिथिलता आई हो, तो उनको भी निरोगी और सबल बना देती है।

पिप्पली फुफ्फुस और हृदयपर बल्य असर पहुँचाती है, और कफको बाहर फेंकनेमें सहायता पहुँचाती है, इस हेतुसे भगवान् आत्रेयने कासहर कषायमें पिप्पली प्रयोजित की है। पीपल तीक्ष्ण और उष्ण होनेसे (इसमें एक प्रकारका उड़नशील तैल होनेसे) श्वास यन्त्र फुफ्फुस, श्वासनलिका आदिमेंसे संग्रहीत कफको बाहर फेंकनेके लिये सहायता पहुँचाती है और उन अवयवोंको बल देकर दुष्ट कफकी नूतन उत्पत्तिको भी रोकती है। इस योगसे प्रणालियोंके स्रोतोंमें रहा हुआ कफ शिथिल और आर्द्र होकर सरलतापूर्वक बाहर आ जाता है। इस तरह इसके कफघ्न और बलप्रदान करनेके गुणका लाभ जीर्ण कफकास और क्षयकासमें मिलता है। आचार्योंने

श्वास रोगके अनेक प्रयोगोंमें इसे मिलायी है। श्वासके विविध प्रकार पित्तानुबंध, वातानुबंध, कफ पित्तानुग आदि श्वास व्याधियोंके प्रयोगोंमें पिप्पली प्रयुक्त होती है। श्वास रोगमें प्रधानता कफकी होती है, वात पित्त गौण होते हैं। इस हेतुसे पित्तानुबंधज श्वास आदिमें भी इसका व्यवहार लाभदायक ही होता है। यदि हिक्का, कास और श्वासमें कफप्रकोप हो तो, पिप्पली मूल और मुलहठीको गुड़, घी, शहद और गोबरका रस मिलाकर देनेका विधान आचार्योंने किया है। इस तरह प्राचीन भूतकालसे श्वासरोगपर इसे अति हितावह औषधि मानकर चूर्ण, क्वाथ, घृत, चाटण, यूष, यवागू, जलपान आदिमें मिलायी है।

पिप्पलीकी उत्तेजक क्रिया गर्भाशयपर होती है। इस हेतुसे प्रसव होनेके पश्चात् उत्पन्न मक्कल शूल और गर्भाशयमें दूषित रक्त आदि संगृहीत रह जानेसे उत्पन्न सूतिका ज्वरपर यह प्रयोजित होती है। यह गर्भाशयको संकुचित कर उसमेंसे संगृहीत रक्त आदिको बाहर निकालती है, एवं गर्भाशयमें उत्पन्न वातका शमन कराती है। गर्भाशयके वातशमनार्थ पिप्पलीकी अपेक्षा पिप्पलीमूल विशेष लाभदायक माना गया है। प्रसवकालमें प्रसव वेदना (आविरः) अधिक सबल होकर सत्वर प्रसव होने और आंवलको जल्दी गिरानेके लिये पिप्पलीमूल खिलानेका विशेष रिवाज़ है।

पिप्पलीमें उत्तेजक कफघ्न गुण होनेसे शिरोविरेचन रूपसे भी लाभदायक है। इस हेतुसे चरक संहिताकारने शिरो विरेचनोपग वर्गमें इसे मिलायी है। यह मस्तिष्कगत कफका स्राव करा मस्तिष्कको शुद्ध बनाती है। जिससे अक्षि, कर्ण, नासा और मस्तिष्कगत विकार सरलतासे शमन हो जाते हैं।

पिप्पलीका विपाक मधुर होनेसे अम्लपित्त रोगमें उपयोगी है। यदि अम्लपित्तमें ताजी पिप्पलीका या दूधमें उबाली हुई पुरानी पिप्पलीका सेवन शहदके साथ कराया जाय, तो पित्त प्रकोपका ह्रास होता है।

पिप्पलीका कार्यक्षेत्र रस और शुक्र धातु मुख्य है; तथा परंपरागत रक्त, मांस आदि शेष धातुओंको लाभ पहुँचता है। उष्ण होनेसे रस और शुक्र धातुकी पचन शक्तिको दृढ़ बनाती है। रस धातुकी पचन शक्ति प्रबल बननेपर आमाशय, यकृत् आदिकी क्रिया सुधरती है, क्षुधा प्रदीप्त होती है, आहारका पचन सत्वर होने लगता है।

पिप्पलीका विपाक मधुर होनेसे एवं रसायन गुण अवस्थित होनेसे अधिक आहारका पचन करनेपर भी आमाशय आदि अवयव शिथिल नहीं बनते। इनके अतिरिक्त रस धातु सबल बननेसे स्तन्यकी प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है। जब माताकी पचनशक्ति अधिक कमजोर होती है; तब भोजन और दुग्ध आदि पदार्थका सेवन कम होनेसे शिशुको दूध भी कम मिलता है, ऐसी अवस्थामें गोदुग्ध और पीपल या त्रिकटुका सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें पचनशक्ति बलवान बनती है; जिससे रसोत्पत्ति बढ़ जाती है। फिर स्तन्योत्पत्तिकी भी वृद्धि होती है।

इस तरह गर्भाशय और बीजाशय आदि जनन यन्त्रपर पिप्पलीकी क्रिया होने से रजोत्पत्ति बढ़ती है। जब पचनेन्द्रिय संस्था और जननयन्त्रकी शिथिलताके हेतुसे मासिकधर्मकी शुद्धि नहीं होती। गांठवाला रज या झागदार रज या दुर्गन्धयुक्त रजका स्राव होता है, तब उन विकृतियोंको यह सुधार देती है। अतः यह स्त्री रोगमें लाभदायक है।

कफ प्रकोपके हेतुसे जब शुक्रधातुमें चिपचिपापन बढ़ जाता है; और मार्गावरोध होता है; तब उसे सुधारनेका कार्य पिप्पली द्वारा सम्यक् प्रकारसे होता है। पिप्पलीमें स्निग्धता, उष्णता और सारक गुण होनेसे अन्त्रस्थ पुरीष और अन्य धातुओंमें स्थित मलोंको स्निग्धता और उष्णता पहुंचाती है; एवं उनको बाहर निकालनेमें यह अन्य अवयवोंकी सहायता भी करती है। इस हेतुसे चरक संहिता के भीतर आस्थापनोपग कषायमें पिप्पली मिलायी है। एवं अन्य स्वेदन प्रयोगोंमें भी इसका उपयोग किया है। ज्वरावस्थामें प्रायः प्रस्वेद क्रिया योग्य नहीं होती। विष रक्तमें संगृहीत हो जाता है, तब पिप्पलीके सेवनसे त्वचामें उत्तेजना पहुँचनेसे विष रसायनियोंके बाहर निकलने लगता है। इस तरह गर्भाशयमें रुका हुआ दूषित रज आदि मल फुफ्फुस और श्वासवाहिनियोंमें रुका हुआ श्लेष्म रूप मल तथा रक्तमें रहा हुआ पित्त और कफ आदि मल, ये सब उन स्थानोंमें उत्तेजना आकर बाहर निकल जाते हैं। इस तरह पिप्पलीमें कीटाणु नाशक गुण होनेसे उदरस्थ तथा रक्तस्थ कृमि और कीटाणुओंका नाश भी हो जाता है।

अर्शरोगी प्रतिदिन भोजन करलेनेपर पिप्पली ४ रत्ती, भूना हुआ जीरा १ माशा और थोड़ा सैंधानमक मिलाकर मट्ठे के साथ सेवन करते रहें, तो अर्शका कष्ट नहीं भोगना पड़ता।

नये बिना सड़े हुए पिप्पलीमूलका कपड़ छान चूर्ण १ से ३ माशे तक मिश्री या दूने गुड़के साथ मिलाकर प्रातः सायं देते रहनेसे अग्नि प्रदीप्त होता है। अन्नका सम्यक् पचन होता है, शान्त निद्रा आने लगती है, और वातप्रकोप शूल, वेदना आदि विकार दूर होते हैं निद्रा लानेके लिये वृद्ध मनुष्य इसका विशेष रूपसे व्यवहार करते रहते हैं।

हिस्टीरिया रोगिणीको बहुधा वायुका गोला हृदयके पाससे अकस्मात् उठकर कण्ठमें आजाता है; और मार्गको रोक देता है। इस विकारपर पीपल हितकारक है। पीपल २ तोले, कालीमिर्च ३ तोले, सैंधानमक १ तोला, तथा हींग भूनी ३ माशे मिला कूटकर कपड़ छान चूर्ण करें। इसमेंसे ३-३ माशे चूर्ण निवाये जलके साथ देनेसे वातप्रकोप सत्वर दूर होजाता है।

(१) वातश्लेष्मज्वर—पिप्पलीका क्वाथ देनेसे वातश्लेष्मज्वर, आमप्रकोप, कफवृद्धिका और प्लीहावृद्धि दूर होते हैं; अथवा पीपलका चूर्ण शहदके साथ देवें।

जीर्णज्वर और अग्निमान्द्य—पिप्पलीका चूर्ण गुड़के साथ दें। अथवा ६४ प्रहरी पिप्पली २-२ रत्ती थोड़ा शहद मिलाकर प्रातः मध्याह्न और सांयकालको देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें ज्वरका निवारण होता है, क्षुधाप्रदीप्त होती है और कोष्ठ शुद्धि नियम पूर्वक होने लगती है जिनको पिप्पलीसे उष्णता प्रतीत हो, उनको सितोपलादि चूर्ण दिया जाता है।

(३) विषमज्वर—पिप्पली मूलका चूर्ण घी शहदके साथ मिलाकर चाट लेवें। ऊपर गरम किया हुआ गो दुग्ध पिलानेसे हृदय रोग और कास सह विषम ज्वर नष्ट होता है।

(४) उदरवात— कब्ज रहने और अपान वायु का स्राव न होनेसे कोष्ठमें वायु भरा रहता हो तो पिप्पलीका चूर्ण ४ ६ रत्ती तथा सेंधानमक २ २ माशेको २-२ छटांक मठे में मिलाकर १-१ घण्टेपर २-३ बार पिला देनेसे अपानवायुकी शुद्धि होकर उदर हल्का हो जाता है, बेचैनी दूर होती है; एवं शौच शुद्धि होकर प्रकृति स्वस्थ हो जाती है।

(५) कफज कास—पिप्पलीके कल्कको घीमें भून सेंधानमक और शहद मिलाकर खिलानेसे कफज कास दूर हो जाती है (च० सं०)। वाग्भटाचार्यने कल्कको तैलमें भून मिश्री मिलाकर खाने और ऊपर कुलथीका क्वाथ पीनेका लिखा है। हारीताचार्य लिखते हैं कि पिप्पली चूर्णका गुड़के साथ सेवन करनेसे कास, अजीर्ण, श्वास, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, कामला, अरुचि और जीर्ण ज्वर सत्वर दूर हो जाते हैं।

(६) पेचिश—पिप्पली कल्कका बकरीके दूधके साथ सेवन कराने पर बहुत पुराना पेचिश रोग भी शमन हो जाता है। शोढल।

(७) अर्श—तक्रकल्प (केवल मट्ठापर ही रहना, अन्न जल नहीं लेना) करने के साथ पिप्पली या पिप्पली मूलका सेवन (वर्धमान पिप्पली प्रयोग अनुसार) कराया जाय, तो अर्श रोग एक मासमें नष्ट हो जाता है। सुश्रुत संहिता।

(८) गृध्रसी—पीपलका चूर्ण गोमूत्र या एरण्ड तैलके साथ सेवन करानेसे जीर्ण कफ वातज गृध्रसी रोग नष्ट हो जाता है। भावप्रकाश।

(९) बालकोंको दांत आना—छोटे बच्चोंके दांत बिना कष्ट निकलनेके लिये पिप्पलीको शहदमें मिलाकर मसूढ़ेपर घिसें। शोढल।

(१०) मेदोवृद्धि—पिप्पलीका चूर्ण शहदके साथ दिनमें दो बार दो चार मास तक सेवन करते रहनेसे मेदोवृद्धि और कफवृद्धिका ह्रास हो जाता हैं।

(११) नेत्रकण्डू—पिप्पली एक भाग और हरड़ दो भाग मिला जलमें खरलकर वर्ति बनावें फिर जलमें घिस नेत्रमें अंजन करते रहनेसे कण्डू आदि नेत्रके विविध रोग दूर होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं।

(१२) नया आमातिसार—इस रोगमें आम और दुर्गन्धयुक्त दस्त होते रहते हैं। साथ-साथ उदरमें शूल चलना, अरुचि, अग्निमान्द्य आदि लक्षण भी होते हैं, इसपर पिप्पली मिश्रित हरड़का चूर्ण ६ माशे निवाये जलके साथ देनेसे उदर शुद्धि होकर आम प्रकोप, अतिसार, उदरशूल और अरुचि दूर होकर क्षुधा प्रदीप्त होजाती है।

(१३) वान्ति करानेके लिये—पीपल और मैनफल का क्वाथकर उसमें सैंधानमक और शहद मिलाकर पिलानेसे आमाशयमें रहे हुए कफ, आम आदि दोष वमन होकर बाहर निकल जाता है।

(१४) विषज निद्रा—सर्प विष और अफीम विषके रोगीको विषप्रकोप बढ़नेपर निद्रा आने लगती है। निद्रा आनेपर विष अधिक लीन हो जाता है। इस हेतुसे नेत्रमें तीक्ष्ण अंजन डालकर जाग्रत रखनेका प्रयत्न किया जाता है। ऐसी अवस्थामें विशेष साधन न मिले तो पिप्पलीके चूर्णका अंजन रूपसे उपयोग किया जाता है।

(१५) कर्णशूल—निर्धूम अंगारेपर पीपलके चूर्णकी पोटली रख दें। फिर जो धुआं निकले, उसे किसी नली द्वारा कानमें प्रवेश करावें, तो कान पककर निकलने वाला शूल नष्ट हो जाता है।

सूचना—पिप्पली विशेषतः कफवात प्रधान विकारोंपर व्यवहृत होती है। पित्त प्रधान व्याधियोंमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मुखपाक, जिह्वापर छाले, मुँहमें कड़वापन, नेत्रमें लाली, तृषाधिक्य, पतले गरम दस्त, दाह, निद्रानाश, आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो इसे प्रयोगमें न लाना, अच्छा माना जायगा।

पिप्पलीका प्रयोग करनेसे पित्तप्रकोप या रक्तप्रकोपके लक्षण खट्टी वमन होना, मुखपाक, रक्त दबाव वृद्धि, नासिकासे रक्तस्राव, शुष्क कास आदि उपस्थित हों तो अति योग समझकर तत्काल पिप्पलीको बन्द कर देना चाहिये, और प्रकोप शामक मुक्ता, प्रवाल, आंवले, त्रिफला, भांगरा, शंखपुष्पी, अनार, सितोपलादि चूर्ण अमृतासत्व आदिका सेवन करना चाहिये।

पारिभाषिक शब्द और उनका अर्थ।

(गुणधर्म दर्शक)

अतिसार—बारबार दस्त लगना।

अनुलोमन—अपने अपने मार्गमें गमन करना। ऊपर की वायुका ऊर्ध्व तथा नीचेकी वायुका अधोगमन होना।

अवसादक—हृदय आदि यन्त्रोंकी गति को कम करने वाला।

अवृष्य—कामोत्तेजनाको दूर करनेवाली।

आक्षेपहर—मांसपेशियोंमेंसे कितनीकोंका संकोच विकास और चलन होता रहता है। उदाहरणार्थ फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, आदि यन्त्र। इस क्रियामें विकृति होनेपर मांसपेशियां कठोर हो जाती है। इस क्रियाके प्रतिबन्धको दूर करके नियमित क्रियाको करानेवाली।

आध्यमान—अफारा।

उग्रताभोधक—उग्रता पहुँचानेवाली ओषधियां। त्वचा पर प्रदाह उत्पन्न करा तथा रक्त संचालन में उत्तेजना लाकर वेदना को शमन करनेवाली ओषधियां।

उड्डयनशील—खुला रहने और उष्णता लगनेपर उड़ जानेवाला।

उत्तेजक—हृदय आदि यन्त्रोंकी गतिको बढ़ानेवाली।

उत्तरवस्ति—गर्भाशय या मूत्राशयमें तेल जल आदि पहुँचाना।

उपलेपक—त्वचा आदिको चिपचिपी और शिथिल बनाने वाली।

कफनिःसारक—कफको निकालनेवाली।

कीटाणु—कीटाणु अति सूक्ष्म जीव हैं जो आंखोंसे देखनेमें नहीं आते।

अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेमें आते हैं। ये कीटाणु अनेक जातिके हैं। निश्चित जातिके कीटाणुओंही से निश्चित रोगकी उत्पत्ती होती है।

कोथप्रशमन—सड़नेकी क्रियाको रोकनेवाली।

केश्य—बालोंके लिये हितकर।

गुरु—पचने में भारी।

ग्राही—दस्तको गाढ़ा करनेवाली।

चक्षुष्य—नेत्रों के लिये हितकर।

दीपन—अग्निको प्रदीप्त करनेवाली।

दाह शोथ—किसी स्थानमें कीटाणु लग जानेपर श्लैष्मिक कलामें विकृति होकर सूजन आती है।

नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक—नियमित समयपर आनेवाले बुखारको रोकनेवाली। मलेरियामें रोज आनेवाले, दूसरे दिन आनेवाले, तीसरे दिन आनेवाले, चौथे दिन आनेवाले, ऐसे निश्चित समय पर आनेवाले ज्वर हैं, उनपर लाभदायक।

(गुणधर्म दर्शक)

प्रदाह—जलन

प्रत्युग्रता साधक—सम्बन्धवाले स्थानमें उग्रता पहुँचानेवाला।

पाचन—कच्चे आमको पचानेवाली।

पिच्छल—कफवर्द्धक, चिपचिपी टूटे हुएको जोड़नेवाली।

पूतिहर—दुर्गन्धनाशक। सड़ने की क्रियाको रोकनेवाली (Antisepitc) औषधियां।

पुंस्त्व—स्त्री समागम शक्ति।

पंचांग—पान (पत्ते), फल, फूल, मूल, शाखा, इन सब अंगों को मिला लेनेसे पंचाङ्ग होता है।

प्रत्युग्रतासाधक - जिन उग्रता साधक प्रयोगों की क्रियाका परिणाम सम्बन्ध वाले दूसरे स्थान पर हो, वैसे प्रयोग।

प्रदर—स्त्रियोंकी योनिमेंसे सफेद, पीला या लाल स्राव होना।

बल्य—बल देनेवाली कितनीक औषधियां पचन शक्तिके बलको बढ़ाती हैं। जैसे कूचिला जैसे अजवायन आदि।

भेदन—जमे हुए और शिथिल, सब मलों को तोड़कर नीचे गिरानेवाली औषधि (जुलाब)

मूत्रजनन—मूत्रकी उत्पत्ति (थोड़ी वृद्धि॰) कराने वाली।

मूत्रविरजनीय—मूत्रका रंग सुधारनेवाली औषधियां।

रसायन—वृद्धावस्थाकी निर्बलताको दूरकर युवावस्थाकी प्राप्ति करानेवाली।

रक्तप्रसादक—रक्तको शुद्ध करनेवाली।

लघु—जल्दी पच जानेवाला, हलका।

लालोत्पादक—मुहमें थूककी उत्पद्धि अधिक करानेवाला।

लालानिः सारकः— " "

लेखन—धातु और मलको सुखाने वाली।

वयः स्थापन—युवावस्थाको टिकानेवाली और पुनः यौवन प्रदान करनेवाली ओपधियां।

वाजीकर—कामोत्तेजक।

वान्तिहर—कै को दूर करने वाली।

विपाक—औषधि और भोजन आदि पाचक रसमें मिलकर रूपान्तरित होते हैं। यह रूपान्तर (विपाक) मधुर, चरपरा और खट्टा होता है।

वीर्यस्तम्भन शुक्रको रोकनेवाली।

वेदनास्थापन—उत्पन्न हुई वेदनाको दमनकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनानेवाली औषधि।

शामक—हृदय आदि यन्त्रोंकी गतिको कम करनेवाली।

शिरो विरेचन—मस्तिष्कमें रहे हुए कफ आदि मलका नाकसे स्राव कराकर बाहर निकालने वाली औषधियां।

श्रमहर—थकावट को दूर करनेवाली औषधियां।

श्लेष्मनिःसारक—कफको निकालनेवाली।

स्तन्यजनन—स्तन्य (दूध) की उत्पत्ति करानेवाली।

स्वेदघ्न—पसीना दूर करनेवाली।

स्वेदजनन—पसीना लानेवाली।

संशमन—बिगड़े हुए वात, पित्तादि दोषों को वमन या दस्त कराये बिना सम अवस्थामें लानेवाली ओषधियां।

स्रंसन—उदरमें रहे हुए कच्चे और पक्के मलको नीचे गिरानेवाली ओषधियां (जुलाब)

हृद्य—हृदयपौष्टिक या हृदयके लिये हितकर।

(औषधकृति दर्शक शब्द)

कल्क—औषधिको पीसकर चटनीकी तरह बना लेना। विशेषतः जल मिलाकर पीसना पड़ता है।

शीतकषाय (हिम)—ओषधिके चूर्णको १६ गुने जलमें मिला, भिगोकर १२ घण्टे रख देवें। फिर छानकर उपयोगमें लें।

फाण्ट—जिस ओषधिका फाण्ट बनाना हो, उसके चूर्णको ८ से १६ गुने जलमें उबालें। उबालते समय २० मिनट ढका रहने देवें। फिर छानकर उपयोग करें।

क्वाथ—जिस ओषधिका क्वाथ करना हो, उससे ८ से १६ गुने जलमें मिलाकर उबालें। सूखी ओषधिका जौकुट चूर्णकर जलमें १२ घण्टे भिगो देवें, तो विशेष लाभ होता है। ताजी ओषधियों को कुचल, मिलाकर तुरन्त क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार-छानकर पिला देवें।

पेया—सांठी चावल ४ तोले और जल ५६ तोले मिलाकर सिद्ध करें। फिर सैंधानमक, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल और जीरा आदि मसाला मिलाकर पिलाना चाहिये।

संतर्पण—फलोंका रस और मिश्री आदि मिले हुए मधुर, लघु, पोषक पेय।

(देहके अवयव आदि)

इडा, पिंगला नाड़ियां—उदर प्रदेशमें रही हुई वातनाड़ियां।

(परिस्वतन्त्र नाड़ियां)—जो अवयवोंकी क्रियाको नियममें रखती हैं।

उदर्य्याकला—उदरके ऊपरका आच्छादन।

प्राणदा नाड़ी—उदर प्रदेशमें रही हुई वातनाड़ियां, जो क्रिया और संज्ञा प्रदान करती हैं।

वृक्क—मूत्र उत्पन्न करानेवाली दो इन्द्रियां कमरके ऊपर दोनों पार्श्व भागमें पिछली ओर १-१ हैं, जिनको गुरदा भी कहते हैं।

संचालन नाड़ी—वातनाड़ियां जो ऊपर मस्तिष्कसे नीचे उतरती हैं, और क्रिया करनेके अवयवोंको बल देती हैं।

संवेदना नाड़ी—वातनाड़ियां जो नीचेसे ऊपर जा रही हैं, जो सुख दुःख का बोध कराती हैं।

भूल सुधार

कतिपय औषधियों के क्रमांक भ्रम से अशुद्ध छप गये हैं, पाठक गण कृपया नीचे लिखे अनुसार सुधारलें।

पृष्ठ १२ पर अतीस में ४ के स्थान पर ५, पृष्ठ ८० पर एरण्ड में क्रमांक २१ बनालें, इसी प्रकार पृष्ठ ८६ से पृष्ठ ९३ तक सभी औषधियों में १-१ अंक बढ़ाकर और पृष्ठ ९७ से पृष्ठ २३६ तक १-१ अंक घटाकर पढ़ें।

कुछ औषधियों के आवश्यक अंश छूट गये हैं वे यहां पर उद्धृत किये जा रहें हैं, पाठक गण सन्दर्भ मिलाकर पढ़े—

पृष्ठ १ अकरकरा। इसका अंग्रेजी नाम pallitory root है।

पाचवीं पंक्ति में "सिंगापुर से अकरकरा आता है" लिखा है; उसके स्थान पर "अकरकरा असली और नकली दोनों प्रकार का मोरक्को (अफरीका) से आता है असली का भाव ७॥) रु० पौण्ड और नकलीका।≈) पौण्ड के लग भग है।

नकली से भी गुणकी प्राप्ति हो सकती है, उसमें भी चरपरापन है; तथापि विशेष कार्य के लिये असली अकरकरा का ही प्रयोग होना चाहिये। गौण कार्यों में नकली का उपयोग भी किया जा सकता है।

प्रायः चिकित्सकों को असली नकली अकरकरे का भेद ज्ञात न होने से उन्हें व्यापारी बहुधा नकली ही अकरकरा दे देते हैं, अतः अकरकरा खरीदते समय विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

भारत में इसे बागोंकी शोभा के लिये एवं घरों में गमले में लगाते हैं अतः यह भारतीय अकरकरा बाजार में नहीं मिलता।

पृष्ठ ३८ चौथी पंक्ति ८ के पश्चात् एवं उपयोगके ऊपर

३. श्वास-कासपर—तवेपर सेकी हुई अलसी के १ तोले आटे को लगभग २५-३० तोले उबलते जल में डालकर मंदाग्नि से १०-१५ मिनट तक उबालें और इसे कुड़छी द्वारा सावधानी से चलाते रहें। उसमें आवश्यक शक्कर (लगभग १ तोला) तथा छोटी इलायची के दाने, लौंग और जायफल प्रत्येक का ताजा चूर्ण ४-६ रत्ती मिला लेवें। फिर लगभग १० मिनट तक पात्र को ढक देवें। पश्चात् जलसे औटा दूध मिलाकर पिला देवें। इस तरह रोज सुबह पिलाते रहने से शुष्ककास जिसमें खांसी का वेग ५-७ मिनट पर चलता रहता है, फिर थोड़ा झाग निकलता है; तथा कफकास, जिसमें कफ चिपक गया हो अति गाढ़ा और पीले रंग का हो गया हो,

सरलता से बाहर न निकलता हो, खांसी के समय रोगी अति व्याकुल हो जाता हो, इन दोनों ही प्रकार की खांसीमें अच्छा लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त श्वासके जीर्ण रोगियोंको यह चाय ४-८ मास तक पिलाते रहने पर फुफ्फुस कोषाण्ड और सूक्ष्म श्वास प्रणालिकाएं शुद्ध और बलवान बन जाती हैं। जिससे श्वास रोग दूर हो जाता है।

सूचना—श्वास या कास का अधिक त्रास होने पर और फुफ्फुसोंमें खिचाव होनेपर यह अलसी की चाय सुबह के समान रात्रि को भी दे सकते हैं। श्वास का दौरा होनेपर यह चाय दौरे के रूपमें भी दी जा सकती है। किन्तु अपचन से श्वास का दौरा होता हो तो यह चाय नहीं देनी चाहिये।

पृष्ठ ४९ पंक्ति १० के पश्चात् सूचना के पहिले—

३—अर्क यवानी गुटिका—आक की चौफुलियां और अजवायन १-१ सेर को कूटकर २ सेर गुड़ की चासनी में मिलावें। और उसकी २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१-२ गोली जलके साथ दिन में २-३ बार

उपयोग—यह वटी उदर शूल, अफारा, उदर में वायु भरा रहना, आमवृद्धि, कफ प्रकोप, कफकास, अपचन जन्यश्वास, और आमज्वर पर उपयोगी है। इसके सेवन से शूल शमन होकर दर्द शान्त होता और आमका पचन होता है। कफस्राव सरलता से होता और स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है। इस वटीका उपयोग अनेक वर्षों से श्री वैद्य नर्गानदासजी सफलता पूर्वक कर रहे हैं। उदरशूल, अपचन होकर अफारा होना उदर में वायु भरा रहना; मल, आम या वायु के कारण उदर शूल चलना इस गोली से तत्काल दूर हो जाता है। कफ प्रकोप हो तो कफ निकल जाता और प्रस्वेद आकर ज्वर भी उतर जाता है।

पृष्ठ ७१ पंक्ति १९ के नीचे तथा मात्रा के ऊपर—

उपयोग—इन्द्रायनमें ४ जाति दर्शायी हैं। इनमें सिट्रुलस कोलो-सिन्थिस-का उपयोग डाक्टरीमें किया है। जिसमें विरेचन गुणका उपयोग किया है। क्योंकि, इसमें विरेचन गुण दूसरोंकी अपेक्षा अधिक है। इन्द्रायनका उपयोग चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिताके समयसे होरहा है। कामला, सन्धिवात, वृषणवृद्धि, गण्डमाला, उन्माद, प्लीहोदर, उदरकृमि, कुष्ठ, इन्द्रलुप्त और पशुओंके व्रणके कीड़ोंके नाशके लिये उपयोग किया है।

इन्द्रायन—यह कृमियोंको मारकर निकाल देता है, अपचन को दूर करता है। तथा वमन-विरेचन करा जलोदर और शोथको नष्ट करता है। इस हेतुसे इसकी मूल और कालीमिर्चका चूर्ण कृमि, अपचन, जलोदर और शोथपर दिया जाता है। एवं शोथपर मूलको घिसकर लेप भी करते हैं।

अजीर्ण जनित ज्वरपर इसके मूलको जलमें पीस, जल मिला कालीमिर्च और सोंठ डाल फिर गरम ईंटके टुकड़ेको बुझाकर, जल पिलाया जाता है। एवं जीर्णज्वर होनेपर अधिक त्रास होता हो, तब इसके पंचांगकी बाष्पसे स्वेदन भी कराया जाता है।

लाल इन्द्रायन—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, जब श्वासरोगमें कफ न निकलता हो अथवा कण्ठरोहिणी, स्वरयन्त्रद्वार-प्रदाह और कण्ठकी गाठोंके शोथमें कफ चिपचिपा हाजानेपर घबराहट बहुत होती हो और श्वासनलिका प्रदाहके हेतुसे चिपचिपे कफद्वारा श्वासनलिका बन्द हो गई हो तब, फलकी छालका छोटा टुकड़ा या मूलकी छालका धूम्रपान करानेपर कुछ वमन हो जाती है, कभी कभी रक्त भी गिरता है और चिपचिपा कफ गिरने लगता है। फिर शेष पतला कफ रह जाता है। धुएँसे श्वासावरोध कम होकर कण्ठशोथ उतर जाता है।

मूलकी छालका क्वाथकर १-१ औंस दिनमें ३ बार फुफ्फुसशोथमें देते हैं। इससे ज्वर कम हो जाता और घबराहट दूर होती है।

इसके मूलको शीतल जलमें घिसकर व्रण शोथपर लेप किया जाता है। इससे दुःख दाह और शोथ कम हो जाता है। स्तनशोथ, नाखुनोंका पाक, शय्याव्रण और विद्रधि आदि रोगोंमें बड़ी इन्द्रायण के मूलके साथ इसके मूलको शीतल जलमें घिसकर मोटा लेप किया जाता है।

फलको नारियलके तैलमें उबालकर वह तैल कानमेंसे पूय आनेपर डाला जाता है। यह तैल शिरदर्द पीनस और कानके पीछेकी ओर त्वचा फट जानेपर भी लगाया जाता है। तैलकी बूंद नाकमें डालनेपर श्वेत स्राव होकर शिरदर्द और अश्रुस्राव विकार भी दूर हो जाते हैं।

कांटेदार इन्द्रायण—यह उदरशूल, उदरकृमि, अपचन और ज्वरपर घरेलू औषध है। इसके मूलको कालीमिर्च या नमकके साथ देते हैं। विशेष उपयोग इन्द्रायण में लिखे अनुसार किया जाता है

ग्रामीण लोग नख पकने के समय असह्य वेदना होनेपर इसके फलमें छिद्रकर अंगुलिपर पहना दिया करते हैं। जिससे थोड़े ही समयमें वेदना और नखके पाससे शोथ कम हो जाता है तथा जल्दी पाक होकर विद्रधि फूट जाती है।

घोड़ेके पेटमें दर्द होनेपर फल घोड़े को खिलाया जाता है। फल बहुत कड़वा होनेपर भी घोड़ा इसे प्रेमपूर्वक खालेता है। कभी घोड़ा स्वयमेव घासके साथ इसकी बेलको ही खा जाता है। इसके सेवनसे उदरके कृमि मर जाते हैं।

श्वेतपुष्पवाली इन्द्रायन—जिसका डाक्टरीमें विशेष उपयोग होता है, उसका उपयोग डाक्टर देसाईके मतानुसार कफ प्रधान रोगोंमें विशेष होता है। इससे स्रोतसे खुल जाती हैं। आमवात, संधियोंका शोथ, जलोदर, कामला, यकृद्दाल्युदर,

प्लीहोदर और प्रबल मलावरोध होनेपर इसका अवलेह या मूलका चूर्ण सोंठ और गुडके साथ दिया जाता है। वातसंस्थामें विकृति होकर वातप्रकोप चिन्ह दीखनेपर इसका विरेचन दिया जाता है।

मूलको शीतल जलमें घिसकर दाह कम होनेके लिये व्रण शोथपर लेप किया जाता है। प्रारम्भमें ही लेप कर देनेपर जलन कम हो जाती है। और शोथ दूर हो जाती है। किन्तु एक बार पूयोत्पत्ति होनेपर इसका कुछ भी उपयोग नहीं होता। स्तनोंका शोथ, नखविष, योनिशूल और उदर रोगोंमें मूलका लेप किया जाता है। बीजोंका तैल बाल काले रहने के लिये लगाया जाता है।

पृष्ठ ७३ पंक्ति ८ से आगे तथा वक्तव्यक्ति के ऊपर

१ कामला—इन्द्रायणकी मूलका चूर्ण गुडके साथ खिलानेसे यकृत्को उत्तेजित कर स्राव बढा देता है, जिससे पित्तनलिका अवरोध दूर होकर कामला शमन हो जाता है।

२ स्तन्य वृद्धिजन्य पीड़ा—बालक की मृत्यु होजानेपर स्तनोंमें दूध बढ़ जानेसे पीड़ा होती हो तो, उसपर इन्द्रायन की मूलको जलमें घिसकर मोटा मोटा लेप करना चाहिये। इन्द्रायन के समान सूचीबूटी या धतूराका लेप भी होता है। और कपूर खिलाया जाता है।

३ प्लीहोदर—विशालावलेहका सेवन करानेसे प्लीहा शनैः शनैः कम होजाती है।

४. पशुओंका व्रण—पशुओंको चांदे होकर उनमें कृमि उत्पन्न होगये हों तो, उसपर इन्द्रायणका रस डालनेसे कीड़े मर जाते हैं।

५. ग्रन्थिवात—इन्द्रवरणाके मूलके क्वाथ में त्रिकटुका चूर्ण १॥ माशे और ३ माशे गुड़ मिलाकर रोज सुबह पिलाते रहनेसे उदरशुद्ध और रक्तशुद्धि होकर जीर्ण संधिवातकी पीड़ा दूर होजाती है।

६. दाहयुक्त गांठ और विद्रधि—फल या मूलको जलमें घिसकर लेप करते रहनेसे फोड़ा जल्दी पक जाता है। गांठ अपक्व हो तो रक्त फैलकर मिट जाती है।

७. इन्द्रलुप्त—शिरपर गंज होकर खुजली आती हो, सूक्ष्म कृमिके हेतुसे बाल गिरते हों, छोटी छोटी फुन्सियां हुई हों तो उसपर इन्द्रायण के मूलको गोमूत्रमें घिसकर शिरपर लेप करते हैं।

पृष्ठ १९० नं० २ में जामुन का सिरका बनाने की विधि लिखी गई है, उसमें इतना विशेष है कि—

जामुन तथा ईखके सिरके की विधि एक सी है और जामुन या ईख के रस को अच्छी तरह मिट्टी या कलईदार बरतन में उबालें और तब छानकर अमृतबानमें भरें।

रोगानुसार औषधसूची।

१ अग्निमान्द्य—मंदाग्नि।
२ अजीर्ण—अपचन।
३ अतिसार—दस्त।
४ अन्तरप्रदाह।
५ अपस्मार—मृगी।
६ अम्लपित्त।
७ अफीमका व्यसन।
८ अरुचि।
९ अर्बुद—कर्कस्फोट।
१० अर्श—बवासीर।
११ अश्मरी—पथरी।
१२ अस्थिभंग—आगन्तुकचोट।
१३ आध्मान—अफारा।
१४ आनाह—कब्ज।
१५ आमवात—गठिया।
१६ उदररोग।
१७ उन्माद—पागलपना
१८ उपदंश—गरमी, आतशक।
१९ उपान्त्रप्रदाह।
२० उरस्तोय।
२१ कण्ठमाल—गलगण्ड।
२२ कण्ठरोग—गलेके रोग
२३ कर्णरोग।
कब्ज—आनाहमें (नं० १४)
२४ कृमिरोग
२५ कामला—पीलिया
२६ कास—खांसी
२७ कुष्ठ कोढ़—
१८

कै—वमनमें (नं० ५६)।
२८ गुल्म—गोला।
२९ ग्रहणी—संग्रहणी।
३० ज्वर—बुखार।
३१ ज्वरातिसार।
तपेदिक—क्षयमें (नं० ७६)
३२ तृषा—प्यास
३३ त्वचारोग—चमड़ीके रोग।
दमा—श्वासमें (नं० ७१)
३४ दन्तरोग।
दाद—कुष्ठमें (नं० २७)
३५ दाह रोग।
३६ धातुक्षीणता—निर्बलता, नपुंसकता
नारूरोग-स्नायुमें (नं० ७२)
३७ निद्रानाश।
३८ नासारोग।
३९ नेत्ररोग—आंखके रोग।
४० प्रतिश्याय—जुकाम, नजला।
४१ प्रमेह रोग
४२ प्रभात—लू लगना।
४३ प्रवाहिका—पेचिश।
प्लीहावृद्धि—उदररोग में (नं० १६)
४४ पाण्डु रोग
फोड़े—फुन्सि व्रणमें (६२)
४५ बहुमूत्र
४६ बालरोग
बुखार—ज्वरमें (३०)
ब्यूची—कुष्ठमें (२७)
४७ भगन्दर।

४८ मदात्यय।
४९ मसूरिका—शीतला।
५० मुखरोग
५१ मूर्च्छा।
५२ मूत्रकृच्छ्र।
५३ मेदो वृद्धि
५४ रक्तपित्त—रक्तस्राव।
५५ रक्तविकार
५६ वमन—वान्ति, कै
५७ वातरोग।
५८ वातरक्त।
५९ विसर्प।
६० विषप्रकोप।
६१ विसुचिका—हैजा।
६२ व्रण—विद्रधि।
६३ वृषणवृद्धि।
६४ शरीर शोधन।
६५ शराब का नशा और लालसा
६६ शिरदर्द
६७ शीतपित्त
६८ शूल।
६९ शोथ—सूजन।
७० श्लीपद—हाथीपगा। फीलपांव।
७१ श्वास—दमा
७२ स्नायु—नारूरोग
७३ स्त्रीरोग
हैजा—विसूचिकामें (६१)
७४ हिक्का—हिचकी
७५ हृदरोग।
७६ क्षय—तपेदिक।
७७ क्षुद्ररोग

(२०) उरस्तोय-फुफ्फुसावरण प्रदाह ।

अफीम २७, ३३ ।

(२१) कण्ठमाल, अपची, गलगण्ड

चौलमोगरा १८५ ।

गलगण्ड—आक ५४ । कड़वी तुम्बी ९२ ।

(२२) कण्ठरोग-गलेके रोग ।

स्वरभंग—आवाज बैठ जाना-अकरकरहा ३ । अनार २० । आंवला ६९ । नीलोफर २४४ ।

गलेमें गांठ—अमलतास ४१ ।

(२३) कर्णरोग-कानके रोग ।

कर्णशूल—अदरख १६ । अफीम ३२, ३४ । आक ५४ । कड़वी तुम्बी ९२ । कचर ११० । कुप्पी १४५ । चूका १८२ । थूहर २०४ । धतूरा २२५ । नागरवेल २३५ । नींबू २३८ । पिप्पली २६३ ।

जन्तुप्रवेश—एरण्ड ८६ । कडवी तुम्बी ९२ ।

कर्णस्राव—कण्टकरंज १४० ।

कर्णपाक—दारूहल्दी २१० । धतूरा २२५ ।

(२४) कृमिरोग ।

छोटेकृमि—अजवायन ८। अमलतास ४३। आंधीझाडा ६२ । करेला ११९। कीडामार १३० । कण्टकरंज १४० । कपीला १४२ ।

गोलकृमि—अनार १९ । एरण्डककड़ी ८८ । किरमाणि अजवायन १२७ ।

कद्दूदाना—चिपटे कृमि-अनार १९ । कद्दू १५० ।

कृमि ज्वर—किरमाणी अजवायन १२८ ।

(२५) कामला-पीलिया-यकृद् विकार ।

आंवला ६८, ६९ । ककोड़ा ९० । कडवी तुम्बी ९३ । कडवी तोरई ९६ । गिलोय १७१ । जमालगोटा १८८ । जामुन १९१ । थूहर २०४ । दारूहल्दी २११ । देवदाली २१९ । पिप्पली २७५ ।

यकृद्विकार—जामुन १९१ ।

(२६) कास-खांसी ।

शुष्कवातज—अनार २० । आंवला ६९ । कटभी ९० । खुरासानी अजवायन १५८ । गिलोय १७१ । नीलोफर २४४ ।

कफज—अजवायन ६ । अडूसा ११ । अफीम २६, २७ । आक ५३ । आंधीझाडा ६३ । कपूर १०५ । करेला ११९ । नागरबेल २३४ । पिप्पली २६१ ।

पुरानी खांसी—अजवायन ९ ।

काम चूड़ामणि रस

यह हमारी रसायनशाला द्वारा तैयार किया जानेवाला एक उत्कृष्ट रसायन है। इस रसायनकी विशेषता यह है कि यह शीतवीर्य होनेपर भी शुक्रवर्द्धक तथा कामोत्तेजक है। अनेक कामोत्तेजक औषधियोंके समान इसमें एक भी उष्णवीर्य औषधि नहीं है। अतः यह अत्यन्त प्रभावशाली औषधि सिद्ध हुई है।

जिन मनुष्योंने अधिक स्त्री समागम या अन्य रीतिसे अपना शुक्र नष्ट कर दिया हो, उनके लिए यह अमूल रूप लाभदायक है। शुक्रहीन गतध्वज और ८० वर्षके वृद्धको भी धैर्यपूर्वक सेवन करनेसे तथा ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे युवाके समान बलप्रदान करता है। असाध्य ध्वजभंगमें भी इससे लाभ हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रमेह, मूत्र रोग, अग्निमांद्य, शोथ, रक्तदोष और स्त्रियोंके समस्त रोगोंमें भी यह लाभ करता है।

नेत्र प्रभाकर अंजन

इस अञ्जनका उपयोग करनेसे नेत्रदाह, पानी गिरना, कमजोरी, दृष्टि दौर्बल्य, तिमिर आदिका नाश होकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है। यह काला सुरमा और मुक्ताके मिश्रणसे बनाया हुआ अत्यन्त सुप्रसिद्ध सुरमा है। यह कपूरके सम्मिश्रणसे नेत्रोंके लिए अत्यन्त उपयोगी बन जाता है। इसका प्रयोग प्रतिदिन नीमकी शलाकासे करना चाहिये। मूल्य ६ माशेका १) एक रुपया।

आयुर्वैदिक प्रयोगोंके सारसंग्रहरूप अनुभूत ग्रन्थ

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह ॥

(संशोधित और परिवर्धित, षष्ठम संस्करण)

इस ग्रन्थमें भस्म, कूपीपक्व रसायन, खरलीय रसायन पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव, अरिष्ट, पाक अवलेह, घृत, तैल, अञ्जन, लेप, मलहम आदि सब प्रकारकी औषधियोंके अनुभूत प्रयोग दिये गये और सैकड़ों बारके अनुभूत प्रयोग भी दिल लिख दिये गये हैं। साथ ही औषधि बनानेकी विधि भी खूब समझाकर लिखी औषधियोंका गुण-विवेचन भी विस्तारपूर्वक किया गया है, अन्तमें रोगानुसार औ‍में उपद्रव भेद और वातादि दोष भेदसे औषध भेद दिखलाये गये हैं।

कृष्णगोपाल धर्मार्थ औषधालयकी रसायनशालामें उक्त ग्रन्थमें लिखे प्रयोगोंके अनुसार ही औषधियाँ तैयार कराई जाती हैं।

एजेण्टोंकी नामावली

१—कृष्णा गोपाल धर्मार्थ औषधालय, पो० कालेड़ा—बोगला (अजमेर)।
२—श्री पं० गोवर्धन जी शर्मा छांगाणी, सीताबल्डी—नागपुर।
३—श्री पं० राधाकृष्णजी द्विवेदी, उर्दू बाजार, चारकमान, हैदराबाद (दक्षिण)।
४—भारत सेवक औषधालय, नयी सड़क, देहली।
५—प्राणाचार्य भवन, विजयगढ़, (अलीगढ़)।
६—देशरक्षक औषधालय, मलियार कोटला (पंजाब)।
७—श्रीगणेशदासजी धूलचन्दजी चाण्डक, सौसर (छिन्दवाड़ा)।
८—वैद्य शान्तीलालजी एन० वसंत, सोनावाला इंडस्ट्रीज, १३७ शेख-मेमनस्ट्रीट, बम्बई नंबर २।
९—श्रीपन्नालालजी शर्मा, चांदपोल—उदयपुर।
१०—श्रीश्यामलालजी बुकसेलर, दौलत मारकीट—आगरा।
११—श्री पं० विश्वनाथजी वाजपेयी, औरैया (इटावा)।
१२—श्रीजयकृष्णदासजी हरिदासजी गुप्ता, पो० बा० नं० ८, बनारस।
१३—मास्टर खेलाड़ीलालजी एण्ड सन्स, बनारस।
१४—श्रीपं० शान्तीस्वरूपजी, श्रीराम रोड, लखनऊ।
१५—श्रीपं० रामगोपालजी; संस्कृत हितैषिणी पाठशाला, गंज, अजमेर।
१६—पाडिया स्टोर्स-तेल्हारा (अकोला)।
१७—पनपालिया ब्रदर्स—अकोला (बरार)
१८—श्रीमान् तीर्थरामजी जोशी, बाजार माई सेवां, अमृतसर (पंजाब)।

निकट भविष्यमें प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ:—

नेत्ररोग विज्ञान—हिंदुस्तानके प्रसिद्ध नेत्रविशेषज्ञ स्व० डा० जादवजी हंसराज, बम्बई द्वारा लिखित, हिन्दी भाषाका उत्कृष्ट बेजोड़ ग्रन्थ। सुन्दर अमेरिकन २८+२२ अठपेजी साइजमें ९२० पृष्ठोंका अनेक चित्रोंसहित लगभग एक मास पश्चात् प्रकाशित होगा। मूल्य १५)+१) पोस्टेज।

ग्रन्थ प्रकाशन और औषध विक्रय

इस संस्था की ओरसे ग्रन्थोंका प्रकाशन और औषध-विक्रय ये दोनों कार्य सेवा भाव से किये जाते हैं। इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भरसक कम रक्खा गया है—और भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा। हमारे ग्रन्थोंका अन्य भाषाओं में कोई भी चिकित्सक अनुवाद कराना चाहेंगे, तो उन्हें निःस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं, भविष्य में कदाच किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन बन्द हो जाय, तो कोई भी धर्मार्थ संस्था हमारे ग्रन्थों को प्रकाशित करा सकती है। हमारी ओर से किसी भी प्रकारका विरोध नहीं किया जायगा।

हमने औषध प्रयोगों में से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रक्खा, और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे। प्रयोग विधि गुप्त रखने से उनका इच्छानुसार दस-बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करने में आयुर्वेद साहित्य को और देश को हानि पहुँचती है। अतः इस नियम के सम्बन्ध में हमने अन्य फार्मेसियोंका अनुकरण नहीं किया और न भविष्य में करेंगे। यह धर्मार्थ संस्था महाप्रभु कल्याणराय की है। वे यदि इसे निभाना चाहते हैं, तो इसके संरक्षक वर्ग (ट्रस्टियों) के हृदय में विशालता और सत्य पालन में दृढ़ता प्रदान करेंगे; ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल
व्यवस्थापक

सिद्ध परीक्षा प्रदीप। (प्रथम खण्ड)

(ले० राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल)

इस ग्रन्थ में क्रियात्मक रोग-निदानका सविस्तार वर्णन किया है। प्रारम्भ में प्रश्न परीक्षा और रोगीकी सामान्य दशा तथा आकृति का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् संस्थानुसार परीक्षा लिखी है। पचनेन्द्रियसंस्था, उदर, वमन, मल, आहार, फुफ्फुससंस्था, कफ, रक्तवाहकसंस्था, रक्त, मूत्र और त्वचा आदिकी परीक्षा का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थ Clinical Methods आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। अतः आशा है कि, यह ग्रन्थ आयुर्वेदके विद्यार्थी तथा चिकित्सकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

यह चिकित्सातत्त्वप्रदीप के टाइपों में छप रहा है। सेप्टेम्बर के अन्त तक छप जानेकी आशा है। साइज १८×२२ अठपेजी, पृष्ठ संख्या ६०० के लगभग है। (मू० ६)